ઈચ્છારામ સૂ-દેસાઈ

जन्म (सुरत)
वि. सं. १९१० श्रावण शुक्र ६ बुधवार
(ता. २३-८-१८५४)

अवसान (मुंबई)
वि. सं. १९६९ कार्तिक कृ. १३ गुरुवार
(ता. ५-१२-१९१२)

CHANDRAKANT

(AN EXPOSITION OF PRACTICAL VEDANT)

IN THREE PARTS

PART FIRST

BY

ITCHÂRAM SÛRYARÂM DESÂI

Late EDITOR THE "GUJARATI"

Hindi Translation

(THIRD EDITION)

PUBLISHERS:—

THE "GUJARATI" PRINTING PRESS.

BOMBAY 1.

V. S. 1984 A. D. 1928

चन्द्रकान्त

(वेदान्तज्ञानका मुखग्रन्थ)

तीन भागोंमें—प्रथम भाग.

ग्रन्थकर्त्ता

स्व. इच्छाराम सूर्यराम देसाई

संपादक—गुजरातीके * स्थापक—गुजराती-प्रेसके.

(हिंदी)

तिसरी आवृत्ती

प्रसिद्धकर्ता:—

"गुजराती" प्रिन्टिंग प्रेस,

मुंबई नं. १.

विक्रमाब्द १९८४ सन १९२८

पुस्तक मिलनेका पताः—

मेनेजर—"गुजराती" प्रिन्टिंग प्रेस,

सासुनबिल्डिंग, एल्फिन्स्टन् सर्कल, कोट, मुंबई नं. १.

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,
२०३, हरिसनरोड, कलकत्ता.

श्रीवेंकटेश्वर प्रेस पुस्तक एजेन्सी
१९५। २, हरिसनरोड, कलकत्ता.

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,
ज्ञानवापी, काशी.

खेमराज श्रीकृष्णदास–
श्रीवेंकटेश्वर बुक डिपो,
चौक, काशी.

हरिकृष्णदास "गुप्त-बुक-डिपो"
कचौरी गली, बनारस सीटी.

मास्टर खेलाडी लाल–
संस्कृत बुक डिपो,
कचौरी गली, बनारस सीटी.

गौरीशंकर शर्म्मा–
भास्कर पुस्तकालय,
ठठेरी बजार, बनारस सीटी.

रघुनंदन प्रसाद शुक्ल–
संस्कृत पुस्तकालय,
कचौरी गली, बनारस सीटी.

मोतीलाल बनारसीदास–
पंजाब संस्कृत बुक डीपो
सैदमीठा स्ट्रीट, लाहोर.

मेहेरचंद्र लक्ष्मणदास–
संस्कृत पुस्तकालय,
सैद मिठा बाजार, लाहोर.

अमर जैन बुक डीपो,
सैदमिठा बाजार, लाहोर.

हिन्दी भवन,
होस्पीटल रोड, लाहोर.

गंगा–पुस्तकमाला–कार्यालय
(विक्रय–विभाग), लखनऊ.

बम्बई पुस्तकालय,
चौक, कानपुर.

पं. जगन्नाथ लक्ष्मीनारायण,
अध्यक्ष, संस्कृत पुस्तकालय,
बडा दरीबा, दिल्ली.

स्कूल बुक डिपो,....अयोध्या.

राजपूताना स्कूल बुक डिपो,
जोधपुर.

(शिखरिणी.)

न रम्यं नारम्यं प्रकृतिगुणतो वस्तु किमपि।
प्रियत्वं यत्र स्यादितरदपि तद्ग्राहकवशात् ॥
रथाङ्गाह्वानानां भवति विधुरङ्गारशकटी।
पटीराम्भः कुम्भः स भवति चकोरीनयनयोः ॥

अर्थ—कोई भी वस्तु अपने द्रव्य गुणके कारणसे (स्वाभाविक गुणसे) अच्छी वा बुरी नहीं मानी जासकती; किन्तु उसके ग्राहककी रुचि (वा अरुचि) पर उसके भले (बुरे) पनका आधार रहता है. यथा—चक्रवाकियोंको जो चन्द्रमा अङ्गारशकटीवत् (प्रज्वलित अग्निसे भरीहुई सिगड़ी (अँगेठी) के समान) भासता है, वही चन्द्रमा चकोरीके नेत्रोंको चन्दनके जलसे भरेहुए घटके समान भासमान होता है. अर्थात् उसके दर्शन होतेही चकोरीके नेत्र शीतल होजाते हैं.

DIVINE philosophy begins with the idea of God, and has been eloquently described as "capable of continual expansion, which transforms into its own likeness the mind that receives it, grows more refulgent by having transferred upon it new preception of beauty and goodness—attracting to itself as a centre whatever bears the impress of dignity, order, or happiness; which borrows splendour from all that is fair, subordinates to itself all that is great, and sits enthroned in the riches of the universe."

HALL

जिज्ञासुकी शोध.
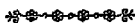
अखिल विश्वके आधार और समग्र चराचरके स्वामी प्रकट परमात्माके चरणका शरण ग्रहण करके, आधि, व्याधि तथा उपाधिसे परिपीडित मनकी शान्ति करनेके-लिये शरत्पौर्णिमाके पूर्ण चन्द्रके समान शान्तिप्रदायक इस चन्द्रकान्तमणिको जिज्ञासु जनोंके सन्मुख रखनेके पहले, जो कुछ निवेदन करना है वह यही है कि, मानवी सृष्टिका धर्मसम्बन्धमें तथा परमात्माकी प्राप्तिके विषयमें सदा सर्वदा भ्रमता रहता है. उसके मनमेंके संकल्प विकल्पोंके निराकरणके लिये, तथा विक्षिप्त चित्त (बावला मन) क्योंकर स्थिर हो इसके लिये, अथवा ज्ञानके विषयकी घटना अतिदुर्घट होनेसे उसमें किस भांतिसे प्रवेश किया जासके इसके निमित्त, तथा सज्ञान निवृत्तिके आनन्दका भोक्ता किसप्रकार बनसके इस जिज्ञासाको पूर्ण करनेके लिये यह मणि प्रकाशमान है.

अखंडित विषयवासनाके वेगवन्त भ्रमर-चक्करवाले प्रवाहमें पड़ा हुआ प्राणी अज्ञान और दुर्ज्ञानके योगसे निवृत्तिसे विमुख रहजाता है; परन्तु सज्ञान निवृत्ति चिरसुखदायिनी और अखंडानन्दकी मूर्त्ति होनेके कारण उसमें जैसे स्थिर सुखका समावेश हुआ है वैसा और किसीमें भी न होनेसे, यह बावला (भ्रान्त) मनुष्य ज्ञानसे विमुख होनेके कारणसे प्रायः हृदयमें संतप्त होता है. ऐसे मनुष्यों-जिज्ञासुओंको अनेक बार स्वाभाविक उदासीनता आजाती है. वह (ऐसा मनुष्य) विचारता है कि मेरा क्या होगा ? मैं कौन हूं ? कहांसे आया हूं ? कहां मुझको जाना है ? इत्यादिकको न जानने-समझनेके कारण वह उदास रहता है; तथा उसको ऐसी जिज्ञासा भी उत्पन्न होती है कि, सत्य क्या है ? नित्य क्या है ? और परम पद चिदात्मा परमात्मा क्या है ? उसको जानने देखनेका साधन क्या और सिद्धान्त क्या है ? ऐसे २ विचारोंके उत्पन्न होनेसे उसके मनमें ऐसा उद्वेग रहता है जिसके कारण उसका हृदय विक्षिप्त (विभ्रमवाला) होकर भवभटकन (भवभ्रमण) में चक्कर खाया करता है. इस संसारमें ऐसे अनेक मनुष्य पड़े हैं; परन्तु सत्संगके अभावसे और प्रवृत्तिके दौरेमें फँसे रहनेसे उनको कोई ऐसा उत्तम साधन नहीं मिलता कि जिसके द्वारा वे अपने हृदय और आत्माको शान्ति दे सकें. ऐसे भटकतेहुए, बावले, विकल, मन-चित्त-हृदय-आत्माको शान्त करनेके हेतुसे, भिन्न २ सन्तजनोंके पास भिन्न २ समयमें, भिन्न २ स्थानोंमें, सुनकर, विचारकर, शोधन करके (ढूंढ़ खोजके) जिज्ञासुरूपसे चुनेहुए-तत्त्वज्ञानके बोधोपयोगी संग्रह-अनेक वर्ष हुए कि मेरे द्वारा संगृहीत होचुके हैं; वेही सब इस चन्द्रकांतमें दिखलाये गये हैं-कुछ पंडिताई बतलाने तथा ज्ञानधर्ममें मेरी यथार्थ समझ-बुद्धि पहुँची है यह दर्शानेके लिये बिलकुल नहीं.

साम्प्रत बुद्धिमाहात्म्य बड़ा प्रबल होगया है, और उसमें दिखाई देती हुई चंचलता अति विस्मय करानेवाली तथा विचित्रता दर्शानेवाली है. इस कालमें सत्यका नित्यप्रति शोधन करनेकी अपेक्षा, भवभटकनको शोधनेकी ओर विशेष लक्ष्य रहता है और यह प्रदर्शित करनेमें आता है कि, परम अद्वैत, परम पुरुष, परम गति, परब्रह्मका परम रहस्य जाननेके अर्थ हम परम श्रम साधते हैं. इस कारणसे परमात्मासम्बन्धी विचारोंके सम्बन्धमें निराली वृत्तिसे वर्त्ताव करनेमें आता है; परन्तु जैसे असाध्य रोगके लिये उद्भवैद्य (वैद्याभास) निरर्थक है, वैसेही परम सत्यके शोधनके निमित्त चंचलबुद्धि व्यर्थ है. इस अविद्यामें घिरेहुए इस बातको भूलजाते हैं कि, जैसे अमिश्रित और स्वच्छ सुवर्ण बजारमें वारंवार चलनेमें (क्रयविक्रयके व्यवहारमें) नहीं आता, वैसेही इस गुह्य–गूढ़ विषयमें चंचलबुद्धिसे प्रेरित मनुष्यका मन, प्रवेश नहीं कर सकता. परन्तु यदि किसी जिज्ञासुकी इच्छा शुद्धमनसे परमात्माके शोधन–ढूंढ़खोज–दर्शनके लिये हो तो उसकी तरफसे कुछ भी वारसा–मौरूसी (पूर्वपुरुषोपार्जित अथवा गुरुपरंपरा वा कुलपरंपरा) की आशा नहीं रखनी चाहिये. परन्तु उसको जैसा है वैसाही देखनेके लिये अन्तरात्मामें ही शोधन करना–ढूंढ़ना चाहिये. उसको संकल्प विकल्पमें दृढ़ रहकर मायाकी मोहिनीमें ममतारहित बनकर, आग्रहवाले मतमतांतरकी परवाहरहित बनना चाहिये. इसके साथ ही, जहां दृष्टिका पहुँचना भी अशक्य है ऐसे गहरे कुएमेंसे, नई २ कल्पनाओंकी शृंखला (सांकल या जंजीर या डोर) बनाकर पानी निकालनेका प्रयत्न भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह सांकल–डोर कुंएके पेंदेतक तो पहुँचेगी ही नहीं, अथवा ऐसा करते २ ही उसका जन्म वृथा ही बीत जायगा; और जो कदाचित् जीतेजी वहांतक पहुँचानेमें शक्तिमान्‌भी होजायगा तो जहां ऊपरका आंकड़ा (कड़ी) तैयार होनेपर आवेगा कि नीचेके आंकड़े (कड़ियां) कट जायँगे. अर्थात् शृंखला टूट जायगी. इससे परमात्माको पानेका जो हेतु है वह कदापि सिद्ध नहीं होसकेगा. सयाने मनुष्यको तो ऐसे परम गूढ़–गहन विषयमें इतनाही विचार रखना चाहिये कि शास्त्र अनेक हैं, उनका पार नहीं है, और आयुष्य तो अल्प है, उसमें भी विघ्न बहुतसे हैं, इसलिये भीतर जो नित्य है और बाहिर अनित्य है, उस अनित्यका त्याग करके, नित्यआन्तरको निरन्तर प्रकाशित रखनेके लिये यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये. जहांतक अभ्यंतरमें पूरा २ प्रकाश नहीं होता तहांतक वह अनेक देह–संबंधमें आया करता है और आया करेगा; कर्म करता है और भोगैगा. सुख–दुःखको जन्म देगा और भोगैगा, और वारंवार चक्कर लगाताही रहेगा, और मात्र परमात्माकी प्राप्तिके सम्बन्धमें दानेही बीनेगा, अर्थात् हाथही मलता रहेगा; परंतु जहां २ अभ्यंतरका पूर्ण प्रकाश होगया है, वहां २ अन्तिम–शरीर त्यागते ही जीव निजस्वरूपमें मिल जाता है.

इस ज्ञानको जानना, जड़बुद्धि-स्थूलमतिके जिज्ञासुको बहुत भारी-कठिन होजाता है. जिज्ञासु अनेक होते हैं; जानना, विचारना, समझना, ऐसी इच्छाये भी परिपूर्ण होते हैं; परन्तु गहन विषयमें उनकी मति प्रवेश नहीं कर सकती. उनकी समझमें आजावे इसी हेतुसे, इस मणिकी रचना की गई है. इसमें किसी मतका आग्रह नहीं है, परन्तु शंकरभगवानने जगतके कल्याणके लिये जो ज्ञान जगत्को दिया वही सामान्य ज्ञान है, कि जिस सोपान मार्ग (पैड़ी) से विशेष ज्ञानकी प्राप्ति की जासके; यही इस मणिके निर्माताकी आशा है अतएव जिज्ञासुको सहज श्रमसे समझ हो जाय ऐसे अभिप्रायसे, उदाहरणोंसे सिद्धान्तोंको दृढ़ किया है.

× × × ×

स्थितिके विना धर्म नहीं समझा जाता; और धर्म विना परमात्मप्राप्तिका ज्ञान प्राप्त नहीं होता; और ज्ञानप्राप्तिके विना निवृत्तिपरायण वर्त्तन करनेकी स्थिति दृढीभूत नहीं होती, और उसके हुए विना परमात्माके दर्शन नहीं होते; और परमात्मामें आत्माके अनुसंधान विना त्रिकालमें भी शान्ति नहीं होती. नाना प्रकारके विषयोंमें उलझे हुए मनुष्यका मन, सदा संकल्पविकल्पसे घबराया हुआ रहता है, यह बड़ा दुःख है; परन्तु परमात्मासे दूर रहना-विमुख रहना इसके बराबर और कोई दूसरा दुःख नहीं है. मनुष्यको उसका ज्ञान विना रहना इसके जैसा असुख देनेवाला--दुःखदायक कोई भी नहीं. ज्ञानप्राप्तिका मुख्य हेतुही यह है कि क्षरपरसे अक्षर, कि जिसको वेदमें परमपद कहते हैं उसको पाना; और उसमें लीन होकर अखण्डानन्दका भोगता बनना. मनुष्यजन्मका साफल्यभी तबही होता है. इतना तो स्पष्ट कहदेना चाहिये कि जिस ज्ञानमें--ज्ञानप्राप्तिके साथ पूर्णानन्दप्राप्तिका अति उत्तम 'सर्वोत्तम हेतु समाया हुआ नहीं वह ज्ञानही नहीं है; परन्तु वह कुछ औरही है. बुद्धि बारंबार गोता खिलाती है-किसी मार्गमें निश्चयानुसार चलनेको कहती है; परन्तु जहां हम अटके कि वह हमारा उपहासास्पद चित्र खींच २ कर धीरे २ रेखा २ में अर्थात् हरएक लकीरमें ऐसा विचित्र (अजीब) रंग पूरती है-भरती है-रँगती है कि अपनी आकृतिको देखकर हमही (खुद अपने आपही) लज्जित होते हैं. परन्तु वही बुद्धि श्रेष्ठ है कि जो दूरबीनकी भांति महीन (सूक्ष्म) मोटे (स्थूल)-योग्य अयोग्य-सार असार-सत्य नित्य और नित्यप्रकाशको देख सकती है. मनुष्यके लिये विकटसे विकट यही कार्य है, परमसे परम फलभी यही है. इस ग्रंथमें उस कार्यके लिये-उस फलके निमित्तकी रचना विना आडम्बरके कीगई है कि जिससे अनित्यको त्यागकर नित्यको पाजाय, और उसको पानेके लिये असंग रहकर बाह्य तथा आभ्यन्तर धर्म एकसमान सतेज-प्रदीप्त रक्खा जासके.

सं. १९४७ आषाढी एकादशी. } इच्छाराम सूर्यराम देसाई.

शोधककी विज्ञप्ति.

श्रीसच्चिदानन्दसंदोह, निरस्तसमस्तमोह, परात्पर, परब्रह्म परमात्माके अमन्दानन्दमय अमोघ अनुग्रहसे आज यह शुभ अवसर उपस्थित है कि मैं अपने हिन्दीभाषाभक्त भ्राताओंको, हिन्दीसाहित्यके एक नवप्रसूत ग्रन्थरत्नका परिचय देनेके लिये प्रस्तुत हुआ हूं. यह वह ग्रन्थ है कि, जो नितान्त निर्भ्रान्त वेदान्त सिद्धान्तका एकान्त प्रतिपादक **चन्द्रकान्त** मणि, बम्बई प्रान्तके प्रसिद्ध साप्ताहिक **'गुजराती'** पत्रके मुख्य संपादक, गुजराती भाषाके सुविख्यात लेखक, अनेक ग्रन्थोंके निर्माता, देशभक्तधुरीण सारासार–विवेक–प्रवीण, वैश्यकुलभूषण, लोकमान्य इच्छाराम सूर्यराम देसाईके शुद्ध हृदयमें देदीप्यमान प्रबोधरत्न–भाण्डागारका चमचमाता हुआ एक अमूल्य रत्न है. हमारे हिन्दी रसिकोंमेंसे जिन कतिपय महाशयोंने इनके लिखे हुए गुजराती भाषाके **"हिन्द अने ब्रिटानिया"** आदि अनेक ग्रन्थोंमेंसे किसी एक ग्रन्थकोभी कभी देखा होगा वे तो इनके अप्रतिम देशवात्सल्य तथा असामान्य व्यावहारिक और पारमार्थिक कौशल्य आदि अनुपम गुणोंसे भलीभांति परिचित होंगे ही; परंतु जिन्हें वह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है वेभी इस एकही ग्रन्थसे उक्त गुणोंको जाननेके साथ ही साथ प्रशस्त विद्वत्ता, लोकोत्तर सत्यशोधकता, अगाध विचारगाम्भीर्य, अद्भुत प्रतिभाशालित्व तथा अपूर्व विवेचनपटुता आदि इनके अन्यान्य समस्त सर्वोत्तम गुणोंकोभी सहजहीमें जान जायँगे. यद्यपि विज्ञ पाठकोंने इतनेहीसे इस ग्रन्थके स्वरूपका यथार्थ अनुमान करलिया होगा; तथापि इतर साधारण पुरुषोंके लिये कुछ विशेष परिचय देना आवश्यक होनेपर भी पिष्टपेषणवत् समझकर उस विषयमें कुछभी विना लिखेही मैं पाठकोंसे प्रार्थना करता हूं कि वे सबसे प्रथम ग्रन्थारम्भमें स्वयम् ग्रन्थकारके लिखे हुए **" जिज्ञासुकी शोध "** शीर्षक लेखको एकवार अवश्य पढ़ें; क्योंकि, उससे उनको ग्रन्थकी रचनाप्रणाली तथा उद्देश्य आदि अवश्य ज्ञातव्य विषयोंका ज्ञान होकर ग्रन्थके रूपका पूरा २ पता लग जायगा.

अब ग्रन्थकार अपने इस कार्यमें कहांतक कृतकार्य हुआ है, इस विषयमें अपना स्वतंत्र विचार विचारशील पाठकोंके सामने प्रकट करना अपना कर्तव्य समझकर, मैं यह बात मुक्त कण्ठरवसे कहता हूं कि–गूढातिगूढ, श्रुतिशिरोभाग एवं दर्शन-शिरोमणि प्रशान्त वेदान्त सिद्धान्तके गुह्यातिगुह्य, कठिनातिकठिन, आन्तरिक परम रहस्यको, उसके प्रत्येक विषयका सप्रमाण सविस्तर विवेचन और प्रत्येक पारिभाषिक शब्दोंका टीका टिप्पणी आदिद्वारा यथार्थ अर्थ समझाकर, प्रस्थानत्रय (उपनिषद्,

भाष्य और गीता) तथा वेदान्तके अन्यान्य प्रसिद्ध २ सर्व प्रकरण ग्रन्थ, इतर सर्व दर्शन-ग्रन्थ, मन्वादि स्मृति, रामायण, भारतादि इतिहास, और श्रीमद्भागवतादि पुराणोपपुराण, इत्यादि २ उपयुक्त ग्रन्थोंका निष्कर्ष लेके, आबाल गोपाल सर्व साधारणके समझने योग्य, सरल पद्धतिसे, सरल भाषामें, परम श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु और साधनचतुष्टयसंपन्न शिष्यके सुंदर संवादमय मनोहर कहानीरूपसे लिखकर, सहजमें सुगमरीतिसे साफ २ (खुल्लम खुल्ला) भरपूर खुलासेवार समझानेका लेखकका स्तुत्य प्रयत्न अधिकांशमें सफल हुआ है; क्योंकि, इसमें प्रमाणपूर्वक प्रामाणिक साधक बाधक युक्ति प्रयुक्तिद्वारा प्रत्येक विषयका ऊहापोह ऐसी उत्तमतासे किया गया है कि जिससे बड़े २ गहन और अतिजटिल प्रश्नभी बातकी बातमें अनायासही हल होजाते हैं. और, जिसके दुर्बोध तत्त्वोंको विचारते २ बड़े २ प्रतिभावान् और मेधावी पण्डितोंकीभी बुद्धि कुण्ठित होजाती है, उस वेदान्त जैसे नीरस, कठोर और विषयी जनोंके लिये साक्षात् विषकटु विषयको, विनोदात्मक भाषामें, अनेक अलौकिक दृष्टान्तोंसे पूर्ण, नाना शंका समाधान विषयक नानाप्रश्नोत्तरोंसे अलंकृत और अद्भुतादि विविध रसभूषित अतिमनोरंजक कथाका रूप देकर उसके (वेदान्तके) छिपेहुए गहरे तत्त्वोंको इसप्रकार खोलागया है, कि जिससे विषयलोलुप पामरोंकोभी मनोरंजनके साथ २ कौतुकही कौतुकमें यथार्थ तत्त्वज्ञान प्राप्त होकर, अनिर्वचनीय अखण्डानन्दका लाभ होसके. वास्तवमें संसारज्वरको मिटानेके लिये आरंभकटु क्विनाइन या चिरायतारूप वेदान्तसिद्धान्तमें मनोरञ्जन कथारूप शर्करा लपेटकर, लेखकने अपनी असाधारण विदग्धताका परिचय देनेके साथ २ उक्त वेदान्तसिद्धान्तको सर्वसाधारणका उपयोगी बना देनेमें कोई कसर नहीं रक्खी है. मेरी समझमें इस ग्रन्थको सविचार साद्यन्त पढ़नेवाला साधारण पुरुषभी गूढ वेदान्तसिद्धान्तको हृदयंगम करनेके साथ २ वर्णाश्रम-धर्मज्ञान-पुरस्सर व्यवहार और परमार्थमें यथार्थ निपुण होकर, जनकादिवत् आसक्तिरहित निष्काम कर्मोंको करता हुआ, प्रवृत्तिमें रहकर भी, निवृत्तिमार्गद्वारा प्राप्य नैष्कर्म्य सिद्धिको अवश्य पा सकेगा.

यह ग्रन्थ यद्यपि केवल शास्त्रतत्त्वानभिज्ञ साधारण समाजको शास्त्रीय तत्त्व समझानेके लिये ही रचा गया है, तथापि सावकाश होनेपर षड्दर्शननिष्णात विद्वानोंके भी देखने योग्य है; क्योंकि, कठिन विषय सर्वसाधारणको कैसे समझना चाहिये . इस बातका यह सर्वोत्तम आदर्श है, और विद्वानोंमें यह गुण होना अत्यंत आवश्यक है. किं बहुना, आध्यात्म ज्ञानशून्य द्वीपान्तरीय भाषाओंमें तो ऐसे ग्रन्थका अस्तित्व खपुष्पके समान असंभव ही है, . किन्तु बँगला और मराठी जैसी एतद्देशीय अत्युच्च भाषाओंमें भी ऐसा कोई ग्रन्थ आजतक मेरे देखनेमें नहीं आया.. अलबत्ता, संस्कृतमें

'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' तथा 'उपमितिभवप्रपञ्च' आदि कुछ २ इसीके ढँगसे मिलते हुए ग्रन्थ हैं. गुजराती शिक्षित समाजमें इसका इतना समादर है कि थोड़े ही कालमें इसकी कई आवृत्तियां होकर १५-२०हजार कापियां वातकी वातमें बिक गई. महाराष्ट्र प्रजाभी इसे बड़े गौरवकी दृष्टिसे देखती है. उनके लिये मराठी भाषामें भी इस चन्द्रकान्तका (तीनों भागोंका) अनुवाद छपवाकर तैयार है. कई आंग्लविद्याविशारद महाशयोंकी यह राय है कि यदि यह पुस्तक अंग्रेजीमें अनुवादित हो तो इसके द्वारा जड़-वादी, स्थूलदर्शी, सूक्ष्म-आध्यात्मिकज्ञानशून्य और आधिभौतिक-वैभवाध्यासी, अर्थात् ऐहिक दृश्य सुख सामग्री संपादन करनेमें ही परम पुरुषार्थ माननेवाली, अतएव परमार्थसे कोसों दूर भागनेवाली, केवल स्वार्थलोलुप यूरोपीय प्रजाका, तथा अपने घरका भेद न जान नेवाले, अपनी भाषा व भेष (वेष) को भूले हुए, अपने पूर्वजोंको अज्ञ समझनेवाले अतएव स्वाभिमानशून्य कतिपय साहवी ठाटवाले हिन्दी ग्रैजुएट महाशयोंकाभी बड़ा उपकार हो; अर्थात् वेभी इसके द्वारा ज्ञानी वनकर अपने पूर्वजोंके अपूर्व ज्ञानविस्तार तथा आचार विचारका पूर्ण परिचय मिल जानेसे उनके अनन्य भक्त होनेके साथ २ स्वधर्म-ज्ञानपूर्वक स्वाभिमानी वन जावें और अंग्रेजी-भाषाप्रेमियोंमें यह ग्रन्थ अत्यधिक आदृत हो. संभव है कि इसका **अंग्रेजी अनुवादभी** ग्रन्थकर्ता महाशय स्वयमेव किसी कालमें प्रकट करें. वस्तुतः ऐसे सर्वोपकारी ग्रन्थका सभी भाषाओंमें अनुवाद होजाना वहुतही आवश्यक है, और कदाचित् कालक्रमसे हो भी जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है.

ऐसे उपयोगी ग्रन्थका कई हिन्दी रसिक विद्वानोंके अनुरोधसे मूलग्रन्थकर्ता महाशयने पं. रामप्रतापजी रतलामनिवासी-द्वारा अनुवाद वनवाकर इसके शोधनका भार मुझे स्वीकार करनेका अनुरोध किया. अन्यान्य कार्यप्राचुर्य होनेके कारण विशेष अवकाश होनेपरभी, उनके गुरुतर अनुरोधसे मुझे यह कार्यही शिरोधार्य करना पड़ा. तदनुसार मैंने यथावसर यथासंभव कहीं २ नवीन वाक्यरचना करने, तात्पर्य विवरण करने, कहीं २ आवश्यक टिप्पणी देकर विशेष विवेचन करने, एवं शब्दार्थ व्यक्त करनेके साथ २ भाषासौन्दर्यपर भी सामान्य लक्ष्य देते हुए, और अन्यलिखित लेखमें शोधकद्वारा जितना भाषाका सुधार हो सकता है, उतना करते हुए भी इस अनुवादको यथावस्थित रूपमेंही रखकर केवल मूल ग्रन्थका आशय न तो अणुमात्र वदले न छूटे, इसी ओर विशेष ध्यान देकर, प्रायः इसके शब्दाशुद्धि अर्थाशुद्धि, और अनुवादाशुद्धि आदि दोषोंकाही पूर्ण रूपसे निराकरण किया है. इतना होनेपर भी छपनेके समय त्वरा होनेके कारण समयाभावसे मूल हस्तलिखित कापी न शोधकर, अधिकांश शोधन छपे हुए प्रूफपरही किया है; इससे तथा मनुष्यस्वभावसिद्ध मेरे दृष्टिदोषादि भ्रम और अक्षरसंयोजकादिकोंकी असावधानीसे, जिन भूलोंका रहजाना संभव है, उनके लिये सदय हृदय सहृदय महोद-योंसे सविनय निवेदन है कि वे अपने उदार स्वभावानुसार क्षमा करें.

इस अनुवादके विषयमें यहांपर यह प्रकट कर देना भी बहुत आवश्यक है कि, यद्यपि किसी एक भाषाका दूसरी भाषामें अनुवाद मूल भाषाके ढँगपर शब्दशः न होकर केवल अर्थांशमें दृष्टि रखकर अपनी भाषाके ढँगपर ललित वाक्यरचना कर, तथा भावमात्रपर लक्ष्य देकर, जिस प्रान्तकी भाषामें अनुवाद करना हो उसी प्रान्तकी रीति भांति (चाल-ढाल) के अनुसार वर्णनीय प्रसँगोंमेंभी अपेक्षित सुधार कर बनाया जानेसेही विशेष मनोरम होता है; तथापि यह अधिकांशमें गुजराती भाषाके वाक्योंका शब्दशः अनुवाद होनेके कारण तथा अनुवादकी भाषा शैली (मुहाविरा) भी कुछ और ढँगकी होनेके कारण, कदाचित् भाषासौन्दर्यसे तादृश रुचिकर न होनेपर भी, पूर्णरूपसे यथार्थ तात्पर्यका प्रकाशक होनेसे, केवल अपने विषयकी सर्वोच्च उत्तमतासे ही, आकृष्टिमंत्रके समान पाठकोंके मनको अपनी ओर खींचे विना कदापि न रहेगा. यदि पाठकोंकी रुचि वैसी हुई तो दूसरी आवृत्तिमें यह दोषभी अधिकांशमें निकाला जाकर, प्रथम प्रयत्न होनेके कारण तथा अन्यान्य कारणोंसे रहा हुआ और भी समुचित सुधार किया जा सकेगा.

उपसंहारमें मेरा हिन्दीरसिक महोदयोंसे सानुनय निवेदन यह है कि हिन्दी—साहित्यके लिये यह अल्प सौभाग्यका विषय नहीं है कि उसमें एक ऐस अद्भुत ग्रन्थ-रत्नका समावेश हुआ है, कि, जो अपने विषयमें अद्वितीय है, और जिसे अनेक भाषाभाषी सुशिक्षित महाशय बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं. अतएव, वे गुर्जरभाषा–प्रसूत इस हिन्दी–वेषान्तरधारी अतिथिका योग्य आदरातिथ्य कर अपनी सर्वोत्कृष्ट गुणग्राहकता और सर्वाधिक सुपरीक्षकताका परिचय देनेके साथ २ मूलग्रन्थकार और हम लोगोंका अपार परिश्रम सफल करते हुए प्रकाशकके अनुदिन वर्द्धमान नवनवग्रन्थप्रकाशन विषयक साहस और उत्साहको अवश्यही अधिकाधिक वृद्धिंगत करें.

यदि हिन्दीके सच्चे सेवकोंने हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्थानके सच्चे हितपर ध्यान देकर इस नवजात ग्रन्थरत्नका समुचित समादर किया तो यह अपने अन्यान्य भ्राता-ओंको भी हिन्दी अवतार धारण कराकर हिन्दीके साहित्य–मन्दिरकी अपूर्व शोभाको बढ़ानेके साथ २ अधःपतित हिन्दू जातिके तथा उसके साथ समस्त हिन्दुस्थानको भी उन्नतिके शिखरपर चढ़ानेमें बहुत सहायक होगा; क्योंकि, धार्मिक उन्नतिही सर्व उन्नति-योंका मूल है, यह अटल सिद्धान्त है.

ग्रन्थकर्ता महाशयभी प्रथम २ यह नूतन उपहार हिन्दीहितैषियोंकी सेवामें समर्पण कर उनसे अपना परिचय दृढ़ और चिरस्थायी करना चाहते हैं. यदि उन्होंने इस प्रथम मिलापमें इनसे यथोचित प्रेमपूर्ण व्यवहार किया तो ये नितनये अनेकानेक उपहार लेकर उनको हिन्दीरसिकोंका कण्ठहार बनानेकी शुभ कामनासे वारंवार उनके द्वारपर उपस्थित होकर, सदैव उनसे मिलते रहेंगे. अर्थात् चन्द्रकान्तका यह प्रथम भाग यदि पाठकोंको

यत्किंचित्‌भी रुचिकर हुआ तो शीघ्रही इसके अन्य सब भाग तथा उक्त ग्रन्थकर्ताके लिखे हुए सभी ग्रन्थ हिन्दीमें अनुवादित कराकर यथाक्रम प्रकाशित करनेका ग्रन्थकर्ताका प्रबल मनोरथ है. मुझे पूर्ण आशा है कि, हिन्दीहितकारी महाशय इस नवपरिचित ग्रन्थकर्ताके इस प्रशंसनीय मनोरथको सफल करनेके मिषसे अपनी मातृभाषाके साहित्यको उत्तमोत्तम ग्रन्थरत्नोंसे परिपूर्ण कर, उसे राष्ट्रभाषाके सर्वोच्च पदपर विठानेका प्रयत्न करनेवाले महानुभावोंको किसी अंशमें सहायता पहुँचानेके इस सुयोगको विफल न जाने देकर, अपनी असाधारण दूरदर्शिता तथा यथोचित देशकालाभिज्ञताका यथार्थ परिचय दिये विना न रहेंगे.

सुमेरपुर, उन्नाव व. नि. वम्बई.
मिति माघ शुद्ध ५
सं. १९६६ वि.

शास्त्री रघुवंशशर्मा आवसथी.

पुस्तक मिलनेका पताः—

'गुजराती' प्रिन्टिंग प्रेस,
सासुन बिल्डिंग, एलफिन्स्टन सर्कल, कोट, मुंबई नं. १.

अनुक्रमणिका.

प्रथम प्रवाह–पुरुषार्थ.

द्वितीय प्रवाह–चैतन्य.

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका पता:—

'गुजराती' प्रिन्टिंग प्रेस,

सासुन बिल्डिंग, एलफिन्स्टन सर्केल, कोट, मुंबई नं. १.

चन्द्रकान्त

प्रथमप्रवाह-पुरुषार्थ.

मङ्गलम्.

ॐ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु; सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

उपनिषद्गीता, परमात्मविद्याका स्वरूप प्रकट करके हमारा (गुरुशिष्यका) पालन करो, विद्याका फल प्रकट करके हमारा पालन करो, हम दोनों एकसाथ विद्यासंबंधी सामर्थ्य सिद्ध करेंगे, हमारा दोनोंका अध्ययन तेजस्वी होओ और हम दोनों प्रमादजन्य अन्यायसे अध्ययन और अध्यापनके दोपके लिये परस्पर द्वेष नहीं करेंगे. शांति, शांति, शांति.

उपहरणं विभवानां संहरणं सकलदुरितजालस्य ।
उद्धरणं संसाराच्चरणं वः श्रेयसेऽस्तु विश्वपतेः ॥

वैभवोंको देनेवाला, सब पापसमूहको हरण करनेवाला और संसारसे उद्धार करनेवाला विश्वपतिका चरण तुम्हारा कल्याण करो.

विद्यारण्य.

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्यैकसाराय नमः शान्ताय तेजसे ॥

दिशा काल आदिसे अवच्छेद रहित, अनंत, चैतन्यमात्रमूर्ति और आत्माके अनुभवका एक साररूप शान्त तेजको मैं नमस्कार करता हूं.

भर्तृहरि.

आपन्नोऽस्मि शरण्योस्मि सर्वावस्थोऽस्मि सर्वदा ।

भगवंस्त्वां प्रपन्नोऽस्मि रक्ष मां शरणागतम् ॥

हे भगवन् ! मैं आपको शरण आया हूं, मैं रक्षण करनेके लिये योग्य हूं. मैं सदा सर्व प्रकारकी अवस्थाको अनुभव करनेवाला हूं और आपको प्राप्त हुआ हूं, आप मेरी शरणागतकी रक्षा करो.

जपो जल्पः शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना

गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमदनान्याहुतिविधिः ।

प्रणामः संवेशः सकलमिदमात्मार्पणविधौ

सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम् ॥

मैं जो बात करता हूं वह आपके नामका जप होओ, मैं जो शिल्परचना करता हूं वह आपकी मुद्रा होओ, मैं जो चलता हूं वह आपकी प्रदक्षिणा होओ, मैं जो भोजन करता हूं वह आपकी आहुतिरूप होओ, मैं जो बैठता हूं वह आपको प्रणामरूप होओ और मेरा जो कोई विलास हो सो आपकी पूजा होओ. इसीप्रकार आत्मार्पणविधिमें मैं यह सर्व अर्पण करता हूं. श्रीशंकराचार्य.

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ।

अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥

तुम प्रथम जगतको उत्पन्न करते हो, पीछे विश्वका पालन करते हो और पीछे उसका संहार करते हो; इसीप्रकार तीन प्रकारसे रहनेवाले आपको मैं नमस्कार करता हूं.

चिरं ध्याता रामा क्षणमपि न रामप्रतिकृतिः

परं पीतं रामाधरमधु न रामाङ्घ्रिसलिलम् ।

नता रुष्टा रामा यदरचि न रामाय विनति-

र्गतं मे जन्माग्र्यं न दशरथजन्मा परिगतः ॥

मैंने रामा (स्त्री) का ध्यान बहुत समयतक किया, परंतु श्रीराममूर्तिका क्षणभरभी ध्यान न किया; रामाके अधरामृतका पान किया, परंतु श्रीरामके चरणामृतका पान नहीं किया रुष्ट हुई; रामाको नमस्कार किया परंतु श्रीरामको नमस्कार नहीं किया; इसप्रकार मेरा उत्तम जन्म गया, परंतु दशरथपुत्र रामको मैं प्राप्त नहीं हुआ.

चन्द्रकान्त.

प्रथमप्रवाह—पुरुषार्थ.

प्रवेशक.

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥ शंकराचार्य.

अर्थ—मनुष्यजन्म, मोक्षकी इच्छा और महापुरुषोंका आश्रय, ये तीनों दुर्लभ हैं। जो दैवकी कृपा हो तोही ये मिलते हैं.

महात्मा गुरुके चरणोंकी सेवा करनेसे शिष्योंकी वृत्ति भी महात्मारूपही हो जाती है. कहा है कि:—

सत्संगाद्भवति हि साधुता खलानां साधूनां नहि खलसंगमात्खलत्वम् ।
आमोदं कुसुममयं मृदेव धत्ते मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति ॥

अर्थ—खल पुरुषोंको सत्संगसे साधुता (सज्जनता) प्राप्त होती है, किन्तु साधु पुरुषोंको खलके संगसे खलता (दुष्टता) नहीं प्राप्त होती. मृत्तिकाही फूलकी सुगंधको धारण करती है, परन्तु फूल मिट्टीकी गंधको नहीं ग्रहण करते.

कोई एक ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुष किसी निर्जन स्थानमें एकान्तवास करके रहते थे. उनकी सेवामें एक सुस्वभावका सुशील शिष्य था. वह, प्रति दिन उत्तम प्रकारसे उनकी सेवा करके, उनके पाससे तत्त्वज्ञान संपादन करता था. प्रसंगोपात्त उन गुरुशिष्योंमें परस्पर अनेक प्रकारके प्रश्नोत्तर हुआ करते थे. शिष्य निरन्तर गुरुवाक्योंका मनन करता और उनमें उपजी शंका गुरुजीको कहता था और गुरुदेव उसपर परम कृपा करके अति अद्भुत युक्तिप्रयुक्तियोंके द्वारा उन शंकाओंका समाधान करते थे. उन गुरुशिष्योंके त्रिविध तापको मिटानेवाले और मोक्षप्रद संशयनाशक संवादमेंसे कुछ अंश यहां लियागया है.

ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुष और सुशील शिष्य

"गुजराती" प्रेस, कोट, मुंबई १.

प्रथम बिन्दु.

सत्संग और व्यवहार.

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं मग्नं संसारवारिधौ ।
योगारूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठया ॥

अर्थ—अपना आत्मा जो संसारसागरमें डूबा हुआ है, उसको योगाभ्याससे यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके उससे स्वयमेव ही उद्धार करना चाहिये.

एक दिन शिष्यने, गुरुकी पूजा करके दंडवत् नमस्कार करनेके पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर, नम्र वाणीसे पूछा कि:-"हे परम कृपालु गुरुदेव ! इस संसारमें कितनेक मनुष्योंकी सत्संग और आत्माका अनुभव-सुख, इन दोनोंमें विशेष प्रीति (आसक्ति) होती है, तिस परभी उनकी चित्तवृत्ति व्यवहारमें लगी रहती है; अर्थात् सत्संग और आत्मसुखमें अत्यंत लोभायमान होकर, उसमें प्रीति करता है सही, परन्तु पुनः वह व्यवहारमें प्रवृत्त होता है और संसारका भार उठा लेता है, इसका कारण क्या है ? सो आप कृपा करके मुझे कहिये."

गुरु— हे वत्स ! धन्य है तुझको, तेरा प्रश्न अति उत्तम और सूक्ष्म विचारवाला है. इस विषयमें मैं एक मक्षिकाका उदाहरण तुझे कहता हूं सो तू श्रवण कर. हे वत्स ! एक मक्षिका (मक्खी) जो अहर्निश मूत्र और विष्ठाके स्थलोंपर फिर कर निरन्तर उनकाही रस लेनेवाली है उसको एक समय फिरते २ शहदसे परिपूर्ण भरा हुआ एक घडा मिल गया. वह, अपनेको अति दुर्लभ और बहुत स्वादिष्ट वस्तु प्राप्त हुई जानकर अति हर्षित होकर उसपर बैठी. फिर उसने धीरे २ एक पांव शहदपर ठहराया, और थोडासा मधु चखने पर बडा मीठा लगनेसे फिर दूसरा पांवभी रख दिया;

इसप्रकार वह बडी देरतक निश्चिन्ततासे शहदका स्वाद लेती रही और जब सन्तुष्ट हुई तब वहांसे तुरन्त उड़कर, फिर इधर उधर उड़ने लगी. किन्तु फिर भटकते २ उसको वह पहला विष्ठाका स्थल मिल गया तो पूर्वका अभ्यास और आसक्तिके कारण उसकी दुर्गंध लेनेके लिये उसपरभी जा बैठी. इस भांति वारंवार उस मधुका स्वाद लेचुकने परभी, पूर्व अभ्यास (आसक्ति) तथा प्रकृतिके कारणसे, वह पुनः मूत्र और विष्ठापर जाती हुई नहीं रुकी, किन्तु यदि वह मक्खी शहदपर बैठी हुई हो और उसका स्वाद लेनेमें आसक्त होरही हो उसी समय, यकायक पवनका झकोरा आवे और उससे उसके पंख मधुमें लिप्त होकर परस्पर चिपट जायँ, तब तो उसकी विष्ठा और मूत्रके दुर्गंधयुक्त रसकी आसक्ति अपने आपही दूर हो जाय और वहां जानेसे रुके, और मधुका मधुर स्वाद लेनेरूप सर्वोत्तम सुखमेंही लीन रहे. इसी तरह विषयादिरूप विष्टाके स्वादका अभ्यास और आसक्तिवाली मनोवृत्ति, आत्मसुखरूप मधु लेनेके लिये, आत्मसुखरूप मधुसे भरे हुए सत्संगरूप वड़ेपर जाकर स्थित होती है; फिर पहले अभ्याससे वहांसे विषयोंकी तरफ दौड़ जाती है; पुनः मनोवृत्तिको आत्मसुखरूपी मधुके स्वादका स्मरण होजानेसे, तैसेही उसकी श्रेष्ठताको समझनेसे, उसपर पीछा मोह होता है तो पीछी आकर उसका रसास्वाद लेती है. फिर वहांसे जाती है और पीछी लौट आती है. ऐसे जानेआनेमें जब पवनका वेग आकर वहीं पंख चिपट जायँ अर्थात् जब ईश्वरका अनुग्रह, सद्गुरुकी कृपा और अपने शुभ कर्म, ये तीनों अथवा इन तीनोंमेंसे किसी एकाध वस्तुरूप पवनके प्रवाहसे विषयरूप विष्ठाके स्वादपर दृढ़ वैराग्य होजाय, और मनोवृत्ति ब्रह्मानन्दरूप मधुमें लिपट जाय तो फिर अपने आपही व्यवहारमें जानेसे रुकजाय; अस्तु, मानसिक वृत्ति स्वयं ही; जलमें गिरे हुए सैन्धवकी नाईं गलकर ब्रह्मरूप होजाय, परन्तु वहभी जो विपरीत साधन करती है तो उलटी विगडती है. इसपर एक उदाहरण देता हूं, उसे तू सुन:—

किसी गाममें कोई एक धनाढ्य कहलाता हुआ पटवारी रहता था. उसको प्रतिष्ठित समझकर वहांके राजाने किसी कामके लिये अपनी कचहरीमें बुलाया. राजाका बुलाना, सोभी मान भरा हुआ आया था इससे वहां जानेके लिये पटवारीने सब नये सुपेद वस्त्र धारण किये और

सुसज्जित होकर राजसभाकी ओर चला. वस्त्र बहुत अच्छे स्वच्छ पहने थे और राजसभामें जाना था, अतः वस्त्रको कहीं दाग न लगजावें इस बातपर पटेलका बड़ा ध्यान था, परन्तु इतना होते हुएभी मार्गमें जाते २ किसी जगह उसके कपडेको कोयलेका दाग लगही गया. पटेल उस समय राजसभामें गया तो सही; किन्तु वहांका कामकाज होचुकनेके अनन्तर घरको लौटते समय उसके कपडेको दाग लगजानेकी बात याद आनेसे उसे बहुत खेद हुआ और कपडेपर कोयलेका दाग लगा था इसलिये उसे कोयलेमात्रपर वैर उत्पन्न हुआ. फिर उसे बहुत क्रोध आजानेसे उसने गामभरके कोयलोंकी कालिख मिटा देनेका निश्चय किया; तुरन्त उसने गाममेंसे सब कोयले मजूरों द्वारा इकट्ठे करवाये और एक बड़े तालावपर डलवाये. वे इकट्ठे कियेहुए कोयले लगभग सौ मन हुए होंगे. अब सौमन कोयलोंको धोनेके लिये कमसे कम पचास मन साबुन तो चाहियेही. उतने साबुनसे कोयले धोये जाने लगे और खलखलाहट करता काला पानी एक नालेकी नाई गामके गोहरे (परनाले) होकर वहने लगा. वह देखकर उसी गामका एक दूसरा पटेल बड़ा अचंभित हुआ; और उसने तालावपर जाकर कोयला धोनेवाले उस पटेलको पूछा कि, "अरे पटेलभाई! तुम यह क्या करते हो?" यह सुनकर उसने जवाब दिया कि, 'कपड़ेको काला लगानेवाले कोयलेको उसकी श्यामतारूप दुर्गुणसे मुक्त करते हैं." ऐसा उत्तर सुनकर उसने विचार किया कि 'यह कोई बुद्धिका अथाह सागर जान पड़ता है; क्योंकि कोयलेको सौवर्पतक धोनेसे भी वह उजला नहीं होगा, इसकी इसे खबरही नहीं, वह तो कालाका कालाही रहेगा. अस्तु, अब इस बेचारेको इस मिथ्याश्रम करनेसे रोककर सत्य मार्ग दिखाना चाहिये.' यह विचार कर उसने उस पटेलको कहा:–"भाई! तुम कहो तो मैं इन सबको केवल ४ घंटेमें रुईकी पौनी जैसे सफेद कर दूं" इससे चकित होकर पटेलभाई विचार करने लगा कि, "अरे इतनी बड़ी मिहनत और पचास मन साबुनका खर्च करनेपरभी जो ये कोयले उजले नहीं होते, उनको यह केवल चारही घंटोंमें किसप्रकार सफेद करदेगा! अतः देखना चाहिये कि यह कैसे करता है." ऐसा विचार कर उसने वे सब कोयले उस दूसरे पटेलके सुपुर्द कर दिये. तब उस दूसरे चतुर पटेलने तुरन्त उन भीगे हुए कोयलोंको भूमिपर फैलाकर धूपमें सुखाकर रात होतेही उन सबमें अग्नि लगादी. प्रातःकाल होने-

तक तो वे सब जलकर सफेद खाक—भस्म होगये. यह देखकर अपने मिथ्या-श्रम करनेवाले पटेलभाई बहुत प्रसन्न हुए और मनोवृत्तिका सदुपयोग करने-वाले उस बुद्धिमान् पटेलको नमन किया.

इसलिये हे शिष्य ! सत्पुरुषके समागमसे मनोवृत्तिको संस्कारवाली करने उस दूसरे पटेलकी भांति उत्तम साधनोंकी योजना करना. कोयले काले थे तोभी अग्नीके संगसे अपनी श्यामताको त्यागकर सफेद रंगके होगये, तैसेही मनुष्य जो ज्ञानाग्निका उपयोग करे तो उसकी मनोवृत्ति, कामक्रोधादिक मलोंसे मुक्त होकर, शुद्ध परब्रह्मरूप होजाती है. ज्ञानरूपी अग्नि केवल मलकोही नहीं जलाता है, वरन् वह तो कर्मोंकोभी जलाकर भस्म करदेता है. भगवान्ने अर्जुनको उपदेश देते समय कहा है कि—" ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ! " यह ज्ञान (आत्मस्वरूपका ज्ञान) महात्माजनोंका आश्रय करनेसेही प्राप्त होता है.

द्वितीय बिन्दु.

आत्मस्वरूपका चिन्तन.

सति सक्तो नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया ।
कीटको भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरत्वाय कल्पते ॥

अर्थ—जैसे भ्रमरीका ध्यान करता हुआ कीट भ्रमरत्वको प्राप्त होता है, वैसेही एकनिष्ठासे ब्रह्मका ध्यान धरनेमें रत हुआ पुरुष, ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है.

शिष्य—हे परम कृपालु गुरुदेव ! मैंने सुना है कि, इस संसारमें चौरासी लक्ष योनियां, जीवके अवतरणके लिये हैं, उन सबकी अपेक्षा यह मनुष्ययोनि अति उत्तम है; और यह जीवको प्राप्त होनी बड़ी दुर्लभ है. कदाचित् ईश्वरकृपासे यह प्राप्त हुई हो तो फिर इसको सहजमें नहीं गँवाकर मनुष्यको चाहिये कि इसे सार्थकही करे अर्थात् अहर्निश आत्माका चिन्तन करके उसके स्वरूपको पहचाने, परंतु हे गुरुराज ! ये समस्त मनुष्य तो दुस्तर संसारके चिकने व्यवहारकार्योंमें सदा गुँथे हुए-लयलीन ही रहते हैं, तो फिर उनसे अहर्निश (रातदिन) आत्मस्वरूपका चिन्तन किस प्रकार हो ?

गुरु—हे वत्स ! हे मुमुक्षु ! तेरा कल्याण हो. यह तेरा प्रश्न मोक्षकी जिज्ञासावाले पुरुषोंको अत्यन्त कल्याणकारी होजाय ऐसा है. अब मैं तुझको जो उदाहरण कहता हूं उसे तू ध्यानपूर्वक श्रवण कर.

दूध देनेवाली गौके नये प्रसव हुए बछड़ेका हित उसकी मातामेंही समाया हुआ है; अर्थात् उसकी माताके पयःपानहीसे उसका सर्वथा पोषण होनेवाला है और इसीप्रकार गौकोभी अपने बछड़ेपर अत्यन्त प्रीति होनेसे उसके बिना एक पलभी चैन नहीं पड़ता; परन्तु गौ दिनभर अपने बछड़ेके पास रह नहीं सकती; क्योंकि उसको वनमें चारा चरनेके लिये जाना

पड़ता है; इसलिये प्रभातमें दुहनेके समयही बछड़ेको छोडकर जब उसके पास लेजाते हैं तव वह उसे धवाती–दूध पिलाती–है. जब बछड़ा दूध पीकर संतुष्ट होता है तब उसे तुरंत उसकी जगह पीछा बांध देते हैं और गौको वनमें चरनेके लिये छोड़ देते हैं. यह गौ दिनभर वनमें रहकर नानाप्रकारके कोमल २ तृणांकुर चरती है, पानी पीती है, वृक्षोंकी शीतल छायामें अपने समूहमें निश्चिन्तभावसे बैठकर वागोलती है, अर्थात् रोमन्थ (चर्वितचर्वण) करती है, और संध्यासमय होजानेपर सब गौओंके साथ घरको आती है. इतने समयमें गौ अपने बछड़ेको यादभी नहीं करती कि, वह क्या करता होगा ! परन्तु घर आपहुँचनेपर जब दुहनेका समय होता है, तभी वह अपने बछड़ेका स्मरण करती है और उसको धवाये विना कदापि अपने स्वामीको अपना दूध नहीं दुहने देती. इसी प्रकारसे प्रतिदिन करते २ जब वह '* उत्ती' होकर फिरसे गर्भिणी होती है तबतक वह बछड़ाभी नियमानुसार उत्तम पोषण होनेसे शरीरसे दृढ़ तथा बलवान् हो जाता है, और फिर जब चारा चरने लगता है तब उसको अपनी माताके पयःपानकी आवश्यकता भी नहीं रहती, अर्थात् स्वतंत्र होकर विचरता है.

इस दृष्टान्तके अनुसार जो मनुष्य नित्य दृढ़ निश्चय और नियमसे अधिक नहीं तो दिनभरमें एक दो मुहूर्ततकभी, अमुक नियमित समयमें सत्संग, भगवत्स्मरण, आत्मस्वरूपका चिन्तन आदि करे तो काल पाकर उसका अभ्यास स्थिर होजाता है; और इसीलिये वह मनुष्य चाहे जैसे प्रपंचके कार्योंमें लगता है तोभी वह अपने नित्य नियममें कभी नहीं चूकता. ऐसे अधिक समयतक अभ्यास बना रहनेसे स्वात्मस्वरूपके चिन्तनका पोषण होता है और अन्तमें मनुष्य संसारकी उपाधिमेंसे मुक्त होकर भगवत्स्वरूप बन जाता है; इसमें संशय नहीं. जैसे गौ सवेरे अपने बछड़ेको धवाकर (दूध पिलाकर) उसे घरपर छोड़ जाती है और आप वनमें जाकर हिरती फिरती है, घास चरती है, पानी पीती है, अपने टोले (समूह) में जाकर बैठती है, ठंढी छायामें विश्राम लेती है और सांझको दुहनेका समय होतेही घरकी ओर फिरती है और पुनः बछड़ेको धवाती है; इसीभांति मनुष्यभी प्रातःकाल अपना नित्य नियम (भगवद्ध्यान–स्वरूपचिन्तन) आदिक करके, तिस

* उत्ती होना अर्थात् दूध देना बंद हो जाना.

पीछे दिनभर इधर उधर फिरकर आजीविकाके अर्थ अनेक कार्य करता है, खाता है, पीता है, घररूपी वृक्षकी छायामें निवासकारी स्त्रीपुत्रादिकरूप अपने टोलेमें बैठकर निश्चिन्ततासे विश्राम लेता है और फिर (दुहनेके समयरूप) संध्यासमय होनेपर तुरन्त तयार होकर अपना नित्यकृत्य (भगवत्स्वरूपचिन्तन) करने लग जाता है. इसीप्रकार, संसारके व्यवहारोंमें निरन्तर विचरते रहनेपरभी जब समय आजावे तब गौकी नाईं जो मनुष्य अपना कार्य साधनेमें नहीं चूकता वह मनुष्य, महात्मा पुरुषोंके पाससे परब्रह्मस्वरूपके ज्ञानका श्रवण करके उसीका मनन करता है और मनन करनेके अनन्तर उसीके निदिध्यासनसे परिणाममें भगवत्स्वरूप प्राप्त करता है. ऐसा जीव संसारके बन्धनोंमेंसे मुक्त होजाता है; और उसको माता, पिता, स्त्री, पुत्र इत्यादिक पोष्यवर्गको दुःखमें तड़पते हुए छोड़कर वैरागी होने तथा भस्म रमानेकी आवश्यकता नहीं रहती. प्रियव्रत राजा जिससमय संसार त्यागकरके वनमें जानेको तयार हुआ, तब ब्रह्माने उपदेश देते समय कहा था कि, "तू ऐसा समझता होगा कि घरको छोड़कर वनमें रहना यही उत्तम है, और ऐसा किये विना प्राणीको मोक्ष नहीं मिलता, परन्तु इसमें तेरी भूल है. विषयाधीन मनुष्य चाहे घरमें रहे चाहे वनमें रहे, संसार नहीं छोड़ता; क्योंकि वनमेंभी उसके साथही साथ कामादिक छःही शत्रु रहते हैं. अतएव जो मनुष्य घरमेंभी जितेन्द्रिय रहकर परब्रह्मके स्वरूपमें निमग्न रहता है तो गृहस्थाश्रमभी उसका कल्याण करता है. इंद्रियोंको तथा कामादिक शत्रुओंको जीतनेके लिये गृहस्थाश्रम रूप दुर्ग (किले) में रहकर धीरे २ प्रयत्न करना, यही सर्वथा इष्ट, प्रथम और उत्तम कर्त्तव्य है. परमात्माकी सब आज्ञाओंका पालन करता हुआ जो मनुष्य अपना कार्य साध लेता है, उसीको भगवान्‌का भक्त जानना. श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनको कहा है कि:—

दो०—सरस रहे संसारमें, मन राखे मुझ पास।
लिप्त न हो संसारमें, वहि जानो मम दास॥

इस वचनको असत्य न समझना.

तृतीय बिन्दु.

माया कौन है ?

देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ (गीता ७—१४)

अर्थ— यह मेरी दैवी गुणमयी माया दुरत्यय* है. जो मुझे प्राप्त होते हैं वे मेरी इस मायाको तैर जाते (जीत जाते) हैं.

शिष्यः—हे परम दयालु गुरुदेव ! विद्वज्जनोंके मुखसे मैंने वारंवार सुना है कि, प्रभुकी माया कि जिसकी प्रबलतासे समस्त जगत नानाविध प्रपंचोंमें संपूर्ण रीतिसे फँस रहा है और जिसके बन्धनद्वारा बँधा-हुआ सांसारिक मिथ्या पदार्थोंको सत्य मानता है, वही माया, आत्माको कर्मयोगके द्वारा संसारबन्धनमें डालकर ईश्वरसे विमुख करती है. अहो गुरु-देव ! इस प्रकार कहनेवाले पुरुष फिर ऐसे भी कहते हैं कि, यह माया साक्षात् ईश्वरकी अंगभूत शक्ति होनेसे उसकी अंगना (स्त्री) है. ये दोनों वाक्य सुनकरके मुझे बड़ी शंका उत्पन्न होती है और विचार करता हूं तो ये दोनों वचन परस्पर विरुद्ध दिखाई देते हैं; क्योंकि यदि माया ईश्वरकी शक्ति और अंगना है तो फिर उसकी योग्यता कुछ कम नहीं हो सकती; और वह जगतका उपादान कारणरूप होनेसे जैसे ईश्वर सबका पिता है, वैसेही माया उनकी अंगना होनेसे संपूर्ण जगत्की माता है. माता अपने सन्ता-नोंको उनके पितासे विमुख करती है यह कैसे संभव हो सके ? कारण यह कि, माताका प्रेम तो बालकों पर पितासे भी विशेष होता है, इसलिये उसे सदा उनके हितहीमें तत्पर रहना चाहिये और बालकोंका हित उनका

---

* जिसका उल्लंघन करना या नाश होना अशक्य.

पिता जो ईश्वर है उसके स्वरूपका ज्ञान होकर उसको प्राप्त होनेमेंही समाया हुआ है तो फिर माता उसके विपरीत कैसे करे ?

गुरु— हे वत्स ! तुझको धन्य है कि तेरा विचार इतना सूक्ष्म है. तेरी शंका सत्य है. मायाको ईश्वरसे विमुख करनेवाली माननेसे तो वह केवल विमुखविहारिणी पुंश्चली–कुलटा गिनी जायगी, परंतु माया ऐसी नहीं है. तू देख कि जो भगवानके भक्तलोग हैं और जो उस मायाके विस्तारमेंही विचरनेवाले हैं तथापि हरिकी भक्ति उनके अन्तःकरणमें होनेसे वे भगवानके सत्त्वादिगुणोंकाही अनुसरण करते हैं. अर्थात् वे सत्त्वगुणी दयालु और नित्य परोपकारी स्वभाववाले होते हैं तो फिर भगवान्की अर्द्धांगनाका पद धारण करनेवाली मायामें भगवान्से विपरीत गुण कैसे हों ? अतः हे शिष्य ! इस महामाया ईश्वरीकी निन्दा करना अयोग्य पुरुषका काम है. यह माया साक्षात् ईश्वरी भगवती वैष्णवी जगन्माता है, यही नारायणी तथा लक्ष्मी है; यह सदा सर्वदा सारे जगतका हित करनेमें तत्पर रहती है और यही प्राणियोंको प्रभुके सन्मुख करानेवाली है. जगतके समस्त पदार्थोंका अच्छा अथवा बुरा ऐसे दोप्रकारका उपयोग हो सकता है. उसकी मायाके स्वरूपकी यथार्थ रीतिसे सेवा करनेसे वह उसको स्वयं परमात्माके सन्मुख करती है; परन्तु उसके स्वरूपको नहीं जानने और उसके विरुद्ध वर्त्ताव करनेसे तो वह संसारके अटपटे कर्ममार्गोंमें गोते खिलाकर भगवानसे विमुख करती है,

अब उसकी सेवा करना, अथवा ऐसा न करके उसके विरुद्ध वर्त्तना सो इसप्रकार है. यह सारा जगत् प्रभुकी मायारूप है, अर्थात् यह सब प्रकारसे मायाके आधारपरही रचा हुआ है, और उसमें अवतरे हुए (उत्पन्न हुए) *ईश्वरांश जीव उसके नियमोंका अनुसरण करकेही व्यवहार करते हैं. जगत्में भिन्न २ प्राणियोंको नियमानुसार पृथक् २ अनेक कार्य करने पड़ते हैं, और वे नियम असंख्य हैं; इसकारण उन सबका वर्णन करना सर्वथा अशक्य है, अतः उन सबमेंसे मुख्य एकाध सृष्टि-नियम तुझे कहता हूँ.

---

* वास्तवमें ईश्वर और जीवका अंशांशी भाव नहीं है; क्योंकि, ईश्वर अनवच्छिन्न होनेसे उसके अंश (भाग वा टुकड़े) हो नहीं सकते. किंतु अंशके समान होनेसे अंश शब्दका व्यवहार किया जाता है.

प्रथम स्त्रीके साथ पुरुष और पुरुषके साथ स्त्रीका शास्त्रोक्त विवाहविधिसे संयोग होता है. तदनन्तर गृहस्थाश्रमधर्मका वर्ताव होता है और ऐसे वर्तावके लिये परस्परमें दृढ़ प्रेम होनेकी आवश्यकता है. जैसे २ क्रमक्रमसे प्रेम दृढ़ हो जाता है, तैसे २ संसार सरल और सुखदायक होजाता है. परन्तु महामायाकी सेवा नहीं करनेवाले तथा उसके विरुद्ध चलनेवाले अर्थात् परमात्माकी मायाके नियमोंका सत्य रहस्य नहीं समझनेवाले जीव परस्परग्रथित प्रेमको सत्यमार्गमें न लगाते, मरणपर्यन्त विषयवासनाके मार्गहीमें लगा रखते हैं, जिससे वे परमेश्वरसे विमुख रहते हैं इसमें क्या आश्चर्य है ? मायाकी सेवाकरके उसको प्रसन्न रखनेवाले तो उस (माया) के नियमोंका मर्म यथार्थ रीतिसे समझकर, दम्पतीमें परस्पर बँधेहुए प्रेमका अल्प कालतक तो सांसारिक मार्गमें अनुभव लेते हैं और ज्योंही वह प्रेम सुदृढ़ होता है त्योंही तत्क्षण वहांसे खैंचकर जगत्पिता परमेश्वरमें उस प्रेमको भलीभांति जोड़ते हैं, तब वह प्रेम भक्तिके रूपमें पलट जाता है और उस (भक्ति) के योगसे वह मनुष्य हरिपदको प्राप्त होता है अर्थात् परब्रह्मके सन्मुख होता है.

हे वत्स ! इसीका दृढीकरण करनेवाला एक और दृष्टान्त तुझे कहता हूँ. किसी एक छोटे बालकको जब पहलेही पहल पढ़नेके लिये पाठशालामें बिठाते हैं तब उसे तुरन्तही लिखना पढ़ना नहीं आता, इसलिये एक पट्टीपर उसको एकसे दशतक अंकोंका खरड़ा कर दिया जाता है; उस खरड़ेको बालकके हाथसे वारंवार घुटाया जाता है (उसका अभ्यास कराया जाता है.) कुछ कालमें घुटते २ जब उसका हाथ जम जाता है और अक्षर उसके ध्यानमें बैठ जाते हैं तब वह खरड़ा छुड़ाकर उससे दूसरी पट्टीपर अपने आप अक्षर लिखनेका प्रारम्भ कराया जाता है. और पहले खरड़ेपर उसका हाथ जमा हुआ होनेसे, थोड़े समयमें और थोड़े श्रमसे बालक अपने आप सब अक्षर लिख सकता है और आगे बढ़कर अच्छी विद्या संपादन करता है. परन्तु जो खरडा घोट चुकनेके साथही उससे खरड़ा छुड़ाकर अक्षर लिखना न सिखाकर, खरड़ाही घुटाते रहे तो वह कहांतक घोटता रहता ? कुछ दिनोंतक घोटता और थककर झुंझलाकर उसे छोड़ बैठता तो विद्या संपादन करनेके कार्यसे विमुख रहता है.

इसप्रकार जो ईश्वरकी माया है वह ईश्वरीही है और उसके नियम प्राणि· योंको डुबानेके लिये नहीं, किन्तु उसके मर्मको समझे तो, वे तारनेके लियेही हैं. उसके सृष्टिनियम प्राणियोंके लिये, ईश्वरकी प्राप्तिरूप विद्या सम्पादन करनेके आरम्भके खरड़ेही हैं. मायाकी सेवा करना क्या है कि, मायाके नियमका मर्म बराबर समझकर, उसके अनुसार सावधान होकर चलना. ऐसा करनेसे अवश्य यह माया प्राणीको ईश्वरके सन्मुख करती है. उसकी निन्दा करना अथवा उसके विरुद्ध चलना, उसके नियमोंके मर्मको न जानकर विषयमें लोभायमान होकर पड़े रहना है; और ऐसा करनेसे वह माया निश्चय प्राणीको प्रभुसे विमुख करती है.

चतुर्थ बिन्दु.

सत्संग-प्रताप.

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
रथ्याम्बु जाह्नवीसंगात्त्रिदशैरपि वन्द्यते ॥

अर्थ— महात्मा पुरुषका संसर्ग (सम्बन्ध) किसकी उन्नति नहीं करता है ? सबकी करता है. गलीकूचीके जलको गंगाके संगसे देवतागणभी वन्दन करते हैं.

शिष्य— हे परम कृपालु गोविन्दरूप गुरुदेव ! आपके इस महान् उपकारका बदला मैं कंगाल तो क्या, परन्तु महान् देवता जैसेभी किस प्रकार दे सकें ? क्योंकिः—

अन्नदानात्परं नास्ति विद्यादानं ततोऽधिकम् ।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिर्यावज्जीवं तु विद्यया ॥

अर्थ— दूसरे सब दानोंसे अन्नदान (भूखेको अन्न खिलाना) सर्वोत्कृष्ट कहा गया है; कारण कि अन्न देहको सन्तोष देनेवाला परम जीवनरूप है, परन्तु उस (अन्नदान) से भी बढ़कर विद्यादान बहुत फलका देनेवाला है; क्योंकि अन्नका दान तो अल्प तृप्ति करनेवालाही है, (एकवार खाया हुआ अन्न पचन हुआ तो फिर भूख लगती है, उस समय तृप्त करनेके लिये पहले खाया हुआ अन्न कुछ काम नहीं आता) और विद्यादान तो मनुष्यके जीवनपर्यंत उसको तृप्ति देता रहता है. (विद्या पढ़कर उसके योगसे मनुष्य अन्नपानादिक अनेक शरीरपोषक पदार्थ पैदा करके उनके उपभोगसे निरन्तर तृप्त होता है.)

इस भांति वह विद्यादान ग्रहण करनेवाला प्राणी, विद्यादान करनेवाले मनुष्यके बड़े उपकारके बोझेका पात्र होता है. अपने समग्र जीवनपर्यन्त उस दाताका दास होकर रहे, तोभी उसका बदला नहीं हो सकता. हे दयालु गुरु महाराज ! जब इस क्षणभंगुर संसारमें जन्म लेकर अल्प काल-

पर्यंतही स्थिर रहनेवाले इस नाशवंत जीवनका पोषण होसके, ऐसी व्यावहारिक विद्याके दान करनेका बदला किसी प्रकार दिया नहीं जा सकता तो फिर आप कभी नाशको न प्राप्त हो ऐसे अखंड सुखसे नित्य तृप्त करनेवाली जो सद् (ब्रह्म) विद्या, जो कि ब्रह्म (परमात्मा) के स्वरूपके ज्ञानका दान करनेवाली है, उसका दान करते हो तो इस आपके महान् उपकारका बदला इंद्रसमान बड़े देवराजसे भी कैसे दिया जाय ? अतएव हे स्वामिन् ! मैं एक तुच्छ प्राणी आपके उपकारका बदला देनेकी इच्छा करूं तो मेरी वह इच्छा आकाशकुसुम प्राप्त करनेकी अभिलाषाके समान है; इसलिये ऐसे मिथ्या प्रयत्नको त्यागकर सदा सर्वदा, सर्वथा आपके भवतारण चरणशरणहीमें पड़ा हूं; जिससे आप मुझे महादीन जानकर मेरा उद्धार करेहींगे.

गुरु—वाह ! वाह ! धन्य है तेरी बुद्धिको ! हे शिष्य ! तू मोक्षतत्त्वका जिज्ञासु है और ब्रह्मविद्याके उपदेशका पात्र बना है, इसलिये हे वत्स ! तू मनके समस्त संकल्पविकल्पोंको छोड़ और किसी बातकी ग्लानि (संकोच) मत कर और जो २ शंका तुझे उत्पन्न हों वे सब प्रसन्नतासे मुझे कह. मुझसे उन शंकाओंका समाधान सुन करके तू भवबन्धनसे मुक्त होगा, यह मेरा आशीर्वाद है.

शिष्य— हे स्वामिन्, आपने इस ऊपरके उदाहरणप्रसंगमें कहा है कि, प्रत्येक पदार्थको दोनोंही मार्गोंमें खैंच लेजासकते हैं; जिससे उसके अच्छे और बुरे दोनोंही रीतिके फल उत्पन्न होते हैं. यहां मुझे एक संदेह उत्पन्न होता है कि सर्व शिष्ट जनोंमें प्रशंसित जो सत्संग है और जिसकी तुलना और किसी वस्तुके साथ नहीं होसकती और जो सर्व प्रकारसे शुभ फलकाही देनेवाला है उसकोभी क्या यह ऊपरका नियम लागू पड़ सकता है ?

गुरु— हे वत्स ! जो कि सत्संग बहुतही श्रेष्ठ है तथापि उसको सेवन करनेवाले पुरुषमें जो कईएक महाअवगुण होते हैं तो वह सत्संग उसको अपने उत्तम (श्रेष्ठ) स्वभावके अनुकूल फलदायक नहीं होसकता; ये अवगुण (दोष) कायिक (शरीरसे उत्पन्न), वाचिक (वाणीसे उत्पन्न) और मानसिक (मनसे उत्पन्न) ऐसे तीन प्रकारके हैं; और प्रत्येकके तीन २

भेद हैं. इसकारण यदि इन सम्पूर्ण दोषोंको जड़से त्याग करदे तो उस प्राणीको अवश्यही सत्संग श्रेष्ठ फल देता है. इन दोषोंके विषयमें ऐसा कहा है कि:—

"चोरी हिंसा अरु व्यभिचार, कायाके त्रय दोष विचार।
निंदा अरु कटुवाद असत्य, वाणीके ये दूषण सत्य॥
तृष्णा द्वेषबुद्धि अरु क्रोध, त्रिविध दोष मनमें तू शोध।
इहिंप्रकार नव दूषण त्याग, कर सत्संग खुलेंगे भाग"॥

कायिक अर्थात् शरीरसे उत्पन्न होनेवाले दोष तीन हैं-१ चोरी, २ व्यभिचार और ३ जीवोंकी हिंसा; वाचिक अर्थात् वाणीसे (बोलनेसे) उत्पन्न होनेवाले दोष तीन हैं—१ दूसरेकी निन्दा, २ मिथ्याभाषण (झूठ बोलना) और ३ कठोरता (अपने साथ बात करनेवालेको कटु वाक्य कहना); ऐसेही मानसिक अर्थात् मनसे उत्पन्न होनेवाले दोष भी तीन हैं—१ तृष्णा (नानाप्रकारके तुच्छ विषयोंकी आशा किया करना), २ द्वेषबुद्धि अर्थात् दूसरेके दोष देखना (छिद्रान्वेषण करना) और ३ तीसरे क्रोध करना; इसप्रकार ये मन, वाणी और शरीरके नौ दूषण हैं, इनका परित्याग करे तोही सत्संग फल देनेवाला होता है.

हे शिष्य! यह तो मैंने तेरे प्रश्नका उत्तर कहा, परन्तु यह सत्संग जो कि सद्विद्या (सत्य ज्ञान) प्राप्त होनेका मुख्य साधन है, उसके अनुपम गुणोंका कैसे गान करूं? उसके अपार गुणोंकी महिमा किसप्रकार वर्णन करूं? ऊपर कहे हुए त्रिधा (तीन प्रकारके) दोष, इनको छोड़ देनेसे सत्संग फलीभूत होता है, ऐसा मैंने ऊपर कहा है और वे दोषभी सत्संग करनेसे अपने आप विलीयमान होजाते हैं. इतना बड़ा प्रभाव इस सत्संगका है; इसलिये प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि सत्संग करे. सत्संग करनेसे महान् अधम (दुष्ट पुरुष) भी सत्त्वगुणी और साधु बनता है; सत्संगसे पापात्माभी पुण्यवान् और पवित्र होजाता है; सत्संगसे सब अविद्याका नाश होकर सद्विद्याकी प्राप्ति होती है; सत्संगसे सद्गुरुदेवके चरणारविंदकी शरण मिलती है और सत्संगके योगसेही मनुष्य (प्राणी) प्रभुपदको प्राप्त होता है. अहो! इस सत्संगकी महिमाको महाभक्तराज तुलसीदासजीने इस प्रकार वर्णन किया है:—

दो०-"सर्व स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥"

स्वर्ग, मृत्यु और पाताल-इन तीनों लोकोंके सर्व सुखोंकी तथा अपवर्ग अर्थात् *मोक्षके अनिर्वचनीय अखण्डसुखकी राशि (ढेर) को तुला (तराजू) के एक पलड़ेमें रक्खो और दूसरे पलड़ेमें, लव मात्र (क्षणभर) के सत्संगसे प्राप्त हुए सुखको अर्थात् सत्संगके फलरूप सुखको रक्खो और तुलना (तोल) करो तो सत्संगके सुखवाला पलड़ा नीचे झुकेगा अर्थात् तीनों लोकोंके मोक्षपर्यन्त सुखभी उससे कम (हलके) रहेंगे और सत्संगही उनसे भारी (बोझल, वजनदार) रहेगा. ऐसी अगाध महिमा सत्संगकी है; उसका माहात्म्य वर्णन करनेमें शेष और शंकर भी असमर्थ हैं.

---

* शंका-परतन्त्र, परिच्छिन्न और कादाचित्क अर्थात् कभी २ होनेवाला जो सत्संग-सुख उसके समान सर्व वेदान्तोंसे प्रतिपाद्य निरतिशय मोक्षसुख नहीं है, यह कथन असंगत है. समाधान-सफल पदार्थ स्तुतिके योग्य होता है, न कि निष्फल पदार्थ. सो मोक्षसे अन्य मोक्ष नहीं होता इससे वह निष्फल है; और सत्संगसे ज्ञानद्वारा अनेक पुरुषोंको मोक्षसुख प्राप्त होता है, इससे वह सफल है तथा इसी अभिप्रायसे यहांपर मोक्षसुखसे भी श्रेष्ठ कहा गया है.

पंचम बिन्दु.

ईश्वरका कर्त्तव्य.

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥

श्रीमद्भागवत. द. अ. ९१.

अर्थ— जैसे भूखसे अत्यन्त व्याकुल हुआ सांप चूहेको निगल जाता है तैसेही आज मैं ऐसा करूंगा-वैसा करूंगा ऐसे अनेक कार्य करनेके विचारसे बहुतही मदोन्मत्त हुए महालोभी और विषयोंकी लालसावाले पुरुषको हे भगवन्! आप कालमूर्तिके समान सावधान होकर यकायक पकड़ लेते हो.

शिष्य— हे गुरुजी! इस जगत्के कर्त्ता प्रभु जो साकार तथा निराकार दोनों रूपोंसे विद्यमान हैं सो क्या अपने प्राणियोंकी नाईं आहार विहारादि व्यवहार (खाना, पीना, बोलना, हंसना आदि) करते होंगे? इस विषयमें मुझे आश्चर्य होता है; इसलिये कृपा करके इसका समाधान कीजिये.

गुरु—हे वत्स! इस विषयमें एक राजाके पूछे हुए तेरेही जैसे प्रश्न मुझे, याद हो आये हैं सो तुझसे कहता हूं, तू श्रवण कर.

पूर्वकालमें मनोमयी नामकी नगरीमें कोई बुद्धिधन नामक राजा राज्य करता था. यह राजा स्वयं भी बुद्धिमान्, विद्याका प्रेमी, हास्य विनोद तथा चमत्कारिक कथाओं (वृत्तान्तों) को श्रवण करनेवाला और अनेक कला-कुशल पुरुषोंका समागम करने आदि विषयोंपर बहुत प्रीति रखनेवाला था. ऐसी उसकी योग्य वृत्ति होनेसे बहुतेरे विद्वान्, कवि और बुद्धिमान् पुरुष बारंबार उसकी सभामें आकर मान प्राप्त करते थे. यह राजा अपने हास्य-विनोदादिके अतिशय प्रेम (शौक) के लिये मसखरे, वाचाल, हाजिर जवाबी,

खिलाड़ी इत्यादिक कलाकुशल पुरुषोंको सदा (कायम) के लिये वर्षाशन देकर अपनी सभामें रखता था; और जब जब राजकाजसे निवृत्त होता, तब तब अवकाशके समय, वह उनको अनेक तरहके विलक्षण प्रश्न पूछकर उनके संतोषकारक उत्तरोंको सुनकर आनंदको प्राप्त होता था. इसी प्रकार एकदिन वह विनोदमें बैठा था, उस समय उसको कुछ तर्क सूझी, उसपरसे वह यों कहने लगा:–" हे सचिव ! हमारी इस विनोदी राजसभामें अनेक प्रकारके ज्ञानको धारण करनेवाले पुरुष हैं; परन्तु क्या ये मुझे अभी उत्पन्न हुए प्रश्नका उत्तर देसकेंगे ? " यह सुनकर प्रधानने कहा:–" महाराजाधिराज ! ऐसी शंका पहलेहीसे करनेका क्या प्रयोजन है ? आप प्रश्न करें और जो आपको संतोषकारक उत्तर नहीं मिले तो आपकी आज्ञानुसार कार्य करनेके लिये आपके चरणोंका दास मैं तैयार ही हूं." राजाने तुरन्त वह प्रश्न प्रधानको राजसभामें कह सुनाया, और प्रधानने पंडितोंको कह सुनाया. परंतु प्रश्न पूछनेसे पहले सबको चेता दिया कि, जो इस प्रश्नका उत्तर नहीं देसकें वे तत्काल मेरी सभामेंसे निकल जावें और पुनः मेरी आज्ञा विना सभामें प्रवेश नहीं करें. राजाकी ऐसी कड़ी आज्ञा सुन करके सभासदगण घबरागये और उत्तर देनेकी जिनमें शक्ति थी वेभी एकवार तो स्तब्धही होगये. फिर सबके समक्ष राजाका प्रश्न निवेदन किया.

१ ईश्वर क्या खाता है ? २ ईश्वर क्या करता है ? ३ वह कब हँसता है ? ४ वह कहां रहता है ?

इन प्रश्नोंको सुनकर सारे सभासद परस्पर–एक दूसरेका मुख देखने लगे. कईएकने तो निर्लज्जता स्वीकारी और कितनेक जब २ राजा कोई प्रश्न पूछता तब २ तुरन्त उत्तर देनेवाले थे, वेभी इस समय तो लज्जित होकर दिङ्मूढ़ बन कर चुपचाप बैठे रहे. पंडितोंकी ऐसी मूढ़ता देखकर राजाने क्रोध करके तुरन्त सभा विसर्जन करनेकी प्रधानको आज्ञा दी और उसको भी कहा कि " तू स्वयं जाकर जो इन प्रश्नोंके उत्तर देनेमें समर्थ हो ऐसे पुरुषको ढूंढ़ ला. वह उत्तर देनेवाला पुरुष चाहे जैसी स्थितिमें होगा तो भी मैं उसको राज्यासनपर बिठाकर उसकी सेवा करूंगा. " उस समय राजाने ऐसा विचार किया कि 'मेरी समर्थ सभाके इतने बड़े बुद्धिमान् पंडित जिनका उत्तर नहीं देसके, ऐसे अगम्य प्रश्नोंका उत्तर देनेवाला पुरुष

कोई अल्प अनुभववाला अथवा थोड़ी योग्यतावाला तो न होगा, किन्तु कोई महात्माही होगा; तो ऐसे महात्माकी सेवा करना बड़ी दुर्लभ बात है.' ऐसे सूक्ष्म विचारसे उसने यह प्रतिज्ञा की.

राजाके ऐसे वचन सुनकर दूसरे दिन प्रातःकाल होतेही मंत्री अश्वारूढ होकर किसी महात्मा पुरुषकी खोज करनेको चला. इन प्रश्नोंका उत्तर देनेवाला महात्मा किसप्रकार और कहां मिलेगा, ऐसे विचार और चिन्तामें वह जाते २ एक अरण्यमें चला गया. वहांसे फिर एक गामसे दूसरे गाम और दूसरेसे तीसरे गाम इसीप्रकार फिरते २ ढूंढते २ वह बहुत दूर देश चला गया, तोभी इसको कोई ऐसा महापुरुष नहीं मिला कि, जो राजाके प्रश्नोंका समाधान करे. इसकारणसे मंत्रीके मनमें अत्यंत खेद और सन्ताप होने लगा. वह ऐसी चिन्ता करने लगा कि—"अरे! एक तो मेरी बदनामी होजायगी कि मुझे सौंपा हुआ काम मुझसे नहीं हुआ और दूसरे काम किये विना पीछा जानेसे महाराज भी क्रोधायमान होंगे और मेरे प्रधान-पदपरसे मुझे भ्रष्ट करेंगे. इसप्रकार मैं धर्म-संकटमें पड़ा हूं. अब मुझे क्या करना चाहिये ? क्या निराशाभरा मुंह लेकर राजाके सन्मुख जाना चाहिये ? परन्तु वहां जाकर अपमान पानेसे तो मरनाही उत्तम है. तब क्या आत्मघात करके देह-त्याग करना चाहिये ? नहीं नहीं. धिक्कार है ऐसे नपुंसकको कि जो कायर होकर अपने अनेक जन्मोंके सुकृतसे प्राप्त हुए दुर्लभ देहका अपनेही आप घात करनेकी इच्छा करता है. तो फिर अब क्या उपाय करना चाहिये ? ऐसे परम संकटके समयमें मेरी सहायता कौन करेगा ? मैंने तो जितना मुझसे बना उतना प्रयत्न करलिया. कहा है कि—

सो०-" हस्त पदादिक अंग, अरु बुधि दीनी मनुजको ।
होनि अहोनि हरिसंग, होय सके सो यत्न कर ॥"

प्रभुने मनुष्यको हाथ पांव इत्यादि शरीरके सर्व अवयव और बुद्धि आदि दिये हैं इसलिये अपनेसे बन सके उतना अवश्य प्रयत्न करना, पर ऐसा करते हुएभी जब कार्य सिद्ध न हो तो कर्ताका कुछ दोष नहीं; क्योंकि जो काम मनुष्यसे नहीं बन सके सो काम करनेकी सामर्थ्य तो श्रीहरिमेंही है. तो क्या वह परम कृपालु प्रभु इस निष्फलताके समयमें मेरी सहायता न करेगा ?" ऐसा कहकर वह दोनों हाथ जोड़कर भगवान्की स्तुति करने लगाः—" हे परम कृपालु ! हे अन्तर्यामी ! अनाथबंधु ! हे दीनना

हे परमेश्वर ! आप अशरण (आश्रयरहित) के शरण हो, ऐसा शास्त्र आपका वर्णन करते हैं, तो हे प्रभु ! मैं इस संकटसमयमें आपके शरण हूं. अतएव आप मेरी लज्जा रखकर इस अनिवार्य धर्मसंकटमेंसे मुझे मुक्त करो. हे देव ! आप, शरणागतका कभी त्याग नहीं करते, वरन् उसको अभय-दान देकर अपने चरणारविन्दोंका आश्रय देते हो. इस लिये मुझे निश्चय है कि मेरी समस्त चिन्ता आपही मिटा देंगे " ऐसे अनेक प्रकारसे श्रीपरमात्माकी स्तुति करता हुआ प्रधान धीरे २ आगे जाने लगा. मध्याह्न होगया था, क्षुधाभी लगी थी और सूर्यभी शरदृऋतुमें चित्रानक्षत्रका होनेसे धूपभी वहुत तेज पड़रही थी. कुछ दूर आगे जाकर उसने दुपहरी* कर-नेका विचार किया, और मार्गपरके एक खेतके किनारेपर एक सघन आमका वृक्ष था उसकी शीतल छायामें जाकर घोड़ेपरसे उतरा. घोड़ेको आमके पेड़से बांध दिया और बैठकर भगवान्का स्मरण करने लगा. इसी बीचमें खेतमें हल जोतनेवाले किसानने भी मध्याह्न होजानेके कारण हलसे खोलकर बैलोंको चरनेके लिये छोड़ दिया, और उसी वृक्षके नीचे भात खानेके लिये आया. किसान बड़े शान्त स्वभावका था. उसने आतेही उस प्रधानका मुख उतरा हुआ (उदास) देखकर प्रेमसे पूछा कि:—"भाई ! तुम कौन हो ? और किसलिये शोकसागरमें निमग्न हुए दिख पड़ते हो ? तुम आज मेरे खेतपर आबैठे हो अतएव मेरे अतिथि हो, सो मेरेसाथ आनन्दसे भोजन करो. तिसपीछे, तुम्हारी इच्छा हो तो अपनी सुखदुः-खकी बात मुझे कहदो. आपके शरीरके चिह्नोंपरसे जाना जाता है कि, आप क्षत्रिय होंगे; इसकारण हमारा ब्राह्मणका अन्न खानेमें कुछ बाधा नहीं. औरभी मेरी स्त्री स्वयं यह भोजन यहां लाई है और यह भात दूधसेही तयार किया हुआ है. " उस किसानके ऐसे विवेकसहित वचनोंको सुन करके प्रधान समझा कि, यह कोई उत्तम पुरुष है. उसने उसके निमंत्रणको स्वीकार किया. तब उन दोनोंने यथारुचि भोजन किया. भोजनसे निश्चिन्त होनेके अनन्तर प्रधानने अपनी चिन्ताका कारण—सब बीती हुई बात—कह सुनाई और अन्तमें कहा कि:—

" हे ब्रह्मदेव ! अब मेरा सब आधार ईश्वरपर है. अस्तु, जो उसे प्रिय होगा सोही करेगा. " यह सुनकर किसान ब्राह्मणने कहा:—" राजन् !

* मध्याह्नका भोजन.

आपने बहुतही अच्छा किया कि उसीका विश्वास रक्खा. वह सब प्रकारसे समर्थ है, इसलिये आपको अवश्यमेव सहायक होगा. अच्छा हुआ कि आप यहां आगये. आपके राजाके उन चारों प्रश्नोंका उत्तर ईश्वरकृपासे मैं देस- कूंगा, और आप अपने शिरपर लिये हुए कामको पूर्ण कर देनेसे राजाके कृपापात्र बनेंगे. अब आप विलंब न कीजिये और अपनी राजधानीको चलिये." ऐसा कहकर वह किसान अपनी स्त्रीको 'समय होजानेपर बैल आदिको घर लेजाने तथा थोड़े दिनोंमें लौटकर पीछा आनेका कहके, तुरंत कमर बांधकर प्रधानके साथ विदा हुआ. मार्गमें दोनोंजने वारीवारीसे घोड़ेपर बैठते उतरते तीसरे दिन राजनगरमें आपहुँचे; और शहरके बाहरकी एक वाटिकामें दोनोंने आश्रय-(उतारा) लिया. फिर प्रधानने राजाको कहला भेजा कि:-" आपके प्रश्नोंका उत्तर देनेवाले महात्माको मैं बुलालाया हूँ; अतः उस महात्माके सन्मानके लिये उसके सन्मुख आकर, अगौनी (पेशवाई) करके उसे नगरमें ले चलिये." समाचार पातेही राजा बड़े आडम्बरके साथ उस बगीचेमें गया और उस ब्राह्मणका यथोचित आदर मान करके उन दोनोंको राजमंदिरमें लिवा लाया. दूसरे दिन राजाने सभामें सबके समक्ष उस किसानको एक उत्तम आसनपर बिठाकर अपने प्रश्न पूछनेका आरंभ किया.

पहले पूछा कि " हे ब्रह्मदेव ! कहिये, ईश्वर क्या खाता है ? " यह सुनकर वह किसान बोला कि:-" हे राजन् ! यौवन, धन, संपत्ति, प्रभुता, बल इत्यादि वस्तुकी प्राप्ति होनेसे मनुष्यको अहंकार आता है, और उसके वशवर्ती होजानेसे प्राणी दुष्ट कर्मोंको करने लगता है; उस अहंकारका प्रभु भक्षणकर्त्ता (गर्वगंजन) है. देखो कि, सृष्टिके आरंभसे अद्यापि पर्यन्त किसीकाभी अहंकार बना नहीं रहा. अहंकार तो भगवान्का भक्ष्य है. यह अहंकार जिसके यहां वृद्धिको प्राप्त होता है, उसीको परमात्मा तुरन्त भक्षण कर लेता है (उसका अहंकार उतार देता है). माली जैसे अपनी वाटिकामें प्रतिदिन देख भाल किया करता है और जिन २ झाड़ोंपर बहुतसे फूल खिलेहुए देखता है, उन (फूलों) को तुरन्त तोड़ लेता है; वैसेही हिरण्यकशिपु, रावण, शिशुपाल, बाणासुर, दुर्योधन इत्यादिक अनेक भूप- तिगण अहंकारसे मदोन्मत्त होगये थे, उन सबका अहंकार भगवान् भक्षण कर गये, तो फिर साधारण मनुष्यकी चर्चाही क्या करना ? अहो राजन् !

पूर्वकालके इन दृष्टान्तोंसे आपका समाधान नहीं होता हो तो यह प्रत्यक्ष देखिये कि, आपकी सभाके अनेक गुणी जन, जो अपने गुणोंके लिये आपकी ओरसे प्राप्त होते हुए उत्तम मानपानके कारण अभिमानी बन गये थे, और अपने अहंकारके वशीभूत होकर ऐसा समझने लगे थे कि, हमारे समान गुणवान् अन्य कोई नहीं. इन सबका अपमान करके आपकी सभामें भगवानने इनका गर्व उतारा है; इस बातमें इन्हींका अन्तःकरण साक्षी देता है."

यह सुनकरके सर्व सभासदोंसहित राजा अतिहर्षको प्राप्त हुआ. राजाके मनमें और २ प्रश्नोंके उत्तर सुननेकी आतुरता (उत्कंठा) बढ़ी. उसने दूसरा प्रश्न पूछनेकी इच्छा प्रगट की तब खेतिहर महात्माने कहा कि:-"हे राजन्! अब आपकी की हुई प्रतिज्ञाका पालन करना चाहिये. ऐसा किये बिना एकभी प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जायगा." यह सुनकर राजाने उत्तर श्रवण करनेकी उत्कंठासे, उसी दिन शुभ घड़ी पल (मुहूर्त्त) दिखाकर, ब्राह्मणों-द्वारा अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उस किसानको राज्याभिषेक कराकर, सिंहा-सनपर विराजमान किया. तदनन्तर दोनों हाथ जोडकर सेवकके समान उनके सन्मुख खडा रहा. अब उस महात्मा (नये बने हुए राजा)नें कहा कि:-"हे राजा! अब जैसी तेरी इच्छा हो वैसेही प्रश्न आनन्दसे पूछले." तब राजा बोला:- "हे महाराज! परमेश्वर क्या करता है?" महात्माने कहा:-"अहो! सर्वतंत्र स्वतंत्र सर्वेश्वर जगदात्मा प्रभु तृणका मेरु और मेरुका तृण कर देता है. वह परमात्मा इस अखिल ब्रह्मांडको क्षणभरमें इच्छामात्रसे प्रगट करके पलभरमें इसका लय करनेमें समर्थ है. राजाको रंक और रंकको राजा बना देता है. ऐसे दृष्टान्त जगत्में कईवार देखनेमें आते हैं मेरी ओर तू देख. मैं महादरिद्री और कृषिकर्म (हल जोतना-खेती करना) करके उदर पोषण करनेवाला एक किसान हूं; परन्तु समस्त सचराचरके कर्त्ता सर्वेश्वरकी इच्छामात्रसे आज राजा बन बैठा हूं, और तू जो इतने बड़े राज्यका पालन करनेवाला भूपति था सो मेरे सन्मुख दासके समान खड़ा है, तो अब प्रभु क्या करता है सो तू अपने आपही समझ ले.

इस उत्तरसे सम्पूर्ण सभामें आनन्द और आश्चर्य छागया. तदनन्तर राजाने तीसरा प्रश्न पूछा:-"हे महाराज! परमेश्वर कहां रहता है?" इसके उत्तरमें किसान महात्माने कहा:-"ईश्वर सर्वत्र निवास करता है, उससे

रहित संसारमें कोई भी पदार्थ नहीं, और इसीलिये उसके 'विष्णु विभु' इत्यादिक नाम हैं. फिर शास्त्रमें भी कहा है कि:-"सर्वं विष्णुमयं जगत्" सारा संसार विष्णुमय है, अर्थात् परमेश्वर जगत्‌में सर्वत्र (सब ठिकाने) व्याप्त है. भगवान्‌के मुख्य दश अवतार हुए हैं. उनमेंसे नृसिंहावतार तो इसी बातको सिद्ध करनेके लिये हुआ है. अपने भक्त प्रह्लादकी सहायता करने तथा उसके पिता हिरण्यकशिपुको भगवान् सर्वत्र बस रहे हैं ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान करानेके लिये श्रीहरि स्वयं उसकी सभाके स्तम्भमेंसे प्रकट हुए थे. यह कथा आजतक सर्वत्र प्रसिद्ध है; परन्तु इतना निश्चय समझ कि, परमेश्वर भक्तजनोंके रागादिक दोषरहित शुद्ध अन्तःकरणमेंही नित्य निवास करता है."

तदनन्तर राजाने चतुर्थ प्रश्न यह पूछा कि:-"परमेश्वर कब हँसता है ?" इसका उत्तर देतेसमय किसान (राजसिंहासनारूढ महात्मा) कहने लगा:- "जीवात्माके वारंवार वचन चूकने-(प्रतिज्ञा न पालनेकी कुटेव-बुरे स्वभाव) पर भगवान्‌को हँसी आती है. सो कैसे कि, जब जीव गर्भवासमें अत्यन्त कष्ट पाता है, तब उसमेंसे छूटनेके लिये दीन होकर परमेश्वरसे अनेक प्रकारकी प्रार्थना करता है, और उसे सुनकर भक्तवत्सल भगवान् दया करके उसको गर्भयातनामेंसे मुक्त करते हैं. परन्तु उसका छुटकारा करनेके पहले उससे वचन लेते हैं (प्रतिज्ञा कराते हैं) कि, "हे जीव ! तू वारंवार ऐसाही करता चला आया है, तोभी इस समय दया आनेसे तुझे छोड़ता हूं इसलिये अब तू संसारमें जाकर सन्मार्गसेही वर्तन करना कि जिससे 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्' का अवसर न आने पावे." उस समय जीव कहता है कि "अब मैं कभी नीच कृत्य नहीं करूंगा." फिर हरि कहते हैं कि,-"तू गृहस्थाश्रममें रहकर मुझे (परब्रह्मको) जाननेसे विमुख नहीं रहना, वहां तू धर्मके मार्गसे चलना और मुझे जाननेका श्रमभी करना." तब जीव कहता है:-"हे महाराज ! मैं चाहे जिस काल और चाहे जिस स्थलपर आपके ध्यानसे विमुख नहीं रहूंगा, धर्ममार्गसे चलूंगा और विवेकसे संसारयात्रा करूंगा, मुझे कृपा करके छोड़ो. मैं आपके सिवाय किसी अन्यको नहीं ध्याऊंगा, केवल आपहीका होकर रहूंगा." यह प्रतिज्ञा कराकर भगवान् फिर कहते हैं:- "नहीं, तू स्वल्पकालतकही मेरा ध्यान करता रहता तो बस होगा." जीव कहता है कि:-"हे महाराज ! आपको

क्षणभरभी नहीं भूलूंगा'' इसप्रकार स्वीकार करके जीव गर्भमेंसे बाहर आता है, कि तुरन्त यह सब भूल जाता है और वैसा कुछभी न करके उलटा पापकर्मोंको करता है और नरकगामी होता है. ऐसे जीवका वचनभंग होता देखकर भगवान् हँसते हैं. ''

इन चारोंही प्रश्नोंका सन्तोषकारक उत्तर सुनकरके राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस किसान महात्माको साष्टांग नमस्कार करके कहने लगा– " हे महाराज ! आजसे आप इस राज्यके अधिपति हैं और मैं आपका सेवक हूं. आपकी क्या जाति है यह मैं नहीं जानता हूं तोभी ऐसे उत्तम ब्रह्मज्ञानके पात्र होनेसे आप ब्राह्मणही होंगे. ऐसा विचार कर मैं अपना मनोरथ सफल हुआ मानता हूं. '' इसके पश्चात् उस ब्राह्मण महाराजने प्रधानको योग्य शिरपांव (बक्षीस) प्रदान किया और राजासे कहा:–" हम ब्राह्मण हैं, इसलिये राज्यभोगका हमें अधिकार नहीं है. तूही अपना राज्य सुखसे भोग. '' ऐसा राजासे कहकर वहांसे वह ब्रह्मवेत्ता चलने लगा. तब राजाने आग्रहसे उसके स्त्रीपुत्रादिकोंको वहां बुलवाकर उनको अपनेही नगरमें निवास कराया और गुरुभावसे अहर्निश उनकी सेवा करके ब्रह्मज्ञान संपादन किया.

हे शिष्य ! फिर ऐसा भी है कि "द्वे वाव ब्रह्मणो मूर्तं चैवामूर्तं च" इस उपनिषद्वाक्यके अनुसार भगवान् निराकार तथा जगद्रूपसे साकार है, अर्थात् मैं, तू, स्त्री, पुरुष, बालक, पशु, पक्षी इत्यादि सब प्राणी तथा वृक्ष, पर्वत और सागर आदि सब स्थावर पदार्थोंसे भरा पूरा यह जगत् भगवानरूपही है और उस (जगत्रूप भगवानके विराट्स्वरूप) में बसनेवाले प्राणीमात्र भगवान्रूपही हैं और वे जो आहारविहारादि देहके भोग भोगते हैं वे सब उनके रूपमें भगवान् ही भोगते हैं ऐसा समझना.

षष्ठ बिन्दु.

ज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् ज्ञानीकी अवस्था.

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ [गीता. २-७१.]

अर्थ—जो मनुष्य सब कामनाओंको छोड़कर निःस्पृह होकर विचरता है और जिसकी अहंता ममता मिटगई है वह शान्तिको प्राप्त होता है.

शिष्य- हे दीनदयालु गुरुदेव ! ज्ञान प्राप्त होनेके अनन्तर ज्ञानी कैसा होता है ?

गुरु—हे वत्स ! ज्ञान जैसी परम दुर्लभ वस्तुके प्राप्त होजानेपर शेष क्या रह जाता है ? कुछ नहीं. इसीसे तो ज्ञानी साक्षात् परब्रह्मस्वरूप होता है.

शिष्य—हे स्वामिन् ! जब यह सर्वव्यापक ब्रह्मरूप होजाता है तो सर्वज्ञ क्यों नहीं होता ? और उसको दूसरेके चित्तका भेद क्यों नहीं जान पड़ता ?

गुरु—हे वत्स ! ज्ञानी होजानेपर वह अल्पज्ञ वा सर्वज्ञ कैसे हो सकता है ? क्योंकि अल्पज्ञ तो जीव और सर्वज्ञ ईश्वर है. और ज्ञानी तो शुद्ध ब्रह्मरूप होनेसे, न तो अल्पज्ञ है न सर्वज्ञ है, दोनोंमेंसे एकभी नहीं है. उन दोनोंसे भिन्न विरक्त है. महदाकाशकी भांति जीव और ईश्वरका वास्तविक स्वरूप ब्रह्म है और वही रूप ज्ञानी है. अल्पज्ञता अथवा सर्वज्ञता ये तो केवल उपाधियां हैं, और इनके ही संबंधसे जीव और ईश्वर ऐसे दो भेद मानने पड़ते हैं. वे उपाधियां किस प्रकार हैं सो तू श्रवण कर. जैसे आकाश (शून्यता) सर्वत्र एकही है और घड़ेमेंका अथवा घरके भीतरका आकाश भी उस सर्वत्र व्याप्त महदाकाश (बड़ी शून्यता) से भिन्न नहीं है बल्कि वहीका वही है; परन्तु घर और घड़ा इस रूपसे जुदी २ उपाधि लगनेसे छोटा बड़ा ऐसा मानना पड़ता है. इसीप्रकार जीव तथा ईश्वरकी उपाधियें अनु-

सारही अल्पज्ञता वा सर्वज्ञता होती है; परन्तु ज्ञानी तो इन दोनों जीव तथा ईश्वरकी उपाधियोंसे रहित होजाता है और साक्षात् निर्गुण ब्रह्म बन जाता है; इसकारण न तो वह अल्पज्ञ रहता और न वह सर्वज्ञ रहता है. पुनः जीव तथा ईश्वर अपनी २ उपाधियोंसे रहित हो जायँ तो दोनों एकही हैं. इसपर यह एक कथा सुनः—

कोई एक महा-संपत्तिवान् चक्रवर्ती राजा था और अन्य बहुतसे मांडलिक राजगण उसकी आज्ञामें रहकर प्रजाका पालन करते थे. वह समस्त पृथ्वीका राज्य करता था इसलिये उसकी समृद्धिकी तो बातही क्या कहना ? एक समय वह चक्रवर्ती राजा बहुतसी सेना लेकर वनक्रीडा करनेके लिये गया. वनमें उस राजाने, अति सुशोभित वृक्षलताओंसे आनंदित होकर वहीं सेनाका पड़ाव डाल दिया. तदनन्तर अपने कई-एक मुख्य अंगरक्षक आदिकोंको साथ ले, अश्वारूढ होकर वनमें मृगया (शिकार) करनेको निकला. मृगयाके लिये चहूंओर फिरकर इधरउधर बहुत देखा ढूंढा, परन्तु कहींभी कोई मृगी वा मृग दृष्टिगोचर नहीं हुआ, इससे राजा क्रोधायमान हुआ और उसने घोड़ेको आगे बढ़ाया. कुछ दूर जानेपर उसको थोड़ी दूर आगे तृणांकुर चरता हुआ एक कृष्णमृगोंका झुंड दिखाई दिया. राजाको अपनी ओर वेगसे आते देखकर झुंडके मृग इधर उधर भागने लगे. राजा अपने साथियोंको पीछे छोड़कर और घोड़ेकी लगाम ढीली करके उन मृगोंके पीछे लगा. इस झुंडका नायक मृग बहुत सुन्दर था इसलिये राजाका लक्ष्य, और मृगोंपर न होते, केवल उसीके ऊपर रहनेसे उसने उसीका पीछा किया. वह मृगभी राजाके वार (चोट) को वारंवार चुकाता हुआ बड़ी दूर निकल गया. इतनेपरभी राजाने उसका पीछा करना नहीं छोड़ा और उसके पीछे पीछे दौड़ना और बाण मारना जारी रक्खा. ऐसे प्रबल वेगसे दौड़नेमें एक खड्डेमें घोड़ेका पांव पड़जानेसे कुछ झोंका खाया और पीछा सँभाला, इतनेमें तो वह मृग उस जंगलमें अदृष्ट होगया. राजा बड़ा निराश हुआ; क्योंकि सेना तथा साथी बहुत पीछे (दूर) रह गये थे. इस समय मध्याह्नकाल होगया था और शरीरको बहुत श्रम हुआ था इसलिये राजा पीछे-फिरनेका विचार छोड़कर अपने श्रमको मिटानेके लिये, नदीतीरपरके एक वृक्षकी सघन शीतल छायाके नीचे

जाकर घोड़ेपरसे उतरा और घोड़ेको पेड़में बांधकर वृक्षकी जड़के पास बैठा. धनुषको शिरके नीचे रखकर थोड़ीसी आड टेढ़ की; राजा बहुत थका हुआ था सो उसको तुरन्त मीठी २ निद्रा आगई. घड़ीक बीतनेपर वहां एक कौतुक हुआ.

निकटवर्त्ती वृक्षोंकी घनी झाड़ीमेंसे स्त्रीकी आकृतिका एक जंगली प्राणी* यकायक (दौड़ता) हुआ राजाके पास आया और तुरन्त राजाके दोनों हाथ पकड़कर उसे कंधेपर डाल लिया और बड़े वेगसे जैसे आया था वैसेही झाड़ीमें पीछा अदृश्य होगया. राजाकी नींद तत्क्षण खुल गई. परन्तु उस प्राणीके बलके आगे राजाका कुछ वश नहीं चला. उस जंगली प्राणीने राजाको लेजाकर एक छोटीसी गुफामें बिठाया और उसके द्वारपर एक बड़ा पत्थर रखकर बंद कर दिया. राजाने इस गुफामें देखा तो जाना कि उसीकी भांति पकड़ा हुआ एक और पुरुष वहां था. उसे देखकर राजाकी घबराहट पहलेसे कुछ कम हुई और वह उसके निकट जाकर बैठा. परस्पर बातचीत करते २ राजाने पूछा कि–"भाई ! तू किसरीतिसे

---

* बहुतसे घने जंगलोंमें "मं" जातिके प्राणी होते हैं, जो पहाड़ोंके बहुत गहरे–नीचे भागमें अपनी गुप्त गुफाएं बनाकर रहते हैं. उनका आकार अधिकतर मनुष्यके अंगोंसे मिलता हुआ होता है और वे बहुत सुन्दर होते हैं. किन्तु उनके शरीरपर बाल अधिक होनेसे उनका शरीर कुछेक विलक्षण और भयंकर जान पड़ता है. इन प्राणियोंमें नरकी अपेक्षा मादा–(स्त्रियों) का भाग विशेष होता है. इन जंगली प्राणियोंकी मादाओंमें पुरुष भोगनेकी ऐसी प्रबल इच्छा होती है कि इस कामके लिये वे वनमें फिरकर मनुष्यों–(पुरुषों) को ढूंढा करती हैं. (क्योंकि एक तो उनमें नर बहुतही थोडे होते हैं और कुछ कुदरती–(स्वाभाविक) रीतिसे विषयेच्छाका दुर्गुण भी उनमें विशेष होता है.) जो एकाध पुरुष उनके सपाटेमें आजाता है तो वे उसको तुरन्त अपनी पीठपर लादकर अपनी गुफामें लेजाती हैं. और अपने रहनेकी जुदी छोटी गुफामें (जो कि उस बड़ी गुफके भीतर ही होती है) उसको बिठाकर गुफाका द्वार बड़ी शिलासे बंद करदेती हैं. और जब इच्छा होती है तब उसके पास आकर, उसको वनफल मांस (कच्चा) इत्यादिक खानेको देती हैं और स्वयं संभोग कराती हैं. तिस पीछे फिर गुफाका द्वार पहलेके जैसे बंद करके आप चली जाती हैं. इस प्रकार करते २ जब कई दिन पीछे वह पुरुष विषय करते २ थक जाता है और उसके शरीरमें किसी बातकी शक्ति नहीं रहती तब उसको वहांसे उठाकर पीछा वनमें छोड देती हैं.

यहां आया है ? और तू कौन है ?" यह सुनकर वह पुरुष बोला-"भाई ! मैं इस वनके पासवाले गांवका कठियारा (लकड़हारा) लकड़ी बेचनेवाला हूं. मैं घरका अत्यन्त गरीब हूं. मेरी स्त्री पुत्रादिक अन्नके लिये दुःखी होनेसे, इस वनमेंसे प्रतिदिन एक सूखी लकड़ियोंका भार (बोझ या गट्ठा) गाममें लेजाकर बेचता हूं और उससे अपने कुटुंबका पोषण करता हूं. आज मैंने इस पासकी झाड़ीमेंसे लकड़ी काटकर भार बांधा और गाममें जानेको तयार हुआ था, परन्तु मध्याह्न होगया था और भूखभी लगगई थी सो साथमें लाईहुई रोटी खाकर पासके एक झरनेमेंसे पानी पिया और फिर थोड़ी देरतक विश्राम लेनेका विचार किया. मेरी कुल्हाड़ी जिसमें मेरे सर्व कुटुंबका पोषण समाया हुआ है और जो कि मेरी समस्त समृद्धिकी जड है उसको मैं बड़े यत्नसे शिरहाने रखकर सो गया. मेरी आंख कुछ लगी न लगी इतनेमें तो इस दुष्ट प्राणीने आकर मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और मुझे कंधे पर डालकर क्षणभरमें यहां ला रक्खा. तुम्हारे आनेके पहले थोड़ीही देर मैं यहां आया हूं. और मेरी कुल्हाड़ी तथा काठका भार दोनों वहीं पडे हैं. अरे रे ! हे प्रभु ! दया कर, कृपा कर, अब मेरे बालकोंका क्या होगा ? वे बेचारे भूखके मारे मर जायँगे." इस भांति अपनी बात कहकर वह दीन कठियारा (लकड़हारा) बहुत विलाप करने लगा. तब राजाने कहा—अरे भाई ! ऐसे विलाप क्यों करता है ? तेरे लिये तो केवल तेरा कुटुंबही दुःखी होगा, परन्तु मैं जो इस पृथ्वीका सार्वभौम राजा हूं सो मेरे लिये तो सारा राज्य दुःखी होगा. मेरी रानी और मेरे कुँअर मुझे न देखकर आत्मघात करेंगे, और मेरा राज्य, राजा विना शून्य होजानेके कारण उसमें नानाप्रकारके बड़े २ उत्पात होंगे, परन्तु हे भाई लकड़हारे ! यह सब अर्थात् मेरे पीछेका और तेरे पीछेका सब दुःख वा सुख इस समय अपने पास कुछ नहीं है. यहां तो हम दोनों बराबर हैं; इसवास्ते तू कुछ चिन्ता मत कर. दुःखकी अवस्थामें मनुष्यको एकाएक घबराना नहीं चाहिये, वरन् धीरज रखना चाहिये और आ पड़े दुःखको निवारण करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये और उस प्रयत्नमें सफल होकर दुःखसे मुक्त होनेके लिये दयासिन्धु परमात्माकी स्तुति करके उसकी सहायता मांगना, यही इस समय अपना कर्त्तव्य है. शरण

तो प्रभुकाही सच्चा है. मैं तू और इस जगतके प्राणीमात्रकी गति वही एक परमात्मा हैं. प्राणीगण केवल उसीके नामसेही संसारके मोहमय कठिन बन्धनोंमेंसे छूट जाते हैं; तो इस बन्धनकीभी गति वही परमात्मा है. जब प्राणीजन उसके नामप्रभावसे-स्मरणमात्रसे संसारके मोहमय कठिन बन्धनोंमेंसे मुक्त हो जाते हैं तो फिर यह बन्धन किस गिनतीमें है ? अतः हे भाई ! अब हम दोनोंको, मैं राजा और तू लकड़हारा इस भेदभावको त्यागकर, श्रीभगवान्‌कीही शरण लेना चाहिये. इसप्रकार बातचीत करके वे दोनोंभी विशुद्धभावसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे, तब दयालु परमात्माने संतुष्ट होकर अपनी अगाधशक्तिसे उन दोनोंको संकटमेंसे मुक्त किया !

हे शिष्य ! ईश्वररूप राजा और जीवरूप लकड़हारा दोनोंही एक गुफामें बंद होजाने और अपनी उपाधि-(राजाकी उपाधि चक्रवर्त्ती राज्य और लकड़हारेकी उपाधि उसकी प्यारीसे प्यारी कुल्हाड़ी) रूप राज्य तथा कुल्हाड़ी जहांकी तहां पड़ी रहजानेसे दोनों समान-एकही स्थितिमें आगये और जैसेही दोनों एकमन होकर जगन्नियन्ता परमात्माकी स्तुति करने लगे तब तत्काल मुक्त होगये; क्योंकि उसके आगे तो दोनों समानही हैं-ऊंच वा नीच नहीं है. इसी भांति जीव और ईश्वरकी उपाधियां मिट जानेसे दोनों समान हैं. इसलिये जीव और ईश्वर, अल्प (किंचित्) जाननेवाला जीव और सर्वज्ञ-सर्व जगत्को जाननेवाला ईश्वर, इन दोनोंकी उपाधिसे रहित ऐसा जो ब्रह्मरूप है उसमें ये दोनों समान हैं और ज्ञानीका यही स्वरूप है, ऐसा समझना चाहिये.

सप्तम बिन्दु.

ज्ञानीको सिद्धि प्राप्त होती है ?

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥

अर्थ— योगी, इंद्रियोंको जीतकर, सावधान होकर, प्राणवायुको जब अपने आधीन करता है, और मनको स्थिर करके, मुझमें लीन करता है; तब सब सिद्धियां उस योगीकी सेवामें हाजिर (खड़ी) रहती हैं.

शिष्य— हे स्वामी ! आपके वचनामृतका पान करके मैं कृतकृत्य हुआ हूं. मेरे जैसे पामरको आप समान प्रभुस्वरूप महात्माके चरणोंका परम दुर्लभ आश्रय मिला है, इसलिये मैं अपना अहो भाग्य समझता हूं. हे गुरुदेव! आपके विना मुझ मूढ़मतिके मनके संशयोंका छेदन कौन करे ? हे दयालु ! आपकी कृपासे मैंने यह तो जाना कि ज्ञानीजन साक्षात् परब्रह्मस्वरूप होते हैं, किन्तु उनको किसीभी सिद्धिकी प्राप्ति होती होगी वा नहीं ?

गुरु—हे वत्स ! सिद्धि, यह ऐसा कौनसा अद्भुत पदार्थ है कि जिसे प्राप्त करनेकी ज्ञानी इच्छा करे ? इस जगत्में विशेषता करके, कभी किसीने नहीं देखी हो ऐसी वस्तुको देखना वा अलौकिक कर्म करना, इसीको लोग सिद्धि कहते हैं. जैसे–क्षणभरमें बहुत दूर चले जाना, छोटे शरीरको विशाल और विशालको सूक्ष्मरूप करलेना, दूसरेके मनकी बातको कह देना, आकाशमार्गसे गमन करना, इत्यादि जो साधारण मनुष्योंसे नहीं बन सकें ऐसे कृत्योंके करनेको सिद्धि कहते हैं; परन्तु इनसेभी बढ़कर चमत्कारिक ईश्वरी सिद्धियोंका जगत्में क्या घाटा है ? संसारमें जहां देखो वहांही सिद्धि है. तू देख कि गर्भमें अल्पमात्र बिन्दु गिरा था उस॰

मेंसे यह अपनी इतनी बड़ी साढ़े तीन मनकी काया बन गई, यह क्या बड़ी चमत्कारिक सिद्धि नहीं है ? इसके उपरान्त कैसी सिद्धि चाहिये ? पुनः मल और मूत्रादि कुत्सित पदार्थोंहीसे भरे हुए गर्भस्थानमेंसे परमहंस जैसे ज्ञानी महात्मारूप अमूल्य रत्न तथा शुकदेव, याज्ञवल्क्य, जनक, वसिष्ठ आदिक अगणित महात्माजन उत्पन्न हुए और होते हैं यह कैसी सिद्धि ? आकाशमें देखें तो असंख्य नक्षत्र, तारा, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहगण निराधार (किसीके सहारेविना) स्थिर होरहे हैं तथा गति कर रहे हैं, तोभी ऊपरसे पृथ्वीपर गिरकर अपना चूर्ण नहीं करडालते, यह क्या थोड़ी सिद्धि है ? कईएक पुरुष चार २ और बहुतसे राजा सैंकड़ों स्त्रियां व्याहते हैं तोभी उनके कोई सन्तान नहीं होती, और कितनेही लोगोंके एकही स्त्रीसे दश २ पंद्रह २ और सौ २ (धृतराष्ट्रको एकही स्त्री गांधारीसे सौ कौरव उत्पन्न हुए थे) पुत्र होते हैं यह क्या सिद्धि नहीं है ? ऐसी प्राकृतिक-कुदरती सिद्धियां क्या कम आश्चर्योत्पादक हैं ? परन्तु इनसे किसीको आश्चर्य होता हुआ नहीं दिखाई देता, तो फिर ज्ञानीको ऐसी मिथ्या सिद्धियोंकी क्या आवश्यकता है ? पुनः तू देख कि, प्रत्यक्ष सिद्धियां अपनेही अंगमें विद्यमान हैं. अपनेको क्षुधा तृषा लगती है, अन्न जल खाते पीते हैं, सो गलेसे उतरकर अन्न पेटमें बाईं ओरके नलमें तथा जल दाहिनी ओरके नलमें जुदा २ चला जाता है, वह पचन होता है तव उसमेंसे उत्तम रस बनकर शरीरकी नस २ में फैल जाता है, और निरर्थक पदार्थ मल मूत्र इत्यादिरूप होकर गुदा उपस्थ आदि इंद्रियोंके द्वारा बाहर निकल जाता है. यह क्या महासिद्धि नहीं है ? ऐसी सिद्धियोंको जान लेनेके उपरान्त जो विशुद्ध ज्ञानी पुरुष है उसको इनसे घटिया-हलकी सिद्धियोंमें कैसे प्रेम हो सकता है ? अतएव ऐसी सिद्धियोंका लालच तो ज्ञानी जनोंको होताही नहीं; क्योंकि ज्ञानी पुरुष कामनारहित होते हैं और सिद्धियोंको तो सकाम पुरुष चाहते हैं. ज्ञानी जन कामनाके अनर्थको भलीभांति जानते हैं और उस ओर उनकी चित्तवृत्ति नहीं जाती. जैसे कोई प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ, अपनी सर्व रूपगुणादि सम्पन्न गृहसुंदरीको छोड़कर, महाकुटिल वेश्याके यहां जाकर उसके साथ प्रीति करे, यह जितना अघटित व अनुचित है ऐसाही ज्ञानी जनोंको सिद्धिकी इच्छा होना भी अनुचित है.

अष्टम बिन्दु.

संसारबन्धनमेंसे छूटनेका उपाय.

वेदान्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् ।
तेनात्यन्तिकसंसारदुःखनाशो भवत्यनु ॥
त्यक्त्वाऽहंममताभावं निश्चेष्टो निरुपाधिकः ।
धीरो ज्ञानकुठारेण छिन्ते संसारबन्धनम् ॥

अर्थ— वेदान्तके अर्थका विचार करनेसे उत्तम ज्ञान प्राप्त होता है और इस ज्ञानसे तुरन्त संसारसंबंधी सर्व दुःखोंका नाश होता है. धीर पुरुष अहंता ममताके विचारोंको त्यागकर, उपाधिरहित बनकर कोईभी कर्म नहीं करता और उस ज्ञानरूप कुल्हाडीसे संसारके बन्धनोंको काट डालता है.

शिष्य— भगवतस्वरूप गुरुदेव ! इस आत्माको भया हुवा भ्रांतिकल्पित यह संसारका बंधन किस रीतिसे और कहां जानेसे छूटे ?

गुरु— हे वत्स ! यह संसारबन्धन सद्गुरुके ज्ञानोपदेशसेही छूटता है. और भी, दुसरी किसी जगह न जाते इस देहदेशमें रहनेसेही छूटता है, और आत्मा जीवन्मुक्त होता है. इस विषयमें मैं तुझे एक राजाकी कथा कहता हूं, सो तू श्रवण कर:—

किसी एक नगरका राजा बड़ा पराक्रमी था. उसने अनेक देशान्तरोंमें जाकर, वहांके राजाओंको जीता और वहांसे अनेक प्रकारके रत्न, मणि, माणिक, हिरा इत्यादिक जवाहिर लाकर अपने यहां इकट्ठे किये थे. वह राजा बहुत विलासी था. उसने विलासके लिये एक अति सुन्दर महल बनवाया था. यह महल एकपर एक इसप्रकार चौदह मंजलेका था. उन मंजलोंमें नीचेके भूभागसे लेकर ऊपर शिखरतकके मंजलोंमें अनुक्रमसे एकसे दूसरेमें विशेष, दूसरेसे तीसरेमें विशेष, इसभांति,

अन्य राज्योंको जीतकर लाये हुए रत्न और मणि जड़ा दिये थे. उस महलमें जैसे २ ऊपर चढ़ते जावें वैसे २ मणि-माणिक्यका अधिकाधिक प्रकाश और शोभा दृष्टिगोचर होती थी. वह राजा इस सुन्दर महलमें प्रतिदिन नये २ विलास भोगता था. एक दिन रातके समय ऐसा हुआ कि, उस राजाके शरीरको कुछेक तंद्रा आगई. इस समय धीरे २ उसके पेटमें दर्द होने लगा. परन्तु राजा उसपर कुछ ध्यान न देते अपने विलासभवनमें जाकर सोया. वहां जानेपर उसके पेटमें पहलेसे अधिक दूखने लगा. पहले पहले, मंजिलेपर कुछ चैन न पड़नेसे दूसरे मजलेपर जाकर सोया. वहांभी पेटका दुखना मिटा नहीं. ज्यों २ समय वीतता गया, त्यों २ पेटका दर्द वढ़ताही गया, जिससे वह व्याकुल हुआ, और "यहां हवा वरावर नहीं आती, और कुछ अच्छी नहीं लगती इस कारण चलो ऊपर जा सोवें," ऐसेही विचार करता २ एक २ मजला चढ़ताही गया. निदान वह चौदहवें मजलेपर जाकर छत्रपलँगपर सोया. इस स्थानमें मणिमाणिकोंका सवसे अधिक जड़ाव हुआ था, इसलिये यहांकी शोभाका पार नहीं था. तिसपरभी दीपकोंका प्रकाश चारों ओर झकाझक-देदीप्यमान होरहा था. इस प्रकाश आदिसे तो राजाका चित्त विशेप गभराहटमें पड़ा और पेटकी व्यथाभी वहुत वढ़ गई. राजा वहुत व्याकुल होने लगा. पलँगपर लेटे २ वहुतसी करवटें वदलीं-वहुतेरा तड़पा किन्तु उदरपीड़ा तो मिटीही नहीं. इस दुःखसे चित्त अत्यन्त व्यग्र हुआ तव राजा वहांसे क्रमशः एक-पीछे एक ऐसे सव मजले उतरकर नीचे आया और महलके द्वारपर इधर उधर टहलने लगा. इस समय उसने विचार किया कि, अव तो किसी वैद्यको वुलाना चाहिये. यह विचार करके वैद्यको वुलानेके लिये एक नौकरको आज्ञा देनेवालाही था इतनेमें तो उस महलके दरवाजेके आगे होकर कोई परम पवित्र और रोगीका भला करनेकी इच्छावाला वैद्यराज 'किसीको औषध कराना-लेना है ?' इस प्रकार पुकारते २ निकला. यह पुकार सुनकर राजाने तत्कालही उसको अपने निकट वुलाया और आदरपूर्वक मानके साथ आसनपर विठाकर उसके पाससे पेटकी पीड़ा दूर होनेकी औषधि मांगी. तुरंत वैद्यराजने अपनी झोलीमेंसे एक चमत्कारिक जड़ी निकाली, और वह पानीमें घिसकर राजाके पेटपर लगादी. क्षणभरमें उस वूटीका असर पेटमें पहुँचा तो पेटमें गड़गड़ाहट होने लगा; और राजाको दस्त जानेकी इच्छा

हुई. वहांसे उठकर वह पाखानेमें गया तो उसे ऐसा साफ २ दस्त आया कि जिससे पेटमेंका सब दुःख दूर होगया और उसको बड़ा आनन्द होने लगा. उसकी सब इंद्रियां भी शान्त हुई और सारी रातभर पीड़ासे व्याकुल रहनेके कारण जागता रहा था इस कारण 'इस पाखानेमेंही सोजाँय तो भला;' ऐसी उसके मनमें इच्छा हुई. अहो ! उन सद्वैद्यराजका तथा उनकी जड़ीका कैसा अद्भुत प्रभाव !

हे विचक्षण ! इसी उदाहरणके समान तू इस जीवात्माके संबंधमें भी समझ. यह जो जीव है उसको राजारूप जान, और चौदह मजलोंका उसका महल था तैसेही इस देहको चौदह मजलावाला महल समझ. देहके चौदह मजले इस प्रकार हैं–पांच कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञानेंद्रिय मिलकर दश हुए, और मन, बुद्धि, चित्त, तथा अहंकार ये चार मिलकर सब चौदह हुए. राजाके पेटमें पीड़ा होती थी तैसेही यह जीव भी इस संसाररूपी (कल्पित) बन्धनके महान् दुःखद रोगको प्राप्त हुआ है. वह दुःख अन्य किसी उपायसे नहीं मिटकर, जड़ीबूटी देनेवाले सद्गुरुरूप सद्वैद्यराजकी चमत्कारिक जड़ीरूपी सदुपदेश मिलनेसे ही मिटे. इसके लिये किसी अच्छे, ऊंचे तथा पवित्र स्थलपर जानेकी आवश्यकता नहीं; किन्तु जैसे वैद्यराजकी जड़ीसे चाहे जैसी अच्छी बुरी पवित्र, अपवित्र जगहमें राजाको आनन्द हुआ तैसेही सद्गुरुके उपदेशसे मलमूत्रसे भरे हुए इस देहमेंही आनन्द होता है (आत्मा जीवन्मुक्त होता है), ऐसा जानना.

नवम बिन्दु.

प्रारब्ध और पुरुषार्थ.

पूर्वजन्मकृतं कर्म प्रारब्धमिति चोच्यते ।
पुरुषार्थः परो लोके मोक्षदायी स्मृतः सदा ॥
प्रारब्धं भुज्यमानोऽपि तत्रासक्तो विवेकवित् ।
यतेत सच्चिदानन्दचरणाम्भोजलब्धये ॥ १ ॥

अर्थ—पूर्वजन्ममें कियेहुए जो कर्म हैं उन्हींको प्रारब्ध कहते हैं, और उत्तम पुरुषार्थ इस जगतमें मोक्षकारक है. आत्मा और अनात्माका विवेक जाननेवाले पुरुषको प्रारब्धका उपभोग करते समय भी उसमें नहीं बंधना चाहिये; किन्तु सच्चिदानन्दके चरणकमलोंके लाभके लिये प्रयत्न करना चाहिये.

शिष्य—हे महात्मन् ! संसारके विषे प्राणीमात्रको जो लाभ अलाभ, जय पराजय, सुख दुःख, संसारबन्धन और मुक्ति इत्यादिक प्राप्त होते हैं सो क्या उनके प्रारब्धके अनुसार होते हैं ? किंवा उनके पुरुषार्थद्वारा होते हैं ? अर्थात् जगत्में प्रारब्ध मुख्य है वा पुरुषार्थ ?

गुरु—हे मुमुक्षु ! श्रीकृष्ण परमात्माने गीतामें एक स्थलपर प्रारब्धको मुख्य कहा है; और मनुष्यको लाभ हानि,जय पराजय, सुखदुःख इत्यादि प्रारब्धके अनुसारही मिलते हैं. फिर भगवान्नेही आगे चलकर ऐसा कहा है कि—

" ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया " ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! समस्त प्राणियोंके हृदयप्रदेशमें ईश्वर अन्तर्यामी रहता है; वह जन्ममरणरूप, यंत्रपर चढ़ेहुए सर्व जीवोंको अपनी मायाशक्ति-द्वारा भ्रमण कराता है अर्थात् मनुष्य कुछभी नहीं कर सकता, सब कुछ जो होता है वह ईश्वरकी प्रेरणासेही होता है. महात्मा वसिष्ठ ऋषिने भी पुरुषार्थको मुख्य कहा है. तब यह

विचार होता है कि, क्या परमात्मा श्रीकृष्णके वचन परस्पर विरोध दर्शानेवाले होनेके कारण अमान्य अथवा प्रमाण–शून्य हैं ? नहीं. सर्व अवतारके कारण, सर्वकलासम्पन्न, सर्वज्ञाता, वेद जिसे नेति २ करके पुकारते हैं, और उपनिषद् जिसको ढूंढते हैं उन्ही श्रीकृष्ण परमात्माके वचनोंको अप्रमाण किसीप्रकार नहीं कह सकते. भगवान्‌के कथनका भावार्थ बहुतही गूढ़ है और ये दोनों वाक्य सप्रमाण एवं माननीय हैं. प्रारब्ध तो केवल सूक्ष्म शरीरकोही बँधता है, न कि आत्माको. इसीसे लाभ अलाभ, जय पराजय, तथा सुख दुःख ये सब, प्रारब्धानुसार इस जड़ देहको भोगने पड़ते हैं, न कि आत्माको; क्योंकि आत्मा जड़ देहसे भिन्न है. इसलिये जड़ देहके लिपटे हुए प्रारब्ध कर्म आत्माको लगे हुए नहीं हैं. इसप्रकार इस जगहही प्रारब्ध मुख्य सिद्ध होता है. अब पुरुषार्थ क्या पदार्थ है सो कहते हैं:—" लाभालाभ, जय पराजय, सुख दुःख, ये प्रारब्धानुसारही जड़देहको होते हैं, परन्तु मुझे (आत्माको) नहीं; क्योंकि मैं उससे विरक्त एवम् असंग आत्मा हूं. " इसभांति इस जड़देहसे मैं– (आत्मा) भिन्न हूं ऐसे समझना यह पुरुषार्थ हुआ और आत्मा इस देहके भीतर रहे तबतक, उस सम्बन्धके कारणसे जड़देहके प्रारब्धोंका भोक्ता अपनेको समझता है यह अविद्या है;-किन्तु जब आत्मोका " मैं आत्मा हूं, जड़ नहीं " ऐसा ज्ञान होनेरूप पुरुषार्थ होजाय तब तो—

" ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन । "

इस वचनके अनुसार ज्ञानरूपी अग्निसे सर्व कर्म भस्म होजाते हैं–सब कर्म जल जाते–नष्ट होजाते हैं, और ' सर्वकर्माणि ' इसमें प्रारब्धकाभी समावेश हो जाता है; अतः वे प्रारब्ध (कर्म) भी सब भस्मीभूत होगये तो आत्मा निष्पाप हो गया. यहां पुरुषार्थ मुख्य है.

विचार करके देखा जाय तो प्रारब्ध यह शरीरका होनेसे शरीरके आधारपर है; ऐसेही पुरुषार्थ भी शरीरकेही आधारसे है; क्योंकि यदि शरीर न होता तो, "ये प्रारब्ध शरीरके हैं, मेरे नहीं हैं. मैं तो असंग आत्मा होनेसे शरीररूप नहीं; किन्तु उससे भिन्न हूं." ऐसा मानने–ज्ञान होने-रूप जो पुरुषार्थ है वह कौन करता ? और किसलिये करता ? पंचतत्त्वोंसे बना हुआ शरीर पृथ्वीके आधारसे है, पृथ्वी जलके आधारपर है, जल तेजके आधारसे है, तेज वायुके आधारसे है, वायु आकाशके आधारपर है, आकाश गुणके आधारसे है, गुण प्रकृति–माया–ब्रह्मके आधारसे है. यह माया ब्रह्ममें केवल शश–शृंगवत्–(शशा–खरगोश के सींगके जैसा) है, ऐसा कहना हो

तो केवल कल्पनासेही कह सकते हैं; क्योंकि उसके सींग होतेही नहीं; इसी भांति कल्पना मात्र है! अर्थात् हैंही नहीं, तो फिर प्रारब्ध और पुरुषार्थ कहां रहे? दोनोंमेंसे एकभी मूलमेंही नहीं है तो फिर मुख्य-गौणकी बातही कहां रही? प्रारब्ध और पुरुषार्थ इन दोनोंमेंसे किसीका आत्माके साथ कुछभी सम्बन्ध नहीं है; मात्र आधारभावसे देखा जाय तो ईश्वरेच्छाही मुख्य है. यह शरीर प्रपंच-परिपूर्ण है, इसमें प्रारब्धकी स्थितिही नहीं है. ज्ञातालोग जिसको प्रारब्ध कहते हैं वह अज्ञानियोंके बोधके अर्थ है, और कुछ नहीं है.

दशम बिन्दु.

आधारभूत मायाका स्वरूप.

माया ह्यचेतना वीजधर्मिणी त्रिगुणात्मिका ।
अपूर्व घटनाभिर्या मायिनामपि मोहिनी ॥

अर्थ—जड़, वीज-धर्मवाली और तीनों गुणमय माया यह अपनी अपूर्व घटनाओंसे मायावियोंकोभी मोहित करती है.

शिष्य— हे दयानिधि ! आपने जो आधारभूता मायाका वर्णन किया उसका स्वरूप कैसा है ? सो कृपापूर्वक कहिये.

गुरु— हे वत्स ! जड, दुःखमय, असत् और अघटितघटना-निपुण यह मायाका स्वरूप है. पाषाणादि जड पदार्थोंमें माया जड-अचेतनरूप है. अन्तःकरणमें दुःखरूप है, और शशशृंगवत्, वन्ध्या-पुत्रवत् ('वांझ स्त्रीका पुत्र' यह कहना केवल कल्पनाही है और वह कल्पना मिथ्या है) इत्यादि कहनेमें माया असत्-रूप है तथापि मायाका यथार्थ रीतिसे वर्णन करके उसका स्वरूप नहीं कहा जासकता; क्योंकि इसको सत्या, तुच्छा, असत्या भी कहते हैं, यदि इस (माया) को सर्व जगत्के आविर्भावका कारणरूप माना जाय तो यह सत् अर्थात् सत्या है, और उसे लेकर वह सारे जगत्सहित सर्व ब्रह्ममें कल्पित है ऐसा मानें तो वह असत् झूंठी ठहरती है; इसकारण इसे सत्या कहने लगते हैं तो असत्या वन वैठती है और असत्य कहा जाय तो सत्या दिखाई देती है. पुनः ज्ञानियोंके मन माया तुच्छरूप है. स्वस्वरूपकी विस्मृतिसे, बुद्धिदोषद्वारा जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने प्रियतमको खैंचकर ले जाती और लिपट जाती है, ऐसेही विद्वान्को भी विषयाभिमुख देखतेही यह माया विक्षेप करती है. यह माया, जो प्राज्ञ होकरभी पराङ्मुख हैं उनको आवरण कर देती है. और चित्तको जो अनुभव होता है, उस अनुभवके स्थानमें रागको धरना यही मायाका लक्षण-स्वरूप है. रूप २ में वह प्रतिरूप है. उसका यथार्थ रूप वर्णन नहीं किया जासकता, इसीसे वह अनिर्वचनीय भी कही है.

एकादश विन्दु.

ज्ञानी ब्रह्मस्वरूप कैसे ?

चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्ष्यमशनं पानं सरिद्वारिषु
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशा स्थितिरभीर्निद्रा श्मशाने वने ।
वस्त्रं क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्ति शय्या मही
संचारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥ १ ॥

अर्थ— ज्ञानी पुरुष चिन्तारहित और उदारतावाली भिक्षाका भोजन करते हैं; नदीके जलका पान करते हैं; स्वतंत्रतासे निरंकुश होकर निर्भयरीतिसे जीवन व्यतीत करते हैं; श्मशानमें अथवा वनमें निद्रा लेते हैं; जिसको धोना भी न पड़े और सुखानाभी न पड़े ऐसे दिगम्बर–दिशाओंरूप वस्त्रको पहनते हैं, पृथ्वीपर शयन करते हैं, उपनिषद्रूप गलियोंमें फिरा करते हैं और परब्रह्मके साथ क्रीड़ा करते हैं.

शिष्यः—हे स्वामिन् ! ज्ञानी पुरुष भगवत्स्वरूपका परिपूर्ण ज्ञान होनेसे साक्षात् ब्रह्मरूपही होते हैं ऐसा आप पहले कथन कर चुके हैं. परन्तु ब्रह्मका स्वरूप तो निराकार, निरवयव और सच्चिदानंद वर्णन किया है तथा ज्ञानीके तो शरीर है, अवयव हैं, खानपानादिक कर्म हैं तो ऐसा होनेसे उसको ब्रह्मस्वरूप कैसे कह सकते हैं ?

गुरु— हे पुत्र ! इन सन्त पुरुष ज्ञानी जनोंका शरीर स्थूलदृष्टिसे देखनेमें आता है. यह सच है, किन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेसे ऐसा नहीं है. यह जो स्थूलदृष्टिसे दिखाई देता है और जो स्थितिमान् है सो तो केवल दग्धपटवत् (जलेहुए वस्त्रके समान) है. जैसे जला हुआ वस्त्र केवल देखने मात्रका है अर्थात् उसे न तो ओढ़ सकते हैं, न पहन सकते हैं; ऐसेही यह (ज्ञानियोंका शरीर) केवल देखनेही होता है; और इसभांतिसे देखने मात्रभी उत्पन्न हुई स्थितिको प्राप्त होकर रहनेका कारण इतना ही है कि वह (साधुजनोंका

शरीर) मुमुक्षुओंको पुण्यका और द्वेषियोंको पापका फल भुगानेके लिये उत्पन्न हुआ है तथा स्थित रहा है. उससे मुमुक्षुओंको सुख एवं द्वेषियोंको परम दुःख होता है. श्रीकृष्ण भगवान्का देह जो मनुष्य-लोकमें उत्पन्न हुआ सो केवल साधु महात्माओंके पुण्यसे और कंस, दुर्योधन, कालयवन इत्यादि दुष्टोंके पापसे हुआ था. उनसे द्रौपदी, पांडव इत्यादि सर्व साधुजनोंकी रक्षा हुई थी और कंसादि पापी जन कालके शरण हुए थे. ज्ञानीको वर्ण आश्रम आदि कुछभी नहीं है. वह बाह्य पदार्थोंमें अप्रीतिमान् रहकर इस शरीररूपी विमानमें स्थित होकर जैसे परेच्छासे आये हुए विषयका बालक भोग करता है, वैसेही भोगता है. वह चाहे दिगम्बर रहे चाहे साम्बर रहे, वल्कल वेष्टित रहे चाहे उन्मत्तकी भांति रहे, बालककी नाईं रहे चाहे पिशाचकी नाईं रहे, संगमें रहे चाहे असंगी रहे, वह तो अपनेही स्वरूपमें तृप्त रहकर निष्कामतासे विषय भोगता है. वह अशरीरी है और उसको सुख दुःख, प्रिय अप्रिय कुछभी बाधा नहीं कर सकता. वह अभिमानरहित है; क्योंकि अभिमान तो स्थूलसे संबंध रखनेवालोंको है; परन्तु जिसने समस्त बन्धनोंको तोड़ डाला है वह तो ब्रह्मस्वरूपही है. मुक्त पुरुषोंका देह प्रारब्धकर्मकी वासनाका फल है और इसीसे वह संसारकी नाईं विचरता है; किन्तु वह संकल्प-विकल्पसे रहित होकर केवल साक्षीरूपही है. इसप्रकारका ब्रह्मस्वरूप ज्ञानी पुरुष, ब्रह्मस्वरूप क्यों कर न हो सके ?

द्वादश बिन्दु.

नित्यनैमित्तिक कर्म करनेकी आवश्यकता.

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्धयति ॥ १ ॥

अर्थ—अन्य साधन अर्थात् भक्ति आदि कर्मरूप साधनोंसे अंतःकरणका मल-विक्षेप आदि दोषोंकी निवृत्ति होती है, पर उनकी अपेक्षा ज्ञानही एक मोक्षका साधन है. अग्नि विना जैसे पाककी सिद्धि नहीं होती तैसेही ज्ञान विना मोक्षकी सिद्धि नहीं होसकती.

शिष्य— हे दयानिधे! इस संसारमें मनुष्योंके शिरपर कर्तव्यरूप नित्य और नैमित्तिक ये दो प्रकारके कर्म हैं सो किसलिये हैं? ज्ञानीको प्रतिदिन इनके परिश्रम किसलिये करना चाहिये?

शिष्यके ऐसे वचनोंको सुन करके गुरुको अत्यन्त हँसी आई. गुरुने विचार किया कि; यह गृहस्थाश्रमी है तोभी इसको कर्मोंसे अरुचि-ग्लानि होगई है. यदि यह ज्ञानी होनेसे पहले ही प्रमादवश कर्मोंका परित्याग कर-देगा तो निश्चय गोते खायगा; क्योंकि गृहस्थको अपने २ वर्णाश्रम धर्मके अनुसार कर्मोंको अवश्यमेव करना चाहिये. और वे कर्म तो ज्ञानगिरि (ज्ञानरूपी पर्वत) पर चढ़नेकी पहली पैड़ी है. इसलिये दया करके शिष्यको इसभांति कहने लगे कि "हे वत्स! आज तूने यह क्या पूछा? क्या तुझको कर्मोंपर अभीसे अनास्था होने लगी है? ज्ञानीजन अपनेतईं संपूर्ण तत्त्वज्ञानका लाभ हो जानेके पश्चात् किसी कर्मको नहीं करते हुए देखे जाते हैं. तो क्या वे कर्मपर अनास्था होनेके कारण उसे छोड़ देते हैं? नहीं, यों नहीं है. वे तो नित्य नैमित्तिक कर्मोंको अहर्निश करते रहकर, आत्मज्ञानका श्रवण, मनन और निदिध्यासन किया

करते हैं. इसभांति करते २ जब पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है तब ये कर्म अपने आपही छूट जाते हैं; वे कुछ छोड़नेसे नहीं छूटते. ज्ञानी जन अना-स्थासे अथवा ये कर्म वृथा हैं वा बन्धनकारक हैं ऐसा मानकर अधबीचमें इन कर्मोंको परित्याग नहीं कर देते. इस तेरे प्रश्न जैसाही प्रश्न पहले किसी महात्माको उसके शिष्यने पूछा था, तब उन्होंने उसका प्रत्युत्तर वाणीसे नहीं कह सुनाया किंतु प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध कर बताया. वह वृत्तान्त मुझे स्मरण है सो तुझे कह सुनाता हूं, तू चित्त देकर उसे श्रवण कर.

तरणतारिणी, पतितपावनी, भागीरथीके पवित्र तटपरके एक अति रम्य आश्रममें वह महात्मा रहते थे. वहांसे कितनीही दूरपर विष्णुपत्तन नामक एक नगर था. उसमें उनका कोई एक गृहस्थाश्रमी शिष्य रहा करता था. वह प्रतिदिन अपने व्यावहारिक कार्यमेंसे अमुक समय तकका अवकाश लेकर उस महात्माके आश्रमको ज्ञानप्राप्तिके लिये जाता था. प्रातःकाल ज्योंही वह उठता त्योंही शौच, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्या आदि अपने नित्य आह्निक कर्म कर चुकनेके अनन्तर उस महात्मा गुरुके आश्रमको जाता था. वहां आतेही गुरुदेवको दण्डवन्नमस्कार करके अपने हाथमें बुहारी (झाडू) लेता और सारे मठ (आश्रम) मेंसे कचरा निकाल डालता, तब आश्रमके द्वारआगे तथा आसपास सब जगह झाड़ बुहारकर सब साफ करता. फिर गोमय, मृत्तिका आदि पानीमें मिलाकर मठ (पर्णकुटी) के चारों ओर सड़ा* डालता. तदनन्तर मठके द्वारपर खड़िया मिट्टी अथवा और कोई श्वेत वस्तु–सफेद पत्थरके बारीक–महीन चूर्णसे, कभी षड्दल†, कभी अष्टदल+, कभी षोडशदल‡, इस प्रकार कमल× चिह्न बनाता. इसके पश्चात् गंगाजीमेंसे जल लाकर

---

* सड़ा डालनेकी प्रथा दक्षिणी लोगोंमें अबतक जारी है. गोबर और मिट्टीको पानीमें मिलाकर द्वारके आगे छिड़कते हैं और उसको बोथरे (बड़े झाडू) से एकसा कर देते हैं. तो वह वहां (भूमिपर) पतले २ लीपन जैसाही हो जाता है. इसको सड़ा डालना कहते हैं.

† छः पखडीवाला + आठ पखड़ीवाला. ‡ सोलह पखड़ीवाला. × ये कमलचिह्न गृह-स्थके घरके द्वारपर बहुत मंगलकारक हैं; और महात्मा ज्ञानीजनोंने देहके अन्तर्गत जो भिन्न २ कमलस्थान कहे हैं और उनमें देहके देवताओंके स्थान कल्पना किये हैं, उनमें परमात्माका हृदयस्थानका चिह्न कमल है अर्थात् ब्रह्मलिंग (ब्रह्मचिह्न) यह कमल है.

आश्रमके चारों ओर लगे हुए झाड़, गुल्म, लता, तुलसीके वृन्द इत्यादिको *सिंचन करता, फूले हुए पुष्पों तथा तुलसीकी मंजरी आदिको वीन करके और चन्दन घिसकरके तयार कर लेता, तब गुरुजीके पास जाता और उनके चरण प्रक्षालन करके, चंदन पुष्प आदिसे उनका अर्चन करता था. फिर उनके पास बैठकर उसको जो कोई शंका होती तो गुरुको पूछता था, और समाधान होनेपर गुरुकी आज्ञा लेकर समयपर अपने घरको चला जाता था.

एक दिन उसने अपने नित्य नियमके अनुसार सब काम कर चुकनेके अनन्तर गुरुके निकट बैठकर ऊपरका प्रश्न पूछा. महात्मा गुरुने विचार किया कि इसको इस प्रश्नका केवल मुखसे उत्तर देना ठीक नहीं. यह विचक्षण है, सो समझ तो जायगा किन्तु उत्तर मात्रहीसे इसकी कर्मपर हुई अनास्था मिटनेवाली नहीं; इसकारण यदि किसी नवीन युक्तिद्वारा यह दृष्टान्त इसको योग्य रीतिसे समझाया जाय तो इसके मनका पूरा २ समाधान होगा. ऐसा सोच विचारकर उन्होंने उस समय उसको केवल इतनाही कहा कि "हे वत्स ! जो कि ये नित्य नैमित्तिक कर्म परमहंस ज्ञानीके किसी उपयोगके नहीं; तिसपरभी गृहस्थाश्रमीके वे कितने अधिक आवश्यक हैं सो तुझे अल्पकाल पीछे अपने आपही विदित हो जायँगे."

दूसरे दिन प्रातःकालमें ज्योंही शिष्य आश्रममें गया और बुहारी हाथमें उठाई, तब तत्काल गुरु हाथमें दंड कमंडलु लेकर उठ खड़े हुए. उन्होंने पर्णकुटीके द्वार पर, आकर शिष्यको कहा—" हे पुत्र ! आज मेरी यह इच्छा है कि गंगातटपर जहां सर्व ऋषि मुनि मिलकर अपने आह्निक कर्म करते हैं, वहीं अपनेकोभी स्नानको जाना चाहिये. इसी मिष—बहानेसे अपनेको वहांपर बहुतसे महात्माओंके दर्शनभी होंगे. और पतितपावनी गंगाके स्नान भी होंगे. अतएव, तू इस बुहारीको रखदे और मेरा कटिवस्त्र लेकर मेरे साथ चल." यह सुन कर शिष्यने तुरन्त वस्त्र बगलमें दबा लिया, और गुरु चेला दोनों जान्हवीतटकी ओर चले. वहां जाकर गंगास्नान करनेके अनन्तर तर्पणादि कृत्य करके गुरु शिष्य दोनों महात्मा ऋषिगणोंके दर्शन करने गये. वहां जाकर देखते हैं तो कोई ऋषि तो बैठा २ सन्ध्याही कर रहा है, कोई तर्पण कर रहा है, किसीने प्राणायाम करके समाधि चढ़ाई है, कोई अपने ब्रह्म-

* पानी डालता.

रंध्रमें परमात्माका ध्यान करता है; कोई वेदोच्चारके साथ ब्रह्मयज्ञ करते हैं, कोई खड़े होकर दोनों हाथ ऊंचे करके सूर्यदेवका महोपस्थान कर रहे हैं, कोई गौमुखीमें हाथ डालकर एकाग्र चित्तसे गायत्रीमंत्रका जप कर रहे हैं; इसप्रकार नानाभांतिसे प्रभुपरायण ऋषिगण भगवान्में निमग्न हो रहे हैं. उनके दर्शन करते २ गुरु और शिष्य चले जा रहे हैं. उससमय सूर्यनारायण बहुत ऊपर चढ़े हैं ऐसा देखकर गुरुने शिष्यको कहा– "हे शिष्य! अब तेरा घर जानेका समय बीत गया है और पीछे आश्रमको जावेंगे तबतक बहुत विलंब होजायगा, इसलिये अब तू यहींसे परबाहर नगरको जा." ऐसी गुरुकी आज्ञा होनेसे उसने गुरुको तुरन्त नमस्कार किया और घरको चलता हुआ.

दूसरे दिन शिष्य सवेरेही नित्य नियमके अनुसार आश्रमको आया. इस समयभी गुरु उसकी राह देखते हुए आश्रमके बाहर आकर तैयार खड़े थे. शिष्यको आता देखकर गुरुने कहा–" हे वत्स! आज तो मैंने सुना है कि, सामनेवाले त्रिवेणी घाटपरके आश्रमें कोई ब्रह्मनिष्ठ महात्मा पुरुष, किसी देशान्तरसे पधारे हैं, वे साक्षात् परमहंस मूर्ति हैं. अतएव, उनके दर्शनका अलभ्य लाभ लेनेकी अति उत्कंठा होनेसे मैं तेरा आनेका मार्ग देख रहा था. चलो, आपन तुरन्त वहां चलें." ऐसे गुरुवचन श्रवण करके शिष्यने उनको प्रणाम किया और आश्रममें न जाते, दोनोंभी त्रिवेणीकी ओर चले. थोड़ी देरमें उस महात्माको उतारनेके–ठहरनेकी जगहके समीप जा पहुँचे. उस आश्रमके चारोंओर लगे हुए सुन्दर वृक्ष लता गुल्म आदिकी शोभा देखकर परम हर्षित हुए और आश्रमके भीतर गये. वहां अनेक मुनिजन, विद्वज्जन और मुमुक्षु पुरुषोंसे घिरेहुए वे महात्मा विराजमान थे. उनको इन दोनों गुरुशिष्योंने अपनी २ योग्यतानुसार नमस्कार किया. तदनन्तर सबके साथ वे सभामें बैठे. जहां ऐसी महामुनिजनोंकी मंडली हो वहांका क्या पूछना ? जिज्ञासुजन अपनी अनेक प्रकारकी शंकाओंका समाधान कर लेनेके लिये भिन्न २ प्रश्न कर रहे हैं, और संतोषजनक उत्तरोंको सुन २ करके मनका समाधान होनेसे श्रोताजन हर्षित होरहे हैं. पुनः विद्वान्, धर्मशास्त्र, उपनिषद्, सांख्य, योग, मीमांसा, वैशेषिक, पुराणादिकका रहस्य तथा इन भिन्न २ शास्त्रोंके आशयका वर्णन करते हैं जिसे सुनकर "वे सर्व सिद्धान्त जो देखने मात्रमें जुदे हैं तथापि सबके सब वेदान्तप्रतिपादित परमात्माको दर्शानेवाली हैं; क्योंकि वे सब मिलकर

वेदके रहस्यको यथार्थ सिद्ध करते हैं. अर्थात् वे सब शास्त्र वेदके अंग हैं, और उन समस्त अंगोंसेही परमात्माका यथार्थ ज्ञान हो सकता है" इत्यादि वचनोंसे वे महात्मा सर्व विद्वानोंका समाधान करते हैं. इस प्रकार वहांपर साक्षात् ब्रह्मानन्दरस प्रकट वह रहा था. यह लीला देखकर वे दोनों गुरु शिष्य आनन्दसागरमें निमग्न होगये, और बड़ी देरतक वहीं बैठेही रह गये. एककेभी मनमें उठनेका नहीं आया !

कुछ देरमें जब सभा विसर्जन हुई तब सबके साथ वे दोनों गुरु-शिष्यभी उन महात्माको नमस्कार करके वहांसे विदा हुए. त्रिवेणी-घाटके आश्रमके बाहर मार्गपर सघन वृक्ष छाये हुए थे उनके नीचे होकर एक विशाल मैदानमें पहुँचते थे. जब वे दोनों उस मैदानमें पहुँचे तब बराबर मध्यान्ह हो चुका था. गुरु शिष्य उन महात्माकी प्रशंसा करते २ शीघ्र २ चले जारहे थे. नित्य घर जानेका जो समय था वह तो कभीका बीत चुका था, और क्षुधा भी कड़कड़ाटसे लगी थी, चलनेकी शक्ति बिलकुल नहीं रही थी; इस लिये शिष्यने तो मार्गमेंही गुरुसे विदा मांगी और अपने घरका मार्ग लिया. गुरुका तो यही अपेक्षित था. जब शिष्य नगरकी ओर चला गया तब गुरु पासके एक उपवनमें गये और वहांसे वनफल लेकर आश्रमको गये.

दूसरे दिन अपने सदाके नियमके अनुसार किन्तु बहुत विलम्ब (अति-काल) से ढीले पांवसे मंद २ चलता हुआ वही शिष्य आश्रमके निकट आया. उस समय गुरुजी अपना कमंडलु लेकर गंगापर जल भरनेके लिये जाते थे. आश्रमके बाहर उसको सामने मिले. उन्होंने उसको आज, और दिनोंकी अपेक्षा केवल उदासीन और निस्तेज देखा; जिससे चकित होकर समाचार पूछने लगे:-"बचा ! तू आज ऐसा शिथिल (सुस्त) क्यों है ?" शिष्य हाथ जोड़-कर धीमे स्वरसे बोला:-" महाराज ! कल्ह भोजनका समय बीत गया था-अतिकाल होगया था, सो जब मैं घर जाकर जीमनेको बैठा तो भूख मर गई थी, मस्तक दुखता था, इससे मैं यथोचित भोजन नहीं कर सका. थकावट और भूख इन दोनोंका कष्ट एक साथ होनेसे रातको मुझे बड़ी जोरसे ज्वर चढ़ा था, जिससे शरीर अशक्त होगया है, और चलनेकी शक्ति बिलकुल नहीं रही. " यह सुनकर गुरु तुरन्त मार्गके पाससेही एक वनस्पति तोड़कर ले आये और शिष्यको देकर बोले-" तू इसका रस निकालकर, तीन

दिन पर्यन्त उसका सेवन करना (पीना) इससे तेरी ज्वरादि सर्व व्याधि शान्त होजायगी. शरीरमें जबतक ज्वरका अंश हो तबतक तू बिलकुल स्नान मत करना. " औषधि लेकर शिष्य तो परवाहरही-(वाला वाला) विदा हुआ. इस वनस्पतिके सेवनसे शरीर तो स्वस्थ हुआ; किन्तु, चार दिनतक स्नान नहीं करनेके कारण वह बहुत मलीन और निस्तेज दिखाई देने लगा. शरीरपर मैला जम गया था, पसीना भी शरीरपर सूख जानेसे दुर्गन्ध आती थी, और अंगपर मक्खियां भिनभिनाने लगतीं थीं. जब मूलमें स्नानही नहीं हुआ तो सन्ध्या तर्पण, वैश्वदेव इत्यादिक कर्म तो क्योंकर और कहांसे हों ? इसभांति कर्मोंका लोप होनेसे उसका मनभी व्यग्र-अस्वस्थ होगया था, जिससे उसे बहुत ग्लानि उत्पन्न हुई और उतावला २ वह स्नान करनेकी आज्ञा लेनेको गुरुजीके पास आया.

जब वह आश्रममें घुसने लगा तो वहांभी-सर्वत्र विलक्षण और निस्तेज देखा, वह जैसे २ आगे बढ़ता गया तैसे २ उसको ग्लानि भी बढ़ती गई और भीतर जानेका मन नहीं हुआ. वहां वह क्या देखता है कि जहांतहां कचरेके ढेर लगे हुए हैं, फूलवाले झाड़ों तथा फलवाले वृक्षोंकी क्यारियां सूख गईं थीं, उनपर झाड़ोंके गिरेहुए सूखे पत्तों और जानवरोंकी विष्ठाका ढेर लगगया था. कईदिनोंसे पानी न मिलनेके कारण कितनेही कोमल पौधे तो बिलकुल मुरझा गये थे. प्रतिदिन बीन न लिये जानेके कारण खिले हुए पुष्प भी कुम्हलाकर नीचे गिर गये थे, तथा बहुतसे ऊपरके ऊपरही सूख गये थे. तुलसीके वृन्द जल न मिलनेके कारण सूख जानेकी तैयारीमें होनेसे पीले पड़ गये थे, मार्गमें और वृक्षोंके पिंडपर ऊदके पटपड़ जम गये थे. झाड़ोंपर तथा पौधोंपर जहांतहां, मकड़ियोंके जाले तननेका आरंभ होनेसे तारके तार-तंतु फैल रहे थे. और मार्गमें तथा क्यारियोंमें चूहों और चीटियोंने अपने रहनेके घर-दर बना दिये थे. यह सब देखकर मनमें बहुत खिन्न होता हुआ वह आश्रममें और आगे बढ़ा. वहांभी सर्वत्र कचरा पड़ा हुआ था, आंगनका लीपन उखड़ा हुआ था, और चारों ओर जाले जम रहे थे, इस भांति सारे आश्रमकी अव्यवस्था-दुर्दशा हो गयी थी.

इस सबको देखकर बड़ा दुःखी होता हुआ वह मठमें गया. सन्मुखही गुरु महाराज बैठे २ परमात्माका भजन करते थे. पहले उसने उनको

दंडवन्नमस्कार किया; किन्तु अपने शरीर आदिके समाचार उन्हें कहनेका बंद रखकर उसने तत्काल अपने हाथमें बोवरा* लिया. यह देख कर गुरुने पूछा "बेटा ! तू इसको क्या करेगा ?" उसने कहा "कचरा निकालूंगा." गुरुने कहा:-"भाई ! नित्यप्रति यह रगड़ा झगड़ा किस लिये करना चाहिये? रहने दे." यह सुनकर वह कुछेक मनमें अकुलाकर बोला:— "आश्चर्य जैसी बात है कि यह मठ तथा सारा आश्रम, जहां क्षणभरभी खड़ा रहनेकी इच्छा न हो ऐसा तो मलिन-खराब हो गया है तिसपरभी आप मुझे रोकते हो." गुरुने जान लिया कि अब यह अपने मनमें यह बात समझ गया है कि प्रतिदिन झाड़ बुहार न करनेसे आश्रमकी ऐसी दशा होगई है, तथापि इस बातको दृढ़ करनेके लिये पूछा कि:-"आजसे चार पांच दिन पहले जब हम दोनों जन गंगास्नान करनेको गये थे तब तो आश्रम बहुत सुन्दर दिखाई देता था, और आज ऐसा कैसे होगया ? यह तो ठीक, किन्तु तेरे शरीरकी अब क्या दशा है ? ज्वर तो उतर गया ? यह सुनकर वह बोला:-"जैसी आश्रमकी स्थिति है वैसीही, परंच उससे अधिक बुरी दशा मेरे इस स्थूल शरीरकी है; क्योंकि चार दिन हुए, स्नानभी नहीं हुआ, सन्ध्यातर्पणादि नित्यान्हिक कर्मोंका लोप होगया है, सारा शरीर बास मारता है, मन मानों भ्रमित और मलिन सदृश होगया है, तथा सब तरहसे सारा अंग शिलासमान भारी लगता है. पुनः, आगे तो मैं ब्राह्ममुहूर्तमें† उठकर स्नान संध्या करके सूर्योदयके पहले सब कामोंसे निवृत्त हो जाताथा, जिससे मनभी बड़ा मगन और प्रफुल्लित रहता था, तैसेही तत्त्वज्ञान सुननेके लिये भी अधिकाधिक प्रीति उत्पन्न होती थी, तथा प्रभातमें श्रवण की हुई कथाओंका मनन करनेसे नाना प्रकारके तर्क वितर्क और शंकाएं उत्पन्न होती थीं, उनका समाधान करानेके लिये मैं बड़े उत्साहसे यहां आता था, परन्तु आज तो सब, इससे उलटाही हुआ है. सोभी, इस आश्रमकी स्थिति देखकर तो मेरा अन्तःकरण बहुतही व्यग्र हुआ है; अतएव, आप कृपा करके आज्ञा दीजिये तो मैं इस आश्रमको पहलेकी भांति झाड़ बुहार कर घर जाऊं और स्नानमर्दनादिसे शरीरको भी स्वच्छ करके पुनः नित्यकार्यमें प्रवृत्त होऊं ?" गुरु बोले:-हरिहरि ! फिरभी तू इस व्यर्थ धंधकूटमें क्यों फँसता है?

---

* रस्ता वगैरमें बहुत पड़ा हुआ कचरा निकालनेका मजबूत झाड़ू. † पिछली चार घड़ी रातको.

अरे ! तेरे लिये अब नित्यकृत्य क्या और स्वच्छताका काम क्या है ? क्योंकि तू तो अब जीवन्मुक्त होगया है. पांचेक दिन पहले तूने पूछा था कि, इस नित्यकृत्यका जगञ्जाल प्रतिदिन किसलिये करना चाहिये ? अस्तु, अब यह बोधरा तो नीचे रख दे और ब्रह्मवार्त्ता कर. यह सुनकर शिष्य गुरुके वचनोंका भावार्थ समझ गया और एकदम दौड़कर बोधरा नीचे फेंककर उनके चरणारविन्दमें पड़कर कहने लगा—आपके प्रभावको धन्य है. अहो ! मेरी शंकाका समाधान इस रीतिसे आप विना कौन करे ? हे देव ! मैं अब आपके शरण आया हूं. इस दुस्तर भव (संसार) के बन्धनोंसे मुझे मुक्त करनेवाला आपके सिवाय और कोई नहीं; अतएव मैं सर्वदा आपहीके शरण हूं " इस भांति स्तुति करता हुआ नीचेही दंडवत् पड़ा रहा.

तदनन्तर गुरुने उसका हाथ पकड़कर उसे उठाकर बैठा लिया और हृदयसे लगाकर आश्वासनयुक्त प्रशंसा करके पूछा:—"हे वत्स ! अब तेरी शंकाका समाधान हुआ ? नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी गृहस्थाश्रमीको कितनी भारी आवश्यकता है सो तेरी समझमें आया, यह ठीक हुआ. जिसभांति झाड़ पोंछ, लीपछाप, साफसूफ आदि नित्यकृत्य विना आश्रमकी विलक्षण स्थिति होगई; इसी रीतिसे स्नान सन्ध्यादि नित्यकर्म विना तेरे शरीरकी स्थितिभी विलक्षण होगई है; अतएव हे शिष्य ! जबतक संसारकी प्रत्येक वस्तुपरसे आसक्ति न उठ जाय, जहांतक आत्माका यथार्थ स्वरूप जाननेमें न आजाय, जबलग आयाससे वा अनायाससे (जानबूझकर वा विना जाने समझे) होजानेवाले पातक न विलाय जाँय, तबतक नित्यकर्म गृहस्थके पीछे लगे ही हुए हैं. गृहस्थलोग प्रतिदिन पांच हिंसा* करते हैं उस दोषके निवारणार्थ द्विजवर्गको नित्य २ वैश्वदेवादि पंचमहायज्ञ करने पड़ते हैं. जो, ये पंचमहायज्ञ नित्य न किये जाँय तो आश्रममें जैसे कचरा इकट्ठा होकर उसके नष्टभ्रष्ट होनेका समय आया, वैसेही, ये पाप मनआदिक इन्द्रियोंको मलिन और व्यग्र करके मनुष्यको ब्रह्मज्ञानमेंसे पीछे हटा देते हैं अर्थात् परब्रह्मसम्बन्धी उत्तम ज्ञानके विचारोंको—मनमें नहीं

* मूसल, चक्की, झाडू, पानी धरनेका स्थान और चूल्हा इन पांच पदार्थोंका उपयोग करनेसे नानाप्रकारके जन्तुओंकी हिंसा होती है, उसका पाप गृहस्थको लगता है, उसको शास्त्रमें 'पञ्चसूनाजनित' दोष कहते हैं.

ठहरने देते. वेदके तीन विभाग हैं:–१ कर्मकांड, २ उपासनाकांड और ३ ज्ञानकांड. कई एक मुनि तो कर्मकांडकोही मुख्य गिनते हैं; क्योंकि, कर्ममें प्रवृत्त होनेसे उपासना (भक्ति) में दृढता आती है, उपासनासे मन संस्कारवाला और पवित्र होनेपर उसमेंसे ज्ञान उत्पन्न होता है, तथा वह ज्ञान श्रवण, मनन, और निदिध्यासनसे सुदृढ होता है तवही वह स्थिर होता है. इसप्रकार सीढ़ी २–पैड़ी २ चढ़नेसे ज्ञानरूप मेरुके शिखरपर विराजमान हुए परमात्माकी भेंट होती है, और इसीमें लीन हो जानेसे द्वैतभाव मिटकर अद्वैतभाव स्थिर होता है. ज्ञानी जनोंको अज्ञानावस्थामेंही द्वैत भासमान होता है और भिन्नता देखनेमें आती है; परन्तु पूर्ण ज्ञान प्राप्त होतेही किंचिन्मात्रभी भेद देखनेमें नहीं आता. ज्ञान–शुद्ध प्रेमज्ञान होनेके पश्चात्, ज्ञानी कर्म तथा अकर्मको समानही देखता है. कारण यह कि, कार्य सहित अज्ञान निवृत्त होजानेसे उसको द्वैत प्रतीत नहीं होता. परन्तु इससे ऐसा न समझना कि मात्र कर्मकांडकोही पकड़े बैठे रहना. जिसभांति दूधमें घी रहता है वैसेही कर्मकांडमें परमात्माका तत्त्व समाया हुवा है; किन्तु जैसे दूधसे दही और दहीमेंसे मक्खन, और मक्खनको तपानेसे घी होता है वैसेही * कर्मसे भक्ति, भक्तिसे ज्ञान और ज्ञानसे परमात्माकी प्राप्ती होती है. पुनः जैसे शरीरको आरोग्य करनेके लिये वैद्य प्रथम रेचक देकर शरीरको शुद्ध करता है, तदनन्तर क्काथादि देकर रोगकी जड़को नष्ट करदेता है और तिस पीछे शक्तिका औषध देता है. इसी प्रकार परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये पहेले कर्म और तिस पीछे उपासना करनी चाहिये जिससे अन्तमें ज्ञान प्राप्त होता है. इस रीतिसे कर्म कितने उपयोगी हैं सो तू इस दृष्टान्तपरहीसे समझ ले. ये कर्म (नित्य और नैमित्तिक) अपनी इच्छासे नहीं छोड़ दिये जाते, परन्तु समय आनेपर आपही छूट जाते हैं. जैसे दूधका दही होजाता है तब उसमें दूधका भाव नहीं रहता, और दहीका मथन कर मक्खन निकाल लेनेपर दही नहीं रहता, और मक्खनको खूब तपा लेनेसे मक्खनपना लय होजाता–नहीं रहता है. ऐसेही कर्म उपासना आदि एकके पीछे एकमें लय होते चले जाते हैं.

* कोई ऐसाभी कहते हैं कि–कर्मसे भक्ति, भक्तिसे ज्ञान, ज्ञानसे फिर भक्ति और भक्तिसे परमात्माकी शुद्ध ज्ञानभक्ति पैदा होती है, वही भक्ति आनंद देनेवाली है.

और अन्तमें परमात्माके स्वरूपका दर्शन होनेसे ज्ञानभी अविनाशी एकरस ब्रह्मरूप हो जाता है, यही निश्चय जानना.

ऐसा महाज्ञान श्रवण करनेसे परम आनन्दको पाकर, गुरुचरणोंमें वारंवार दंडवत् प्रणाम करके शिष्य अपने नित्य कर्ममें प्रवृत्त हुआ और आश्रमको झाड पोंछकर फिर पहले जैसा था वैसाही स्वच्छ किया, तब गुरुकी आज्ञा लेकर वह अपने घरको गया. पहले गुरुने जिज्ञासुको संबोधन करके कहा—" हे वत्स ! इसपरसे नित्यनैमित्तककर्मोंकी कितनी आवश्यकता है—वे कितने लाभकारी हैं, सो तू भलीभांति समझ गया होगा. "

त्रयोदश बिन्दु.

मनुष्य-परीक्षा.

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्य ते श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा॥

अर्थ—जिस भांतिसे कसोटीपर घिसना, काटना, रेती लगाना; अग्निमें तपाना और हथोड़ेसे पीटना इन चारों प्रकारोंसे सुवर्णकी परीक्षा होती है. ऐसेही शास्त्राभ्याससे, स्वभावसे कुल (खानदान) परसे तथा कार्यपरसे-चार प्रकारसे-पुरुषकीभी परीक्षा होती है.

शिष्य— हे दीनवत्सल! इस जगत्में अनेक प्रकारके मनुष्य उत्पन्न होते हैं, उनकी प्रकृतिमेंभी बहुत अन्तर-फेरफार-होता है, अतएव अवसरपर उन पुरुषोंको कैसे पहचानना और मुख्यतः उनमें कितने भेद होते हैं, सो कृपापूर्वक मुझको बतलाइये.

गुरु— हे पुत्र! तू कहता है कि जगत्में अनेक प्रकारके मनुष्य उत्पन्न होते हैं, परंतु अनेक तो क्या, जगत्में तो अनन्तप्रकार (पाररहित) के मनुष्य पैदा होते हैं. तूने तथा मैंने आजपर्यंत जिन २ मनुष्योंको देखा उनमेंसे किसीकी आकृति (चेहरा) परस्पर नहीं मिलता, तो फिर प्रकृति-स्वभाव तो किसप्रकार मिल सकता है? तथापि ऐसा होता है कि जब किसी विशेष बातका निश्चय करना होता है तो सब सत्पुरुषोंका विचार एक समान मिलता है, बहुधा उन सबका एकही निश्चय-सिद्धान्त होता है. परन्तु उसी बातपर दो चार शठ-मूर्ख मनुष्योंके विचार अवश्यही भिन्न २ होंगे. ऐसे (शठ तथा सज्जन) मनुष्योंकी परीक्षा कैसे करना? इस विषयमें कहा है कि जिस रीतिसे सुवर्णको निघर्षण (कसोटीपर घिसकर रंग देखना),

छेदन (काटकर), ताप (भट्टीमें रखकर तपाना), ताड़न (ठोंक पीटकर देखना,) इन चार रीतियोंसे परखते हैं, और इन चारों प्रकारसे अजमाते हुए जो सोना फटे-बिखरे नहीं, जिसके रंगरूप वा तोलमें कुछ अन्दर पड़े नहीं तो उसको शुद्ध समझते हैं. इसी भांति मनुष्योंकी चार प्रकारसे परीक्षा की जाती है. मनुष्यकी परीक्षा करनेमें पहले तो उसमें ज्ञान (विद्या) आदि कितना है और किस प्रकारका है सो देखना, फिर उसका शील (स्वाभाविक लक्षण-आदत) देखना, वह कैसे २ गुण तथा अवगुणोंका पात्र है सो जानना; उसका कुल (कुटुंब-खानदान) कैसा है, वंशपरंपरा कैसी है इसकी जांच करना, तथा वह क्या २ कर्म करता है, उसकी संगति कैसी है सो देखना. इसप्रकार परीक्षा करनेसे जो मनुष्य सब बातोंमें उत्तम-श्रेष्ठ जान पड़ता है वही सज्जन मनुष्य कहलाता है.

मुख्यतः मनुष्योंके तीन भेद माने जाते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम अथवा तामस, राजस और सात्त्विक. इस जगत्में इस बातका कुछ आश्चर्य नहीं है कि प्रत्येक प्राणी अपने हितमें अहर्निश तत्पर रहता है; परन्तु जो परहित-परोपकार करनेमें प्रीती रखते हैं वे धन्य हैं. शास्त्रमें भी कहा है कि ' परोपकारः परमं हि पुण्यम् ' परोपकार करना यही परम पुण्य है. जगत्के पिता सृष्टिकर्त्ता विष्णु भगवान्भी परोपकारसेहि अत्यंत प्रसन्न होते हैं. ऐसी महान् वस्तु परोपकारके करनेकी बुद्धि जिनके अन्तःकरणमें नित्य-निरंतर हुआ करती है वे सात्त्विक वृत्तिवाले उत्तम पुरुष गिने जाते हैं. उन-मेंसे भी जो मनुष्य दूसरेका हित करनेमें ऐसे परम आतुर रहते हैं कि वैसा (परोपकार) करतेहुए उनका सारा काम बिगड़ता हो तो भलेही बिगड़े-उसकी कुछ परवाह-दरकार न करके परार्थ और परोपकार करनेमेंही लगे रहते हैं उनको सर्वोत्तम मनुष्य जानना. और, जो परोपकार करनेमें बहु-तही प्रीतिवाले हैं किन्तु अपनी हानि (काम बिगाड़) करके ऐसा नहीं करते अर्थात् अपने कार्यको धक्का न लगाते, जितना हो सके उतना (यथा-संभव) परमार्थ करते हैं, उनको मध्यम-राजसी मनुष्य जानना; तथा जो मनुष्य अपनाही काम नहीं सुधार सकते वरन् और (पराये) का भी बिगा-ड़नेमें तत्पर रहते हैं, अर्थात् जो अपना और दूसरेका-दोनोंका कार्य बिगाड़ देते हैं, परायेकी हानि करनेमें जिनकी मति रहती है वे अधम-नीच पुरुष हैं. जो दूसरेका कार्य बिगाड़ते हैं उनका तो पहले बिगड़ा ऐसा समझना; क्योंकि

" जैसा इच्छे औरका तैसा अपना होय " अथवा " खड्डा खनेगा औरको, ताको कूप तयार " इस नीतिवचनके अनुसार प्रभु उनका भला नहीं करता. ऐसे लोगोंको अधम–तामसवृत्तिवाले अथवा राक्षसी प्रकृतिके मनुष्य जानना. जैसे दूधपाक क्षीर आदि पदार्थोंमें मक्खी अपने स्वादके लिये बैठती है, परन्तु उसमें गिरजानेपर लिपट जानेसे अपना भला करने (उड़ने) की शक्ति न रहनेसे आपभी मरती है और दूसरेकोभी मारती है-कष्ट देती है- वह पदार्थ (दूधपाक) खानेवालेको वमन करा देती है. इस भांति दोनोंकी हानि होती है, वैसेही मक्खीकी प्रकृतिवाले मनुष्य दोनोंका बिगाड़ करते हैं. ऐसे जीवोंको अधम अथवा आसुरी सृष्टिके जीव जानना. किसीएक महात्मा पुरुषने स्वभाव-प्रकृतिका वर्णन इस प्रकार किया है सो यथार्थ है:—

" वृक्ष वृषभ अरु व्याघ्रसम, तथा भुजंगसमान ।
साधू सज्जन स्वारथी, नीच पुरुष पहिचान ॥ "

चतुर्दश बिन्दु.

कर्म और उपासना कैसे छूटें ?

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत् ।
विद्याविद्यां निहन्त्येव तेजास्तमिरसंघवत् ॥ [आत्मबोध.]

अर्थ— जो जिसका विरोधी होता है, वह उसका नाश करता है, तेज तिमिरका विरोधी होनेसे उसका नाश करता है; कर्म और अविद्याका परस्पर विरोध नहीं है, अतएव कर्म अविद्याकी निवृत्ति करनेमें समर्थ नहीं होता, परन्तु विद्या (तेज) अविद्या (तिमिर-अंधकार) को हरण करती है.

शिष्य— हे कृपालु गुरुदेव ! आपने कहा कि " कर्म तथा उपासना, ये दोनोंभी परम आवश्यक हैं, और जब ज्ञानोत्पत्ति होती है तब वे स्वयमेव-आपही छूट जाते हैं" सो मैंने जाना, परन्तु वे अपने आप किस प्रकारसे छूट जाते हैं ? सो आप कृपा करके यथार्थ रीतिसे मुझको समझाइये.

गुरु— हे वत्स ! तू धन्य है ! इस भांति गुरुवचनका वारंवार मनन करना, यह मुमुक्षु शिष्यका लक्षण है. जैसे दहीको मटके-घड़े-में भरकर वारंवार मथन करनेसे मक्खन निकल आता है, ऐसेही अन्तःकरणरूप घड़ेमें गुरुवाक्यरूपी दहीका मथन (मनन) करनेसे मक्खनरूपी वाक्यान्तर्गत सार प्राप्त होता है अर्थात् समझमें आजाता है. हे वत्स ! तेरे इस प्रश्नके उत्तरमें तुझको एक दृष्टान्त सुनाता हूं, उसपरसे सहजही तेरा समाधान होजावेगा !

किसी नगरमें एक महाजन वणिक् रहता था. वह नगरभरमें बहुत प्रसिद्ध और धन दौलत तथा संतति आदिक सुखसे परिपूर्ण था; परन्तु एक बातसे उसको अत्यन्त दुःख था; जिससे यह संसार उसको

सचमुच विषसमान लगता था. पैसा टका, माल मता, स्त्री पुत्र, मान प्रतिष्ठा आदि सब बातोंका सुख होते हुए भी जिस वस्तुसे उन सुखोंका उपभोग किया जाता है वह शरीर अच्छा तन्दुरुस्त न हो तो ये सब सुख निरर्थक हैं. कहावत है कि 'पहला सुख नीरोगी काया.' इसके अनुसार वह वणिक् सर्वसुखसपन्न होनेपरभी शरीरसे दुःखी होनेके कारण अपने तई सब बातसे दुखीही समझता था. इसके उदरमें ऐसा महारोग था, कि, जिससे वह थोड़ाभी अन्न नहीं खा सकता था. कदाचित् जैसे तैसे कुछ खा लेता तो तुरन्त दस्त होकर वह निकल पड़ता, और उलटी पीड़ा होजाती. उस रोगसे वह महाजन कई वर्षोंतक पीड़ित बना रहा. एक समय उसके नगरमें एक परोपकार बुद्धिवाले वैद्यराजका आगमन हुआ. भिषग्वर बहुत दयालु और नम्रस्वभाव होनेसे किसी मनुष्यको रोगग्रस्त देखते तो तत्क्षण उनका अन्तःकरण दयासे द्रवीभूत हो जाता. वे रोगीको धीरज देकर, अपनी सारी उमरभरमें बड़े परिश्रमसे संपादन की हुई चमत्कारिक वैद्यविद्याका उपयोग कर, उसको रोगसे मुक्त करके सुखी करते थे. उन वैद्यराजके उस नगरमें आनेके समाचार सुनकर बहुतेरे रोगी उनकी शरणमें गये और अपने असाध्य दुःखोंको निर्मूल कराके नीरोग तथा सुखी होगये. यह बात नगरभरमें फैल गई. उस महाजनने भी यह चर्चा सुनी और वैद्यराजके पास जानेका निश्चय किया. दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर वह वैद्यराजके स्थानपर गया; तो उनको अपने जैसे अनेक रोगियोंसे घिरे हुए देखा. प्रणाम करके वह भी उनके संमुख बैठ गया. तिस पीछे उसने नम्रतापूर्वक अपने रोगका सब वृत्तान्त महात्मा वैद्यराजको कह सुनाया और अपना शरीर भी दिखलाया. उन्होंने इसी तरह अपने आसपास बैठे हुए सब रोगियोंके रोगोंको जान लिया था. इसलिये उन्होंने सबकी ओर दृष्टि करके कहा "भाइयो! मैंने तुम्हारे सबके रोगोंको जान लिया है, और औषधोपचार करके मैं उन सबको शीघ्रही शान्त कर सकता हूं, परन्तु वे सब रोग भिन्न २ प्रकारके होनेसे उनके लिये जिन पृथक् २ औषधोंकी आवश्यकता है वे मेरे पास अभी तैयार नहीं हैं; क्योंकि मैं बहुत दिनोंसे विदेशयात्रा कर रहा हूं. जो तुम सब लोग मेरे साथ इस समीपवर्ती वनमें चलो तो मैं वहां तुमको जैसी चाहिये वैसी रोग मिटानेवाली औषधि बतादूंगा, उसे तुम लोग ले लेना.' यह सुनकर

सब रोगी उनके साथ जानेको तयार हुए. सब लोग वैद्यराजके पीछे २ चलने लगे. नगरसे कुछेक दूर एक घना वन था; जिसमें नाना प्रकारके वृक्ष, लता, गुल्म तथा जड़ी बूटी–औषधियां उगी हुई थीं. वहां जाकर वैद्यराजने कहा कि "इस स्थानपर सब औषधियां हैं. मैं वनमें चलते २ अपनी इस लकड़ीकी अनीसे, मार्गमें जो २ औषधियां आवेंगी उनको वताता जाऊंगा तथा उनके नाम और गुण कहता जाऊंगा. तुम्हारे जिस २ के कामकी जो २ औषधि हो सो तुम लेते हुए वहींसे पीछे नगरको लौट जाना." अब लकड़ी हाथमें लेकर वैद्यराजने चलना आरम्भ किया और मार्गमें दोनों ओर उगीहुई वनस्पतियोंको लकड़ीसे बताकर उनके नाम व गुण वतलाने लगे कि "इसका यह नाम है और अमुक २ रोगोंको हटाती है, तथा इस औषधिका अमुक नाम है और अमुक २ गुण हैं" वैद्यराजके ऐसे वचनोंको सुनकर जिस २ रोगीके कामकी–उपयोगी औषधि आती-गई उसे लेनेको वह वहीं ठहरता गया. वह महाजन भी वैद्यके साथही था. वहभी उनके पीछे २ औषधि लेनेके लिये चला जाता था, और उसकी दृष्टि आतुरतासे, वैद्यराजके मुखसे किस रोगका और किस औषधिका नाम निकलता है इसीपर लग रही थी. वैद्यराज बोलकर नाम वताकर जब औषधि वताते तब उसकी दृष्टि लकड़ीकी अनी–अग्र–भागपर फिरती रहती थी. यष्टिकाके छोरपरही उसकी दृष्टि चिपक रही–स्थिर हो रही थी, और जिस वनस्पतिकी तरफ उसका छोर जाता था उसी २ की ओर वह घूमा करती थी. इतनेहीमें वैद्यराजने उसीके रोगका नामोच्चारण किया और उसके उपयोगी औषधि लकड़ीकी अनीसे दिखलाई. उस औषधिको देखतेही उसकी दृष्टि जो अबतक लकड़ीकी अनीपर ठहरी हुई थी; तुरन्त उस औषधिपर स्थित हुई. तब वह वणिक् वैद्यराज, उनकी बात और उनकी लकड़ी इन सबको छोड़कर उस औषधिके पास खड़ा रह गया और वैद्यराज दूसरे २ रोगियोंको उसीप्रकार औषधि वतलाते हुए आगे चले गये. वह महाजन उस वनस्पतिको लेकर तुरन्त अपने घर आया, और उस अमूल्य औषधिको पूर्ण श्रद्धासे सेवन करने लगा; जिससे थोड़ेही कालमें उस असाध्य रोगसे मुक्त होकर संपूर्ण सुख भोगने लगा.

हे वत्स ! इस उदाहरणपरसे यह बात समझना चाहिये कि, प्राणीको यह भव (संसार) रूप महारोग प्राप्त हुआ है; इसीसे उसने महात्मा, ज्ञानी

और परम दयालु परोपकारी गुरुरूप वैद्यराजकी शरणमें प्रेमसहित जाना. गुरुके वचनपर श्रद्धा और हेतुपर लक्ष रखकर, जिसप्रकार वह आज्ञा करे उसीके अनुसार विचार करना और इसभांति वर्त्तन करनेसे, जैसे वनमें वणिक्को वैद्यराजने औषधि बताई तैसेही प्राणीको, इस संसाररूप रोगमेंसे मुक्तिरूप महौषधि (आत्मज्ञान) तत्त्व प्राप्त होकर उसके द्वारा वह जीवन्मुक्त होकर परमानन्दमें प्रवृत्त होता है, यह निश्चय है. वह वणिक् प्रथम वैद्यराजको ढूंढ़ता हुआ उनके पास गया था, वहांसे उनके साथ वनमें गया था, वहांसे उनके बोलनेपर और पीछे उनकी लकड़ीकी अनीपर ध्यान रखकर बड़ी देरतक चलता रहा था, और अन्तमें ज्योंही उसके कामकी औषधि लकड़ीके द्वारा दृष्टिगोचर हुई त्योंही तत्क्षण वे वैद्यराज, उनका बोलना तथा उनकी लकड़ीकी अनी इन सबको छोड़कर, केवल अपनी औषधिकी तरफही देखता रहा था; ऐसेही मुमुक्षुकेभी, प्रथम गुरुके बताये हुए शुद्ध ज्ञान प्राप्त करनेमें साधनरूप भिन्न २ कर्म, उपासना, तथा ध्यान धारणा इत्यादिक सब, परब्रह्मके दर्शन होनेके अनन्तर आपही सहज छूट जाते हैं.

पंचदश बिन्दु.

आत्माकी पहचान कब होती है?

स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानमवष्टभ्य विचारतः।
संसारमोहजलधेस्तारयेत्स्वमनोमृगम्।

अर्थ—विचार करकरके, अपनेही आप आत्मा आत्माका अवलंबन करके संसाररूपी मोहसागरमेंसे अपने मनरूपी मृगको तार लेवे.

शिष्य— हे परम दयालु गुरुदेव! आपने एक समय ऐसा कहा था कि "तत्त्वमसि* यह वाक्य वेद तथा वेदान्तका साररूप है; क्योंकि आत्माको चिन्हानेवाले वेदका यही महावाक्य है, और ज्ञान होनेके लिये मुमुक्षुको प्रथम इसी महावाक्यका उपदेश होना चाहिये." तो हे गुरु-राज! क्या इस महावाक्यका उपदेश होतेही मनुष्य ज्ञानी हो जाता है और आत्माको पहचानने लगता है?

गुरु— बेटा! चाहे जैसे सुन्दर, स्वादिष्ट और गुणकारी पकान्न अपने संमुख धरे हुए हों, तथापि अपनी क्षुधानिवृत्तिके लिये, उनमेंसे किसीके खानेकी आवश्यकता है, केवल दृष्टिमात्रसे देखते रहनेसेही न तो अपनेको उनका रसास्वाद आवेगा और न क्षुधाभी निवृत्त होगी.

ऐसेही इस महावाक्यके उपदेशका मनन करनेसे आत्माको राजसी, तामसी आदि प्रकृति छूट जाय और सब बातोंसे निःस्पृह होजाय, तबही इस महदुपदेशका लाभ प्राप्त होता है अर्थात् जीव, आत्माके स्वरूपको पहचानने लगता है. केवल "तत्त्वमसि" इस वाक्यको घोषनेसेही प्राणी,

---

*तत्त्वमसि (आत्मा) वह तूही है, अर्थात् जिस आत्माको पहचाननेके लिये तू प्रयत्न करता है सो आत्मा तूं स्वयंही है, अन्य नहीं.

संसारकी दुविधासे छूटकर आत्माको देख वा जान नहीं सकता. जिसके आनन्दलेशसे विश्व संपूर्ण आनन्दमय है, जिसके सत्वाभाससे सर्व वस्तुका भास है, जिसके आलोचनसे अन्य सब नीचा–हलका गिना जाता है, ऐसे परब्रह्ममें जो संशय उठते हैं, उन्हें उठानेवालेको जो जानता है वही "तत्त्वमसि" के पारको पाता है. इस प्रसंगपर एक पुरातन कथा कहता हूं, उसे तू सुन—

पूर्वकालमें एक समय, अश्विनीकुमार जो देवताओंके वैद्यराज हैं, सो सर्व बातोंमें निपुण होते हुए भी, पिंगलशास्त्रसे अज्ञात–अजान होनेसे उसे सीखनेके लिये शेषनागके पास गये. वहां जाकर देखा तो उनकी एक आंख दूखती थी; जिससे इतनी बड़ी भारी पीड़ा होती थी कि, वे अत्यन्त व्याकुल होगये थे. शेषराज, कभी इधर कभी उधर करवटें बदलते तड़प रहे थे; जिससे उनके मस्तकपर स्थित पृथ्वी मानों अभी गिर पड़ेगी, ऐसा भय होता था. अश्विनीकुमारोंने अपनी पिंगल पढ़नेकी इच्छा प्रकट की. तब अनन्तने कहा:–" हे कांतिमन् अश्विनीकुमार ! मैं आपको बड़े हर्षके साथ पिंगल पढ़ाता और इस बातसे मुझे बड़ा सन्तोष होता; क्योंकि आप इस विद्याको सीखने योग्य (पात्र) हो, परन्तु मेरी तो ऐसी (रोगयुक्त) दशा है. मैं जानता हूं कि आप सर्व देवताओंके वैद्य होनेसे मेरी आंखकी औषधि जानतेही होंगे, इसलिये मुझे आराम करो तो मैं आपको यथार्थ पिंगल पढ़ाऊं" यह सुनकर अश्विनीकुमार उसकी आंखकी चिकित्सा करने लगे, और पीडित आंखमें 'त्रिघात' नामक एक उत्तम औषधको आंज दिया कि जिससे श्रेष्ठ दूसरा औषध हैही नहीं. इससे तो आंखकी पीड़ा दुगुनी होगई और अत्यन्त असह्य होने लगी, जिससे शेषराज घबरा गये. इतनेहीमें फिरते फिरते नारदजी वहां आपहुँचे. वे शेषनागकी ऐसी अवस्था देखकर अश्विनीकुमारोंको कहने लगे:–"अरे अश्विनीकुमार ! तुम मनुष्य–वैद्य जितनी युक्ति भी नहीं जानते यह क्या बात है ? मृत्युलोकमें जाकर अमुक देशमें एक वैद्य है, उससे जाकर मिलो, वह तुमको इस रोगकी दवा बतावेगा." अश्विनीकुमार, ब्राह्मणका रूप धरके तुरन्त उस वैद्यके पास पहुँचे और नम्रतापूर्वक विनती की कि 'हे वैद्यराज ! आंख दुखती हो इसका औषध बताइये. हमने त्रिघात औषध आंजा तोभी शान्त नहीं हुई. इसलिये आपकी ख्याति सुनकर हम आपके पास आये हैं' ऐसा सुनकर वैद्यने कहा—

' क्यां आपने त्रिघात आंजा ? अरे! यह औषध तो केवल अश्विनीकुमारही जानते हैं सो क्या आप अश्विनीकुमार तो नहीं हैं ? औरभी, जब कि इस त्रिघातसे अच्छा नहीं हुआ तो निश्चयही शेषनागकी आंख दुखती होगी ऐसे यकायक परीक्षा करलेनेसे अश्विनीकुमारने आश्चर्यको प्राप्त होकर अपना स्वरूप प्रकट किया. तब उस वैद्यने आदरसत्कारोंसे पूजा करके देववैद्यसे कहा:—" महाराज ! इन सहस्रफणवाले शेषनागके जो दो हजार आंखें हैं, वे सब मिचाकर बंद कराकर, केवल जो आंख दुःखती हो उसीको खुली रखकर उसमें त्रिघात आंजना, तो इसी सर्वोत्कृष्ट औषधसे उनको आराम हो जायगा. इससे बढ़कर श्रेष्ठ अन्य कोई औषधि तीनों लोकोंमें नहीं है." अश्विनीकुमार बहुत विस्मित होकर, हर्षसहित शेषनागके पास गये और उस वैद्यके कहे अनुसार शेषकी सब आंखोंको बन्द कराकर केवल दुखती आंख खुली रखकर, उसमें वही त्रिघात (जो पहले आंज चुके थे) औषध आंजतेही उसमेंसे खलखलाटसे पानी बह निकला और आंख तुरन्त शीतल होगई. इस बातसे प्रसन्न होकर शेषने सन्तोषपूर्वक अश्विनीकुमारको पिंगलशास्त्र पढ़ाया.

हे शिष्य ! इसप्रकार त्रिघात औषधिरूप ' तत्त्वमसि ' उपदेशका गुण-लाभ होनेके लिये ऊपर कहा हुआ उपाय करना चाहिये. शेषनागके दो हजार नेत्र हैं किन्तु जीवरूप शेषनागके तो राजसी तामसी वृत्तिरूप लाखों और करोड़ों आंखें हैं. अतएव सब आंखें बंद करनेके अनन्तर, जैसे शेषको औषधिका गुण हुआ था, तैसेही सर्व वृत्तियोंका निरोध (बंद) कर दिया जाय, तबही जीवको ' तत्त्वमसि ' रूप त्रिघातका फल प्राप्त हो और तब परम ज्ञानी होकर यह जीव जीवन्मुक्त होता है, परन्तु महावाक्य श्रवण करके गणिकाके तोतेकी नाई मुखपाठ करनेसे कुछ ज्ञानी नहीं बन जासकता, तैसेही आत्माकोभी नहीं पहचान सकता है !

षोडश बिन्दु.

संतसमागम किस भांति हो ?

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम्।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते ॥

अर्थ—शास्त्र और गुरुवाक्य सत्य हैं ऐसा जो निश्चय है, उसको बुद्धिमान् श्रद्धा कहते हैं. इस श्रद्धासेही आत्मवस्तुकी प्राप्ति होती है.

शिष्य—हे महाराज ! सत्समागम बहुतही फलदायक है, उसकी, बड़ी भारी महिमा है, जिसे वर्णन करनेकी किसीमें सामर्थ्य नहीं. अतएव सब मनुष्योंको चाहिये कि अवश्यमेव सत्संग करें, परन्तु इस संसारके अनेक व्यवसायोंमें फँसे हुए, जिनको अपने साथ कुटुंबके कईएक मनुष्योंका पालन करना पड़ता है, और जो रातदिन परिश्रम करके धन्धा करते हैं तब बड़े कष्टसे अपने कुटुंबका पोषण कर सकते हैं, वे लोग संतसमागम किस प्रकारसे कर सकें ? क्या वे अपने आश्रितोंको रोते छोड़कर सत्संग करने जावें ?

गुरु—अरे मूढ ! अभीतक तेरे मनमें यही समाया है कि, मनुष्य सर्व कर्तव्य कर्मोंहीको करते हैं. मनुष्य अपनी शक्तिसे क्या कर सकता है सो तो तू कह. यहांसे उठकर वहां बैठनातकभी अपने स्वाधीन है क्या ? मुखके आगे पांचों पकान्न तयार रखे हों तथापि उनको उठाकर मुखमें रखना, इतना कामभी मनुष्य अपने ऊपर ओढ़कर भला भोजन कर सके ? अरे ! नहीं. ऐसा मिथ्याभिमान धरना, यह ज्ञानी मनुष्यका कर्त्तव्य नहीं. जगत्कर्त्ता, सृष्टिनियन्ता, विश्वपालक परमात्माकी प्रेरणासेही मनुष्य नानाप्रकारके कार्य करता है. उसकी प्रेरणा न हो तो वायु, वृक्षका एक पत्ताभी हिलानेकी सामर्थ्य नहीं रखता. तब तू कहता है कि व्यवसायी मनुष्य

अपने कुटुंबको भूखसे मरता छोड़कर कैसे सत्संग कर सके ? क्या वह व्यवसायी, बड़े कुटुंबवाला, जो उनके साथ न हो तो उसका कुटुंब भूखों मरे ! अरे ! यहभी कैसे हो सकता है ? क्या उनकी रक्षा करनेवाला परमात्मा नहीं है ? प्रभु तो परम दयालु है, मनुष्यको तो केवल अपनी या अपने कुटुंबकी ही चिन्ता होती है; किन्तु परमात्माको तो सारे विश्वभरकी चिन्ता रहती है. वह प्राणीके किये, पहलेसे पहल सब प्रबंध कर देता है. विचार कर देख, गर्भमेंसे बालक जन्मनेके लगभग तीन महीने बाकी रहते हैं उसके पहिलेही, उस जन्म धारण करनेवाले बालककी माके स्तनोंमें दूध उत्पन्न कर देता है जिससे, उस बालकके जन्म लेतेही उसके पोषण करनेके उपाय तयार रक्खे रहते हैं. इसी बातके लिये तो महात्मा लोगोंने उसे परम दयालु विश्वंभर, जगपालक इत्यादि विशेषण दिये हैं. अतएव हे वत्स ! ईश्वरही सबकी संभाल करता है. व्यवसायी मनुष्य, यदि अपने व्यवसायकालमेंसे थोड़ा बहुत समय सत्संगमें बितावे तो उसके कुटुंबके मनुष्योंको भगवान् कभी दुःखी नहीं होने देगा, यह निश्चय है. इस विषयमें पूर्वकालमें कोई वणिक् सत्संग करता था उसकी आख्यायिका मैं तुझे सुनाता हूं:—

एक नगरमें एक वणिक् रहता था; वह निर्धन–अवस्थामें दरिद्री होनेसे अपने कुटुंबका पोषण करनेके लिये नगरमें कोथला* (फेरी) करता और उससे जो कुछ मिलता उसीसे अपना निर्वाह करता था. उसके एक लड़की और दो लड़के कुल तीन सन्तान थे, परन्तु वह आप (खुद) और स्त्री ये सब मिलकर पांच मनुष्योंके पोषणका भार उसपर था सोभी वह बड़े कष्टसे उठाता था. प्रभातकालमें नहा धोकर, क्षणभर हरिभजन करके तुरत अपना थैला कंधेपर रखकर नगरमें फिरने लगता और तीसरे पहर घरको आता, तब भोजन करता. गाममें फिरते २ कहीं देवदर्शन करने जाता तथा किसी जगह कथा वार्त्ता होती देखता तो वहां पावघड़ी या क्षणभर खड़ा रहता और जो कुछ सुननेमें आता सो हरिगुण श्रवण करके फिर अपना मार्ग लेता था, ऐसे करते करते एक दिन वह फेरी करके अपने

* हलदी, मिरच, नमक, हींग, जीरा, वगैरा मसाला, जिनकी हररोज आवश्यकता हो ऐसी चीजें एक थैलेमें भरकर गाममें फिरना और बेचना, इसको कोथला करना अथवा विणजी कहते हैं.

घरको लौटता था, बीचमें एक विष्णुमंदिरमें दर्शन करने गया; वहां दर्शन करके, एक संत कथा कह रहे थे उसे सुननेके लिये कुछ देर खड़ा रह गया. कथाप्रसंगमें उसके यह बात सुननेमें आई कि 'मनुष्य प्राणीको प्रतिदिन अवश्य सत्संग करना चाहिये.' इतना सुनकर वह तो चलता हुआ, परन्तु यह बात उसके हृदयमें ठस (जँच) गई इसलिये उसने प्रदिदिन थोड़ा सत्संग करनेका निश्चय किया. दूसरे दिनसे वह तो उसी महात्माके पास जाने लगा, और अनेक प्रकारके हितकारी वचनोंको अपने अंतर्भंडारमें संग्रह करने लगा. कई वर्षोंतक सत्संग करते रहते पीछे वह बूढ़ा हुआ तो दिनरात अपनी स्त्री पुत्र आदिकी वारंवार चिन्ता करने लगा कि–अरे रे !! अब मेरा बुढ़ापा आया, लड़के वड़े हुए, उनका विवाहभी अवतक नहीं हुआ, अगर मैं बीचहीमें मरजाऊं तो उनके निर्वाहके निमित्त मेरेपास कुछभी धन नहीं है. हे भगवान्! तूही इनका रक्षक है. ऐसेही संकल्पविकल्पमें उसका मन अधिक दौड़ने लगा जिससे उसके सत्संगमें अन्तर पड़ने लगा. कई दिनोंतक उसकी चर्चा देखकर संत पुरुषने उसको कहा–"हे वणिक्! तेरा मुख उदास क्यों है? क्या तू अभी तक अपने स्त्रीपुत्रादिकमेंही लिपट रहा है? अब तेरी वृद्धावस्था होने आई, अवभी तू क्यों नहीं चेतता?" यह सुनकर वणिक् बोला–"महाराज, क्या करूं? बाल बच्चे छोटे हैं, मैं निर्धन हूं, दिनभर पांव तोड़कर दो आने पैसे लाता हूं तो लड़की–लड़कोंको खानेको मिलता है, तब चिन्ता क्योंकर नहीं हो? मैं अभी घरबार छोड़कर विरक्त होजाऊं तो फिर उनको कौन खानेको दे? पके हुए फलवाले वृक्षके नीचे जाकरभी भूखों मरे ऐसी लजालू मेरी स्त्री है. और बच्चे तो अभी बहुत छोटे हैं सो इनकी "क्या दशा हो? मैं न होऊं तो वे तो रोरो करही मरजायँ. हे गुरुदेव! इसीसे आज कल मेरा मन व्यग्र रहता है." इतना सुनकर संतने कहा "क्या उन सवको खानेका तूही पूरा करता है? वे क्या अपने २ प्रारब्धको किसीके यहां रेहन (गिरवी) रख आये होंगे? जो सबका रक्षक है वही नियन्ता भी है और वही सबको पूरा २ पहुँचाता है. तू किसको पूरा पहुँचा सकता था? तुझको यह बात झूठ दिखाई देती हो तो एक काम कर. मेरे वचनकी परीक्षा करनेके लिये, उन सबको छोड़कर केवल एक महीनेभरतक किसी ग्रामान्तरको चला जा और महीना बीत चुके तब पीछा आकर

देखना कि उनकी क्या दशा हुई है ? यह सुनकर वह अपने घर गया. दूसरे दिन वह अपने स्त्री पुत्रादिकसे कहने लगा—" अब इस गांवमें कोथला करनेमें कुछ लाभ नहीं—पैदा बिलकुल नहीं होती; क्योंकि फेरिया बहुत होगये हैं, वे भी अपनी २ बिकरी बढ़ाने तथा दूसरेका धन्धा तोड़नेके लिये बहुत सस्ते भावसे बेच देते हैं; इसवास्ते मेरा यह विचार है कि किसी दूसरे गाममें जाकर फेरी करूं और वहां लाभ हो जाय तो हाटकी (छोटा दुकान) लगा लूंगा. आज मैं कोथला लेकर दूसरे गांवको जाता हूं, तुम फिकर मत करना, श्रीहरि सर्व सहाय करेगा. थोड़े दिनमें पीछा आजाऊंगा " इसभांति स्त्रीपुत्रको औंधासीधा समझाकर वह वणिक् अन्यत्र चला गया.

महात्माने उसके चले जाने पश्चात् कुछ दिन हो चुकनेपर, एक अपरिचित मनुष्यके साथ एक पत्र लिख भेजा. उसमें यह लिखा था कि " हरिदास वनिया किसी गामको चला जा रहा था, रास्तेकी झाड़ीमें जाते २ सिंह मिला; उसने उनको खालिया. क्या करें, जैसा भगवान्ने किया सो ठीक " यह समाचार मिलनेपर उसके स्त्री पुत्र रोने पीटने लगे और मातम—बैठक की. दशदिन होनेपर सूतक मिटाकर जो कुछ वना सो क्रिया कर्म भी कर दिया. उनकी कंगाल स्थितिको गामभरके लोग भली भांति जानते थे सो महल्लेवाले लोग सब इकट्ठे हुए और दया करके विचार करने लगे कि, वनिया तो मर गया और बालबच्चे छोटे हैं; अब ये बिचारे क्या खायँगे ? ऐसे करुणा लाकर सबने मिलकर, उनके लिये आठ दश महीनेतकका अनाज मिर्च मसाला खरीदकर घरमें रख दिया और लड़कोंको एक २ दो २ आना हररोज देनेका ठहराव करके दुकानोंपर नौकर रख लिया. ऐसा होनेसे वे जैसे पहिले थे उससेभी अधिक सुखी होगये और आनन्दसे खा पीकर दिन बिताने लगे.

एक डेढ़ महीने पीछे वह वनिया अपने गामको लौटकर आया, तो पहले, मन्दिरमें जाकर गुरुके दर्शन किये. गुरुने कहा कि " रात होजाय तब थोड़ी देरसे चुपचाप अपने घर जाना और सब व्यवस्था देख आना, तबतक तू यहीं बैठ. " तदनन्तर एक तेलिया राजा (शनैश्चरका दान लेनेवाले जो कि तेलमें भीगे हुए वस्त्र पहनते हैं और हस्तरेखा आदि देखकर भला बुरा फल बतलाते फिरते हैं.) को कुछ पैसे देनेका ठहराव करके उसको वणिक्के घरपर भेजा. उसने जाकर उसकी स्त्रीको कहा—"बाई !

तेरा भरतार मर गया, वह आज यहां आवेगा. वह भूत हो गया है सो तेरे पति जैसाही रूप धारण करके घर आवेगा और कहेगा कि मैं वही हरिदास हूं, और मरा नहीं था. तो भी तुम उसको घरमें नहीं आने देना. ढेले पत्थरोंसे मारकर बाहर निकाल देना; क्योंकि वह भूत तुम्हारे घरमें घुस आवेगा (प्रवेश करेगा) तो फिर जन्मभरका दुःख हो जायगा और फिर वह कभी, अनेक यत्न करनेसेभी नहीं निकलेगा," इस प्रकार कह कर तेलिया राजा चलागया. जब रात हुई और सर्वत्र शान्ति फैली, तब वह वणिक् चुपचाप अपने घर गया और दरवाजा खटखटाने लगा. तेलियाने सचेत करदिये थे, इसलिये लड़के चौंक उठे और खिड़कीमेंसे दड़ादड़ पत्थर फेंकने लगे. वणिक्ने कहा " अरे रमण ! दरवाजा क्यों नहीं खोलते हो ? अरे ! (स्त्रीको कहता है) क्योंरी सुनती नहीं क्या ? किवाड़ खोल, मैं बड़ी देरसे खड़ा हूं. " यह सुनकर लड़के खिड़कीमेंसे जल्दी २ पत्थर फेंकने लगे और कहने लगे ' ओ मा ! ओ ! वह भूत आया है, किवाड़ नहीं खोलना. ' स्त्रीनेभी खिड़कीके पास आकर कहा "अरे मुर्दे, प्रेत ! क्यों लड़कोंको डराता है ? हमको सतानेको क्यों आया है ? जा काला मुंह कर. थू, तेरी आंखोंमें राईनोन. हे देवी माता ! तूही रखवाली (रक्षक) है. " तू इस भूतकी खबर लेना. यह सुनकर वह बोला " अरे ! मैं मरा नहीं मैं तो गामसे अभी आ रहा हूं, किवाड़ खोलो, मुझको क्यों दुःख देते हो, मेरा कहा नहीं सुनते, अभी तो भ्रममें पड़े हो, पीछे मेरे विना वहुत पछताओगे. " यह सुनकर स्त्रीने क्रोधपूर्वक कहा—"चला जा पिशाच ! तू जीता था उससे हम अब अधिक सुखमें हैं, तेरे जीतेजी कभी पेटभर रोटी नहीं मिली, सदा खेंचतान रहती थी, अब तो पेटभर खाते पीते हैं. अब तू यहांसे चला जा, नहीं तो पत्थरोंसे तेरा शिर फोड़ दूंगी. यह तो तू मरा हुआ है, किन्तु कदाचित् जीता हुआ हो तो अब हमको तुझसे कुछ काम नहीं. " वनियेने मनमें सोचा कि " यह क्या और कैसे हुआ ? चाहे जैसे हो, परन्तु ये सुखी दिखाई पड़ते हैं. अस्तु, पूछना चाहिये. जो ये अकेले रहनेसे प्रसन्न हों तो मेरे शिरका जंजाल दूर हुआ !" फिर वह कहने लगा—" मैं तो जीता जागता हूं पर तुम मेरे विना, अकेले प्रसन्नतासे रह सकोगे ? " स्त्रीने कहा—" हां हां, जा जा, चला जा, दुष्ट कहींका भूत होकर हमको फुसलानेको

आया है. सुन ! फिर कभी यहां मत आना. हमको तुझसे कुछ काम नहीं है." ऐसी बातें सुनकर वह तुरन्त वहांसे लौटा और गुरुजीको सब वृत्तान्त कह सुनाया. गुरुने कहा "देखा ! तू कहता था कि उनका पोषण मेरे विना कौन करेगा, किन्तु अब तुझे समझ आई ? कौन किसका पोषण करता है ? सर्वका कर्त्ता धर्त्ता श्रीहरिही है. अतएव अब सब ममताको छोड़ दे और प्रभुके चरणोंमें चित्त लगादे."

इस सब लीलापरसे वणिक्को पूरी २ चटक लगी. उसने तत्काल क्षण-भंगुर संसारकी मायापरसे मन उतार दिया और गुरुमहाराजके उपदेशका अनुकरण करके जीवन्मुक्तिका सुख अनुभव करने लगा. एक समय उसको गुरुनानकका कहा हुआ वचन याद आया किः—

जीवितको व्यवहार, जगतमें, जीवितको व्यवहार. टेक.
मात पिता भाई सुत बांधव, अरु निजघरकी नार. ज०
तनसे प्राण होत जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार. ज०
आध घडी कोई नहिं राखे, घरते देत निकार. ज०
मृगतृष्णा ज्यों यह जगरचना, देखो हृदै विचार. ज०
जन नानक यह मत संतनको, भाख्यो ताहि पुकार. ज०

फिर वह गाने लगा—

झूठी देखी प्रीत जगत्में, झूठी देखी प्रीत. टेक.
अपने सुखको सब कोई रोवे, क्या दारा क्या मीत. ज०
मेरो मेरो सबहि कहत हैं, हितसे बांधै चीत. ज०
अन्तकाल कोइ संग न चाले, यहि अचरजकी रीत. ज०
मन मूरख ज़िन अजहु न समझत, सुखदे हारे नीत. ज०
नानक भवजलपार परो जब, गाओ हरिको गीत. ज०

सप्तदश बिन्दु.

सच्चा सत्संग.

स्थूलादिसम्बन्धवतोऽभिमानिनः सुखं च दुःखं च शुभाशुभे च ।
विध्वस्तबन्धस्य सदात्मनो मुनेः कुतः शुभं वाप्यशुभं फलं वा ॥

अर्थ–स्थूल शरीरके सम्बन्धवाले पुरुषको अभिमानके कारणसे सुख दुःख शुभ अशुभ होता है; परन्तु जिसने अभिमानको नाश कर दिया है ऐसे (ब्रह्मस्वरूप) मुनिको शुभाऽशुभ फलका होना संभवही नहीं.

शिष्य—गुरु महाराज ! आप वारंवार सत्संगकी वहुत प्रशंसा करते हैं, इसपर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि सत्संगमें ऐसा क्या समाया हुआ है ? सच्चा सत्संग कौनसा कहा जाता है और उससे क्या फल होता है सो आप अनुग्रह करके मुझे कहिये.

गुरु— अहो वत्स ! सत्संगकी प्रशंसा ? अरे ! सत्संगके गुणोंका मैं कहां· तक वर्णन करूं ! उसकी प्रशंसा करनेमें कोईभी समर्थ नहीं. प्रभुपरायण, सत्यशील, परोपकारी महात्मा पुरुषोंका संग करना, इसीको सत्संग कहते हैं. ऐसा सत्संग जो क्षणभर भी होता है तो उसका अनंत फल मिलता है. किसी भक्तने कहा है कि—" सत्संग सबनको सार " सो सत्य है. यह सत्संग, श्रीहरिको प्रसन्न करनेवाला प्रथम साधन है. इससे ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग मिलता है, ब्रह्मभी मिलता है, और इसीके प्रभावसे ब्रह्मरूप बनता है. अहा ! ऐसी अनुपम सत्संगरूप वस्तुका माहात्म्य कथन करनेकी शक्ति किसमें ? इसकी महिमा कहांतक गावें ? सरस्वतीभी सत्संगका महत्त्व वर्णन करनेमें असमर्थ है तो मनुष्य किस गिनतीमें ? सत्संगकी प्रशंसामें एक पुरा· तन इतिहास है, सो मैं तुझे कह सुनाता हूं:—

पूर्व कालमें विजयकुलोत्पन्न प्रतापवान् गाधि राजाका विश्वामित्र नामक महान् पराक्रमी पुत्र था. विश्वामित्र युवराज था, इसलिये गाधि राजाने अपनी वृद्धावस्था होनेपर उसको राज्याभिषेक किया, तबसे वह पूर्ण न्याय-परायणतासे अपनी प्रजाका पुत्रकी नाई पालन करता था. उसने स्वयं अतिवीर्यवान् तथा धनुर्विद्यामें कुशल होनेसे, थोड़े कालमें, अनेक राजाओंको जीतकर अपने राज्यको बड़ा विस्तृत कर दिया था. एक समय किसी प्रसंगवश उसके मनमें ऐसा निश्चय हो गया कि राजा चाहे कितनाभी बड़ा चक्रवर्ती हो तथापि राज्य (क्षत्रिय) बल, ब्रह्मबल (ब्राह्मणका ब्रह्मतेज-पराक्रम) के आगे निस्तेज है. यह बात उसके मनमें ऐसी चुभ गई थी कि वह रातदिन ब्रह्मत्वही ब्रह्मत्व रटने लगा. "अहा! ब्राह्मण कैसी बड़ी देवता है! अहा! ब्रह्मत्वका कैसा प्रताप है! वह मुझको कब प्राप्त होगा?" वह जैसे जागृत अवस्थामें रटा करता तैसेही स्वप्नावस्थामेंभी रटा करता था. निदान उसने राज्यपद परित्याग करके ब्रह्मत्व प्राप्त करनेका विचार किया. तत्क्षण पुत्र-मंत्री-पुरोहित इत्यादिको राज्यका कार्यभार सौंपकर और अत्यन्त लक्षपूर्वक अपनी रूढिके अनुसार राज्य चलानेकी तथा प्रजाका रंजन भलीभांति करनेकी शिक्षा देकर स्वयं वनको चला गया. वहां जाकर अनेक महान् २ व्रतोंका आचरण करने लगा, किसी समय केवल निराहार रहता, तो कभी मात्र जलके आधार पर रहता; कभी २ वायु भक्षण करके उग्र तप करता. ऐसे नानाप्रकारकी कठिन २ प्रतिज्ञापूर्वक वह राजा बड़ाभारी तप करने लगा.

इसप्रकार उग्र तप करते २ विश्वामित्रकी न्यूनाधिक साठ हजार वर्ष बीत गये तथापि वह ब्रह्मत्वाभिलाषी राजवीर पुरुष तप करनेसे हटा नहीं. उसके तपके प्रतापसे सारा ब्रह्माण्ड विह्वल होकर डगमगाने लगा तब ब्रह्मदेव तथा इंद्र आदि समस्त देवता विश्वामित्रके पास गये और तप-मेंसे उठाकर उनसे कहने लगे:—"हे महान् तपस्वी विश्वामित्र! आपको धन्य है. आपके समान तप करनेवाला तीनों लोकोंमें कोई नहीं. आपके तपसे हम सब लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं. अतएव, अब तपश्चर्या समाप्त करके कहिये कि आपकी क्या कामना है?" विश्वामित्रजीने कहा:-"हे देवतागण! जो आप सब प्रसन्न हुए हो तो मेरी ब्रह्मत्व प्राप्त करनेकी अभि-लाषाको पूर्ण करो." "तथास्तु! आपको ब्रह्मत्व प्राप्त हो. हम तो आपको

ब्रह्मर्षि कहते हैं; क्योंकि आपके तपके प्रभावसे आप ब्रह्मर्षित्वके योग्य हो चुके हो, किन्तु वसिष्ठादि महान् ब्रह्मर्षिगण आपको अपने वर्गमें गिनें-अपने समान समझने लगें ऐसा यत्न आप करो. इसीसे आपकी सर्व मनोकामना पूर्ण होगी." इतना कहकर देवगण अन्तर्धान होगये. तदनन्तर विश्वामित्रजी अपने तपको समाप्त करके, जिससे वसिष्ठऋषि उनको 'ब्रह्मर्षि' कहें ऐसा प्रयत्न करनेके लिये वहांसे चल दिये.

इक्ष्वाकुवंशके राजाओंके यहां वसिष्ठ ऋषि पुरोहितका कार्य करते थे इसकारण अयोध्यापुरीमें वारंवार राजसभामें उनका आना-बैठना होता था. और दूसरे अनेक ऋषि महर्षीभी उनके साथ सभामें हाजिर रहते थे; जिससे वह सभा साक्षात् ब्रह्मसभाके समानही थी! वसिष्ठ मुनि उनको ब्राह्मण मानलें इस अभिप्रायसे विश्वामित्रजी उस सभामें गये, वे तप करके ब्रह्मत्वके योग्य हुए थे तथापि क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होनेसे जातिस्वभावके कारण, वे धनुष, बाण, भाथा, खड्ग इत्यादि शस्त्र धारण करके सभामें पहुँचे. उनको देखतेही सभामेंके सर्व मंत्री तथा अन्यान्य ऋषि-मुनियोंने उठ खड़े होकर बड़े आदरमानके साथ उनको उत्तम आसन पर बिठाया, तब वे अपने २ स्थानपर बैठे; परन्तु वसिष्ठजी परम सत्यवक्ता होनेसे जैसा देखते वैसाही कहते थे; इस कारण उनको आये देखकर वे उठकर खड़े नहीं हुए परंच उलटे "आइये विश्वामित्र राजर्षि!" ऐसे कहकर चुप बैठे. यह सुनकर, सर्वसभाके समक्ष उनको राजर्षि कहनेसे तत्क्षण तो वे कुछ नहीं बोले, परन्तु उसी समयसे उनके मनमें वैर व्याप्त हुआ कि—"अहो ब्रह्मादिक सर्व देवताओंने तो मुझको ब्रह्मर्षि कहा तथापि वसिष्ठजी मुझे राजर्षि कहते हैं, इसका कारण क्या है? निःसन्देह ये मुझसे द्वेष करते हैं. अतएव चलो इनका छल करना चाहिये." ऐसा विचार करके, सौदास नामक एक राजाको किसी ऋषिके शापसे राक्षसपन प्राप्त हुआ था. उससे विश्वामित्रने वसिष्ठजीके एक पुत्रको भक्षण कराया. दूसरे दिन फिर विश्वामित्र सभामें गये तो पहलेकी भांति फिर वसिष्ठजीने "आइये राजर्षि!" कहकर बुलाया इसपरसे क्रुद्ध होकर विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीके दूसरे पुत्रको भी उसी राक्षससे भक्षण करादिया. पुनः वे सभामें गये, तबभी वसिष्ठजीने उनको राजर्षिही कहा. इसबातसे बहुत चिढ़कर कि प्रति दिन, उनको वसिष्ठ ब्रह्मर्षि न कहकर राजर्षि कहते हैं, विश्वामित्रजीने क्रम २ से वसि-

ष्ठजीके एक सौभी पुत्रोंका नाश करा दिया. इतना हुआ तथापि परम सत्त्वगुणी वसिष्ठजीको कुछभी विषाद नहीं हुआ और वे जानते थे कि यह काम विश्वामित्रजीका है तोभी अपनेमें विशुद्ध ब्रह्मभावना विद्यमान होनेसे वे ऐसाही मानते थे कि मेरे पुत्रोंकी मृत्यु इसी निमित्तसे होनेवाली थी इसका किसको दोष दिया जाय? तदनन्तर विश्वामित्र, 'अब तो वसिष्ठजी हार मानकर मुझको ब्रह्मर्षि कहेहींगे' ऐसा मनमें विचार करके सभामें गये. तिसपरभी वसिष्ठऋषि तो जैसे थे वैसेके वैसेही बने रहे अर्थात् फिर भी उन्होंने विश्वामित्रको राजर्षिही कहा; क्योंकि जबतक शस्त्र धारण करना इत्यादि रजोगुणी राजाके लक्षण विश्वामित्रजीमें देखनेमें आवें तबतक वसिष्ठजी उनको ब्रह्मर्षि किसप्रकार कहें? अन्तमें विश्वामित्रजीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वारंवार किये गये अपमानकी असह्य वेदनाके कारण वसिष्ठजीकोही मारडालनेका संकल्प किया. एक दिन आधी रात बीत जानेपर वे चुपचाप वसिष्ठमुनिजीके आश्रमको गये और पिछले भागमें छिपकर खड़े होकर उनके निद्रावश होजानेकी प्रतीक्षा करने लगे. रातको चंद्रमा शिरपर चढ़ा हुआ था, चांदनी चारों ओर शोभायमान हो रही थी, और आकाशमें बादल न होनेसे सर्वत्र स्वच्छ चंद्रप्रकाश पड़ा रहा था. उसे देखकर अरुंधतीने कहा—"प्राणनाथ! अहा! आजकी रात कैसी शोभा देरही है? चंद्रमाका प्रकाश कैसा निर्मल दिखाई देता है? क्या ऐसे निर्मल और पूर्ण तपवालेभी कोई महर्षि होंगे, कि जिनका पवित्र तथा दीर्घ तप संसारमें ऐसाही प्रकाशित हो रहा हो?" यह सुनकर वसिष्ठजी बोले कि—"अहा! ऐसा पूर्णचंद्रमाके समान निर्मल तप और किसका हो सकता है? ऐसे उग्र तपस्वी ऋषि तो अपनेमें एकमात्र विश्वामित्रही हैं. उनके समान इसकालमें और तपस्वी कोईभी नहीं."

स्त्रीपुरुषोंमें परस्परकी एकान्तमें इसप्रकारकी बातचीत श्रवण करके विश्वामित्रको, जोकि वसिष्ठजीका घात करनेके लिये शस्त्र धारणकरके आश्रमके पृष्ठभागमें चुपचाप खड़े थे, अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ. वे सोचने लगे कि 'अरे रे! मैं कैसा पापी और मूढ़ हूं कि जो परोक्षमें मेरी प्रशंसा (स्तुति) कर रहे हैं, ऐसे वसिष्ठ मुनिका घात करनेका विचार करता मैं सशस्त्र यहां खड़ा रहा हूं! हर हर! धिक्कार है मुझे. मैं इस ब्रह्महत्याके वज्रसमान पापसे किसप्रकार मुक्त होता? तामसी प्रकृतिके वश होकर इस प्रतापी ब्राह्मणका मैंने सहसा घात

कर डाला होता तो फिर मेरी क्या दशा होती ? मेरे सम्पूर्ण तपका नाश होकर मैं घोर नरककुण्डमेंही गिरता. अरे रे ! मैं अपनेहि बलसे ब्रह्मर्षि कह-लानेके लिये तड़पता हूं; किन्तु यह मेरा मिथ्याभिमान है. सच्चे ब्रह्मर्षि तो यह वसिष्ठही हैं, कि जिनके सौ पुत्रोंका नाश करके मैंने उनको अपुत्र कर दिया है, तथापि मेरे पीछे परोक्षमें इसभांति मेरी प्रशंसा करते हैं. सत्य २ सत्त्वगुणी स्वभाव तो इन्हींका है. धन्य हैं इनको और इनके ब्रह्मत्वको." ऐसा कहते हुए अपने शस्त्रोंको वहीं फेंककर, दौड़तेहुए आश्रमके भीतर जाकर वसिष्ठजीको तुरन्त दंडवत् नमस्कार किया और उनके चरण पकड़ लिये. यह देखकर आश्चर्यान्वित होकर वसिष्ठजीने कहा—

"अहो ब्रह्मर्षिवर* विश्वामित्र ! इससमय आप कहांसे पधारे ?" वसि-ष्ठजीके मुखसे ब्रह्मर्षि शब्द सुनकर अपनी ब्रह्मत्वप्राप्तिकी आकांक्षा पूर्ण हुई समझकर आनन्दसे गद्गद् होगये. विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीको कहा—"महाराज ! इस समय मैं आपके दर्शनोंको यहां आया हूं. इतने दिन तो मैं राजर्षि था और आज ब्रह्मर्षि कैसे होगया ? इसका भेद कृपापूर्वक मुझे बतलाइये." वसिष्ठजी बोले—"हे मुनींद्र ! ब्रह्मर्षिपनके योग्य होनेके लिये ब्रह्मर्षिके सत्त्वगुण—सत्य, शीलता, निरभिमानित्व, इत्यादि ब्राह्मणगुणोंका इस समय आपमें प्रवेश हुआ है और आपके शस्त्र धारण करना, क्रोध और राजसी स्वभाव इन सबका समूल नाश हुआ है, अतएव अब आप ब्रह्मर्षि हैं. आप महान् पवित्र हैं और तपोबलसे साक्षात् ब्रह्मदेवके समान हैं. जबतक आप रजोगुणको धारण करते थे तबतक मैं आपको ब्रह्मर्षि किसप्रकार कह सकता था ? किन्तु अब आपकी ऐसी निर्मल स्थिति होनेसे आप ब्रह्मर्षिही हैं" इसपरसे विश्वामित्रजीने अपनेको कृतार्थ समझा और प्रसन्न होकर वे अपने घरको गये. तबसे उन दोनोंमें परस्पर दृढ़ मैत्री होगई और एक दूसरेको अत्यन्त चाहने लगे.

एक समय वसिष्ठमुनि विश्वामित्रजीके यहां गये. विश्वामित्र उन्हें आये देखकर तुरन्त उठ खड़े हुए और बहुत आदरसत्कार पूर्वक उनका आतिथ्य किया. नानाप्रकारके पुष्प, वनफल इत्यादिसे उनकी यथोचित पूजा करके भोजन कराया. अनन्तर दक्षिणा देनेका अवसर आया तो अपना एक सहस्रवर्षकी तपस्याका फल सङ्कल्प करके उनको अर्पण किया. उसे लेकर

* ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ.

वसिष्ठजी अपने आश्रमको गये. तदुपरान्त किसी समय विश्वामित्रऋषि वसिष्ठजीके आश्रममें जा पहुँचे; तब उन्होंनेभी आदरसहित पूजन करके उनको जिमाया और दक्षिणा देते समय केवल घड़ीभरके सत्संगका फल अर्पण किया. यह देखकर विश्वामित्रजीको क्रोध उत्पन्न हुआ, कि वसिष्ठ क्या मेरी हँसी (दिल्लगी) करते हैं ? क्या इन्होंने मेरी हजार वर्षकी तपस्याका फल, इनके एक घड़ीभरके सत्संगके समान समझा ? ऐसे अज्ञातभावसे उनका मुँह फुला हुआ देखकर वसिष्ठजी बोले—" विश्वामित्रजी ! आपके मनमें खेद हुआ जिससे आपको कुछ क्रोध आया हुआ मुझे दिखाई देता है, परन्तु आपके क्रोध करने जैसा कोई कारण नहीं है. क्या आप सत्संगकी योग्यता तथा इसका माहात्म्य नहीं जानते हैं ? इसमें आपकी कुछ शङ्का हो तो चलिये किसी महान् पुरुषके पास, जिससे इसका निर्णय होजाय." ऐसा कहकर वे दोनों साथ २ सत्यलोकमें ब्रह्माजीके पास न्याय करानेको गये. ब्रह्माजीने सब बातके मर्मको जानकर सोचा कि 'ये दोनों ब्राह्मण समान पराक्रमी हैं, इनके तपका वड़ा प्रभाव है, अतएव जो मैं इनको कुछ उत्तर दूंगा और उचितही कहूंगा तोभी दोनोंके लाभकी बात नहीं होनेसे इनमेंसे कोईभी एक तो अवश्य मुझसे अप्रसन्न होवेहीगा; और यदि क्रोधमें आकर उसने शाप दिया तव तो मुझे महान् कष्ट सहन करना होगा. इसलिये इन्हें परवाहरी टाल वतानाही ठीक होगा.' ऐसा मनमें ठानकर ब्रह्माने कहा—'हे ऋषियो ! आपका यह प्रश्न अतिशय गूढ है इसलिये इसका निर्णय किसी सत्यशील पुरुषसे ही होसकेगा, और मैं रजोगुणी हूं, सो आप श्रीविष्णुभगवानके पास जाइये और इसका सब न्याय कराइये. तब दोनों ऋषि वहांसे वैकुण्ठको गये. भगवान्ने भी, ब्रह्माकी नाईं सोच विचार करके उत्तर दिया कि " मुनिवरो ! यह तो निरन्तर समाधिमें रहनेवाले तथा एकाग्रचित्तवाले पुरुषका काम है, अतएव आप दृढ़ध्यानी शिवजीके निकट जाइये तो वे आपकी तुलनाका न्याय करेंगे; यह सुनकर दोनों ऋषि कैलासको गये. शिवजी उस समय समाधिमें वैठनेको तयार होरहे थे, समाधिका समय होनेमें केवल चार वा पांच क्षण घटते थे, इसीसे उन्होंने कहा—'मेरे तो अव समाधिका समय निकट आगया है सो मुझसे तो आपको उत्तर दिया नहीं जासकेगा. आप शेषराजके पास जाइये.' मुनिगण वहासे अनन्तके पास गये. मुनियोंको अपने पास आये देखकर शेषजी बड़े प्रसन्न होकर कहने लगे–'अहा ! आज वडी कृपा हुई कि,

मुनीश्वर मेरे यहां पधारे. आज मुझे कृतार्थ किया. कहिये क्या आज्ञा है?' यह सुननेके अनन्तर ऋषियोंने उनसे अपना वाद निवेदन किया और कहा कि-' ब्रह्मदेवके पाससे फिरते २ ठेठ शिवजीतक गये, तब उन्होंने आपके पास भेजा है. अस्तु; आप हमारा न्याय कीजिये कि एक वर्षकी तपस्याका फल अधिक है वा एक घडीके सत्संगका फल विशेष है?'

अनंत (शेषजी) ने इस प्रश्नको ध्यानपूर्वक सोचकर कहा-" हे विश्वामित्रजी! मुझे इस पृथ्वीका भार (बोझ) अधिक लगता है इस कारणसे मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता है. यदि आप थोड़ी देरके लिये मेरे शिरपरसे पृथ्वीको अपने शिर उठा लेवें तो मैं शान्तिपूर्वक आपके वादका न्याय करूं" विश्वामित्र बोले-' महाराज! हममें इतनी शक्ति कहांसे आई?' ऐसा सुनकर ' तो शिरपर न उठा सको तो अपने एक हजार वर्षकी तपस्याके बल-प्रभावसे पृथ्वीको मेरे शिरसे एक बालिश्त भर ऊपर तो उठालीजिये!' शेषराजने इसप्रकार कहा तो विश्वामित्रजीने तुरन्त अपने हाथमें जल लेकर कहा-' हे धरा! मैं अपनी एकहजार वर्षकी तपश्चर्याका फल तुझे देता हूं, उस तपोबलके प्रतापसे तू एक बालिश्त भर ऊपर (अधर) उठ.' किन्तु पृथ्वी किंचिन्मात्रभी नहीं हिली. तब शेषने वसिष्ठजीको कहा-' आप पृथ्वीको अधर करो ' तत्काल वसिष्ठजीने जल लेकर कहा-'हे पृथ्वी देवि! मात्र एक घड़ी पर्यन्तके सत्संगका फल तुझको देता हूं, तू ऊपर उठ, जिससे हमारी बातका निर्णय होजाय!' उसीक्षण पृथ्वी शेषके शिरपरसे धड़धड़ाकर ऊपर उठगई जिससे अनंत अत्यंत प्रसन्न हुए. तब विश्वामित्रजी कहने लगे कि ' हे संकर्षण! अब हमको शीघ्र तर उत्तर दीजिये.' इस बातको सुनकर शेषजी खिलखिलाकर हँसे और कहा-' उत्तर तो कभीका देदिया गया! विना बोले आपके प्रश्नका निर्णय होगया.' यह सुनकर विश्वामित्र तत्काल समझ गये और किंचित् लज्जित हो गये. अपने समक्षही जैसा चाहिये वैसा निष्पक्षपात उत्तर मिल जानेसे कुछभी क्रोध न करके शेषकी आज्ञा लेकर, वे वसिष्ठजीके साथ आनन्दसे मृत्युलोकमें आये.

हे शिष्य! इस सबका प्रयोजन यही है कि एक घड़ीभरका भी सत्संग अत्यन्त दुर्लभ है. विश्वामित्रके एक सहस्रवर्षके तपोबलसेभी बढ़कर वसिष्ठका एक घड़ीभरका सत्संग प्रबल हुआ, अतएव सर्व मनुष्योंको सदा सर्वदा सत्संग करना चाहिये.

अष्टादश बिन्दु.

सत्संगका फल.

...... प्राचीनं विघटयति पुण्यं प्रथयति ।
प्रसूते सद्बुद्धिं नवनवकलां पल्लवयति ॥
हरत्यज्ञानान्ध्यं दिशति परमानन्दपदवीम् ।
सतां संगः कल्पद्रुम इव न किं किं वितनुते ॥ १ ॥

अर्थ— सत्पुरुषोंका सङ्ग कल्पवृक्षके सदृश है; क्योंकि उससे क्या २ फल प्राप्त नहीं होता ? वह पापके पुराने पुंजोंका नाश करता है, पुण्यको विस्तृत करता है, सद्बुद्धि देनेवाला है, नई २ कलाओंको विस्तृत करता है, अज्ञानरूपी अन्धताको मिटाता है तथा परमानन्दकी पदवीको देता है.

गुरु— और भी हे वत्स ! तूने पहले मुझे प्रश्न किया था कि 'सत्संगका फल क्या ? और वह किस भांति प्राप्त होता है ?' इस विषयमें एक पुरातन कथा कहता हूं सो सुन.

एक राजधानीमें कोई महाविचक्षण और महाबहादुर चोर रहता था उसने अपने जीवनमें अनेक स्थानोंपर बहुत बड़ी २ चोरियां करके विपुल द्रव्यका संचय किया था. वह सब बातोंमें प्रवीण होनेसे जानताथा कि 'शास्त्र पुराणादिक श्रवण करनेसे मनुष्य निःसन्देह सत्त्वगुणी, धर्मभीरु और उत्तम पुण्यकर्मोंको करनेवाला होजाता है, किन्तु मेरे जैसे चौरवृत्तिवाले लोगोंको, सत्त्वगुण-संपन्न तथा कायर (डरपोक) होनेसे काम नहीं चल सकता, तो फिर पुण्य कर्म करनेवाले कैसे बनें ?' ऐसा सोच समझकर वह अपने लड़कोंको धर्मात्मा न बनने देनेका बहुत ध्यान रखता था; क्योंकि, वह यह जानता था कि, विचारशील हो जानेसे मेरे पुत्र चोरी अथवा लूट

खसोट नहीं करेंगे तो भूखों मरेंगे और मेरे नामको डुबावेंगे. यही चिन्ता करते २ उसके मरनेका समय आपहुँचा और रोगग्रस्त होकर अपंगके समान होगया. दिन २ अशक्त होता जाता था, इसलिये अपने जीनेकी आशा न देखकर, उसने अपने सब लड़कोंको बुलाकर अपने निकट बिठाया उस आसन्न मृत्यु चोरने जहां २ अपनी चोरियोंसे मिला हुआ धन–माल गाड़ रक्खा था वह सब उन लड़कोंको बतला दिया तो भी उसका प्राणान्त नहीं हुआ. अपने पिताका जीव किसी वस्तुमें अटक रहा है ऐसा सोचकर लड़कोंने पूंछा—' *काका ! तुम क्यों घबराते हो ? तुम्हारी क्या इच्छा है ? किस चीजमें तुम्हारा जी अटक रहा है ? अब सबका मोह छोड़कर अपना कल्याण करो.' यह सुनकर सिसकता २ (डचके खाता) बहुत धीरेसे उसने कहा–" जो तुम मेरी बात मानों तो मैं कहूं " इसके उत्तरमें उसके बड़े लड़केने कहा–" ठीक है, जो तुम कहोगे वोही हम तुम्हारे पीछे करेंगे. यह हमारा प्रण है. तुम अपने मनमें कोई बात मत रक्खो. " तब उस चोरने फिर कहा–" मेरे पीछे दालदलिया तो तुम अपनी हैसियत मूजब करना, परन्तु मेरा कहना तो यह है कि, तुम कोईभी कभी कथा पुराण सुननेके लिये मत जाना और न किसी संत–महंतके पास बैठना. हमारे पूर्वजोंने जो आज्ञा की थी वही तुमको कहता हूं उसीके अनुसार तुम लोग चलना." यह कहकर उसने प्राणत्याग किया.

उसके मरने पीछे, लड़के अपने पिताके अन्तकालके वचनोंपर चलने लगे. साधुसंग और हरिकथाके नामको सुनकर दूर भागते, और रातदिन चोरी डाकेमें रत रहते. कोई संत पुरुष आता अथवा कोईभी भगवान्का नाम लेता तो वे तत्काल वहांसे हटजाते. जाते २ कहीं मंदिर बीचमें आजाता तो वहांसे लौटकर किसी दूसरे मार्ग होकर चले जाते. इस भांति उल्लूकी नांई महामूढ़ होकर वे रहने लगे. एकदिन उनमेंसे सबसे बड़ा बेटा किसी कामके लिये बाहर जाता था, मार्गमें एक मंदिर था, वहां हरिकथा हो रही थी; अपने पिताके वचनोंके अनुसार उसको कथाका एक शब्दभी नहीं सुनना चाहिये, इस लिये उसने उधरसे न जाकर किसी दूसरी गलीसे जानेके विचारसे इधर उधर देखा, परन्तु वहां तो किधरभी मार्ग नहीं था, उसी मन्दिरके आगे होकर जानेके सिवाय छुटकारा नहीं

* हल्की जातके कोली चमार लोगोंमें बापको काका कहनेकी चाल है।

था. लाचार वह अपने दोनों कानोंमें उंगलियां डालकर और मंदिरकी ओरसे मुख हटाकर दूसरी तरफ देखते २ ऊंटकी तरह चलने लगा; ऊपर नजर होनेसे पांवके नीचे क्या है सो नहीं देख सकता. कर्मसंयोगसे मार्गमें एक बबूलका कांटा सीधा पड़ा हुआ था सो उसके पांवमें घबसे घुस गया. अब बिना कांटा निकाले आगे कैसे जा सके ? विवश होकर वह चोर कानोंमेंसे उंगलियोंको हटाकर कांटा निकालने लगा. फुर्ती तो उसने बहुत की, झटपट कांटा निकाल डाला; परन्तु जितने देरतक उसको वहां रुकना पड़ा उतनेहीमें हरिकथाके दो चार शब्द उसके कानोंमें होकर अन्तः-करणमें प्रवेश करगये. उसके सुननेमें आया कि–' देवताके छाया नहीं होती ' जो कि वह कांटा निकालकर तुरन्त वहांसे चला गया तो भी सुनी हुई बातको अनसुनी नहीं कर सका, देवछायाकी बातको वह भूल नहीं सका.

किसी समय आधी रात बीत जानेपर, चोरका वही सबसे बड़ा लड़का चोरी करनेके लिये नगरमें घूमने लगा. उधर कहींभी मौका नहीं पाया तब अपने घरको लौटने लगा. वह राज–महलके पिछली तरफसे चला जाता था, अकस्मात् जो ऊपरको आंख उठाई तो उसे महलकी एक खिडकी खुली हुई दिखाई दी. चौकी पहरेसे आंख चुराकर, उसने पासकी गोह* तुरन्त दीवालपर चढ़ा दी. ज्योंही वह खिड़कीतक पहुँची तब झटपट रस्सी पकड़ कर वहभी ऊपर चढ़ गया. भीतर जाकर देखा तो उसने समझा कि अब तो मेरा भाग्य खुल गया ! जवाहरातके बड़े खजानेमें वह पहुँच गया. चारों ओर बहुमूल्य रत्नोंके ढेर देखकर, जितना उससे लिया गया उतना उसने लेकर एक गठड़ी बांधी, और उसे रस्सी बांधकर नीचे लटका दी. साथही वहभी तत्काल नीचे उतर आया. जब गठड़ीको उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि बोझा अधिक होनेसे अकेला घरतक उसे नहीं ले जा सकता. उसे किस भांति घर ले जाना इस बातका वह विचार कर रहा था कि, तत्क्षण पासमेंही एक ऊंट बैठा हुआ था उसपर उसकी दृष्टि पड़ी. उसने गठड़ीके दो भाग करके पलानकी भांति वे ऊंटकी पीठपर बांधे और युक्तिपूर्वक ऊंटको खड़ा करके चुपचाप वहांसे बाहर निकला. चोर लोग

* चोर लोग गोहकी कमरमें रस्सी बांधकर उसको दीवालपर फेंक देते हैं, और जब वह दीवारसे चिपट जाती है तब उसकी कमरमें बँधी हुई रस्सीके सहारेसे ऊंचे २ मकानोंपर चढ़ जाते हैं.

गुप्तसे गुप्त मार्गको तुरन्त ढूंढ़ लेनेमें बहुत कुशल होते हैं. इसप्रकार उसने भी एक ऐसा मार्ग ढूंढ़ निकाला कि, जिधर चौकी पहरा तो दूर रहा, कुत्तेतकका भी पता निशान नहीं था, और उधरसे चोरीका 'खोज' मिलनेकाभी सम्भव नहीं था. घर पहुँचतेही उसने द्रव्यको तो झटपट भूमिमें गाड़ दिया और चोरीका पता न लासके इसलिये ऊंटको खुला न छोड़कर उसेभी मार डाला और गाड़ दिया.

दूसरे दिन प्रभात होनेपर राजमहलमें चोरी होनेके समाचार सुने तव राजाने अपने मनमें सोचा कि, "जब मेरे यहांभी चोरी होगई तो बेचारी रैयतका क्या हाल होता हो ? चाहे जैसे हो परन्तु इस चोरीका पता लगाकर अवश्य उस चोरको ऐसा कड़ा दण्ड देना चाहिये कि जिससे चोर लोगोंका कलेजा थर्राने लगे और आजसे चोरी होना बिलकुल बंद होजाय." राजाने इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके डौंडी पिटवादी कि "जो कोई ४ दिनके भीतर राजमहलमें चोरी करनेवाले चोरका पता लगाकर उसको पकड़वा देगा उस मनुष्यको, चोरीमें गये हुए धनसे सवाया धन इनाममें मिलेगा" सारे नगरभरमें यह बात फैल गई; किन्तु किसीनेभी चोरको पकड़ देनेका साहस नहीं किया. निदान एक वेश्या चोर पकड़नेको तैय्यार हुई. नगरनारियां (व्यभिचारिणी स्त्रियां) बड़ी विलक्षण युक्तिवाली और चतुर होती हैं. 'स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' देवभी स्त्रीके चरित्रको नहीं जान सकते, यह बात केवल ऐसी कुलटा स्त्रियोंके विषयमेंही यहां कही गई है, उनके यहां सैंकड़ों लुच्चों लफंगोंका जाना आना रहता है, इसकारण उनसे कोई बात छिपी नहीं रहती. दूसरे दिन उस वेश्याने अपना सदाका सुन्दर वेप त्याग कर, एक कंगाल भिखारिनका रूप बनाया; हाथमें इकतारा तंबूरा लेकर भजन गाती और विलाप करके रोती हुई, अत्यंत दीन और दारुण दुखिया बनकर गली २ घूमने लगी. फिरती २ वह चोरोंके मुहल्लेमें गई और नानाप्रकारके विलाप करती हुई आंखोंसे आंसू बहाकर बड़ा मलीन मुंह बना २ कर नानाप्रकारकी करुणोत्पादक चेष्टाएं करके कहने लगी—"अरी बहनो ! मैं बड़ी गरीब, दुःखिया हूं. भगवान् तुम्हारा भला करेगा, अरे कोई तो सुनो ! अरे मैं बड़ी लाचार हूं ! मेरे एकही एक बेटा है; अरे उसको मसानरोग लग गया है. हाय २ वह बेचारा तड़प रहा है. अरे ! उस अनाथके दुख मुझसे नहीं

देखे जाते. ए वहन ! ओ भाई ! अरे कुछ तो दया करो. अरे थोड़ासा मरे हुए ऊंटका मांस हो तो दो. इसके विना मेरा वेटा मर जाता है. अरे रे ! मेरा क्या हाल होगा ? ओ बाई ! मेरे वेटेको जीवदान दो. अरे ! वड़ा पुण्य होगा. प्रभु तेरा भला करेगा." ऐसी दीन वाणीको सुनकर चोरोंकी स्त्रियोंके मन पिघल गये और एक चोरकी स्त्रीने, जो ऊंट मारकर गाड दियाथा उसका थोड़ासा मांस लाकर उस भिखारिनको दे दिया. किस घरमेंसे मास मिला इस बातकी निशानीके लिये भिखारिनने अपने हाथमें रोरी लगाकर उस घरके दरवाजेपर, छापा लगा दिया; और किसीको सन्देह न उपजे इस अभिप्रायसे उन स्त्रियोंको समझा दिया कि–" मैं महामायाकी पुजारिन हूं, उसको प्रसन्न करनेको भोग देनेके लिये यह मास लिये जाती हूं. तुमने परमार्थके लिये मेरा काम किया है सो तुम्हारे ऊपर माताजी लीला लहर करेंगी, इसलिये यह मंगल छापा लगाती हूं." ऐसा कहकर तुरन्त वहांसे चली गई.

जब वह चोर अपने घरको आया तो देखा कि, अपने घरके दरवाजेपर छापा लगा है, देखतेही उसने अपने मनमें समझ लिया कि कोई मुझे उस्ताद आ मिला. पीछे उसने स्त्रियोंसे सव हाल पूंछा तो उन्होंने कहा कि, 'एक भिखारिन आई थी सो ऊंटका मांस लेगई और दरवाजेपर छापा लगा गई !' यह वृत्तान्त सुनकर चोरने उस छापेको पुतवा कर साफ करा दिया और रातको दूसरे दस वारह घरोंके दरवाजोंपर रोरीके छापे लगा आया कि, जिससे यह नहीं जाना जा सके कि उस चोरका घर कौनसा है. दूसरे दिन वेष पलटकर वह वेश्या वह जगह देखनेको गई तो जिस घरपर उसने छापा लगा दिया था वहां कुछ नहीं था, किन्तु और और दस वारह घरोंमें छापे लगे हुए थे. यह देखकर, उसने निश्चय किया कि अवश्यही जिसने छापा पुतवा डाला वही चोर है. ऐसा अनुमान करके वह वेश्या उस घरकी कुछ निशानी रखकर अपने घर लौट गई. तदनन्तर रातके समय, उस वेश्याने देवीका स्वांग वनाया, दो कृत्रिम हाथ वनाकर चतुर्भुजा देवी वनगई. एक हाथमें प्रज्वलित–जलती हुई सिगडी ली, दूसरे हाथमें खप्पर लिया, तीसरे हाथमें नंगी तलवार ली और चौथे हाथमें त्रिशूल धारण किया; शिरके केश खोल डाले और पीठपर फैला दिये. इस प्रकार भव्य योगमायाका रूप धारण करके भैंसे पर सवार होकर वह घरसे बाहर निकली.

आधीरात लगभग बीत चुकी थी, गाममें सोपा पड़गया था, ऐसे समयमें वह देवीरूपधारिणी वेश्या चोरोंके महल्लेमें गई और उसी चोरके घरके दरवाजेको खटखटाने लगी. उन चोरोंने घरमेंसे बाहर निकलकर देखा तो 'प्रत्यक्ष देवी महामाया अपने घर आई है' ऐसा समझकर घरके सब लोग उसके चरणोंमें शिर नवाकर "जय माताजी ! क्षमा कीजियें हे आशापूर्णा ! जय जगदंबे ! जय महामाया !" इत्यादि शब्दोंसे उसको वंदना करने लगे. चोर लोग देवीके परम भक्त होते हैं. तब देवी गंभीर वाणीसे कहने लगी कि "क्यों रे मूढ़ो ! तुमने अपने मनमें क्या समझ रक्खा है ? आठ आठ दिन होगये, मजा उड़ाते हो, तोभी मैं किसीको तुम्हारा नाम नहीं लेने देती, और चारों तरफसे तुम्हारी रक्षा करती हूं. तिसपरभी तुम मेरा बलिदान कैसे भूल गये ?" देवीके ऐसे वचन सुनकर वे चोर मारे डरके थरथर कांपने लगे, और न जाने, माता अभी क्या कर डालेगी इस भयसे, तीनों भाइयोंके साथ वह चोर लंबा होकर देवीके चरणोंमें गिरा और हाथ जोड़कर विनती करने लगा कि "हे माताजी ! आपने हमपर बड़ी कृपा की जो आज हमको दर्शन दिये; अहो मातेश्वरी ! आपकी कृपासे जो कुछ हमको मिला है उसमेंसे एक पाईभी अभीतक हमने नहीं खर्ची, सब ज्योंका त्यों रक्खा है, अमुक ठिकाने गड़ा हुआ है. पहले आपको बलिदान देकर पीछे हम उसे हाथ लगावेंगे, तबतक तो यह हमारे हराम बराबर है. अभीतक शहरमें तहकीकात चल रही है; इसलिये आपको भोग नहीं दिया गया सो क्षमा करो माताजी !"

इसके सिवाय और कुछभी जांच परताल उस वेश्याको करनी नहीं थी, इससे बढ़कर खात्री करनेकी उसे कुछ आवश्यकता नहीं थी, और कोई विशेष प्रमाणभी उसको अब नहीं चाहिये था, अतएव इसभांति पूरा पूरा पता लगाकर, अपना काम सिद्ध हुआ जान, मनमें प्रसन्न होती हुई वह वेश्या वहांसे विदा हुई और जाते वक्त कह गई कि "ठीक है, भूलना मत. नहीं तो यह खप्पर देखा है क्या ?" ऐसे डर बताकर झटपट वहांसे चलने लगी, परन्तु उसके हाथमें जलती हुई सिगड़ी होनेसे जब वह चलने लगी तो उसके शरीरकी परछाई पडी. यह देखकर उस बड़े चोरको तुरन्त याद आया कि "अरे ! यह तो देवी नहीं जान पड़ती; क्योंकि देवताके तो छाया नहीं होती, और इसकी तो परछाया पड़ी है. हो न हो परन्तु

इसमें अवश्य कुछ दगा है. कदाचित् यह देवी रांड़ कुछ फंद खड़ा करे !" ऐसा सोच समझकर समयसूचकताका उपयोग करके तत्क्षण वह बड़ा चोर उसके पीछे दौड़ा और उस वेश्याको पकड़के तलघर (भुइंहरे) में बंद कर दिया.

वेश्याकी मुद्दत पूरी होगई, चोरका पता नहीं लगा. राजाने दूसरी वार डौंड़ी पिटवाई कि, " जो कोई चोरको पकड़ लावेगा उसको, अथवा चोरही स्वयं हाजिर होकर अपराध कबूल करेगा तो उसको भी मैं अपनी लड़की व्याह दूंगा और आधे राज्यका मालिक करूंगा. " यह बात सुनकर, दूसरे दिन वह चोर स्वयंही राजसभामें जा खडा हुआ और कहने लगा " महाराज ! अपने वचनका पालन कीजिये ! मैंही चोर हूं और आपका सब द्रव्य ज्योंका त्यों मेरे पास तयार है. ' चोर वही है इसका निश्चय करनेके लिये अनेक रीतिसे उसकी परीक्षा करनेके अनन्तर राजाने अपने कथनानुसार उसको कहा " तू कहता है सो सच है. ले यह कन्या व्याह ले और अपना आधा राज संभाल ले. मैं एक बार जो वोल चुका, वह सत्यही है. " यह सुनकर चोर विचार करने लगा कि–"अहो ! कैसे आश्चर्यकी वात है ! क्या चोरको कोडे पडते हैं और वेडी डाली जाती है वा राजकन्याके साथ विवाह और राज्यवैभवकी प्राप्ति होती है ? क्या, चोरको मारो, पीटो, बांधो, ऐसा कहा जाता है वा यह अपना आधा राज्य ले और यह कन्या व्याह, ऐसा होता है ! अहो ! कैसी अद्भुत लीला है ! पर यह सब किसकारणसे हुआ ? वह वेश्या हमको ठगकर सहीसलामत चली गई होती तो दूसरेही दिन हमारी मौत आती, परन्तु उसकी परछांई देखकर, उस मंदिरके आगे खडे रहजानेसे सुना हुआ कथावचन याद आगया, उसीने हमारा उद्धार किया है और मुझको ऐसा भाग्यशाली वनाया है. अहो ! एकही दिन, केवल एकही वार, और वहभी एकही शब्द, सोभी अनिच्छासे, कष्टसे, सत्यवचन सुननेमें आया, उसीसे मेरा ऐसा भाग्योदय हुआ है, तो यह सत्संग निरन्तर हो और कथा श्रवणगोचर हो तो मेरा इस लोकमें और परलोकमें कल्याण होनेमें क्या कमी रहे ? अरे रे ! मेरे मूर्ख पिताने कहा कि ' सत्संग कभी नहीं करना. ' परन्तु वह कैसा अज्ञानी, कैसा मूढ़, कि आपभी वैसेका वैसा पांव रगडता कुए (नरक) में गिरा और पीछे वालकोंको भी उसीमें गिरनेका उपदेश देता गया ! " ऐसा विचार करता करता वह चोर, पूर्वजन्मके संस्कारके योगसे परम वैराग्यमें मग्न होगया.

और फिर जैसे नींदमेंसे उठा हो इस भांति एकाएक चौंककर कहने लगा-"राजाधिराज ! यह राजवैभव और यह राजकन्या इन्हें लेकर मैं क्या करूं, ये तो नरककी खानि हैं, पापके पुतले हैं, राजपुत्री मेरी बहनके समान है, उसका मैं क्या करूं? हर ! हर ! मैं उसको ब्याहूं ? अरे ! यह तो बड़े अकल्याणकी बात होजाय ! क्योंकि ऐसा करके, मैं अपने हाथमें आये हुए अमूल्य हीरेको खोदेता हूं. केवल एकही वचन, क्षणमात्र, इच्छाविना, अनायाससे, एकही श्रवणद्वारा मेरे हृदयमें प्रविष्ट हुआ था, जिससे ऐसा अद्भुत और अमूल्य लाभ मिला है तो निरन्तर शास्त्रश्रवण और सत्संग करनेसे किस बातका घाटा रहे ? महाराज ! मुझे यह राज्यवैभवका सुख नहीं चाहिये. अब तो मैं इस संसारकोभी नहीं चाहता; असारके सेवनसे क्या सार मिलनेवाला है ? मैं वैराग्य लेकर वनमें जा रहूंगा. वहां रहकर ईश्वराराधन करके मेरे इस देहगेहका कल्याण करूंगा. तदनंतर आत्माका शोध करके जिस परमात्माको प्राप्त करनेको अनेक ऋषिमुनि प्रयत्न कर रहे हैं, उसीको प्राप्त करनेका मैंभी प्रयत्न करूंगा." ऐसा कहकर उस चोरने तुरन्त सद्गुरुके पास जाकर उपदेश लिया, और वैराग्यवान् होकर ज्ञान होनेपर आत्मानात्माका स्वरूप जानकर वह चोर अनेक जन्ममें परमपदको पहुँच गया.

हे वत्स ! सत्समागमसे कैसे कैसे लाभ होते हैं सो तू समझा होगा. अनेक साधनोंसे बढ़कर मोक्षका परम साधन ज्ञान है. अग्निके बिना रसोई नहीं बनती तैसेही ज्ञान विना मोक्ष नहीं मिलता. सत्संगही सब शुभ साधनोंका मूल है, यही वैराग्यका मार्ग है, यही भगवत्प्राप्तिका कारण है और यही सत्संग मोक्षकी निसरणी (सीढी) है. इसके विषयमें जितना कहें उतनाही थोड़ा है.

एकोनविंश बिन्दु.

वैराग्य.

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥ [भर्तृहरि.]

अर्थ— भोगमें रोगका भय, कुलमें भ्रष्ट होनेका भय, धनमें राजाका भय, मानमें दीनताका भय, बलमें शत्रुका भय, रूपमें जराका भय, शास्त्रमें वादका भय, गुणमें खलका भय, और देहमें कालका भय इसप्रकार जगतमें सर्व वस्तुएं मनुष्यके लिये भययुक्त हैं, किन्तु एक मात्र वैराग्यही अभय (भयरहित) है.

शिष्यः— महाराज ! आपने अभी जो वैराग्य विषे कहा सो वह कैसा होता है ? वैराग्य कब और किसको उत्पन्न होता है तथा उससे कैसा फल प्राप्त होता है, सो मुझको यथार्थ कहनेकी कृपा कीजिये.

गुरु— वत्स ! यह जगत् मायाकी उपाधिरूप है. इसकी अच्छी वा बुरी सर्व वस्तुओंको मिथ्या मानकर, उनपरसे प्रीतिको हटा देना अर्थात् उनमें मोह नहीं रखना, इसीको वैराग्य कहते हैं. इस संसारके समस्त पदार्थ परमात्माके सिवाय अन्यान्य सर्व वस्तु असत्यही हैं; ऐसा दृढ़ निश्चय हो चुकने पर ज्ञानीको (मुमुक्षुजनको) वैराग्य उत्पन्न होता है, तदनन्तर उस वैराग्यके कारणसे ज्ञानीका चित्त सांसारिक किसी विषयमें नहीं लगता. वह केवल आत्मस्वरूपमेंही दृढ़तापूर्वक लीन रहता है जिससे यह (ज्ञानी) परम मुक्तिको प्राप्त होता है, यह वैराग्य कैसा होता है सो श्रवण कर.

पूर्व कालमें मिथिलापुरीमें जनकराजाके वंशज राज्य करते थे. मिथिलाके सर्व राजगण परंपरासे जनक विदेहके नामसेही विख्यात थे. योगीश्वर

याज्ञवल्क्य ऋषि उनके गुरु थे. महात्मा याज्ञवल्क्य महान् प्रतापी और ब्रह्मविद्याके परम ज्ञाता थे, तथा ब्रह्मज्ञानियोंमें अग्रगण्य थे. इसी भांति जनकराजा भी गुरुप्रसादसे उत्तरोत्तर महान् तत्त्ववेत्ता होते चले आते थे. किसी एक जनकने एक समय योगीन्द्र याज्ञवल्क्यसे प्रश्न किया कि-"हे गुरुदेव ! आपने अनेकवार कहा है कि वैराग्य विना प्राणीकी मुक्ति नहीं, तो उस वैराग्यका स्वरूप कैसा है सो अनुग्रह करके बतलाइये." यह सुनकर राज-गुरु याज्ञवल्क्यजीने विचार किया कि 'इसको कैसे समझाना ? क्योंकि कोई अज्ञात हो तो उसको वैराग्यका वर्णन करके बतावें कि ऐसी ऐसी स्थिति हो तो उसे वैराग्य जानना. किन्तु यह तो अनजान नहीं है. यह स्वयं विरक्तकी कैसी स्थिति होती है उसको भली भांति जानता है. वैराग्यकी स्थितिका ज्ञान राजाकोभी है और मुझेभी है, परन्तु तत्त्ववेत्ता कहलातेहुए भी राजा और मैं दोनोंभी विरक्तकी नांई नहीं रहते, यही इसमें दोष है. मैं भी व्यवहार तथा विषयोंमें लुब्ध हो रहा हूं और राजाभी व्यवहार और विषयोंमें लुब्ध है; तो इसको किस प्रकार समझाना चाहिये, इसको तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे समझावें तो ठीक हो.' इस भांति विचार करके ऋषिने कहा-"हे राजन् ! आज तो अवसर नहीं है, कल तुझे वैराग्यका यथार्थ स्वरूप उसके विशुद्धभावमें ही बतलाया जावेगा."

याज्ञवल्क्य ऋषिकी दो पत्नियां थीं. एकका नाम कात्यायनी तथा दूसरीका नाम मैत्रेयी था. ऋषिराजने राजसभामेंसे अपने घर आतेही अपना जितना द्रव्य था सो सब उन दोनों स्त्रियोंको उनकी प्रजाके संरक्षणार्थ देना शुरू किया. तब मैत्रेयी कि जो पतिमें पूर्ण प्रेम रखती थी, पति-व्रताधर्मका भलीभांति पालन करनेवाली थी, और समर्थ सती थी, उसने ऋषिराजसे कहा "हे स्वामिन् ! मुझको इस द्रव्यकी लालसा किसलिये रखनी चाहिये ? चाहे तो आप इसका दान करें अथवा चाहे आप इसको जलादें, मुझे इस द्रव्यकी अपेक्षा नहीं है. मैं तो जहां आप जायँगे वहीं आपके चरणोंकी सेवा करनेमें तत्पर रहूंगी. मेरा धन, मेरा माल और मेरा प्राण जो कुछ है सो केवल आपही हैं. आपके सिवाय मेरे और कोई नहीं है, न मुझे और कुछ चाहिये. मेरे तो यह लोक, परलोक और साक्षात् परमेश्वर आपही हो." यह सुनकर ऋषिवर्यने कहा-"हे स्त्री ! मैं तो संन्यास धारण करूंगा अतएव संन्यासीके साथमें स्त्रीका रहना किस प्रकार

संभव हो ?" तदनन्तर ऋषिने संन्यासीका क्या धर्म है, उसका क्या कर्त्तव्य है, कैसे रहना चाहिये इत्यादि सब बातें मैत्रेयीको समझाकर कहीं; किन्तु वह न तो अपने निश्चयपरसे विचलित हुई और न उसने द्रव्यभी लिया; परंच सारा द्रव्य कात्यायनीको देदिया. तब सती मैत्रेयीकी ऐसी दृढता और पतिप्रेम तथा सद्गुणोंको देखकर याज्ञवल्क्य ऋषिने उसको एकही रातमें तत्त्वोपदेश करके ज्ञानके सर्वांगसे पूर्ण बनाकर उससे योग धारण कराया. प्रातःकाल होतेही घरबार इत्यादि समस्त उपाधियोंका त्याग करके कौपीन (लंगोट) मात्र धारण करके याज्ञवल्क्यजी राज-द्वारपर जा खड़े हुए. आजका ऋषिराजका वेष तो निराले ढंगका था, किन्तु कान्ति छिपानेसे नहीं छिपती. ये राजाके गुरु हैं ऐसा जानकर उनको राजसभामें जातेहुए किसीने नहीं रोका. राजा जनक सभामें आकर विराजमान हुआ, इतनेमेंही ऋषिदेव भी वहां जाकर ' ॐ तत्सत्परमात्मने नमः ' कहकर विलक्षण रूपसे खड़े होगये. यह देखकर सारी सभा आश्चर्य-चकित होगई और राजाभी यकायक ऋषिको ऐसे ढंगमें देखकर दिङ्मूढ होगया. उसने ऋषिको प्रणाम करके पूछा-"अहो ऋषिराज ! गुरुदेव ! यह क्या ?" याज्ञवल्क्यजीने कहा-"तेरे कलके प्रश्नका उत्तर-वैराग्यका स्वरूप" यह सुनकर राजा जनक तुरन्त सिंहासनपरसे उठा और दंडवत् प्रणाम करके ऋषिके चरणारविन्दोंमें गिरपड़ा और बोला-" हे महाराज ! बस करिये, बहुत होगया, मैं वैराग्यका सच्चा स्वरूप समझ गया; इसलिये अब आप कृपा करके इस योगी वेषको शीघ्र तजिये. " तब सब लोगोंके सुनते हुए, मानों उपदेश कर रहे हों इस भांति उच्चस्वरसे ऋषिराज कहने लगे-" हे राजन् ! क्या कोई पुरुष मलमूत्रका त्याग करके पीछा फिर कर उसे देखना चाहता है ? क्या हाथीके दांत मुखमेंसे बाहर निकलने पश्चात् पीछे मुखमें समा जाते हैं ? जो सती स्त्री, संसारकी मायाकी उपाधिको त्यागकर पतिके सहगमनके लिये बाहर निकलती है वह क्या पीछी फिरती है ? नहीं, कदापि नहीं. जो विद्या तथा अविद्या दोनोंको जानता है वह अविद्यासे मृत्युको जीत लेता है और विद्यासे अमरत्वको प्राप्त होता है, ऐसा शास्त्रोंमें कहा है. परन्तु जिनको बोध दिये जानेपरभी किसी भांतिसे अनुभव नहीं होता ऐसे अज्ञानियोंको शास्त्र किस रीतिसे बोध करावेगा ? लोकवासनासे, शास्त्रवासनासे तथा देहवासनासे जीवको यथार्थ ज्ञान नहीं

होता, परन्तु जब सत् एवं असत्का ज्ञान उत्पन्न होता है तो तत्काल वासनाओंका परित्याग हो जाता है और यही वैराग्यका असली स्वरूप है सो तू यह देख. यह वैराग्ययोग मैं अब कैसे त्याग दूं ? बस, अब तो यही सही. संन्यास धारण किया. मैं तो अपने आपको कृतार्थ समझता हूं और हर्षित होता हूं कि भगवान्ने अनायास ऐसा अमूल्य अवसर मुझे प्राप्त कराया; क्योंकि यह असार तथा विषयोंसे परिपूर्ण संसार कि जिसके विषयोंको भोगते हुए किसी समयभी तृप्ति नहीं होती और न कभी होवेगी, उसमेंसे प्रभुने मुझे एकाएक मुक्त कर दिया है. अतएव, हे जनकराज ! इस भवजालमेंसे सहज छूटा हुआ जीव फिर उसीमें फँसनेकी इच्छा कभी नहीं करता. अब तो मुझको योग, योग और योगही अत्यन्त प्रिय है तथा कल्याणकारक है. जान लेने (ज्ञान होने) पीछे इस संसारमें फँसा रहना यह ज्ञाता पुरुषका लक्षण नहीं है.'' इस प्रकार योगकी बहुतही प्रशंसा करके याज्ञवल्क्य योगीश्वर वनको चले गये.

याज्ञवल्क्य जो उस समयतक जनकके पुरोहित और ऋषीश्वर कहलाते थे सोही पीछेसे योगियोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण योगीश्वरके नामसे प्रख्यात हुए.

विंश बिन्दु.

आत्मानन्द.

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ॥
अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥

अर्थ— पूर्वमें जिन्होंने हमको यह (आत्मानन्दका स्वरूप) समझाया है, उनसे हमने इसप्रकार सुना है-वहां (आत्मानन्दका स्वरूप जाननेमें) चक्षुकी गति नहीं, वाणीकी गति नहीं (और) मनकी भी गति नहीं; हम उसको जानते नहीं, तथा किस प्रकार जाननेमें आवे सोभी जानते नहीं; वह विदितसे अन्य है, ऐसेही अविदितसे भी अधिक है.

शिष्य— हे अशरणशरण गुरुदेव ! आपके उपदेशामृत पान करनेसे मुझको जो आनन्द प्राप्त होता है वह अतुलनीय एवम् अवर्णनीय है. हे प्रभु ! जो २ वाक्य आपके मुखारविन्दसे निकलते हैं वे सब सत्यसे परिपूर्ण और मोक्षरूपही हैं अर्थात् मनुष्य प्राणीको अवश्यमेव सत्समागम करना, गुरुके उपदेशसे ज्ञान सम्पादन करना, संसारके समस्त विषयोंमेंसे चित्तको हठाकर वैराग्य धारण करना तथा अनुक्रमसे कहा जाय तो प्रथम वर्णाश्रमधर्मानुसार सच्छास्त्र प्रतिपादित कर्मोंको करना इससे चित्तकी निर्मलता तथा सन्मार्गमें प्रवृत्ति होनेपर सगुण होते हुएभी निर्गुण ब्रह्मकी उपासना (भक्ति) करना और इन सब कारणोंसे अन्तःकरण पवित्र तथा ज्ञानसंपादन करनेके योग्य होजाय तब महात्मा पुरुषोंकी शरण ग्रहण करना और उनके भवतारण उपदेश (तत्त्वमसि) इत्यादि महावाक्योंका वारंवार मनन करके वैराग्यवान् बनकर, जगत्की सर्व उपाधि-

योंका परित्याग करके आत्माको पहचानना, ये सब कार्य केवल आत्माको पहचानकर उसके अनुभवजन्य सुखकी प्राप्तिके लिये करते रहने चाहिये तो हे दयानिधे! मुझको इसका परम आश्चर्य होता है कि ऐसे परम दुष्कर साधनोंसे प्राप्त होनेवाला जो आत्मानुभवसुख जिस किसीको प्राप्त होता होगा उसको उस समय कितना और कैसा आनन्द होता होगा सो कृपा करके मुझे बताइये.

गुरु–हे वत्स ! तूने जो कहा सो यथार्थ है. कर्म, उपासना, ज्ञान आदिक सर्व केवल आत्माको जानने और तज्जन्य महासुखकी प्राप्ति होनेके लियेही हैं; परन्तु क्या उस आत्मसुखका वर्णन किया जा सकता है ? अहो ! उस परम सुखके स्वरूपको कौन वर्णन कर सकता है ? सरस्वती, शेष, शिव, अज (ब्रह्मा) तथा सनकादिक ब्रह्मकुमारादि महाज्ञानी महात्मागणभी उस सुखका वर्णन त्रिकालमें भी करनेको समर्थ नहीं हैं तो उसका वर्णन करनेकी मेरी क्या शक्ति ? वह सुख तो अनिर्वचनीयही है; परन्तु पूर्वकालमें ऐसाही एक प्रश्न महात्मासे उनके मुमुक्षु शिष्यने पूछा था, उसका प्रत्युत्तर गुरुने बड़ी विलक्षण रीतिसे देकर उसका समाधान किया था, उसका सब इतिहास विस्तारपूर्वक तुझे सुनाता हूं सो श्रवण कर; जिससे तेरी शंका निवृत्त हो जायगी.

प्राचीन कालमें किसी एक रमणीय नगरमें ज्ञानसिंह नामका महाप्रतापी राजा राज्य करता था. वह न्यायी, दयालु, प्रजापालनमें अहर्निश तत्पर, शूर वीर और तेजस्वी था. उसके भक्तिमती नामकी महापतिव्रता स्त्री थी. उस सौंदर्यसंपन्न अंगनाके साथ राजा ज्ञानसिंह नानाप्रकारके नित्य नये २ राजवैभवोंको भोगता था. इसी प्रकारसे करते २ बहुतसा काल व्यतीत हो गया तोभी राणी भक्तिमतीको पुत्र वा पुत्री कोईभी संतति नहीं हुई. इसकारण दोनों स्त्री पुरुष संततिकी इच्छासे प्रतिदिन आतुर रहने लगे. संसारी स्त्री पुरुषका जोड़ा प्रजोत्पत्तिके लियेही ईश्वरने सृजा है. फलतः उनको पुत्रकी कामना होना स्वाभाविकही था, परन्तु अनेक वर्ष विना पुत्रकेही बीत गये, जिससे उनकी आतुरता अत्यन्त वृद्धिंगत होगई. एक दिन राजाने अपने पुरोहित तथा प्रधानोंको एकान्तमें बुलाकर कहा कि–चाहे जिस उपायसेभी हो परन्तु मेरा अपुत्रत्व अवश्य मिटाना चाहिये. इसे सुनकर उन सब विद्वानोंने विचार करनेके अनन्तर उत्तर दिया कि–

"हे राजन्! संतानप्राप्त्यर्थ आपको पुत्रकामेष्टि यज्ञ करना चाहिये." पुत्रप्राप्तिमेंही अपना श्रेय समझनेवाले ज्ञानसिंहने, तत्काल मुहूर्त्त देखकर, यज्ञमंडप बँधवाया, यज्ञमें आवश्यक सर्व सामग्री इकत्रित कराई, देशदेशान्तरसे सर्व विद्वान् ब्राह्मणों तथा राजाओंको निमंत्रण भेजकर बुलाया, और स्त्रीसहित यज्ञदीक्षा लेकर यज्ञारंभ किया. मंडपमें कर्णेंद्रियको तृप्त करनेवाले नानाप्रकारके सुन्दर स्वरवाले वाजे वज रहे हैं, मंगलमुखी सुन्दरियां मंगलगीत गा रही हैं, ब्राह्मणगण वेदमंत्रोचार करके 'स्वाहा स्वाहा' करते हुए आहुति दे रहे हैं, देवतागण अपना २ यज्ञभाग ग्रहण कर रहे हैं. इसभांति धूमधामसे यज्ञकार्य हो रहा है ऐसेही समयमें एक नया आश्चर्य हुआ.

यज्ञकी पूर्णाहुतिका समय हो रहा था, ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे थे और यज्ञकी समाप्तिकी आहुति देनेकी तयारी थी उसी क्षण, यज्ञकुंडमेंसे एक अग्निसमान महातेजस्वी पुरुष हाथमें क्षीरसे भरा हुआ सुवर्णपात्र लिये हुए, प्रकट हुआ. साक्षात् यज्ञनारायणको प्रकट हुए देखकर राजासहित समस्त लोग उठ खड़े हुए और अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे. स्तुतिसे प्रसन्न होकर यज्ञदेवने राजासे कहा—" हे ज्ञानसिंह ! तेरे इस हुत कर्मसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं अतः ले यह मेरा प्रसादरूप चरु (यज्ञपुरुषके हाथमेंसे क्षीरपात्र) ले. इसे अपनी स्त्रीको खिलाना जिससे एक सर्वगुणसंपन्न पुत्रकी प्राप्ति होगी, परन्तु इतना ध्यान रखना कि तेरी स्त्रीके खानेसे पहले यह प्रसाद किसी भांतिसे अपवित्र न होने पावे. जो प्रसाद अपवित्र होजायगा तो इसके खानेसे अल्पायुषी पुत्र उत्पन्न होगा." इतना कहकर यज्ञनारायण अंतर्धान होगये. तदनन्तर यज्ञकी समाप्ति करके चरु लेकर राजा अन्तःपुरमें गया.

भावी किसीसेभी मिथ्या नहीं हो सकती. होनहार किसी भांति टलता नहीं. होनहार बात हरेक प्रकारसे होतीही है. राजाने वह यज्ञचरु लेजाकर राणीको दिया. पतिकी आज्ञाके अनुसार राणी स्नान करके धोये हुए वस्त्र पहनकर उमंग भरी हुई, जहां वह चरु रखा हुआ था वहां आकर क्या देखती है कि एक बिल्ली उस पात्रमेंसे मुंह भरकर दौड़ गई. यह बात राजाको जतानेका विचार किया, परन्तु चरुके अपवित्र होजानेसे प्राणवल्लभ अत्यन्त क्रोधित होंगे ऐसा सोचकर, राजाको सूचित किये बिनाही राणीने उस अवशिष्ट प्रसादको खालिया. चरु अपवित्र होजानेपरभी साक्षात् यज्ञपुरुषका दिया हुआ प्रसाद था; इस लिये उसका प्रभाव

कुछ कम नहीं था. ऋतुकाल प्राप्त होतेही राणीने गर्भ धारण किया, और दश मास पूरे होनेपर एक दिव्य स्वरूपवाले पुत्रका जन्म हुआ. राजकुमारके जातकर्मादिक सारे संस्कार यथासमयपर ब्राह्मणोंद्वारा कराये गये. जैसे वय बढ़ता गया तैसे २ विद्याकलाकौशल्यमें भी उसको निपुण बनाते गये. अश्वारोहणविद्या, धनुर्विद्या, मल्लविद्या इत्यादिक जो २ विषय राजपुत्रके लिये आवश्यक हैं वे सब क्रम २ से उसको सिखलाये गये. थोड़ेही वर्षोंमें वह राजपुत्र सर्व विद्याओंमें पारंगत तथा समस्त कलाओंमें कुशल हो गया, और स्वरूपसौंदर्यमें अलंकाररूप बने हुए दुर्लभ गुणोंसे वह अधिक शोभायमान होने लगा और आजपर्यन्त पुत्ररहित संसारनिर्वाह करनेवाले अपने मातापिताको अपनी लावण्यतासे अत्यन्त आनन्द देकर उनके अन्तःकरणके परमसन्तोषदायक बन गया. राजा तथा राणी, दोनोंही पुत्रके स्नेहसागरमें तैर रहे थे और अपने मनोरथ सिद्ध हुए समझकर परम आनन्दमें दिन व्यतीत करते थे. होते २ राजकुमारका वय सोलह वर्षके लगभग हुआ तब उसीके समान गुणोंवाली एक सुन्दर राजकन्याके साथ उसका विवाह कर देनेका राजाने निश्चय किया. परन्तु इतनेमें तो पुत्रसुखमें लीन हुए दंपतीके सुखका अन्तही आगया; क्योंकि ईश्वरेच्छाही सबसे बलवती होती है. कहाभी है कि—

अपने मन कछु और है, श्रीहरिके मन और ।
ऊधोसे माधो कहै, झूठी मनकी दौर ॥

यहांभी ऐसाही हुआ. राजकुमारकी दूसरे प्रधान पुत्रोंके साथ दृढ़ मित्रता होगईथी जिससे वे प्रायः अश्वारूढ होकर साथ २ वनमें मृगयाको जाया करते थे. उनके साथ २ जानेसे राजाभी प्रसन्न होता था; क्योंकि ऐसा होनेसे राजकुमारको अश्वारोहण धनुर्विद्या आदिकी पुनरावृत्ति होना संभव थी. एक दिन वे सब मिलकर नियमानुसार वनमें गये. वे परस्पर एक दूसरेकी स्पर्धासे मृगोंके पीछे २ दौड़ने लगे. वन बहुत विस्तीर्ण होनेसे वहां मृगभी बहुतसे थे. सबने अपनी २ इच्छानुसार भिन्न २ मृगसमूहके पीछे दौड़ना आरंभ किया. इस प्रकार मृगोंके पीछे २ दौड़ते हुए कोई किधर कोई किधर सब चारों ओर फैल गये. मृगकी जाति दौड़ने और फलांग मारनेमें बहुत चपल होती है, और उस वनमें झाड़ीभी घनी थी इससे अबतक एकभी मृग किसीके बाणसे विद्ध नहीं हुआ था,

जिससे वे लोग औरभी अधिक तेजीसे मृगोंके पीछे दौड़ने लगे और दौड़ते २ एक दूसरेसे बहुत दूर निकल गये. राजकुमारका घोड़ा बहुत तेज था इसकारण वह सबसे आगे बड़ी लम्बी दूर चला गया, दौड़ते २ उसने कई मृगोंको झपाटेमें ले डाला, परन्तु बहुत देरतक सपाटेसे एकसांस दौड़ते रहनेसे घोड़ा और राजकुमार दोनोंभी बहुत थक गये. दोनोंके शरीरसे पसीनेकी धारा निकलने लगी. घोडेके मुँहमें झाग आने लगे और सांस समाता नहीं. यह दशा देखकर राजपुत्र एक वृक्षके नीचे जाकर घोड़ेपरसे उतरा और उसका सामान (जीन) उतार कर घोड़ेको पेड़की जड़से बांध दिया, तथा आपभी श्रमनिवारणके लिये, सामानको बिछाकर उसके ऊपर लेट गया. वनमेंसे मंद २ ठंडी २ हवा आती थी, निर्जन स्थान होनेसे सर्वत्र शान्ति फैल रही थी, जिससे राजकुमारको शीघ्रही मीठी निद्रा आगई.

होनहार दैवाधीन है और यज्ञनारायणके अपवित्र हुए प्रसादका परिणाम यथार्थ होना चाहिये, इसी लिये कुछ देरपीछे उस वनमें फिरता २ एक बड़ा भयंकर सर्प उस वृक्षके नीचे आया और इधर उधर चक्कर मारने लगा. वह नाग अपने रहनेके बिलको ढूंढ़ता था. वनमें अपना आहार करके आनेपर सर्पराजको विश्रामके लिये अपने घरमें जाना था. परन्तु उसका बिल उस वृक्षकी जड़में था और भावीवश, उक्त राजकुमारने उसी जगह बिलके ऊपर घोड़ेका साज डालरक्खा था और स्वयं उसका उसीसा बनाकर सोया हुआ था; जिससे वह बिल चारों ओरसे दब गया था. नागने अपने बिलमें घुसनेके लिये अनेक प्रयत्न किये, परन्तु कुछ वश नहीं चलनेसे सांप बहुत चिढ़ गया. कहावत है कि " चिढ़ा हुआ सांप बुरा होता है," सो उस सांपने मारे क्रोधके राजकुमारके पैरके अँगूठेपर जोरसे दंश किया और तत्काल पासके झाड़पातमें जा छिपा. इस समय राजकुमारको निद्रावश होनेके कारण सर्पदंशका कुछ विशेष भान नहीं हुआ, उसने जाना कि किसी साधारण जंतुने काटा होगा सो पैरको फटकार देकर पीछा ज्योंका त्यों सो गया. उष्णदेशोंके सांप बड़े विषैले होते हैं सो थोड़ी देरमेंही नागका विष राजकुमारके शरीरमें सर्वत्र व्याप्त होगया, जिससे वह चारों ओरसे मृत्युपाशमें घिर गया. निद्राके साथ २ उसको तो महानिद्रा आगई, शरीर हरा २ होगया, मर्मस्थानोंको भेदन करके रोम २ में विषही विष फैल गया और क्षणभरमें तो मातापिताका अत्यन्त प्यारा, स्वर्गसे बढ़कर

सुखोंको भोगनेवाला तथा अल्पकालमें युवराजपदको धारण करनेयोग्य हुआ वह राजकुमार अपना आत्मा श्रीहरिके स्वाधीन करनेके लिये यह लोक छोड़कर परलोकको प्रयाण कर गया.

इधर सब प्रधानपुत्र इकट्ठे होकर घर जानेके लिये राजपुत्रको ढूंढने लगे. राजकुमार अमुक दिशामें गये थे यह बात ध्यानमें होनेसे वे सब लोग उसी मार्गसे ढूंढने लगे. ढूंढते २ बड़ी दूर निकल जानेपर उन्होंने घोडेकी हिनहिनाहट सुनी. उसको लक्ष्य करके वे वहां पहुंचे तो देखा कि समय बीत चुकनेपर भी अपने धनीके न जागनेसे घोडा बारंबार पांव पछाड़ रहा है, हिनहिना रहा है, मानों वह अपने स्वामीको उठकर चलनेको कह रहा है; किन्तु राजकुमार तो लंबा होकर सो रहा है सो कुछ सुनताही नहीं. प्रधानपुत्र पास जाकर कहने लगे— "हे राजकुमार! उठिये, चलिये, बड़ी देर होगई है, सो महाराज चिन्ता करते होंगे." ऐसी २ अनेक बातें कह कर जगाने लगे; परन्तु उठनेवाला कौन? निदान उन्होंने हाथ पकड़कर राजकुमारको हिलाकर उठाना चाहा तो उसके मुखपर हरापन देखकर सब मित्र बड़े चकित और भयभीत होकर कहने लगे कि "अरे! राजकुमार जागते नहीं. इनका गुलाबके फुलसा सुन्दर वदन हरा २ कैसे होगया! अवश्य कुछ कारण होना चाहिये. इनके शरीरपरसे जान पड़ता है कि इनको किसी विषैले जानवरका विष चढ़ गया है. हे भगवन्! अब क्या करें?" ऐसा कहकर सब आकुल व्याकुल होगये, सबके सब घबराने लगे. निर्जन वनमें निरुपाय, निस्सहाय प्रधानपुत्र क्षणभर चेष्टारहित–स्तब्ध होगये. तदनन्तर धीरज और हिम्मत धरकर, अपने मनही मन विचारने लगे कि अब क्या करना चाहिये? सबकी सम्मति हुई कि उनमेंसे कोई एक तुरन्त एकश्वास घोड़ा दौड़ाता हुआ नगरमें जाकर राजाको समाचार कहकर एक रथ ले आवे. ऐसाही किया गया. 'राजकुमारके शरीरको आराम नहीं है' इस समाचारके पहुँतेही राज्यभरमें खलबला मचगया, सबके होश हवास जाते रहे. रथ जुतवाकर राजा स्वयं वनमें गया. 'वत्स–पुत्र' को अपना जीवन–प्राण समझनेवाले राजाने अपने पुत्रकी ऐसी दशा देखी उस समय उसकी कैसी स्थिति हुई होगी? जैसे चित्त अपने भानके निर्वाहके लिये समर्थ है, तैसेही अपने तथा पराये निर्वाहमें कुशल जो माया है वह विभ्रमसे मोह उपजाकर प्राणीको भ्रमादेती है; और इस भांति मोहसे

भ्रमित हुए राजापर ब्रह्मांड टूटपड़ा होगा. अरे! उसका आत्मा तो उसके पुत्रके साथही चला गया होगा; परन्तु नहीं, ऐसा नहीं हुआ, ज्योंही राजा पुत्रके शवके निकट पहुँचा कि तत्काल उसे मूर्च्छा आगई. प्रधान आदिकने बड़े परिश्रमसे, बहुत समझा बुझाकर उपचार करके उसको सावधान करके रोते रुलाते रथमें बिठाया, कुँवरके शवकोभी रथमें रखकर सब लोग रोते पीटते नगरको चले. नगरमें पहुँचतेही सर्वत्र हाहाकार मच गया. राणी छाती माथा पीटने लगी. वह कुँवरका शिर गोदमें रखकर अखंड अश्रुधारा बहाने और अनेक २ विलाप करने लगी. विविध भांतिसे पुत्रके गुणोंका स्मरण कर २ के विलाप करते २ राजाराणीके नेत्रोंमें पानी नहीं रहा तो आंसुओंके बदले रुधिरकी धारा बहने लगी. मंत्रिमंडलने नानाप्रकारसे आश्वासन देकर उनको किंचित् शान्त किया और मृत राज-पुत्रका अग्निसंस्कार कराया. उस दिनसे पुत्रवियोगके महाशोकसागरमें डूबे हुए दंपती अकेले निराधार निराश्रय समान होगये. राजा राणी दोनों, जिनसे बड़ा भारी समुद्र सूख जावे ऐसे महान् निःश्वास डालते हुए, अन्न जल त्यागकर महान् कष्टसे दिवस बिताते थे. निदान और कुछ उपाय न देखकर उन्होंने शोकही शोकमें अपने देहका अन्त लानेका निश्चय किया. राजसभा बंद होगई, नगरमें सर्वत्र हड़ताल पड़गई, राजा राणीके शोकके कारण सारे नगरमेंभी शोक फैल गया था. दीर्घ कालतक वंध्यत्व भोगनेके उपरान्त बड़े परिश्रमसे ईश्वरकृपासे अमूल्य पुत्ररत्न मिला सोभी चार दिनकी चांदनीकी नाईं सुखका एक झकोरा दिखाकर पीछा छीन लिया! संसारसे मोहित माता पिताके हृदयको कंपायमान करनेवाली इससे बढ़कर क्या बात होगी? इस कारण राजदरबारमेंही क्या, परन्तु गली, कूची, हाट बाट, महल्ले और घर २ में नगरमें सब जगह शोक संतापने निवास कर लिया.

ऐसे समयमें एक महर्षि भ्रमण करते २ उस नगरमें आ पहुँचे. अर्घ्य-पाद्यादिकसे उनका पूजन करके निःश्वास डालता हुआ राजा उनके सन्मुख बैठा. तब ऋषिने पूछा "हे राजा! तू इस प्रकार शोकसिंधुमें डूबा हुआ क्यों दिखाई देता है? मैं जानता हूं कि इकलौते पुत्रके मरजानेसे तुझे शोक होता है, परन्तु तेरे जैसे विचक्षण, जानकार पुरुष ऐसी अनित्य वस्तुके लिये निरन्तर शोक नहीं करते; यह तो अविदित-अज्ञानीका काम है. इस संसारमें कोई किसीका सगा नहीं. कहो कौन किसका पिता और कौन

किसका पुत्र है ? अपने अपने ऋणानुबंधसे सबका परस्पर संयोग होता है और निमित्तकर्म पूरा होनेपर सब अपने २ रस्ते लगते हैं; इसका हर्ष वा शोकही क्या ? अपना देह आत्माके साथ सदा दृढतर सम्बन्ध रखता है, उसपरभी आत्मा उसको छोड़कर चला जाता है, और अनेक वर्षोंतक उसके साथ रहकर नानाप्रकारके सुख भोगे उनका तनिक भी विचार नहीं करता, तो फिर औरकी क्या कथा ? जो यह तेरा पुत्र था तो जब तू अपुत्र कहलाता था तब कहां गया था और अब तुझको छोड़कर वह कैसे चला गया ? जो अपना है वह सदा सर्वदा अपने पासही रहता है; वह अपनेको छोड़कर एक पांवभी नहीं हटता. हे राजन् ! इस देह तथा अवतारको धारण करानेवाले प्रारब्ध कर्मभी अपने नहीं हैं, क्योंकि वे भी भोगे जा चुकनेपर समूल नष्ट होजाते हैं तो दूसरा कौन तेरा होगा ? इस देहमें अपना कहाने योग्य तो केवल आत्माही है कि जो सदा सर्वदा अखंड, निर्विकार और अविनाशी है. इसलिये, हे राजन् ! जो लोग महामूर्ख होते हैं वेही अनित्य वस्तुपर प्रीति करते हैं; तू ऐसा नहीं है अतएव पुत्रशोक परित्याग करके सावधान हो. और पूर्ण ब्रह्म परमात्मा जो नित्य, शाश्वत, अखंड और पूर्णानन्दरूप है उसके साथ दृढ प्रीति कर; क्योंकि वही एकमात्र तेरा कहलाने योग्य और सदा संग रहनेवाला है; अर्थात् आत्माके संग सदा सर्वदा आत्मामात्रही रहता है और उसकी इच्छा करनेवाले, इस संसारके प्रगटमें अच्छे किन्तु परिणाममें दुःख देनेवाले, क्षुल्लक सुखोंकी कामना कदापि नहीं करते; क्योंकि जिनका मन उस (आत्मा) के अखंड सुखका लाभ लेनेके लिये ललचाता हो वे संसारसुखको कुछ गिनतेही नहीं; और वे इस लोकके विषयसे भरे हुए नाशवंत सुखकी कामना करके, इस अविनाशीको नहीं गँवाते. " इस-भांति उस महात्माने अनेक दृष्टान्त देकर ज्ञानसिंहको सद्बोध दिया जिससे उसका शोक बहुत कुछ घट गया. गुरुके उपदेशका प्रतापही ऐसा होता है कि वह कर्णद्वारा अन्तःकरणमें प्रविष्ट होतेही भीतरके पापोंको धोकर निर्मल करता है, और वारंवार ऐसे उपदेशकी इच्छा उत्पन्न करता है. तदनन्तर ज्योंही ऋषि खड़े होकर जानेकी इच्छा करने लगे त्योंही राजा साष्टांग प्रणाम करके विनंति करने लगा कि–" हे दयालु ऋषिराज ! आप अमृतकी एकही बूंद चखाकर क्यों विदा होते हो ? तृषातुरको जलदान करनेवालेको उचित है कि जबतक उसकी तृप्ति न हो तबतक जल पिलाता रहे; क्योंकि थोड़े जल-

पानसे तृषाकी वृद्धि होकर शोष रोग उत्पन्न होता है. एकाध बूंद पानी पिलानेसे तो बिलकुल न पिलानाही अच्छा है. अतएव हे मुनिवर्य ! अब आप अपना उपदेशामृत, मेरी तृप्ति हो तबतक मुझे पिलाइये. हे गुरुदेव ! मैं आपके शरण आया हूं इस शोकसागरमें डूबे हुएका हाथ पकड़कर मुझको किनारेपर लानेवाले तो एक आपही हो, इस कारण मुझे अपने चरण–शरणमें रखकर संसारत्रासमेंसे सबभांति अभय कीजिये." इतना सुनकर ऋषिको दया आगई और कहने लगे–" हे राजा ! तेरा पूर्वसंचित अच्छा है, परन्तु केवल पुत्र–शोकसे तू अपने आपही दुःखी होता था; यही जानकर मैं यहां आया और वह तेरा मिथ्या शोक दूर होगया इससे मैं बड़ा प्रसन्न और संतुष्ट होकर अब अपने आश्रमको जाता हूं. किन्तु तत्त्वोपदेश श्रवण करनेकी तुझे जिज्ञासा है तो तू मेरे आश्रमपर आना; क्योंकि विरक्त पुरुषको एक दिनसे अधिक बस्तीमें रहना उचित नहीं है. इस नगरकी उत्तर दिशामें; गंगाके तटपर निकटही पर्वतकी तलेटीमें मेरा आश्रम है, वहां मैं निरन्तर समाधिस्थ रहा करता हूं." इतना कहकर ऋषिराज राजाकी पूजाको स्वीकार करके, अपने आश्रमको चलेगये.

दूसरे दिन प्रातःकालमें स्नान सन्ध्यादिक कर्मसे निवृत्त होकर राजा अश्वारूढ़ होकर मुनिके आश्रमको जाने निकला, और उपवनको उल्लंघन करके महावनकी सीमापर गया. तो उसको भागीरथीके तटपर पवनके साथ झकोरे खाते हुए गगनचुम्बित आश्रमके वृक्ष दिखाई दिये. उन्हींको लक्ष्य करके वह धीरे २ आश्रमतक जा पहुँचा और वहांकी अप्रतिम शोभाको देखकर बहुत आनन्दित हुआ. सुन्दर पुष्पों तथा फलोंवाले सुशोभित वृक्ष मंद-२ समीरसे लहरा रहे हैं, मानों 'आइये २ कहकर पाहुनेका स्वागत कर रहे हैं; वृक्षोंपर बैठे हुए मनोहर पक्षीगण अपने मधुर कोमल स्वरसे आनन्दध्वनि कर रहे हैं; मानों ऋषिराजको राजाके आगमनकी सूचना दे रहे हैं; तथा आश्रमकी अवर्णनीय सुन्दरता और सर्वथा शान्ति भूले भटके प्राणियों (श्रमित पाहुनो) का श्रम निवारण करके स्वस्थ और सुखी करनेमें तत्पर हैं. ऐसी रचना देखते २ राजा पर्णकुटीमें गया तो वहां, आश्रमके बीचोबीच एक पर्णशालामें पूर्वोक्त महात्मा भगवन्नामोच्चारण करते हुए बैठे थे, उनके दर्शन हुए. बहुतसे मुमुक्षु शिष्य उन महात्मासे नानाप्रकारके प्रश्न पूछकर अपनी २ शंकाओंका समाधान कर रहे थे. राजा ज्ञान-

सिंहभी गुरुचरणारविन्दमें साष्टाग नमस्कार करके अपने आसनपर बैठ गया. तदनन्तर गुरुदेवने राजाको सत्त्वगुणी जिज्ञासु जानकर 'अहं ब्रह्मास्मि' इस महावाक्यका उपदेश देकर अपना शिष्य किया. तिस पीछे वहां होती हुई ज्ञानचर्चासे परमानन्दको पाकर, सर्व मुमुक्षुओंके साथ राजाभी गुरुकी आज्ञा लेकर विदा हुआ, और गुरुवाक्यका मनन करता २ राजभवनको गया. जिसको ज्ञानरसकी प्राप्ति होती है उसको तद्व्यतिरिक्त और कोई पदार्थ प्यारा नहीं लगता. ज्ञानसिंहभी गुरुके उपदेशसे मोहित होकर नियमपूर्वक उक्त महात्माके पास जाने लगा और प्रतिदिन आत्मतत्त्वका उपदेश श्रवण करके महाज्ञानी होगया. राजा स्वयं गुरुके पास तत्त्वकथा श्रवण करनेको जाता और वहांसे लौटकर आनेपर अपनी राणीको सब बातका उपदेश करता, जिससे भक्तिमती राणी भी देहाभिमान छोड़कर तथा सब शोकका परित्याग करके परम निर्वासनामय ज्ञानी बन गई.

पुत्र पुत्रके ठिकाने गया, और गुरुकृपासे दोनों दंपती अहंता–ममतारहित होगये. दोनोंके अन्तःकरणमेंसे शोकदुःखका समूल नाश होगया, और वे परम आनन्दसे नित्य २ चन्द्रमाकी वृद्धिगत कलाकी नाईं विवर्धित प्रेमसे गुरुदेवकी सेवा करने लगे. और प्रजाही अपने पुत्र पुत्रियां–संततिके समान हैं ऐसा समझकर प्रेमसे प्रजाका पालन करना आरंभ किया. वे नित्य श्रवण किये हुए गुरुवाक्योंका भलीभांति मनन करते हुए उत्पन्न हुई शंकाओंका दूसरे दिन गुरुसे समाधान करलेते. यही उनका नित्यका उद्यम होगया. एक दिन गुरुमहाराजने उपदेश करते हुए ऐसा कहा कि– "मुक्ति पाया हुआ (जीवन्मुक्त हुआ) पुरुष आत्माके अनुभवजन्य (आत्माको जानकर उसके अनुभवजनित) सुखमें मग्न हो जाता है. तदनन्तर उसको संसारके मिथ्या विषयोंपर अप्रीति और अनादर हो जाता है" यह सुनकर उस दिन तो राजा अपने घर चला आया, परन्तु उस वाक्यका मनन करते २ उसको शंका उत्पन्न हुई कि 'अरे! ऐसा वह आत्मानुभव सुख कैसा होगा कि जिसमें मुक्तजन सदाही लुब्ध रहते हैं, और मुमुक्षुजन जिसकी निरन्तर इच्छा करते हैं?' फिर दूसरे दिन वह शंका गुरुको निवेदन करनेपर गुरुने विचार किया कि–'इसका पूछना यथार्थ है तोभी वाणीमात्रसे इसका समाधान नहीं हो सकेगा, इस कारण प्रत्यक्ष प्रमाणसे उसकी शंकाका समाधान करना चाहिये.' ऐसा मनमें सोचकर

गुरुने कहा "हे वत्स ज्ञानसिंह! तू धन्य है, जो तुझको ऐसी शंका उत्पन्न हुई! मैं तेरी क्या प्रशंसा करूं? गुरुवाक्यका मनन करके ऐसे प्रश्न करनेका बड़ा फल है; परन्तु हे राजा! इसका समाधान मैं स्वयम् नहीं करूंगा. यहांसे तू विष्णुपुरीको जा. वहांका विष्णुप्रताप नामक महाप्रतापी राजा मेरा शिष्य है, वह तेरे प्रश्नका यथार्थ समाधान करेगा."

गुरुकी आज्ञा पाकर ज्ञानसिंह अपने घर आया और दूसरे दिन अपने राज्यका सब अधिकार अपने परम विश्वस्त प्रधानों तथा पुरोहितको सौंप कर उनको प्रजापालनका भलीभांति अनुरोध करके राणी सहित सुखपालमें बैठकर विष्णुपुरको विदा हुआ. मार्गमें वन, पर्वत, नदी और नगर आदिक सृष्टिरचनाका अवलोकन करता हुआ कितनेक दिनोंमें वह सेना-सहित विष्णुपुरके निकट जा पहुँचा. विष्णुप्रताप गुरुकृपासे साक्षात् परब्रह्मरूप होगया था इस कारण उसने पहलेसेही योगबलसे जानलिया था कि 'ज्ञानसिंह आत्मानुभवजन्य सुखका स्वरूप जाननेके लिये मेरे यहां आता है.' ज्ञानसिंहके आतेही वह पंचरंगी सेना तैयार कराकर बड़े ठाट और धूमधामसे उसकी अगवानी करनेको आया. विष्णुपुरके उपवनमें इन दोनोंकी परस्पर भेंट हुई. विष्णुप्रताप बहुत आदरमानपूर्वक अपने गुरुभाईको अपने नगरमें लिवा लाया और एक सुन्दर राजभवनमें निवास कराया, और नानाप्रकारके पकान्न तयार कराकर उन सबको भोजन कराया. जब वे खा पीकर तृप्त हुए और मार्गके श्रमसे निवृत्ति पाई तब विष्णुप्रताप अपने पाहुनोंके पास आया और विवेकयुक्त वाणीसे उनसे पूछा;—"हे क्षत्रियकुलमणि ज्ञानसिंह! यहांतक पधारनेका श्रम उठाकर आपको हमारे देश तथा घरको पवित्र करनेका विचार कैसे उत्पन्न हुआ? आप पधारे सो बहुत अच्छा हुआ. आपने यहां पधारकर मुझे कृतार्थ किया है; सो मेरे योग्य जो कार्य हो सो कहिये." यह सुनकर ज्ञानसिंहने कहा—"हे सत्कृति! हे भूपति! हे विष्णुप्रतापजी! भगवत्स्वरूप महर्षि कौण्डिन्य जो जगदुद्धारक तथा आपकी तथा मेरी देहके स्वामी और गुरु हैं उन्होंने मुझे आपकी सेवामें भेजा है और कहा है कि विष्णुप्रताप तेरी सब शंका-ओंका समाधान करके तुझको यथार्थ रीतिसे अध्यात्मज्ञान समझावेंगे, अतएव मैं आपके पास आया हूं. हे महात्मन्! आत्मानुभवजन्य सुख कैसा है, जो जाननेकी मेरी इच्छा है" यह सुनकर विष्णुप्रताप कहने लगा—'प्रिय

*बन्धु ! यह घर आपकाही है, इसलिये सब बातसे मन स्थिर करके यहां निःशंक होकर रहो. मैं गुरुकृपासे आपकी शंकाओंका निवारण करूंगा.” तदनन्तर राजा विष्णुप्रताप प्रतिदिन राजा ज्ञानसिंहको साथ लेकर एकही आसनपर भोजन करता, साथ २ राजसिंहासनपर बैठता, वनवाटिकामें भी साथही साथ फिरनेको लेजाता, इस भांति उसके साथ विशुद्ध-अभेदभावमय एकतासे वर्त्तने लगा. राजा विष्णुप्रताप महाज्ञानी तत्त्ववेत्ता, वेदवेदांगपारंगत और “सर्वं खल्विदं ब्रह्म” इस वेदवाक्यके अनुसार समस्त जगत्को ब्रह्मरूप जाननेवाला होनेसे सबके ऊपर समान दृष्टि रखनेवाला अभेदत्वरूप यथार्थ रीतिसे समझता था इस कारण वह दूसरा साक्षात् जनकही हो ऐसा प्रतापी था. उसने ज्ञानसिंहकी शंकाका निवारण करना आरंभ किया.

उसने अपने नगरसे दो तीन कोसके अन्तरपर अपने विलासकुंजमें, जहां एक सुन्दर महल बनवाया हुआ था, वहां त्रयोदशीके दिन मध्याह्नमें अनेक प्रकारके पकान्न तथा भांति २ के अन्यान्य स्वादिष्ठ भोजन बनवानेकी अपने कार्यकारियोंको आज्ञा दी. एकादशीका व्रत करनेवालेको दशमीके दिन एकवार भोजन करनेका तथा द्वादशीके दिन पारणा करनेका नियम है, परन्तु विष्णुप्रतापने ऐसा उपाय किया था कि जिससे दशमीके दिन ज्ञानसिंह किसी कारणवशात् भोजन न कर सका, दूसरे दिन एकादशी थी और तीसरे दिन वामनद्वादशी थी; इसलिये लगातार तीन उपवास होकर त्रयोदशीको पारणा होसके अर्थात् भोजन मिले ऐसा योग आया. विष्णुप्रतापने जानबूझकरही त्रयोदशीके दिन ठीक मध्याह्नमें रसोई तयार हो ऐसी आज्ञा दे रक्खी थी. गीताका वचन है कि ‘अन्नाद्भवन्ति भूतानि—अन्नके आधारपर प्राण हैं.’ अतः तीन दिनतक लगातार उपवास करनेसे, ज्ञानसिंहका आत्मा आकुल व्याकुल होगया; परन्तु वह परम वैष्णव था, भगवत्परायण था; नियमपूर्वक व्रत पालनेवाला था, उसने निराहार रहकर तीनों दिन भगवन्नामोच्चारण करनेमें विताये. त्रयोदशीको प्रातःकाल हुआ तो विष्णुप्रताप और ज्ञानसिंह स्नान सन्ध्यादिक आह्निक कृत्यसे निपट कर तैयार हुए, और सुखपाल सजवाकर कईएक सेवकोंको साथ लिये उसी विलासकुंजकी ओर प्रयाण किया. दौड़ते दौड़ते सवारी मध्याह्न होनेके पहलेही वहां पहुँच गई. रसोई भी तयार थी, राजाके जीमनें बैठनेके लिये जो

*एकही गुरुके शिष्य होनेसे विष्णुप्रतापने ‘बंधु’ इस भांति संबोधन करके कहा है.

चौक तयार किया गया था उसमें चाकरोंने झट २ रंगवल्ली-चौक, साथिया आदि डालकर सुवर्णके बाजोट बिछादिये; सुवर्णके लोटे, गिलास, शीतल जल भरकर; हरेक बाजोटके पास रख दिये; प्रत्येक बाजोटके सन्मुख; मनको आनन्दित करनेवाली सुगंधित अगरबत्तियां रखदी गई, और दूसरी सब सामग्री सजकर भृत्यगण एक ओर मर्यादापूर्वक खड़े रहगये. तुरन्त नानाप्रकारके पक्वान्नों तथा अन्यान्य सामग्रियोंसे भरे हुए रत्नजडित सुवर्णके थाल प्रत्येक बाजोटपर रखदिये गये. तदनन्तर सूचना होतेही अपने साथियों सहित, पीतांबर धारण किये हुए दोनों नरपुंगव वहां आ विराजे. ज्ञानसिंह तो विना किसीसे बोले चाले विना किसीको देखे भाले, तत्काल एक चित्तसे बड़े बड़े कवल लेके जीमने लगा. लगभग आधा अधिक जीम चुका तब जलपानके लिये उसने मुख ऊंचा किया. फिर अनेक प्रकारके हास्य विनोद करते हुए सब कोई जीम जाम कर तृप्त हुए, और हाथ मुख प्रक्षालन करके उठे, त्योंही सेवकोंने केशर कस्तूरीसे भरेहुए पानके बीड़े सबको अर्पण किये. तदनन्तर वस्त्र धारण करके सब एकान्तमें बैठे हुए विनोद करने लगे. उस समय विष्णुप्रतापकी पहलेही की हुई योजनाके अनुसार एक मंत्रीने विनयसहित पूछा कि-" भ्राताओ! आज भोजन करते समय आपको कैसा आनन्द हुवा था?" तब सबसे पहलेही ज्ञानसिंह बोल उठा-" अहा! आजके आनन्दका क्या कहना! कोईभी उसका वर्णन नहीं कर सकता. उस आनन्दको तो मैं और ये सब जीमनेवाले अपने मनही मन जानते होंगे. मेरी तो शक्ति नहीं जो मैं उसका यथार्थ वर्णन कर सकूं कि आजका आनन्द ऐसा और इतना था. मेरी जिह्वेन्द्रिय जिसके द्वारा मुझे वह परमानन्द प्राप्त हुआ था, वहभी उसका वर्णन करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकती."

ज्ञानसिंहके इसप्रकार कहनेका कारण यह था कि वह स्वयं तीन दिनका भूखा था, इसीसे उसको जीमनेमें जो आनन्द हुवा वह और सब लोगोंसे बढ़करही था.

तिस पीछे वे एक दूसरे कमरेमें, जहां सुवर्णके पलंगोंपर मखमलके बिछौने बिछे हुए थे, उनपर थोड़ी देरतक लेट गये. *तीसरे पहर उठकर मुख प्रक्षालन करके सबलोग सभामंडपमें एकत्रित हुए तब तंबोलियोंने केशर

*भोजन करनेके उपरान्त थोड़ी देरतक बांई करवटसे लेटना गुणदायक है.

कस्तूरी बरास इलायचीसे युक्त सुंदर पानके वीड़े लाकर हाजिर किये सो लेकर मुखवास करके हास्यविनोद करने लगे. उसी समय राजाके मालियोंने गुलाब मोगरा चमेली आदिक सुगंधित पुष्पोंके हार तुर्रे लाकर नजर किये और प्रधानने उठकर उभय भूपालोंको हार धारण कराकर तुर्रे भेंट किये, तथा समस्त उपस्थित क्षत्रियवीरोंको हारतुर्रोंसे सुशोभित किया. ऐसेही सुअवसरकी ताकमें खड़ा हुआ एक सुगंधी थोड़ा आगे बढ़ा और अपनी अत्तरकी पेटी खोलकर नानाप्रकारके बढ़िया २ अत्तर, उभय भूपालोंको अर्पण करने लगा. ऋतुके अनुकूल गुलाब, मोगरा, खस, जुही, केवड़ा इत्यादि भांति २ के उत्तमोत्तम अतर सुँघाकर उस अत्तारने सारी राजसमाजको मस्त और मोहित कर दिया. इन सब बातोंसे प्रसन्न होकर ज्ञानसिंह एकाएक बोल उठा–" अहा ! हा ! हा ! भाई विष्णुप्रताप ! आज तो आपने मेरा पाहुनाचार करके मुझे आनन्दसागरमें निमग्न कर दिया है." यह सुनकर विष्णुप्रतापने कहा–" प्रिय बन्धु ! ऐसा आपको क्या आनन्द होता है सो तो कहो; उसका कुछ वर्णन तो कर सुनाओ, विना कुछ वर्णन किये हम किस प्रकार समझें कि आपका आनन्द कितना और कैसा है ?" तब ज्ञानसिंहने उत्तर दिया कि " क्या इस आनन्दको कहकर कोई बता सकता है ? इस आनन्दका अनुभव तो मेरी नासिका इन्द्रियकोही है."

तदनन्तर विष्णुप्रतापने सविनय विज्ञापना की कि " अब ठंढा पहर हुआ है सो चलिये बागमें फिरनेको चलें." इसपरसे सब कोई उठकर खड़े हुए और बागमें गये. उस बागकी शोभा भी अप्रतिमही थी. उसकी यथार्थ सुन्दरताका वर्णन करना तो अशक्य ही है, परन्तु संक्षेपमें कहनेसेभी कई दिन बीत जायँ, इसलिये इतनाही कहना बस है कि वहांके जलाशय, फल तथा फलवाले वृक्ष, उनपर कलोल करते हुए पक्षी, पिंजरोंमें बंद तथा खुले फिरते हुए अनेक देशान्तरोंसे लाये हुए अनेक जातिके प्राणी, बागमें भ्रमण करनेके छोटे बड़े सुन्दर मार्ग, द्राक्ष तथा पुष्पलताओंसे घिरे हुए लतामंडप, उनके भीतर चारोंओर बनी हुई सुन्दर बैठकें, तथा मनको मुग्ध करनेवाली कुंजोंकी रमणीय रचनाको देखते २ वे सब एक द्राक्षलतामंडपके नीचे आये और उसकी शीतल बैठकपर बैठगये. जो कुछ वहां करनेका था उसकी सब व्यवस्था राजाज्ञासे प्रधानने पहलेसेही कर रक्खी थी. अतः पूर्वापर दी हुई आज्ञाके अनुसार, विना कहे अपना २ काम बजानेके

लिये समयानुसार सब कोई उपस्थित होने लगे. वे लोक बैठकमें बैठे हुए थे उसी समय एक विलक्षण पुरुष उनके सन्मुख आ उपस्थित हुआ. वह राजाको आशीर्वाद देकर अपनी मायाका चमत्कार दिखाने लगा. अचानक सबकी दृष्टिमेंसे वह बाग, बैठक तथा महल सब अदृश्य होगये, और एक तेजःपुंज उनके सन्मुख खड़ा हुआ. उस तेजोराशिके प्रभावसे आँखें मीच कर फिर खोलतेही एक बड़ा सुन्दर नगर उनको दिखलाई दिया. उसका विस्तार, उसमेंके सुवर्णमय और रत्नजडित, अवर्णनीय शोभावाले सुन्दर मंदिर, उनमें आनन्दपूर्वक फिरतेहुए दिव्य स्वरूपवान् तेजस्वी नवयौवन स्त्री पुरुष, वहांके राजाकी भव्य राजसभा, उसमें विराजमान हुए महान् देवर्षि, देवताओंके समान वीर पुरुष, वहां नृत्य करती हुई लावण्यवती अप्सराएं, इत्यादिक इन्द्रसमान सारा वैभव देखकर सब लोग यही अनुमान करने लगे 'क्या यह इन्द्रपुरी है ?' तुरन्तही वह नगर एकाएक अदृश्य हो गया और एक दूसरी भव्य शोभा दृष्टिगोचर होने लगी. इसमें उन्होंने पहली इंद्रपुरीकी शोभासे भिन्न कुछ विलक्षण बात देखी. उसे देखनेमें सूर्य तथा चंद्र किसीकेभी प्रकाशकी आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि उसमें निवास करनेवाले मस्तकोंमें लगी हुई महा तेजस्वी मणियोंका प्रकाश सर्वत्र फैल रहा था. यही नहीं किन्तु वहांके मंदिर भी सब मणिमय ही थे. उनमें तेज स्वयमेव चमक रहा था, जिससे प्रकाशके लिये दीपक वा ऐसेही अन्य किसी पदार्थकी कुछ आवश्यकता नहीं थी. उसमें वसनेवाले पुरुष कोई पंचमुखी, कोई दशमुखी, कोई सौमुखी और कोई २ तो सहस्रमुखी दिखाई देते थे. वे क्षणभरमें सर्परूप धारण करते और तत्काल दिव्य पुरुष बन जाते. उनकी स्त्रियोंके रूपलावण्यके आगे कामदेवकी स्त्री रतिभी लज्जित होती थी. वे सर्वांगसुन्दरियां नाना प्रकारके दिव्य वस्त्र अलंकार सजकर रत्नजडित झूलोंपर बैठी हुई झूल रहीं थीं. उनके आसपास उनके समानही हजारों दासियां सेवामें खड़ीं थीं. चारों ओर बड़ा वैभव दृष्टिगोचर होता था. इन सबको देखकर " अरे ! शास्त्रमें कही हुई रचना मिलती औरही है, क्या हम लोग इस नागलोकमें आपहुँचे ? " उन सबको ऐसा भान होने लगा. क्षणभरमें वहां एक नया कौतुक दृष्टिगोचर हुआ. उस पाताललोकमें एक भव्य मंदिरमें रत्नजडित हिंडोलेपर एक परम रूपवती, अति सुंदर, मोहिनीस्वरूप, लावण्यवती दिव्यांगनाके साथ

बैठेहुए एक अपने परिचित लावण्यमय पुरुषको दिव्य शृंगार किये हुए विलास करते देखा; ज्ञानसिंहने तक तक कर उसको देखा तो वह उसकाही मृत पुत्रही था. यह रचना देखकर ज्ञानसिंह परम आनन्दमें मग्न होकर उन्मत्तकी भांति यकायक कहने लगा–" अहो ! मेरे प्यारे पुत्र ! तू ऐसे अनुपम अलभ्य स्थानमें किसप्रकार आ बैठा है ? क्या तुझे तेरे वियोगी मातापिताका स्मरण नहीं होता ? " यह सुनकर उस विलासी पुरुषने उत्तर दिया कि " हे राजन् ! आप पुत्र किसको कह रहे हो ? अपने गुरु-वाक्योंको भूल गये क्या ? क्या आपको फिर अज्ञान उत्पन्न हुआ व अविद्याने घेर लिया है ? मैं तो मणिग्रीव नामक नाग हूं. और केवल आपके पूर्वके सत्कर्मके प्रभावसे आपको पुत्रवियोगद्वारा ज्ञान प्राप्त करानेके लियेही आपके यहां जन्म लिया था. यहां पुत्र कौन और पिता कौन ? यहां तो पिता अपिता है, माता अमाता है, लोक अलोक है, देव अदेव हैं, वेदशास्त्र अवेदशास्त्र हैं, चांडाल अचांडाल है, साधु असाधु है, तपस्वी अतपस्वी है, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इनमेंसे कोईभी यहां नहीं है, यहां पुण्यपापका किंचितभी स्पर्श नहीं है. यहां समस्त कामनाओंसे रहित होजाता है, यहां द्रष्टा वा दृष्टि नहीं. द्रष्टाकी दृष्टिका लोप भी यहां नहीं होता, देखने न देखनेका कुछ भी यहां नहीं है, यहां तो सब अभेदमय है. यही नागलोक, ब्रह्मलोक, अक्षरलोक यही पूर्ण है, पूर्ण-सेभी पूर्ण है. इसमेंसे पूर्ण बनता है और यह पूर्णका पूर्णही बना रहता है, आप विनाशी संसारका मोह छोड़कर ब्रह्मानंद जैसे अविनाशी सुखकीही इच्छा करो. " इतनी बातचीत होतेही वह सब लीला अदृश्य होगई. सब लोग फिर अचंभित हुए. ज्ञानसिंह मानों नींदमेंसे चौंक उठा हो, इसभांति आश्चर्यान्वित हुआ और मनमें खेदपूर्वक कहने लगा–" अहाहा ! मैंने कैसा चमत्कार देखा, अरे ! अब तक भी जिसका स्मरण आजानेपर बारंबार 'मेरा पुत्र मेरा पुत्र' कहकर मैं रुदन करता था उसने मुझको क्या कहा ? अहो ! मेरे मित्रकी कृपासे यहां कैसा चमत्कार देखनेमें आया. आज उस मणिग्रीवके कहनेसे मेरा महामोह दूर हुआ और संसारासक्ति समूल नष्ट होगई. वाह ! मेरे मनके आनन्दकी बात मैं किसको कहूं ? मेरे दृष्टिसे जो २ आनन्दप्रद वस्तु मैंने देखी उससे उत्पन्न हुए अवर्णनीय आनन्दको तो मेरा अन्तःकरणही जानता है ऐसा करते २ सन्ध्यासमय होने आया तो

सब लोग वहांसे उठ २ कर पीछे रंगमहलको आये. इस समय भोजन तैयार था सब लोग भोजन करनेको उठे और अपनी २ इच्छानुसार जीमे (क्योंकि दुपहरको मनमाना बहुत भोजन कर चुके थे) तिस पीछे वस्त्र बदल कर पान सुपारी लिया; उस समय पासवाले दीवानखानेमेंसे तबले सारंगी वीणा आदि वाद्योंके स्वर ताल मिलानेकी ध्वनि सुनाई देने लगी. विष्णुप्रतापने सबको दीवानखानेमें लेजाकर यथास्थान बिठाया. वह स्थानभी खूब सजा गया था, अप्सराएं नृत्य करनेके लिये सजकर तैयार थीं; उनमेंसे एक एकने राजाकी आज्ञानुसार नृत्य करना आरंभ किया. और जुदी २ सरगम चतुरंग तिलाने वगैरेका आलाप करके गाने लगीं; एकसे एक चढ़बढ़ कर रूपवती उन अप्सराओंके मनोहर आलाप, घूंघरोंकी झनझनाहट, तबलोंकी ताल सारंगी वीणा इत्यादिकोंके अन्तःकरणके आरपार निकल जानेवाले मधुर स्वरोंकी रणत्कार और नृत्य करती हुई वारांगनाओंके हावभाव कटाक्ष प्रहारादिकसे नृत्यकोंने सारी सभाको दिङ्मूढ बनादिया. तब भैरवी, कल्याण, विहाग, टोड़ी, कहरा, बसंत, वगैरे समय अनुकूल राग क्रम २ से इस भांति अलाप कर गाये कि जिन्हें सुनकर विष्णुप्रतापके सिवाय और सब लोग मोहान्ध होगये. हे वत्स ! संगीत एक ऐसी वस्तु है कि जिससे जडबुद्धिके पशु भी वशमें होजाते हैं तो समस्त रसोंको समझनेवाले पुरुषोंकी तो क्या कथा ? अब एक तो उस गानतानसे उपजा हुआ मोह, दूसरे विष्णुप्रतापकी ब्यालूके अनन्तर पानमें खिलाई हुई कामोद्दीपन–गुटिका इन दोनोंके एकत्र प्रहारसे ज्ञानसिंह बिलकुल कामविवश होकर बोल उठा कि– "अहा विष्णुप्रताप ! बस हद होगई, यह आनन्द मेरे हृदयमें नहीं समाता. अब समाप्त करो." तुरन्त गाना बंद हुआ और सब अपने २ स्थानपर सोनेको चले गये. ज्ञानसिंहकी स्त्री भक्तिमतीको राजा विष्णुप्रतापने पहलेहीसे दासियोंद्वारा बागमें बुलवाया था वहभी समयपर आपहुँची और कामविवश हुआ ज्ञानसिंह ज्योंही विलासगृहमें जाकर पलंगपर लेटा कि तुरन्त राणी नाना प्रकारके हावभाव करती हुई, पलंगपर बैठकर उसकी चरणसेवा करने लगी. ज्ञानसिंहको तो इतनाही चाहिये था. इस समय वह आनन्दके मध्यबिन्दुपर था.

दूसरे दिन सन्ध्यासमय ब्यालू करके चंद्रोदय होजानेपर सब लोग चांदनीपर एकत्र हुए तब ज्ञानसिंहने विष्णुप्रतापसे कहा–"प्रियबन्धु ! अब

आप मेरी शंकाका निवारण कब करेंगे ? आपने तो मुझे इस मायामही फँसा रखनेका विचार किया जान पड़ता है; क्योंकि जबसे मैं आपके यहां आया हूं तबसे अबतक तो मैं केवल मायाजन्य पदार्थोंमेंही रमण कर रहा हूं. और अबभी, केवल मायाही माया चहूंओर देखता हूं. ज्ञानसम्बन्धी पवित्र वार्त्ता तो आपने बिलकुल भुला दी है." यह सुनकर विष्णुप्रतापने कहा- "महात्मा ज्ञानसिंह ! आप यह क्या कहते हो ? क्या अभीतक आपकी शंका बनी हुई है ? क्या उसका अबतक निवारण नहीं हुआ ? आप परम ज्ञानवान् होकर भी इन (यहां देखी हुई) सब वातोंपरसे कुछ नहीं समझ सके ? और मायाहीकी निंदा करने लगे, यह क्या ? हे भ्राता ! यह माया इसप्रकार धिक्कारने योग्य नहीं है. महात्मा पुरुष ज्ञानी कहलाते हैं सो किस कारणसे ? यह माया न होती और उसमें वे न लिपटते तो फिर पुरुष किससे विरक्त होते ? ज्ञानी होनेकी भी क्या आवश्यकता रहती ? दीपकके आड़में कषाय्का अन्तरपट होनेसे अँधेरा होता है, इसकारण उसको हटाना पड़ता है, परन्तु यदि वह न हो तो निर्मल दीपक प्रकाशमान रहनेसे अन्धकार नहीं रह सकता; तब किसी वस्तुको हटानेकी भी आवश्यकता नहीं रहती, अतएव हे प्रियबन्धु ! संसारकी माया प्राणीको सचेत और ज्ञानवान् बनानेवाली है, (जो उनके परिणाम परसे ग्रहण करनेकी खूबी है उसे जानकर उसका सदुपयोग करनेमें आवे तो) इसकारण अज्ञानतासे मायाका तिरस्कार नहीं करना चाहिये. उससे तो बहुत कुछ जाना और समझा जाता है. आज पर्यन्त जो २ महान् ज्ञानी पुरुष होगये हैं, वे सबही पहले तो मायामें लिपटेहुए थे, और उस मायाको सन्मार्गसे भोगते २ ही वे ज्ञानवान् बने और अपने स्वरूपको चीन्हकर भवसागरके पार उतर गये. सम्पूर्ण विषयोंमें रँगे हुए ज्ञानीका ज्ञान दृढ-किसी प्रकारसे विचलित न होनेवाला-हो जाता है. यह माया त्रिगुणात्मक होती हुई भी समस्त जगत्का कल्याण करनेवाली है. हरिहरादि भी इसको नहीं जान सकते, ऐसी अपार है, सबकी आश्रयभूत है, अखिल जगत्का अंश है, अव्याकृत और आद्य है, परम प्रकृति है, यह महाव्रतवाली, मुक्तिदाता, परमविद्या, इन्द्रियोंको सुनियत करके समस्त दोषोंसे मुक्त करनेवाली, और मुनिजनोंके सेवन करने योग्य है; क्योंकि यह माया ज्ञानीके चित्तको भी बलात्कारसे आकर्षित करके महामोहमें निमग्न कर देती है; परन्तु उसमेंसे अविद्यारूपी

तिमिरपटको हटाकर ज्ञानरूप सूर्यका प्रकाश देनेवालीभी यही है. यह दरिद्रियोंके लिये चिन्तामणिके समान है; यह माया मिथ्या है, इसका आदि नहीं, अन्त नहीं और मध्य अर्थात् वर्त्तमानभी नहीं. मिथ्या होते हुए भी सत्य दिखाई देती है. इसीका आपने विचार किया होता तो आपके प्रश्नका उत्तर अपने आप मिल जाता." ऐसा कहनेके उपरांत फिरभी उसने कहा कि "भाई! कल क्या २ मजा आपके देखनेमें आयी? इस विषयकी बातचीत करना तो आप भूलही गये." यह सुनकर ज्ञानसिंह बोला-"अहा! कलकी बात क्या कहूं! वह आनन्दकी लहर तो कलही पूरी होगई. मित्र! कल तो आपने मेरी पांचों इन्द्रियोंको आनन्दसे तृप्त कर दिया था. भांति २ के स्वादिष्ठ भोजन, सुगंधयुक्त पुष्प, अतर, अप्सराओंके नृत्य, गान और आलिंगन इत्यादिकसे मेरा मन सारे दिन और रातभर आनंदके समुद्रमें तैर रहा था. अबतक भी उस आनंदसागरकी तरंगें जब कभी मनमें लहराने लगती हैं तब मेरे मनको पुलकित कर देती हैं. और हां! मैं कैसे भूल गया? उस मायावी खिलाड़ीने तो हद कर दिया. अहो! घर बैठे स्वर्ग तथा पातालके दिव्यलोकके दर्शन हुए, यह क्या छोटी बात है? फिर, भाईजी! एक बात तो मैंने उसमें ऐसी देखी कि उससे उपजा हुआ आश्चर्य तो मुझे जन्मजन्मान्तरतक स्मरण रहेगा; क्योंकि वह मनोहर और आनन्दप्रद दृश्य तो मेरे हृदयमें ज्योंका त्यों चित्रित होगया है. अहो! मैंने अपने मृत पुत्रको वहां देखा! और उसके साथ बहुत कुछ बातचीत भी की. अहाहा! वह आनन्द जो मुझको हुआ उसका अनुमान आपही करो. इसभांति जिव्हा, नासा, नेत्र, श्रोत्र और स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) ये पांचों इन्द्रियां अभीतक उस समयके सुखमें लहरें ले रही हैं."

यह सुनकर विष्णुप्रतापने कहा—"आप बड़ी देरसे, 'आनन्द हुआ, आनन्द हुआ,' और 'सुख सुख' कह रहे हो, पर ऐसा वह सुख कैसा था सो कुछ मुझे समझाकर कहिये." तब ज्ञानसिंह बोला-"उस सुखका मैं किस प्रकार वर्णन करूं? मेरे मनमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता तो फिर वाणीसे किस भांति वर्णन कर समझा सकूं? जीमनेके सुखको तो केवल जिह्वाही जानती है. सुगन्धसे जो आनन्द प्राप्त हुआ वह मेरी नासिकाकोही विदित है, गानसे जो सुख प्राप्त हुआ उसको भोगनेवाले मेरे

कर्ण हैं, इन पांचों इंद्रियोंको जो परम सुखकी प्राप्ति हुई उसके ज्ञाता तो वेही हैं, मुझसे तो क्या, परन्तु मैं जानता हूं कि अपने गुरुजीसे भी उस परमानंदका वर्णन होना बिलकुल अशक्य है" विष्णुप्रताप बोला—" बस २ ! मैं यही जानना चाहता हूं. अब आपके मनमें निश्चय हुआ कि इन्द्रियजन्य अल्प सुखका भोक्ता भी जब उनका वर्णन नहीं कर सकता तो फिर केवल निर्विकार आत्मा कि जो अतींद्रिय (जो दशों इन्द्रियोंसे नहीं जाना जासकता अथवा दशोंपर सत्ता रखनेवाला) है, उसका यथार्थ ज्ञान होनेसे जो अपार आनन्द प्राप्त होता है उसके स्वरूपका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ?" तदनन्तर ज्ञानसिंहने कहा—" तब क्या आत्मानुभवजन्य सुख केवल अवर्णनीय—अनिर्वचनीयही है ? अहो अब मैं भलीभांति समझा! हां समझा ! अहा ! धन्य ! धन्य ! ! जैसे उदार चमत्कारवाला, सदाचार विहारवाला मृगेन्द्र पींजरेमेंसे छूट जाता है, वैसेही मैं जगत्के मोहजालमेंसे, आपके प्रतापसे छूट गया हूं." इतना कहकर ज्ञानसिंह तुरन्त आसनपरसे उठकर विष्णुप्रतापके चरणोंमें गिरगया और साष्टांग नमस्कार करके हर्षालिंगन किया. उसका अभ्यासयोग अधिकतर दृढ करने तथा अल्पबुद्धिका लय करनेके लिये, स्वस्थ होकर विष्णुप्रतापने कहा—" भाई ! देखो, यह आकाशमें खिलरहा चन्द्रमा, आपके कंठमें पड़ी हुई मालाके मोती, आपके हाथमेंका मोगरेका पुष्प और इस कटोरेमें भरा हुआ दूध, इन चारों वस्तुओंको अपने सब जानते हैं कि ये श्वेत हैं, परंतु कैसे श्वेत हैं सो क्या कोई कह सकता है ? मैं तो समझता हूं कि कोई भी नहीं कह सकेगा, क्योंकि चंद्रमा मोतीके समान श्वेत नहीं, मोती मोगरेके पुष्पके समान श्वेत नहीं, मोगरेका पुष्प दूधके समान श्वेत नहीं, वे अपने २ स्वरूपमें कैसे २ श्वेत हैं सो अपने मनमें समझते हुए भी उनकी श्वेतताका वर्णन नहीं कर सकते. सब कोई एक वस्तुको दूसरे पदार्थकी उपमा देकर कहेंगे कि अमुक पदार्थ अमुक पदार्थ जैसा श्वेत है, परन्तु घी खानेका स्वाद कैसा है सो केवल घीको खानेवालाही जानता है, लड्डू जीमकर तृप्त हुआ, परन्तु उसका स्वाद तो जीमनेवालेका मनही जानता है, दूसरेके कहने परसे उस स्वादका आभास मात्र भी मनमें नहीं होगा. इसी भांति वे गुरु परमात्माके निराकार निर्विकार रूपका वर्णन वाणीसे किस भांति करके समझसकें ? यह तो केवल अध्यारोप करके (अमुक सुख अमुक जैसा, अमुक आनन्द अमुक जैसा

इत्यादि कह कर) समझानेमें आता हैं, परन्तु उस स्वरूपका अनुभव करके शिष्य अपने आप आनन्द लेने—जाननेमें समर्थ हो तवही ले सकेगा और सुखानुभवको जानेगा. परमात्माके स्वरूपको तवही समझेगा कि यह सुख ऐसा है और तवही जानेगा कि परमात्माका स्वरूप ऐसा है; इसलिये संक्षेपमें इतनाही कहना बस है कि इंद्रियजन्य सुख जब वाणीसे नहीं कहे जा सकते तब अतीन्द्रिय आत्माका स्वरूप तथा उसके अनुभवसे होता हुआ सुख तथा उससे उपजता हुआ आनन्द इनका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता. कईएक इसको आश्चर्यवत् देखते हैं, कितनेही इसको आश्चर्यवत् कहते हैं, बहुतेरे इसको आश्चर्यवत् अनुभवते हैं, कईएक इसको आश्चर्यवत् सुनते हैं, कितनेही इसको सुनलेनेपर भी नहीं जानते, कोई कुछ कह नहीं सकता, सब कहते हैं, सुनते हैं, देखते हैं, अनुभवते हैं, परन्तु कोईभी उसका वर्णन नहीं कर सकते. इस वाणीद्वारा क्योंकर कहा जा सकता है ? इसलिये आत्मानुभव-जन्य सुख केवल अनिर्वचनीयही है. ”

इस प्रकार ज्ञानसिंहकी शंकाका पूरा २ समाधान हुआ तब दूसरे ही दिन वे सब विष्णुपुरको विदा होगये. वहां कई दिनतक आनन्दसे ज्ञानचर्चामें काल व्यतीत करनेके अनन्तर ज्ञानसिंह विष्णुप्रतापकी आज्ञा लेकर स्वदेश गया और गुरुके प्रतापसे परम ज्ञानवान् होकर समय होजानेपर अपनी स्त्रीके साथ मोक्षको गया.

एकविंश बिन्दु.

जीव ब्रह्म.

निरुपममनादितत्त्वं त्वमहमिदमद इति कल्पनादूरम् ।
नित्यानन्दैकरसं सत्यं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥

अर्थ—उपमारहित, अनादि तत्त्वस्वरूप, तू मैं यह और वह इस कल्पनासे दूर नित्यानन्द एकरस सत्य और अद्वितीय जो ब्रह्म है सोही मैं हूं.

शिष्य— हे दीनदयाल! आप कहते हो कि यह जीव देहधारी और अविद्याप्रपंच (संसार) में मग्न फँसा हुआ है तिसपर भी ज्ञान प्राप्त होनेपर देहमें रहकरभी वह जीव शिव-ब्रह्मरूप हो जाता है, इस बातका मुझे बड़ा आश्चर्य है कि ऐसा क्यों कर हो सकता है ?

गुरु— हे वत्स! यह जीव और शिव-आत्मा और परमात्मा जिसको तेरे समान अज्ञान प्राणी द्वैतरूप मानते हैं वैसे ये द्वैतरूप नहीं हैं; किन्तु केवल एकरूप अर्थात् अद्वितीयही हैं. केवल उपाधिभेदके कारण भिन्न २ दिखाई देते हैं. आत्मा सदैव एक परब्रह्मरूप और अद्वितीय है. वही प्रारब्धकर्मोंके अनुसार देहमें निवास करनेसे जीव कहलाता है. इस पर भी गुरुका यही उपदेश है कि तत्त्वमसि (परमात्मा वह तूही है) ऐसे उपदेशके प्रभावसे वह अपने तईं अहंब्रह्मास्मि (मैं परमात्मा हूं) ब्रह्म हूं अर्थात् जीव नहीं हूं, ऐसा समझने लगता है तब उसकी वृत्ति देहमें रहते हुए भी फिर जाती है और अदेही बनकर प्रपंचमें विचरता है. इसमें जो विकल्प उठते हैं सो चित्तसे उठते हैं. यदि चित्तका अभाव होजाय तो कुछ भी द्वैत नहीं है, सर्वत्र अद्वैतही है. जिस प्रकार जलमें गलेहुए नमककी डली आंखसे देखनेमें नहीं आती तैसेही हृदयमें प्रकाशमान रहनेपर भी वह इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किया जा सकता तथा उनसे देखनेमें भी नहीं आता; परन्तु

केवल सद्गुरुके वचनरसमें परम श्रद्धासे एकाग्रचित्त बने रहनेसे ग्रहण किया जाता है; देखनेमें आता है वही ब्रह्म है. वह ब्रह्म अज्ञानपट बीचमें रहनेसे देखनेमें नहीं आता, परन्तु जैसे स्वच्छ दर्पणमें मुख स्पष्ट दिखाई देता है तैसेही अधिकारीके शरीरमें विद्यमान निर्विकार भक्तिज्ञानयोगसे सुसज्जित बुद्धिके विषे आत्मा परमात्माकी एकता देखनेमें आती है, इस एकताको जान लेनेके अनन्तर सर्व संशय समूल नष्ट होजाते हैं. इस विषयमें कर्णका उपाख्यान तूने न सुना हो तो सुनः—

पूर्वकाल द्वापर युगके अन्तमें चंद्रवंशी राजा शन्तनुके पांडु और धृतराष्ट्र नामक दो पुत्र हुए थे, उनमेंसे धृतराष्ट्रके पुत्र तो धार्त्तराष्ट्र (कौरव) कहलाये और पांडुके पुत्र पांडव कहलाये. ये पांडव वास्तवमें ६ भाई थे अर्थात् कर्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव; परन्तु लोग उनको पांचही भाई जानते थे; क्योंकि कर्ण उनका बड़ा भाई है यह बात न तो वे जानते थे और न और लोगोंकोही विदित थी. ऐसा होनेका कारण कर्णका विलक्षण रीतिसे जन्म होना था. कर्ण पांडुपत्नी कुन्तीकी कुमारिका अवस्थामें जन्मा था. कुंती बाल्यावस्थामें अपने पालक पिता कुंतिभोज राजाके यहां रहती थी उस समय उसके पालक पिताके यहां जो कोई ऋषि महर्षि साधु पुरुष आते उनकी अतिथिसेवाका काम उसको सौंपा गया था. राजा कुंतिभोजके यहां जो २ ब्राह्मण महात्मादि आते उनकी कुंती भलीभांति सेवा करती थी. एक समय वहां दुर्वासा ऋषिका पधारना हुआ. कुंती परम श्रद्धापूर्वक रात दिन उनकी सेवामें लगी रहती; जबतक दुर्वासा ऋषि वहां रहे तबतक उन्होंने उस कुमारिकाको बड़ी पतिव्रता और एक निष्ठासे अपनी परिचर्या करते देखा जिससे उस पर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए. राजा कुंतिभोजके यहांसे विदा होते समय दुर्वासा ऋषिने उस कन्याको कहा कि–" हे कन्यके ! हे बेटी ! तू मेरी परम श्रद्धा और निष्कामतासे सेवा की, जिससे मैं परम संतुष्ट हुआ इस कारण मैं तेरा क्या हित करूं ? मेरी यह इच्छा है कि तुझको यथेच्छ पुत्र संपादन करनेके निमित्त कईएक देवताओंके मंत्र देऊं कि जिनके द्वारा जिस देवताका तू आवाहन करेगी वही प्रत्यक्ष होकर तेरी कामना पूर्ण करेंगे; परन्तु पुरी २ अड़चन विना उन देवताओंका आवाहन तू कदापि मत करना, अर्थात् जिस समय तेरे पुत्र

अवश्य होना चाहिये ऐसा प्रसंग आवे तबही उन देवताओंमेंसे किसी एकका चिंतवन करके उसके मंत्रका जप करना तो वह प्रकट होकर तुझे पुत्र देगा. " इतना कहकर ऋषिने उसको सूर्य, यम, धर्म, वायु, इंद्र और अश्विनीकुमार इन छः देवताओंके मंत्रोंका उपदेश किया और आशीर्वाद देकर दुर्वासा अपने स्थानको चले गये.

दुर्वासा ऋषिके चले जाने पीछे एक दिन देवी कुन्तीके मनमें यह संदेह उत्पन्न हुआ कि 'ऋषिके उपदेश दिये हुए मंत्रोंसे देवता यहां आते हैं या नहीं, सो देखना चाहिये. क्या दिव्य लोकमें निवास करनेवाले अमर पुरुषोंका इस भूमिपर बसनेवाले मनुष्योंसे साक्षात्कार होता है ? उनका तेजस्वी स्वरूप कैसा होता होगा ?' ऐसे कुतूहलसे उसने पवित्र होकर एकाग्रचित्तसे श्रीसूर्य नारायणके मंत्रका जप करना आरंभ किया. जप पूर्ण होतेही उसके एकान्त भवनमें देदीप्यमान प्रकाश होगया. प्राणीमात्रके प्रकाशदाता आदित्यमंडलके अधिष्ठाता श्रीसूर्यदेव उसके सन्मुख दिव्य स्वरूपसे आ खड़े हुए. उस समय कुन्तीके एकान्त भवनमें वह और उसकी एक विश्वस्त दासीके सिवाय और कोई नहीं था; एकाएक प्रकाश होजानेसे और अप्रतिम तेजसे चकाचौंध होकर वे दोनों चकित होगईं, कुन्ती नीचा शिर करके स्तब्ध होगई, इन दोनों बालाओंमेंसे किसीके मुखसे एक शब्द भी नहीं निकल सका. अन्तमें सूर्यदेवनेही प्रथम पूछा कि 'हे बालिके ! तूने किस अभिप्रायसे मेरा आवाहन किया है सो मुझे शीघ्र कह.' यह सुनकर उनका आतिथ्य पूजनादि सत्कार करना तो भूल गई और कुंती तो भयसे कांपने लगी. कांपते २ दोनों हाथ जोड़कर उसने प्रत्युत्तर दिया कि " हे देवाधिदेव ! महामुनि दुर्वासाके दिये हुए मंत्रोंकी परीक्षा कर देखनेके हेतुसे मैंने आपका आवाहन किया था; मैं आपको प्रणाम करती हूं. अब आप कृपा करके अपने स्थानको पधारिये." तब सूर्यदेव बोले " हे सुन्दरी ! किसी भी स्थलमें मेरा जाना मिथ्या नहीं होता इसलिये मेरा यहां आना भी व्यर्थ नहीं होगा, सो तुझे मेरी इच्छाके आधीन होना चाहिये. " यह सुनकर उसने लज्जावश होकर मुख नीचा कर लिया, तब दासीने सावधान होकर कुंतीको कहा कि " बाईजी ! आपका अहोभाग्य है, जो साक्षात् सूर्यनारायण आपके सुखकी इच्छा करते हैं.

आपका सौंदर्य आज सफल हुआ और दुर्वासा ऋषिका मंत्रोपदेश भी आज सिद्ध हुआ कि जिससे आपके प्रतापसे मैंने जगत्साक्षी श्रीसवितानारायणके प्रत्यक्ष दर्शन किये. अब तो आप लज्जाको छोड़कर सूर्यभगवान्का आतिथ्य करके इनकी आज्ञाका पालन करो, आपकी वय तो योग्य होगई है, परन्तु अभीतक कारी होनेके कारण लज्जित होती हो सो मैं जानती हूं, परंतु सूर्यनारायणकी कृपासे सब अच्छा होगा; इस कारण किसी बातकी शंका न करके इनकी आज्ञापालनरूप पूजा करो." इतना कहकर वह दासी इधर उधर हटगई. तदनन्तर सूर्यनारायणने कुंतीकी सब मनोकामना पूर्ण की और उसके आतिथ्यसे प्रसन्न होकर प्रयाणसमय वरदान दिया कि 'हे देवी! मेरे प्रसादसे तेरे एक महातेजस्वी और पूर्ण पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा. कुमारिका अवस्थामें तूने मेरा संग किया है तो भी तेरी वह अवस्था भ्रष्ट नहीं होगी और तेरा पुत्र मेरा अंश होनेसे महाप्रतापी होगा.' इतना कहकर श्रीसूर्यनारायण वहीं अन्तर्धान होगये.

कुंतीने इस बातसे अपनेतांई कृतार्थ माना तो सही, परन्तु सूर्यसे रहे हुए गर्भको किस भांति छिपाना और लज्जाका संरक्षण क्योंकर करना, इसकी उसे बड़ी चिंता हुई. दासीने उसको सब बातकी चिन्तासे मुक्त करनेका वचन दिया और उसने ऐसी युक्ती रची कि जिससे दश मास पूरे हुए तब तक किसीको भी कुछ संशय नहीं होनेपाया तथा किसी मनुष्यको भी कुंतीका मुख नहीं देखने दिया. पूरे दश महीनेसे उस एकान्तभवनमें कुंतीने एक महातेजस्वी दिव्य शरीरवाला कुंडल तथा कवचधारी सुन्दर पुत्र प्रसव किया. पुत्रको देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसके हृदयमें वात्सल्य प्रेम उभरने लगा. कुंतीको अपनी गोदमेंसे उस बालकको अलग करना अपनी देहमेंसे आत्माका त्याग करनेसे भी बढ़कर दुखदायी होगया. किसी भी अन्य मनुष्यको ज्ञात होतेही आत्मासे भी अधिकतर प्यारी लज्जाके समूल नष्ट होजानेके भयसे उसने उस पुत्रको अलग किया. तिस पीछे पानीमें तैरती रहे ऐसी एक पेटीमें उसको सुलाया और उस पेटीको बंद करके वह उस विश्वस्त दासीको सौंपकर कहा कि 'इस बालकको नदीमें बहादे.' दासीने बड़ी विचक्षणतासे किसीको विदित न होने देकर, उस पेटीको

अपने नगरके समीप बहती हुई गंगानदीमें बहादिया. कुन्ती सूर्यकृपासे कन्यारूप बनी रही और इस बातको बिलकुल भूल गई.

ययाति राजाके अतिप्रसिद्ध और महापवित्र वंशमें उत्पन्न हुए सत्कर्मा नामक राजाके अधिरथ नामका एक सारथी था. वह रथ हांकनेकी विद्या बहुत अच्छी रीतिसे जानता था. अनेक बार युद्धसमयमें बड़े २ महारथी अपना रथ* हांकनेके लिये उस अधिरथ सारथीको बहुत आर्जव करके लेजाया करते थे. वह सारथी स्वयम् महावीर्यवान् और धनुर्विद्यामें कुशल होनेपरभी विशेष करके रथ हांकनेकाही कार्य करता था, इसलिये उसको सूत (रथ हांकनेवाला) कहा करते थे. एकदिन वह 'अश्व' नामकी नदीके तीरपर स्नान करके अपना आह्निक कर्म कर रहा था, उससमय उसको नदीमें कोई वस्तु तिरती हुई दूरसे दिखाई दी. कुछ देरतक वह आतुरतासे उसीको देखता रहा कि 'वह क्या है ?' क्षणभरमें तैरती २ एक विलक्षणप्रकारकी लंबवर्तुल पेटी उसके सन्मुख आई. उसको देखतेही उसने किनारेपरसे नदीमें कूदकर वेगपूर्ण प्रवाहमेंसे उस पेटीको खेंचकर बाहर लाया. चारों ओरसे भलीभांति देखनेपर उसने जाना कि पेटी मजबूत बंद की हुई है. पेटीको घरपर लाकर उसने किसी चतुर कारीगरसे उसको खुलवाया तो उसमें एक बड़ा आश्चर्य दीख पड़ा. कवच कुंडलादिसे अलंकृत एक दिव्य स्वरूपवान्, तेजस्वी तथा नालच्छेदनरहित, तुरतका जन्मा हुआ सुकुमार बालक उसकी नजर आया. वह बालक पांवका अंगूठा पीता हुआ मंद २ हँसता आनन्दमें लेटा हुआ था. उसे देखकर सूतको बहुतही आनंद हुआ और ईश्वर–इच्छासे अनायासही उसकी मनोकामना पूर्ण हुई ऐसा समझने लगा; क्योंकि अभीतक उसने पुत्र पुत्री आदिक किसी भी संततिका मुख नहीं देखा था. तुरन्त वह उस बालकको अपनी राधानामक स्त्रीके पास लेगया. और वह बालक उनको प्राप्त हुआ इसलिये "ईश्वरनेही अनुग्रह करके पुत्रभावसे यह बालक प्रदान किया है, इसकारण अपना अपुत्रत्व मिट गया, और अब आपन पुत्रसुख भोगेंगे, अतएव तू बड़ी

---

* युद्धसमयमें रथका हांकना, साधारण रथ चलाने जैसा सुलभ काम नहीं है. उससमय तो सारथीको लड़ये योद्धाओंसे भी अधिक उत्तम चातुर्य वर्तना पड़ता है. अन्यथा सारथीकी मूर्खतासे चाहे जैसा बलवान् रणकुशल योद्धा हो तोभी संकटमें आपड़ता है.

सावधानीसे इसका पालन पोषण कर" ऐसा कह कर उसे सौंप दिया. बालकका मुखावलोकन करतेही वह हर्षसे बावली होगई. अनन्तर उसका नालच्छेदन कराकर अधिरथने बड़ी धूमधामसे उसका जातकर्म संस्कार किया. नामकरणका समय आया तब उसका "वसुषेण" नाम रक्खा. अधिरथ और उसकी स्त्री अत्यन्त प्रेमसे उसका पालन पोषण करते थे. वह बालक प्रतिदिन वृद्धिगत होता हुआ अपने माता पिताको परम आनन्द देने लगा. इस कर्णके पांवोंके प्रभावसे उसकी पालक माताके एक दूसरा औरस पुत्र भी हुआ जिसका नाम "राधेय" था.

वह वसुषेण कई कारणोंसे कर्णके नामसे प्रख्यात हुआ; परन्तु राधाने पयःपान कराकर उसका पोषण किया था इसलिये कभी २ उसको राधेयभी कहते थे, तथा उसका पिता सारथीपन करता था, इसलिये अन्यान्य राजपुत्र उसको सूतपुत्र अथवा दासीपुत्र कहकर चिढ़ाया करते थे. कर्ण तथा राधेय दोनों योग्य वयके हुए तो उनके पिताने उनको धनुर्विद्या सिखानेका विचार किया. उस समय हस्तिनापुरमें कौरवों तथा पांडवोंको द्रोणाचार्य नामक धनुर्विद्याविशारद महर्षि, धनुर्विद्याका अध्ययन कराते थे. हस्तिनापुरका राज्य बड़ा होनेके कारण वहां राजपुत्रोंको पढ़ानेका एक विद्यालय था. उसमें अन्यान्य देशोंके बहुतेरे राजकुमार विद्या पढ़नेके लिये जाते थे. कर्णके पालक पिता अधिरथने अपने औरस तथा अनौरस दोनोंको हस्तिनापुरमें गुरु द्रोणाचार्यके पास विद्याध्ययनके लिये भेजा. सब राजकुमार एकही गुरुके पास पढ़ते थे, तथापि वे सब एकही समान विद्या नहीं पढ़ सकते थे. पांडव आदिक बहुतसे राजकुमार जो विचक्षण और चपल थे, वे और दूसरे सब राजकुमारोंके आगे रहते थे, और द्वेषी कौरव कि जिनके लियेही गुरु खासकर नियत किये गये थे, बेचारे सबके सब पीछे पड़े रहते; क्योंकि वे अभ्यासमें तो बिलकुल चित्त नहीं लगाते थे और द्वेष करनेमें सदा तत्पर रहा करते थे. उन सब राजकुमारोंमें वसुषेण (कर्ण) अत्यन्त चालाक निकला और पांडवोंमेंसे अर्जुनकी बराबरी करने लगा. कईएक बातोंमें तो वह अर्जुनको भी पीछे रखने लगा. अर्जुनपर कौरवोंका स्वाभाविक द्वेष तो थाही, और वह सब विद्याओंमें अधिक निपुण होने लगा तो उनका द्वेष और भी बढ़ता गया. कर्ण जब सबसे बढ़कर सर्व

विद्याओंमें कुशल दिखाई देने लगा तब कौरवोंने उसको प्रसन्न रखकर उसके साथ मित्रता करली; क्योंकि वे अर्जुन जैसे बलवान् प्रतिपक्षीपर कर्णकी सहायतासे विजयी होनेके लिये बड़े उत्सुक थे. कौरवोंका सबसे बड़ा भाई दुर्योधन कर्णसे अत्यंत प्रीति रखने लगा और अनेक रीतिसे, उसका सत्कार करके उसे अपने आश्रममें रक्खा. तदनन्तर दिनोदिन कर्णको प्रताप, बाहुबल और विद्याके कारणसे बढ़ता हुआ देखकर, जरासंध आदिक बड़े २ राजाओंके साथ उसकी मित्रता होजानेसे तथा उसका प्रभाव बढ़ जानेसे उस (कर्ण) के वर्गके राजाओंसे युद्धप्रसंगमें बहुत बड़ी सहायता मिलनेकी आशा करके, दुर्योधनने कर्णको अंगदेश प्रदान करके वहांका राजा बना दिया. यह एक साधारण नियम है कि किसीको सामान्य स्थितिमेंसे एकाएक ऊंचा चढ़ा देखकर कई एक अल्पबुद्धिवाले दुर्जन निष्कारण उसका द्वेष करने लगते हैं. इसी भांति दूसरे राजा कर्णको उच्चपदपर पहुँचा हुआ देखकर उससे द्वेष करने लगे. कर्णको अंगदेशका आधिपत्य मिला था, तिसपर भी वह निरन्तर हस्तिनापुरमें राजा दुर्योधनके साथही रहता था. इस कारणसे उसके साथ द्वेष करनेवाले (लोग जो उससे डरते थे वे उसके पीठपीछे, तथा जो बराबरवाले थे सो उसके समक्ष) उसको सूतपुत्र, दासीपुत्र, राधेय इत्यादिक हलके विशेषणोंके साथ पुकारकर चिढ़ाया करते थे. और भीम तो अपने उग्र स्वभावके कारण उसके साथ भिड़ पड़ता और दासीपुत्र २ कहाही करता. कर्ण बड़ा तेजस्वी, शूरवीर और पराक्रमी होनेपरभी इस बातसे बहुत सकुचाता और भीम जैसे उद्दण्डके ताने सुनकरके अत्यन्त दुःखी होता था. किसी काममेंभी कर्ण आगेवान होकर बोलने लगता तोही "बैठ २ सूतपुत्र! जा २ दासीपुत्र! तू क्या बोलता है ? तुझे बोलनेका क्या अधिकार है ? क्या तू राजपुत्रोंकी बराबरी करना चाहता है ?" इसप्रकार बारंबार कठोर वचन कहकर उसको नीचा दिखानेमें सब लगे रहते थे. वह स्वयं नदीमेंसे बहताहुआ तथा पेटीमेंसे मिला हुआ सारथीका पुत्र है; यह बात जानता था, इस कारण किसीको कुछ भी नहीं कह सकता था; परंच उनके ताने टोने सुनकर मनहीमन जलाभुना करता. "अरे! क्या मैं दासीपुत्र हूं ? हा ! मुझे लोग सूतपुत्र कहते हैं. हे प्रभु ! मैं किसका और किसके पेटसे उत्पन्न हुआ पुत्र हूं ? हे हरि ! इस कलंकसे मैं किसप्रकार मुक्त होऊं ? हे दीन-

दयाल ! इस महान् अपवादसे आप मुझे छुड़ाओ, मैं आपके शरण हूं." इस भांति वह एकान्तमें वारंवार भगवान्से प्रार्थना किया करता. वह अतुल पराक्रमी था और उसके हाथसे बहुतसे चमत्कारिक और अशक्य कार्य सहजही होजाते थे; तथापि जब कभी उसके अन्तःकरणमें इस बातका स्फुरण होता तब सब कार्योंमेंसे उसका उत्साह भंग होजाता था. इसप्रकार वह बड़े क्लेशाब्धिमें गोते खाया करता था, जिसका मात्र इतनाही कारण था कि वह अपने असली माता पिता तथा स्वयं किस प्रकार और कहां जन्मा था इस बातको विलकुल नहीं जानता था.

श्रीहरि अन्तर्यामी और भक्तवत्सल हैं. अपने भक्त (शरणागत) को दुःखमें पड़ा देखकर उनको क्षणभर भी चैन नहीं पड़ता. अतः भगवान् उसका दुःख दूर करते हैं यह उनका स्वभावही है, सोभी वह संकट ऐसी परोक्ष रीतिसे दूर कर देते हैं कि मनुष्यको आश्चर्य माननेका कुछ कारण भी नहीं मिलता. कर्णकी प्रार्थना पर ध्यान देकर उसका संकट सहज रीतिसे निवारण करनेकी भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचंद्रकी इच्छा हुई. उस समय कौरव और पांडवोंके बीचमें परस्पर राज्यसंबंधसे कितनेही कालसे विग्रह चला आता था. कौरव समस्त राज्यको पचाकर पांडवोंको उसमेंसे यत्किंचित् भी भाग देनेमें प्रसन्न नहीं थे, और इसी कारणसे उन्होंने उनको जूआ खिलवाकर हारनेपर वनमें हँकाल दिया था. पांडवोंसे यह अन्याय सहन नहीं होता था. उनके मनमें यही चिन्ता रातदिन लगी रहती थी कि कौरवोंके साथ युद्ध करके उनको पराजय करना और अपना राज्य पीछा लेना; परन्तु पहले एकवार कौरवोंको साम भेद आदि युक्तियोंसे समझाना, और इतनेपरभी वे न मानें तो फिर दंड देना; ऐसा धर्ममूर्ति धर्मराजका विचार था. उन्होंने राजनीतिनिपुण तथा उन्हें निरन्तर सहाय करनेवाले और लड़ लड़ानेवाले श्रीकृष्णचंद्रको साम (विष्टि—समझ) करनेके लिये हस्तिनापुर भेजा. भगवान्को तो 'एक पंथ दो काज' करनेका यह समय था. कौरवोंकी सभामें जाकर श्रीकृष्णजीने धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म पितामह, शकुनि, कर्ण इत्यादि महापुरुष जो सभाके मुख्य २ सभासद थे उनके समक्ष सबके सुनते हुए, शतभ्राताओंसहित दुर्योधनको विविध प्रकारसे समझा २ कर पांडवोंके साथ मेल करलेनेको कहा, बहुतसा भय बताया; तिसपर भी उन दुष्टोंने नहीं माना और अन्तमें कहा कि "हम तो पांडवोंके

साथ युद्धही करेंगे, भाग तो कदापि नहीं देंगे." इसकारण क्रोध करके श्रीकृष्णचंद्र हस्तिनापुरसे उपलव्य गामको जाने लगे. उससमय भीष्म पितामह आदि सर्व शिष्ट जन तथा कर्ण, दुर्योधनादि कौरव सव लोग भगवान्को पहुँचानेको चले. नगरसे बाहर निकलकर वड़ी दूरतक सब लोग भगवान्के साथ वातें करते २ रथके साथ गये तव श्रीकृष्णजीने सवको विनयपूर्वक आग्रहसे पीछे लौटाया; परंतु अकेले कर्णको पीछा फिरनेकी आज्ञा नहीं दी. वह उनके साथ २ जा रहा था. पीछे फिरनेवालोंसे रथ बहुत दूर निकल गया; तब भगवान्ने कर्णको निकट बुलाकर प्रेमपूर्वक रथमें विठा लिया और सारथीको धीरे धीरे घोड़े हांकनेकी आज्ञा की. भगवान् अनेक प्रकारके विवेक वचनोंसे कर्णके साथ वातचीत करने लगे. श्रीकृष्णजीने कहा—"हे कर्ण! मैं जो कहता हूं सो तू सावधान होकर श्रवण कर. तेरा मेरे साथ क्या संबंध है और तू किसका पुत्र है इस वातकी तुझे कुछ खवर है? तुझको लोग जिस नामसे पुकारते हैं और जिस वातसे तेरा अपमान होता है और जिस कारणसे तू निरन्तर खेदयुक्त रहता है सो सब मैं भलिभांति जानता हूं, परन्तु जवतक तू इस वातसे अनजान है तवतक तेरा क्लेश मिटनेवाला नहीं है. तू दुर्योधनके आश्रयमें रहकर पांडवोंके साथ वैरभावसे वर्त्तता है, परन्तु वास्तविक रीतिसे देखनेपर तेरा ऐसा करना सर्वथा अयोग्य है. तू ऐसा समझता है और मानता है कि मेरा संवंध (निकटका संबंध) कौरवोंमें है, जिससे तू कौरवोंका पक्ष करता है, और पांडव मेरे शत्रु हैं ऐसा मान कर, तू उनकी उपेक्षा करता है; परन्तु तू पांडवोंका सगा भाई होता है, तेरा जन्म मेरी फूफी कुंतीके उदरसे हुआ है और तू उनका ज्येष्ठ पुत्र है. यह सुनकर तुझे आश्चर्य हुए विना नहीं रहेगा; हमारा संपूर्ण वृष्णिकुल तेरं मातृपक्षका है, सारे पांडव तेरं सगे भाई हैं, तू युधिष्ठिरका ज्येष्ठ भाई है, यह वात जव उनको समझाई जावेगी तव वे अत्यन्त प्रसन्न होंगे और सव भाइयोंसहित तेरे सेवक होंगे, इतनाही नहीं, किन्तु भीम इत्यादिक जो तुझे दासीपुत्र सूतपुत्र कहकर चिढ़ाते हैं वे तुझसे क्षमा मागेंगे, तुझे पांडव कहकर पुकारेंगे और तेरी पूजा करेंगे." यह सुनकर कर्णजो कि अवतक महाक्लेशसमुद्रमें डूवा हुआ था सो एकाएक महाहर्षित हुआ और भगवान्को पूछने लगा कि—"हे श्रीकृष्ण! आपने यह क्या कहा?

क्या मैं कुंती-पुत्र हूं? हे प्रभु! कृपा करके मुझे सब वृत्तान्त समझाकर कहिये." तदनन्तर श्रीकृष्णने वह कुंतीके पेटसे कुमारिका अवस्थामें किस भांति जन्मा था और अधिरथके हाथ किसतरह लगा सो सब गुप्त वृत्तान्त यथार्थ रीतिसे समझाकर कहा. तब फिर बोले "हे कर्ण! अब तू अपने मनको निश्चिन्त और शान्त कर. तुझको लोग राधेय कहते हैं परन्तु तू राधेय नहीं, कौन्तेयही है. और तुझे सूतपुत्र कहनेवालोंके मुखमें धूल है; क्योंकि तू सूतपुत्र नहीं किन्तु सूर्यपुत्र है!" अपने जन्मका समस्त पूर्व-वृत्तान्त सुनकर कर्णका सारा शोक मिटगया और वह आनन्दसागरमें तैरने लगा. तदनन्तर वह यथार्थमें पांडवोंका भ्राता और कुन्तीपुत्र है इसकारण उसने उनकाही अनुसरण करना चाहिये ऐसी श्रीकृष्णकी समझौतीको स्वीकार किया, परन्तु अधिरथ तथा उसकी स्त्रीने उसका पालन किया है इसकारण उन्हींकी सेवा करना उसने योग्य समझा. तथा दुर्योधनकेही आश्रयमें रहना और उसकीही सहायता करना, ऐसी प्रतिज्ञा बहुत काल पूर्वसेही उसने कर रक्खी थी, अब उससे फिर जाना यह सज्जन पुरुषका लक्षण नहीं; इसकारण कोटि उपायसें भी पांडवोंके पक्षमें नहीं जासकेगा. इन सब बातोंसे श्रीकृष्णका समाधान करके उनको नमस्कार किया और वहांसे बिदा हुआ. कितनेही कालके पीछे कुरुक्षेत्रमें कौरव पांडवोंके युद्धमें वह, नारायण जिसके सारथी हैं ऐसे नर (अर्जुन) के हाथसे मृत्युको प्राप्त हुआ.

हे वत्स! (गुरु शिष्यको कहते हैं) इस इतिहासपरसे तेरी समझमें आया होगा कि आत्मा ब्रह्मरूपही है. तथापि अपनेतई जीव मान लेनेके कारणसे नाना प्रकारके क्लेश भोगता है, परन्तु जब उस भ्रमका नाश हो जाता है, तब वह भ्रमरहित होकर जानने लगता है कि मैं देह नहीं हूं, पुरुष अथवा स्त्री नहीं हूं, मैं दशों इन्द्रियोंरूप नहीं हूं, परन्तु मैं गुणरहित सत् चित् और आनन्दमय ब्रह्मरूप हूं. जैसे कर्ण; मैं राधेय दासीपुत्र हूं, सूतपुत्र हूं, ऐसा जानकर महाक्लेश भोगता था, परन्तु जब श्रीकृष्णचन्द्रने उसकी उत्पत्ति किसभांति हुई वह इतिहास सुनाया तब उसको निश्चय हुआ कि मैं दासीपुत्र नहीं हूं-तैसेही सारथिपुत्रभी नहीं, परंच मैं कुंतीका पुत्र और पांडवोंका सहोदर हूं. ऐसी उसकी वृत्ति होगई और वह सब क्लेशोंसे मुक्त हुआ. ऐसेही जब पुरुष अपने असली स्वरूपको जान लेता है तब वह देहादिक उपाधियोंमें रहता हुआभी अपनेको उनसे भिन्न मानता है

और उसकी वृत्ति बदलकर ब्रह्ममय बन जाता है और वह जीवन्मुक्तिके सुखको भोगता है. जीवही ब्रह्म है. यह विस्तीर्ण जगतही ब्रह्म है, परन्तु जबतक पुरुष अपनी देह जो शवके समान है इसको भजता है तबतक वह क्लेश पाता है, और जन्ममरणादि व्याधिग्रस्त रहता है, परन्तु जब वह अपने स्वरूपको जान लेता है तब समस्त क्लेशोंसे मुक्त होजाता है अर्थात् अपने देहादिक स्वरूपमें आरोपित की हुई-होगई हुई-आभासरूप वस्तुका निराकरण करता है, तब वह पूर्ण अद्वय और क्रियारहित परब्रह्मही बन जाता है.

इति श्रीनंदनंदनपादारविन्दमिलिन्देन देशाईकुलोत्पन्नेन सूर्यरामसुतेन इच्छारामेण विरचिते चन्द्रकांते "तत्त्वज्ञानपूर्वकसंसारोद्धारपुरुषार्थनामा प्रथमः प्रवाहः ।

चन्द्रकान्त

द्वितीय प्रवाह–चैतन्य.

चन्द्रोदय.

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंति॥

अज्ञानरूपी निद्रामेंसे उठकर आत्मज्ञानके अभिमुख होओ, और महात्माओंके पास जाकर आत्मस्वरूपको जानो; कारण कि तीक्ष्ण दुर्गम और दुरत्यय ऐसी क्षुर (छूरे) की धाराके समान ज्ञानमार्ग भी तीक्ष्ण, दुर्गम और दुरत्यय है, ऐसा सर्वज्ञ मुनिगण कहते हैं.

अनपेक्षितगुरुवचना सर्वान्ग्रन्थीन्विभेदयति सम्यक् ।
प्रकटयति पररहस्यं विमर्शशक्तिर्निजा जयतु ॥

गुरुके वचनकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली, सर्व ग्रन्थियोंको भलीभांति भेदन करनेवाली, ऐसी अपनी विचारशक्ति रहस्यको प्रकट करती है, वह विजयवती हो.

वयं येभ्यो जाताश्चिरतरगता एव खलु ते
सेमं यैः संवृद्धाः स्मरणपदवीं तेऽपि गमिताः ।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥

जिनसे हमने जन्म लिया था, वे तो कबसेही परलोकको चले गये, और जिनके साथ हम बढ़कर बड़े हुए थे वे भी परलोकवासी हुए. अब हम रहे सो प्रतिदिन अभी गिरें, अभी पड़ें, ऐसी अवस्थावाले हमभी बालूवाली नदीके तीरपर खड़े हुए वृक्षके समान हो रहे हैं.

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनाऽन्यानपि तारयन्तः ॥

शान्त, महान्त, वसन्तकी नाई लोकहितसाधक, भयंकर भवसागरमेंसे स्वयं तरे हुए और केवल करुणासे दूसरोंकोभी भवसागरमेंसे तारनेवाले सत्पुरुष जगत्में बसते हैं.

शरीरं सुरूपं ततो वै कलत्रं यशश्चापि चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
मनश्चेन्न लग्नं हरेरंघ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥

सुन्दर रूपवान् शरीर, स्त्री, उत्तम यश तथा अनेक जातका मेरुसमान धन हो तोभी जो श्रीहरिके चरणकमलोंमें मन नहीं लगा हो तो उन सबसे क्या है ?

कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम् ।
अये कृष्ण स्वामिन्मधुरमुरलीवादन विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥

यमुनाजीके निर्मल विशाल तीरपर बलदेव सुदामा आदिके साथ विहार करते हुए श्रीकृष्ण भगवान्को, हे श्रीकृष्ण ! हे स्वामिन् ! हे मधुर मुरलीके बजानेवाले विभो ! मुझपर प्रसन्न होओ; इस भांति संबोधन करते २ वृन्दावनमें अपने दिवसोंको पलक मारनेमात्रमें मैं कब विता सकूंगा ?

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

जिस परमेश्वरसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होता है, जो परमेश्वर, जिस प्रकार घडेमें कारणरूप मृत्तिका व्याप्त होरही है उसी प्रकार कार्यरूप इस संसारप्रपंचमें कारणरूपसे व्याप्त होरहा है, तथा जो मिथ्या कार्यसे भिन्न है, जो परमेश्वर ज्ञानरूप तथा स्वयंप्रकाश है तथा बडे २ पंडितभी जिस वेदका रहस्य जाननेमें मोहको प्राप्त होते हैं उस (वेद) का परमात्माने आदिकवि ब्रह्माको उपदेश किया था, पुनः जैसे सूर्यकी किरणोंसे तपीहुई वालूमें जलकी भ्रान्ति होती है, परन्तु वह सत्य नहीं है तथापि सूर्यकी किरणोंकी सत्तासे सत्यरूप भासती है, स्थिर पानीमें जैसे यह काच है ऐसा भान होता है, सो सत्य नहीं है तथापि पानीकी सत्तासे सत्य भासता है; और जैसे काचमें पानीकी भ्रान्ति होती है, परन्तु वह सत्य नहीं, तिसपरभी काचकी सत्तासे सत्यही भासता है, तैसेही अधिष्ठानरूप परमात्मामें तमोगुणके कार्यरूप पंचमहाभूतोंकी सृष्टि, रजोगुणके कार्यरूप इन्द्रियोंकी सृष्टि, और सत्त्वगुणके कार्यरूप देवताओंकी सृष्टि कल्पित एवम् असत्य है तथापि परमात्माकी सत्तासे सत्य जैसी भासमान है; और जिसने अपने ज्ञानरूप प्रकाशसे मायाका नाश किया है; उसी सत्य परमात्माका हम ध्यान धरते हैं.

राजा यज्ञभू और प्रधान विशालकेतु
इनका संवाद

राजा यज्ञभूको एक महातेजस्वी दिव्यमूर्ति
सिद्ध महात्माका दर्शन

“गुजराती” प्रेस, कोट, मुंबई १.

चन्द्रकान्त.

द्वितीय प्रवाह–चैतन्य.

पीठिका

[यज्ञभूका पूर्ववृत्तान्त.]

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थं यज्जीवपरमात्मनोः।
तादात्म्यविषयं ज्ञानं तदिदं मुक्तिसाधनम्॥

अर्थ– तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके श्रवणसे हुआ जो जीवात्मा परमात्माका तादात्म्यविषयक ज्ञान सोही मुक्तिका साधन है.

पूर्वकालमें दृढदुर्गा नामकी एक अति रमणीय नगरी थी. उसमें यज्ञभू नामका महाप्रतापी और धर्मशील राजा राज्य करता था. वह राजा क्षत्रियके सर्व धर्मोंसे परिपूर्ण था. बहुत वर्षोंसे उसका राज्य एक-समान रीतिसे वृद्धिंगत होता आता था. अपने राज्यासनपर अभिषिक्त होनेके अनन्तर उसने अनेक दूसरे राजाओंको जीतकर अपने राज्यको बड़े विस्तारवाला करदिया था. पुनः एकही साथ सौ (शत) राजाओंको उसने विजय किया था तथा उत्तरोत्तर अनेक अद्भुत २ पराक्रम कर चुकनेके कारण, किसी राजाकी भी उसके सामने चूं चां करनेकी हिम्मत नहीं होती थी. उसका राज्य केवल निष्कंटक और परम शान्तिका सुख भोगता था. राज्यमें किसी बातकी अनीति नहीं होती थी; चोर, लुटेरे, दगाबाज, चुगलखोर, पापी, हरामी, अधर्मी, और पापात्माका नामभी वहां न था. प्रजाको यज्ञभू अपनी संततिही जानता था और उसका उत्तम रीतिसे पालन करता था. वह जैसा पराक्रमी और विद्वान् था, वैसाही सत्यशील और मिलनसार भी था. उसको अन्य सबकी अपेक्षा तत्त्वज्ञानपर विशेष प्रीति थी

तथा वह श्रेष्ठ पंक्तिका रसिक पुरुषभी था. वह कईवार विविध विलासोंमें मग्न हुआ देखनेमें आता था; तथापि विलास भोगनेमें दूसरे पशु-समान एकेन्द्रिय ज्ञानवाले विषयी पुरुषोंकी नांई विषयका आनन्दही लेते रहना और उसमें लीन होजाना इस वृत्तिसे वह विमुख था. इस भांति रहनेमें उसका बहुतही गंभीर हेतु था. किसी २ बातमें तो साधारण लोगोंको उसकी प्रकृति ऐसी विलक्षण जान पड़ती थी कि वे लोग यज्ञभूको पागल वा भ्रमिष्ठ कहकर अल्पज्ञ समझ बैठते थे, परन्तु जब वह न्यायासनपर बैठता तब उसकी न्याय-तुलनाकी अद्भुत शक्ति और न्यायपरायण वृत्तिको देख-कर लोगोंको आश्चर्य हुए विना नहीं रहता था. दान करनेमें वह कर्णकी कीर्तिको उल्लंघन करता था; धर्मकार्यमें महात्मा रामसे श्रेष्ठ था; न्यायमें धर्मराज था; ज्ञानमें शंकरतुल्य था; ज्ञान, धर्म और व्यवहारके प्रत्येक कार्यमें वह पात्राऽपात्रका भलीभांति विचार करता हो ऐसा, सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेसे जान पड़ता था. इतनेपरभी कभी २ वह कर्म और उपासना दोनोंको एकतरफ रखकर परम नास्तिक जैसा दिखाई देता था. कभी विषयोंसे प्रसन्न होता, कभी विषयोंसे बहुत अरुचि दिखाता; कभी अहंकारमय और कभी अहंकाररहित बन जाता; कभी निर्भय और कभी सभय दिखाई देता; कभी अखंड आनन्दरसमें तृप्त, तो कभी शोकमोहमें मग्न दिखाई देता; कभी अकेला फिरता तो कभी सर्व संपत्तिको साथ लिये फिरता; कभी मूढ, कभी मौनव्रतधारी, कभी समदृष्टि, कभी विषमदृष्टि, कभी देहधारी, कभी विना देहवाला बनकर विचरता था, परन्तु यथार्थमें वैसा नहीं था. उसको प्रिय अप्रिय, सुख दुःख कुछभी स्पर्श नहीं करता था. उसकी सब बातोंका आशय अत्यन्त गूढ होनेसे वह(आशय) केवल महात्मा जनोंहीके जाननेमें आसकता था. ठीक २ कहें तो उसे दूसरा विदेहही कहना होगा.

यज्ञभू जितना सांसारिक व्यापार व्यवहार करता वह सब केवल दिखा-नेमात्रका था. उसकी सच्ची प्रीति केवल एकही वस्तुपर थी. वह सचमुच ब्रह्मैव था. और २ राजाओंकी नांई उसके दश बीस अथवा सौ स्त्रियां नहीं थीं. केवल एकही तथा पूर्णतया उसके अनुकूल भाग्यवती भार्याके साथ उसका विवाह हुआ था. स्त्री सानुकूल हो तो वह केवल सांसारिक कार्योंमेंही सहायक होती है सो नहीं, बल्कि पारमार्थिक कार्योंमेंभी वह एक बुद्धिमती सहायक होजाती है. इस राजाके कोई सन्तति नहीं थी, तिस-

परभी मानों उसकी रानीको इस बातकी अपेक्षाही नहीं इस भांति वह सदा आनन्दित रहा करती थी. दैवेच्छासे उसके अद्वैतभावकी कसौटी कसनेके लियेही उसको गर्भ रहा. दश मास पूरे होनेपर एक अत्यन्त सुन्दर पुत्रका जन्म हुआ. कई वर्षोंतक अपुत्र रहनेपर राजाको पुत्रकी प्राप्ति हुई, इस कारणसे समस्त प्रजामंडलमें जय २ कार और आनन्दोत्सव छागया. जहां देखो वहां मंगलमय चिन्ह दिखाई देने लगे; परन्तु यज्ञभूको पुत्र होनेसेभी क्या और न होनेसेभी क्या, किसीभांति हर्षभी नहीं और शोकभी नहीं. उसने इस अवसरपर पुत्रसंबंधमें, प्रियासंबंधमें, प्रजासंबंधमें ऐसा वर्त्ताव किया कि जिससे प्रधानमंडलमें अद्भुत आश्चर्य फैल गया—मंत्रियोंके कहनेसे बड़े समारंभके साथ पुत्रके जातकर्मादि सब संस्कार उत्तमतापूर्वक करके उसको संस्कृत किया. राजकुमार ऐसा अत्यंत सुन्दर था, कि, जिसके रूपकी प्रशंसा देशदेशान्तरोंमें फैल गई. योग्य वय होनेपर पराक्रममेंभी वह अपने पिताके समानही अत्यन्त शूरवीर समझा जाने लगा. राजाने अपने यहां, खासकर उसीके लिये, अश्वारोहण, गजारोहण, रथारोहण आदिका ज्ञान होनेकेलिये, उन २ विद्याओंमें कुशल गुरुओंको नियत किया. धनुर्विद्याभी उसको बहुत श्रमसे सिखानेमें आई. थोड़ेही वर्षोंमें वह राजकुमार वेद, शास्त्र, धनुर्वेद तथा अन्यान्य कलाओंमें निपुण होगया. एक तो बड़े प्रतापी राजाका कुमार, दूसरे रूपगुणादिसंपन्न होनेसे उस राज्यके अधीनस्थ राजाओंने अपनी २ पुत्री उस पाटवीकुँवरको विवाह देनेके लिये वारंवार संदेश भेजना आरंभ किया; परन्तु यज्ञभू उन सब राजाओंको 'नाहीं' करता गया. पुत्रके होते हुए वहूका आना किसको अच्छा नहीं लगता? परन्तु यज्ञभूके ऐसा करनेमें कुछ गूढ तत्त्व था. समय पाकर कुँवरका वयभी विवाहयोग्य हुआ. उसकी माता और यज्ञभूके मंत्रियोंने वारंवार राजाको इस विषयमें कहना शुरू किया. "महाराज! अब राजकुमारका विवाह कीजिये." परन्तु राजा तो किसीकी भी बात नहीं सुनता. "अपने कुलकी मानमर्यादाके अनुसार अब कुँवरजीको अविवाहित रखना उचित नहीं. अपने शत्रु इसबातसे प्रसन्न होंगे और पीछेसे ऐसा कहनेमेंभी नहीं चूकेंगे कि यज्ञभूके कुलको कन्या नहीं मिलती. इस कारण अब राजकुमारके विवाहकी तैयारी करनी चाहिये. हजारों जगहके संबंध आते हैं तिसपर भी आप किस कारण पीछे लौटते हैं?" इस भांति

राजाको बहुत कुछ कहनेमें आया तो भी उसने कुछ ध्यानही नहीं दिया. राजाका ऐसा दुराग्रह देखकर सब लोग बड़े अचंभित हुए. इस राजाका परम विश्वस्त और प्रिय ऐसा एक प्रधान था, उसने इस विषयमें राजाके साथ एकान्तमें बातचीत करनेका विचार किया. उस प्रधानको बहुतकालसे इस बातका अनुभव था, कि, जब २ राजा ऐसा हठ पकड़ बैठता है तब २ उसके विचारमें कुछभी गूढ आशय रहता है, परन्तु वह क्या बात है सो जाननी चाहिये. एक दिन राजा स्नानसन्ध्यादिसे निवृत्त होकर बाहर जानेकी तैयारी कर रहा था, उसी अवसरपर प्रधान भी आ पहुँचा. तद-नन्तर वे दोनों श्री रथमें बैठकर हवा खानेके लिये नगरसे बाहर एक उद्यानमें गये. वाटिकामें अनेक पुष्पोंकी सुगंध लेते हुए, कुंजलतामें फिरते २ एक बैठक दीख पडी, उसपर राजा और प्रधान दोनों बैठे और अनेक तरहकी बातचीत होने लगी. जब प्रधानने देखा कि, राजा अब आनन्दमें है, तब मौका पाकर वही पहली चर्चा छेड़ी. उसने नम्रताके साथ राजाको पूछा कि-" हे राजन्! एक बात पूछना चाहता हूं, जो आज्ञा हो तो निवेदन करूं ?" राजाने सुननेकी इच्छा दर्शाई; तब उसने कहा-" महाराज ! राजकुमार भरपूर यौवनावस्थाको पहुँचे हैं; और बाहरके राज्योंमेंसे अपनी २ कन्या अर्पण करनेके विषयमें बहुतसे राजाओंने आपकी मर्जी पुछवाई है, तब किस कारणसे आप कुँवरको ब्याहनेकी इच्छा नहीं करते हैं सो जाना नहीं जाता. मैं जानता हूं, कि, इस विषयमें आपका कोई गूढ हेतु होगा. यदि ऐसा कुछ हो तो कृपा करके इस दासको कहिये, कि, इसमें क्या कारण है?" राजाने कहा "हे सुज्ञ सचिव ! इसविषयमें जैसा तू समझता है वैसीही बात है; परन्तु वह हेतु किसीके पास प्रकट करनेकी मेरी इच्छा नहीं है, तथापि तू मुझको बहुत प्रिय है तथा मेरे विश्वासका पात्र है; इसीसे तुझकोही कहता हूं सो सुन. इस देहका समझा जाता हुआ पुत्र विलासचक्षु (यह राज-कुमारका नाम था) जो तुम सब लोगोंकी दृष्टिमें जवान और विवाहयोग्य हुआ दिखाई दे रहा है, उसीको मैं मृत्युके मुखमें पैठता हुआ देखता हूं. यह अब थोड़ेही दिनोंमें मृत्युके आधीन होगा. हे बुद्धिमन् ! तू विचार कर कि ऐसा दृढ़निश्चय होजानेपरभी किसी सुकुमार राजकन्याको मैं इसके साथ ब्याह कर, उसको जन्मपर्यन्तके वैधव्य दुःखके गहरे कूपमें कैसे ढकेल दूँ ?" प्रधानने कहा-" हर हर ! ! राम राम !! आप यह क्या

कहते हैं ? रंभावृक्षके गर्भसमान कोमल; चंपाकी पंखुरीसमान वर्णवाला सुकुमार राजकुमार विलासचक्षु क्या मरणोमुख है ? आपने यह किसप्रकार जाना ? यह मरण किस भांति और कब होगा ? " प्रधानने आतुरतासे प्रश्न किया, तब ब्रह्मनिष्ठ सर्वज्ञ राजा यज्ञभू कहने लगा–" हे विशालकेतु ! (यह प्रधानका नाम था) आजसे छः मास पीछे यह राजकुमार मेरे शत्रुके साथ युद्ध करता २ उसकी कालशक्तिके प्रहारसे मृत्युको प्राप्त होगा; परन्तु यह अपने मरणके पश्चात् अपना बड़ा यश यहां रखकर जावेगा. इसको यह महायुद्ध गोरक्षाके लिये करना पड़ेगा." विशालकेतुने कहा–" तब चाहे जिसभांतिसे, हरेक उपाय करके राजकुमारको उस युद्धमें जानेसे अटकावेंगे; क्योंकि जब इसी बहानेसे इसकी मृत्यु है तो युद्धमें इसको न भेजकर उसके बदले मैंही जाऊंगा और इसकी मृत्युको हटाऊंगा. प्राकृत मनुष्यकी आयुका जो क्षय होता है सो तो वे बेचारे उससे अज्ञात होते हैं–वे नहीं जानते कि कब मरजायँगे; इसलिये मर जाते हैं, परन्तु सावधान होकर मरण–समय चुका देवे तो "अनीका चूकाहुआ सौभी वर्ष जीता रहता है" इसके अनुसार अवश्यही यह मरणसे बचजावे, ऐसा मैं मानता हूं. अतएव आप तो कुँवरके विवाहकी तैयारी करावें और मृत्युका कुछभी डर न रखिये." यज्ञभूने कहा–"हे विशालकेतु ! तू कहता है कि हम उसकी मृत्यु टाल देंगे सो क्या यह मूर्खता नहीं है ? क्या निर्माण हुए भाग्यको ब्रह्माभी फिरा देनेमें समर्थ है ? जो तू कहता है कि इसकी मौत चुका दूंगा तो ठीक है. वह समय निकल जानेपर सगाई तथा ब्याह साथ २ ही कर दिया जायगा. इसका मरण मिटानेके लिये जितनी बने उतनी होशियारीसे पैरवी करना. इसका मरण कैसा होगा सो जानना चाहता हो तो वहभी तुझे कह देता हूं; ध्यान धरकर सुन. आगामी विजयादशमीके दिन अपनी सेनाको सजाकर सवारी निकाली जायगी. उस समय नगरमें कोई नहीं रहेगा. ऐसी मौका साधकर हमारा शत्रु यवन राजा हमारी गोशालामें आकर गौओंका हरण करेगा, उस समय गौओंको पीछी लौटा लानेमें विलासचक्षु मृत्युवश होगा. यह निश्चयही है, प्रमाणही है, तथापि बुद्धिमान्को निर्मितका आश्रय करके पुरुषार्थका त्याग नहीं करदेना चाहिये; क्योंकि निर्मितभी पुरुषार्थ रूपसेही नियामक होता है, ऐसा वचन है. जो निर्माण हो चुका है वह तो कदापि टलनेवाला नहीं, तिसपरभी पुरुषार्थका बल कितना है और

निर्माणका वल क्या है सो तू देखलेना. इस संसारसागरमेंसे तरनेके लिये भी पुरुषार्थहीका प्रयोजन है और उसीके द्वारा सर्व परम फल सर्वदा सिद्ध हो सकते हैं तो भी व्यवहारमें पुरुषार्थ कितने अंशमें फलीभूत होता है यह देखनेकी तेरी इच्छा है, सो तृप्त होजायगी "

राजा तो जानताही था, कि, भावी कोटि उपाय करनेसेभी मिटा नहीं मिट सकता; इससे वह तो सब बातसे निश्चिन्त हो बैठा था, परन्तु विशालकेतु कुँवरका मरण टालनेके उपाय करने लगा. होते २ विजयादशमी आगई. उस दिनतक यवनराजा इसके नगरपर चढ़ आनेका कोई भी चिन्ह नहीं था, तथापि दो दिन पहलेसे गौओंकी रक्षा करनेके लिये राज्यके सबसे बलवान् घोडेसवारोंकी सेना और तोपोंसे गोशालाके आसपास पूरा २ प्रबंध कर दिया गया और दशहरेके प्रभातमें सब सेनाको सूचित कर दिया कि 'आज सवारी निकलेगी उससमय यवनोंका लश्कर यकायक आकर गौओंका हरण करेगा, इसलिये उनका हेतु किसीप्रकार भी सिद्ध न होने देना. तुम लोगोंके जीतेजी एकभी गौका हरण न होने पावे इस बातपर खूब ध्यान रखना. धर्मकी रक्षा और राजाज्ञाके पालन करनेमें कदापि पीछे मत हटना.' इस प्रकार सब व्यवस्था करके सन्ध्यासमय हाथी घोडे, रथ और पैदलवाली चतुरंग सेना सुसज्जित की गई. बडे ठाटबाटसे राजकुमारसहित राजाकी सवारी नगरसे बाहर पूर्वदिशाके उपवनमें शमीपूजनके निमित्त जाने निकली. उससमयकी शोभा बडी अपूर्व थी. बडे २ मतवाले हाथियोंपर सुवर्णकी रत्नजटित अम्बाडियें सजी हुई थीं, सुवर्णकी सांकलोंसे हाथियोंके गलेमें लटकते हुए बडे २ घंटे टणकार कर रहे थे, बहुमूल्य जरीकी झुलोंसे हाथी शोभायमान हो रहे थे, घोडोंको सजानेमेंभी कुछ कमी नहीं की गई थी, बहुमूल्य रत्नोंसे जडे हुए उत्तमोत्तम साज घोडोंपर सजे हुए हैं, माणिक और पन्नोंके कंठलोंसे उनके कंठ शोभायमान हो रहे हैं, रत्नोंसे जडीं हुई लगामें लटक रही हैं, हीरा जडे हुए सोनेके झांझर उनके पांवोंमें झनझनाहट कर रहे हैं; कुंकुम-केशर, अबीर, गुलाल, पुष्पोंकी माला तथा फूलोंके तुर्रे कलँगी और गजरोंसे उनको खूब सिंगारे हैं. इसीप्रकार उन अश्वोंपर आरोहण करनेवाले वीरपुरुषोंकी अपूर्व शोभाका कहांतक वर्णन किया जाय ? सुवर्ण और चांदीकी जिलह कियेहुए रत्नजडित अभेद्य कवच (बख्तर) उनके शरीरकी रक्षा कर रहे हैं; कमर कंधोंपर नानाप्रकारके

अस्त्र शस्त्र सजे हुए हैं, मस्तकपर पोलादके टोप शोभायमान हो रहे हैं, ललाटपर केशर चन्दनादिके तिलक लगे हुए हैं, सुगंधी पुष्पोंकी माला कंठोंमें पड़ी हुई हैं, पुष्पोंके गजरोंसे हाथ और तुर्रे कलंगीसे शिर सुशोभित हो रहे हैं, ऐसेही पैदल सेनाकी भी विचित्र शोभा है. चार घोडे जिनमें जुते हुए हैं ऐसे सुवर्णके रथोंमें बैठे हुए सुभट सबको चकितही कर रहे हैं, सबसे उत्तम सिंगारे हुए भद्रजातिके गजराजपर सुवर्णकी अंबाड़ीमें महाराजाधिराज यज्ञभू विराजमान हुए हैं. उनके पीछे दो दास खडे हुए चँवर कर रहे हैं; प्रधान विशालकेतु भी पासही बैठा है. दूसरी ओर राजकुमार विलासचक्षुको बिठानेके लिये जगह कर रक्खी है. यहांपर निर्माण और पुरुषार्थ प्रथमही साक्षात् दर्शन देते हैं. राजकुमारने अपने खास अश्वपर बैठकरही सवारीमें जानेका हठ पकड़ा. प्रधान और राजाके बहुत कुछ समझानेपर भी राजकुमार हाथीपर नहीं बैठा. "ठीक! राजकुमारको सवारीमेंसे आगे पीछे नहीं हटने देंगे" ऐसा विचार करके, प्रधानने अच्छे शकुन देखनेपर सवारी बढ़ानेकी आज्ञा दी. तत्काल दडिङ् धिङ् दडिङ् धिङ् करता हुआ नौबतवाला अपने हाथीको घुमाता झुलाता हुआ आगे बढा; उसके पीछे नानाप्रकारके शंख, भेरी, तूरी, सींगी इत्यादि छत्तीसों जातके घोर शब्द करनेवाले बाजोंवाले अपनी २ टुकडियोंमें बँटकर अनेक प्रकारके शूरता बढानेवाले बाजे बजाने और सिंदूरा गाने लगे. जरकशी निशानें फहराने लगीं. राजा तथा राजकुमार पर सुन्दर छत्र किये गये. इसभांति सेनाके प्रयाण करनेकी सब तयारी हो चुकी थी, केवल किसीप्रकारका शुभ शकुन होनेकी देर थी.

खड़े २ लगभग डेढ़ मुहूर्त्तका समय बीत गया तब यज्ञभूने प्रधानको पूछा—"किसलिये सेना खडी रही है ?" प्रधानने हाथ जोडकर विनती की, कि, "दयासिन्धु महाराजाधिराज ! योद्धागण शुभशकुन होनेकी राह देख रहे हैं. शकुन होतेही सवारी आगे बढ़ेगी." सचिव ! मैं तुमको क्या कहूं ? जब बडी देरसे शकुन होतेही नहीं तो यही अपशकुन है और बुरा भविष्य प्रकट करते हैं. अस्तु, उनकी राह देखते कबतक खडे रहना ? चलनेको तत्पर होते समयही जो चिन्ह दिखाई दे उसीपरसे शकुन वा अपशकुन समझ लेना चाहिये. अपनेको शकुन वा अपशकुन कभीसे हो चुके हैं. अब खडे रहनेका कुछ प्रयोजन नहीं. कुँवरने प्रथमही हठ पकड़कर हाथीपर बैठनेकी

नाहीं की. अपने मनको दुखाया, यह अपशकुन नहीं तो क्या है ? शकुनके विषयमें एक वचन मुझे स्मरण है:—

उषःप्रयाणको गर्गः शकुनं च बृहस्पतिः ।
अङ्गिराः स्वमनोत्साहो विप्रवाक्यं जनार्दनः ॥

भावार्थ—शकुनके संबंधमें गर्गाचार्य ऋषिका मत यह है कि कहीं जाना हो तब उषःकालमें (चार घड़ी रात बाकी रहे तब) उठकर चलना श्रेष्ठ है; बृहस्पति ऋषिका मत ऐसा है कि शुभ चिन्होंका दर्शन होता हो तबही कार्य करना. अंगिरा मुनिका कथन है, कि, अपने मनमें उत्साह हो तब कार्य करना, और जनार्दन (श्रीकृष्ण) कहते हैं, कि, विद्वान् ब्राह्मण जिस समयको उत्तम कहे उसेही उत्तम समझना. यहां अंगिराके मतानुसार योग बना हैं, इसवास्ते जैसी हरिकी इच्छा. अब सैन्योंको बढ़ाओ.” इस भांति राजाने आज्ञा की तब प्रधानने तुरन्त सैनिकोंको आज्ञा दी और धमधमाहट करती सेना चलने लगी. देखते २ राजमार्ग होकर, मार्गमें तथा खिड़कियों, अटारियोंपर देखनेको खडे हुए लोगोंको हर्षित करती हुई राज–सवारी, पूर्वदिशाके दरवाजेके आगे आखडी हुई. तिसपीछे नगरसे लगभग कोसभरके अन्तरपर सामनेके उपवनमें शमी वृक्षकी पूजा करनेके लिये सवारी धामधूमसे चली. शमीवृक्षके निकट एक बडा मैदान था. प्रतिवर्ष दशहरेके दिन शमीपूजन होचुकनेपर अश्वारोही वीरगण उस जगह अपने २ घोड़ोंको एक दूसरेके साथ २ दौड़ाया करते थे. आजभी राजाकी सवारी उस शमी वृक्षके सन्मुख उतर पड़ी. तदनन्तर राजा, राजकुमार और मुख्य मंत्री, अन्य प्रधानों तथा सूबा और अन्य कार्यभारियोंसे लेकर साधारण पैदल तक सबने अनुक्रमसे गंधाक्षत, पुष्प, जव, अबीर, गुलाल, धूप, दीप, नैवेद्य, दक्षिणा, प्रदक्षिणा और नमस्कार इत्यादि सामग्रीसे शमीवृक्षका पूजन किया. तिस पीछे सब अपने २ वाहनोंपर सवार होकर चापदर्शन* की उत्कंठा करने लगे. ईश्वरकृपासे आज ऐसा हुआ कि राजाके सवारोंने उपवनके एक २ वृक्षको ढूंढ़ लिया, परन्तु कहीं भी चाप (नीलकंठ)

* दशहरेके दिन चापपक्षी (नीलकंठ) का दर्शन करनेका लोग बडा माहात्म्य समझते हैं और कईएक तो उसके बोले हुए शब्दोंपरसे गिनती करके आगामी वर्ष कैसा निकलेगा इसका अनुमान बांधते हैं, यह बात सर्वत्र हो ऐसा नहीं जान पड़ता.

नहीं दिखाई दिया. थोड़ी देरमें कहींसे उड़ता २ चाष आ जावेगा तब दर्शन करेंगे ऐसा सोचविचार करके, घोडोंको दौड़ानेमें तत्पर होगये. सबसे पहले प्रधान, सूबा आदिका दो २ चार २ अगर उससे अधिक योद्धा साथ २ मिलकर राजाके आगे घोड़े दौड़ाने लगे. उनमेंसे जिसका घोड़ा सबसे आगे निकल जाता उसीको राजा सेला मंदील इत्यादिका शिरोपाव देता था. ऐसे करते २ समानवयस्क राजकुमारके मित्र, सगे, प्रधानपुत्र और सबसे पीछे राजकुमारकी पारी आई. प्रधान विशालकेतुके मनमें यह बात थी कि, आज राजपुत्र घुड़दौड़में शामिल न हो तो ठीक; क्योंकि घोड़ा दौड़ावेगा तो कुछभी नई-पुरानी होगी. इस कारण उसने राजपुत्रको कहा-" महाराजकुमार! आप आज अश्व न दौड़ावें तो अच्छा; क्योंकि अभीतक चाष-दर्शन न होनेसे पिताजीका मन व्यग्र है, और आपको घोड़ा न दौडानेको कहते हैं." इतना कहतेही राजकुमारके रोम २ में क्रोध भर गया, उसका मस्तक घूमने लगा, वह बड़े जोरसे पुकार कर कहने लगा-" प्रधानजी! यह क्या कहते हो? आप हरेक बातमें आड़े आते हैं; इसका क्या कारण है? आज सुपर्वका दिवस है, मुझे न छेड़िये. चाष-दर्शन नहीं हुए तो क्या हुआ? बारह महीनोंमें आजके समान श्रेष्ठ दिन और कोई नहीं, तो क्या आजभी क्षत्रियपुत्र हर्षभर अश्वचर्या नहीं करे? आज मैं अन्य किसीके लिये अथवा अपने आनन्द वा भलेके लिये नहीं, किन्तु इस भाग्यशाली भारतवर्षमें एकचक्रसे सर्वोत्कृष्ट राजनीतिसे प्रजाका पालन करनेवाले तथा समस्त पृथ्वीके कंटकरूप रावणकुंभकर्णादि राक्षसोंका उनके कुलसहित नाश करनेवाले, पंचसतियोंमेंसे परम पवित्रा महासती सीताके प्राणपति और साक्षात् ईश्वरावतार श्रीरामचंद्रजीके मानके लिये तथा रावणकुलका क्षय करके उनके किये हुए महाविजयके स्मरणार्थ अपने प्यारे घोड़ेको खूब नचाऊंगा और आनन्द करूंगा. अतएव बीचमें पड़कर आप मुझे न सतावें. नहीं तो परिणाम अच्छा न होगा.'' कुँवरने जो हठ पकड़ा उसको छुड़ानेमें कोई भी समर्थ नहीं था. प्रधानने भी सोचा कि "कुमार घोडा दौड़ाकर लौटकर तो यहीं आवेगा, कहां दूर जाता है? फिर क्या चिन्ता है?" ऐसा समझकर वह चुपही रहा. वह प्रधान कुँवरकी बात सुनकर राजाके पास जा बैठा. राजपुत्रने तुरन्त घोडेको ऐंड मारी और

उसके मित्रभी उसीके साथ २ चले. सर्व एकही दृष्टिसे देख रहे हैं वह जाता है, देखते २ राजपुत्रका चपल अश्व सबसे आगे निकल गया. इसी समयमें आकाशमें उडता २ चाष पक्षी सैन्यके ऊपर आया और दक्षिण दिशाकी तरफ एक ऊंचे वृक्षपर जा बैठा. उसको देखतेही राजाकी सला-मीके लिये सेनाके चारों ओर तयार धरीं हुई तोपें धडाधड चलने लगीं और उत्साहपूर्वक तोपें बन्दूकें जुजँवें आदिक छोडकर सेनाने घोर घमसान मचा दिया. बाजे एक साथ बजने लगे और सब लोग दक्षिण दिशाकी ओर दृष्टि करके चाषदर्शनके लिये आतुर हुए. इस उमंग उत्साहमें राजा, प्रधान और सेना तथा सर्व सामंतवर्ग राजपुत्रकी घुडदौड़की बातको भूल गये, और वह कहां गया तथा लौटकर आया वा नहीं, इसका किसीको ध्यान न रहा.

अब राजपुत्रका क्या हुआ सो देखना चाहिये. वह अपने साथियोंको छोड़कर बहुत दूर निकल गया. पुरजोश दौडता २ घोडा उत्तर दिशामें आडे मार्ग जाने लगा, उसकी उसको कुछ खबर न रही. उधर जाते २ कुछ दूरपर लगभग एक हजार घोडेसवारोंकी एक टुकडी राजकुमारके दृष्टिगोचर हुई. इन सवारोंके हाथमें जो ध्वजाएँ थीं वे नीले रंगकी तथा अपनी सेनासे भिन्न है ऐसा उसको दूरहीसे जान पडा. राजपुत्रने सोचा कि, ये कौन हैं सो जानना चाहिये; इस विचारसे उसने अपने घोडेको उनकी तरफ मोडा. इतनेमें उसके चारों मित्रोंनेभी अपने २ घोडेको उसकी ओर मोडा और पीछेसे आमिले; वे सब मिलकर उस आती हुई सेनाकी तरफ गये.

दूसरी ओर, दृढ दुर्गापुरीमें, वृद्ध वा बालक निर्धन तथा श्रीमंत कोई न रहा; समस्त पुरुष दशहरेकी सवारीके साथ शमीपूजन करनेको नगरसे बाहर चले गये थे; सारा नगर निर्जन होगया था. जहां देखो वहां स्त्रियांही दीख पडती थीं; नगरमें किसी पुरुषका शब्द सुननेमें नहीं आता था, पुरुष-मात्र तो कोई नगरमें रहाही नहीं; राजमहलके आगे मात्र दश पांच सिपाही पहारा दे रहे थे. मार्गमें कहींपर कोई मनुष्य अथवा हाथी घोड़ा आदि कोई वाहनभी जाता आता नहीं दीख पडता था. मात्र गोशालाके आगे बलवान् योद्धागण शस्त्र सजकर खडे हुए थे. विशालकेतुने उन्हें कह रक्खा था कि "गौओंका हरण करनेके लिये जो दुष्ट यवन आनेवाले हैं उनके साथ प्राणान्तपर्यंत युद्ध करना; अपनी विजय होनेपर सबको यथायोग्य पुरस्कार दिया जावेगा." इसकारण वे सब योद्धा यवनोंके आनेकी राह देख रहे थे. एक

तो राजासे पुरस्कार मिलनेकी उत्कण्ठा, दूसरे गोमाता जो कि भारतवासी मनुष्यमात्रकी मातेश्वरी है, उसका रक्षण समस्त आर्योंको तन मन धन अर्पण करके करना चाहिये ऐसे धर्मवचनपर उनकी स्वाभाविक प्रीति थी. इन कारणोंसे सब सैनिकोंके मन, गोरक्षणके निमित्त प्राणसमर्पण करनेतक युद्ध करनेको तत्पर हो रहे थे. पिछले पहरकी चार पांच घडी दिन बाकी था तबतक किसी प्रकार, किसी दिशामेंसे शत्रुसेना आनेका कुछ भी चिन्ह नहीं दिखाई दिया, तब सब योद्धा परस्पर विचार करने लगे कि "शत्रु कौन और गौओंका हरण कैसा ? प्रधानजीके मनमें कुछ धुन समा गई होगी, जिससे ऐसे शुभदिनमें अपनेको सवारीमें जानेसे रोक रक्खा है; परन्तु क्या चिन्ता है ? इसी निमित्तसे गोमाताकी सेवा तो हो रही है. यहभी अहोभाग्य है ! शत्रु आवे चाहे न आवे. अपने राजाका तो कोई शत्रु हैही नहीं, तब आनेवाला कौन ? अपने देखते २ महाराज यज्ञभूने सब राजाओंको जेर (आधीन) कर लिया है. वे सब राजा दासके समान वर्त्त रहे हैं तो युद्ध करके प्राण देनेको कौन आवेगा ? " इतनेमें दूसरा बोल उठा कि-" भाई ! कैसे भूल गया ? आजसे लगभग दश वर्ष पहले, महाराजा अपने राज्यमें भ्रमण करनेको निकले थे, उस समय कांबोज देशके यवन राजाको अपने आधीन बनाकर उससे खंडणी (कर) स्वीकार कराई थी सो तुम्हें स्मरण नहीं है ? तदनन्तर जब अपने यहांके सवार खंडणी उगाहनेको भेजे गये तब उसने ईर्षासे खंडणी न देकर उनको हैरान किया था. यह बात क्या तू नहीं जानता है ? मैंने सुना है कि, कांबोजका अधिपति अपने महाराजाके साथ वैरभाव रखता है, इसीलिये वह दिन दिन अपना बल (सेना) बढाता जाता है. तुम तो जानते हो कि, यवन लोग धर्मयुद्ध करना जानतेही नहीं. जब कभी अवसर पाते हैं तबही चोरी छिपे यकायक आ गिरते हैं; इसीमें उनकी बनजाती है. वे लोग कब चढ़ आवेंगे सो हम नहीं जान सकते. अपने प्रधानजी बड़े दीर्घदर्शी और अग्रशोची हैं, इसीलिये यह उन्होंने ' पानी पहले पाल ' बांधी होगी. "

इसप्रकार वे योद्धाओंके दोनों सरदार परस्पर बातचीत कर रहे थे और इधर उधर टहल रहे थे उसीसमय नगरकी दक्षिण दिशासे एक भयंकर चीस (चिल्लाहट) सुनाई दी. बड़ी घोर गर्जना-शब्द हुआ. सब सवार चौंककर स्तब्ध होगये. वारंवार चीत्कारसे कान फूटने लगे,

तत्काल वहां खड़ेहुए एक सरदारने कुछ सवारोंको आज्ञा दी कि वे झपटकर जाकर देख आवें कि नगरमें क्या मामला (घटना) है ? तत्काल लगभग पचीसेक सवार फुर्तिसे नगरकी तरफ दौड गये. वहां आकर देखते क्या हैं कि महाभयंकर कत्ल (काट मार) चल रही है. कईएक घोडेसवार और पैदल यवन लोग, जिनको कलियुगके राक्षसोंकी उपमा दी जासकती है, गली२ घूम रहे हैं और क्या कन्या, क्या तरुणी और क्या वृद्धा, स्त्री मात्रकी लज्जा निर्दयतासे लूटनेका प्रयत्न कर रहे हैं. एकओर कईएक राजमहलमें भी घुस गये हैं और आगेके पहरेवालोंकी कत्तल करके ठेठ रनिवास तक जा पहुँचे हैं. जहां तहां अबलाओंकी दीन, करुणामयी अन्तःकरणको दुख देनेवाली कारमी (चीत्कार) मचरही है ऐसा विना जाना बूझा, अनुमान रहित बनाव देखकर उन सवारोंनें जिन पांवों आये थे उन्हीं पांवोंसे तत्काल लौटकर अपने सरदारको आंखों देखी घटनाके सब समाचार कह सुनाये; और अन्तमें कहा कि–"और स्त्रियोंकी तो क्या कथा है अब तो राजपत्नियों तथा राजपुत्रियोंकी लज्जा रहनाभी महाकठिण है. आगे जैसा आपको उचित जँचे सो करें." इतना सुनतेही सरदारोंने तत्क्षण समस्त सेनाको सचेत कर दिया और आज्ञा दी की—" जिन्होंने अपने पिताके वीर्यसेही देह धारण किया हो वे सब आज, प्राणान्त होनेतक इस नगरकी स्त्रियोंकी लज्जाका संरक्षण करनेमें न चूकें. जो कोई यहांसे पीछा हटे उसने अपनी माताको व्यर्थही दशमासतक कष्ट दिया ! " इतना कहतेही समस्त सैनिकोंके अन्तःकरणमें जोश भर आया आर जो मिला उसीके टुकडे करते हुए इस प्रकार दौड़कर यवनोंपर टूट पडे.

गोशालाको छोड़कर सारा लष्कर नगरमें चलागया. ऐसा अवसर पाकर लगभग दोहजार यवनोंकी एक सेनाने गोशालापर छापा मारा. यवनोंकी सेनाने तोपखाने तथा गोशालाको चारों ओरसे घेर लिया. तोपखाना गोशालाके आगेही था. गोलन्दाजोंने दिल खोलकर तोपें दागना आरंभ किया. बडी धीरताके साथ यवनोंका सामना किया और लगभग पांचसौ शत्रुओंको यमपुर भेज दिया. किन्तु वे बेचारे कहांतक बल करें ? क्योंकि 'मालिक विना फौज सूनी.'

इसभांति दृढदुर्गा नगरीमें विलक्षण घमसान मच रहा है. चापदर्शनके समय राजाका दिखाव, पासकी सब सेनाकी धामधूम, बाजों और बंदू-

कोंका एकसाथ मिलाहुआ घोर शब्द, नगरमें स्त्रियोंकी हृदयवेधक पुकार "दौड़ो २ अरे बचावो रे! कोई इन दुष्टोंसे छुड़ाओ रे! हे नाथ! पिता! ओ भैया! अरे कोई छुडाओ रे!" ऐसी त्रास उत्पन्न करनेवाली पुकार सुन, उनकी रक्षाके अर्थ दौडेहुए योद्धाओंकी "मारो २ काटो २ पकडो २ दुष्टोंको जाने मत दो" इत्यादिक उन अबलाओंको धीरज देनेवाली तथा यवनोंको कंपायमान करनेवाली गर्जना और गोशालामें मची हुई झपाझपी आदिकसे बडा भयंकर दृश्य बनरहा है. इस सब गडबडसे चौंककर हुंभार करके गौओंने जुदाही कोलाहल मचा रक्खा है. तिसपरभी अरड़ाती पुकारती गौओंको बड़ी मार हाक करके अपने ताबेमें कर यवनोंके लश्करने अपना मार्ग लिया. वे लोग गौओंको लिये हुए लगभग एक कोस गये होंगे इतनेमें तो राजकुमार और उसके चारों मित्र-प्रधानपुत्र-पांचों धनुर्विद्यामें कुशल महान् योद्धाओंने उनका पीछा पकडा. इन योद्धाओंमेंसे प्रत्येक ऐसा पराक्रमी था कि, जो एकही साथ हजार २ योद्धाओंमें भिड़सके; इसकारण इनके सन्मुख यवनोंका वह लश्कर किसी गिनतीमें न था. राजपुत्रने सिंहके समान गर्जना करके यवनोंके सरदारको ललकार कर कहा-" अरे दुष्ट चाण्डाल! चोर शृगाल! इसभांति चोरी करके छलसे, सिंहके सामनेसे भागाजाता है? धिक्कार है तुझे. जरा सन्मुख होकर युद्ध कर और हमको जीतकर फिर गौओंको ले जाना." इतना सुनकर यवनसरदारने चौंककर पीछे देखा तो इन महारथियोंको न पहचानकर मनमें ऐसा समझा कि-' ये पांच जने बेचारे किस गिनतीमें हैं?' उनको मर्मभेदी वचन कहे और युद्धके लिये तयार हुआ. इस अवसरमें नगरमेंके मात्र यवनयोद्धाओंका निपात करके गोशालारक्षक योद्धाभी उन यवनोंका पीछा करते हुए आ पहुँचे और राजकुमारको देखकर तो उनका धीरज और हिम्मत चौगुनी बढ़गई. फिर क्या पूछना था? गोरक्षकोंकी आंखोंसे खून तो पहलेही बरस रहा था और उनके हाथभी चल चुके, फिर क्या देरी थी? ज्योंही आये त्योंही यकायक यवनोंपर बिजलीकी नाई टूट पडे, जो कि योद्धागण अपनेही बलसे लड़ते हैं तथापि जब कोई उनकी पीठ ठोंकनेवाला और हांकनेवाला होता है तो उनको सौगुनी शूरता चढ़ जाती है. इससमय राजपुत्रके ललकारनेसे और प्रधानपुत्रोंके वाहवाही देते रहनेसे उन्न गोरक्षक

सेनाने यवनशत्रुओंको चुन २ करके मार डाला उनमेंसे जो भागने पाये वे तो वचे, और जो वाकी रहे सो सव यमपुरीको सिधाये. निदान कुशलपूर्वक गौओंको लौटकर अपने मित्रोंसहित राजपुत्र उपवनकी ओर राजाकी सवारीमें जा मिलनेको निकला. जल्दी २ में वे सवार नगरमें क्या हुआ था इस विषयके कुछभी समाचार राजकुमारको नहीं कहने पाये थे. राजपुत्रने तो उपवनका मार्ग लिया और सेना गौओंको लेकर नगरको लौटी. इस समय कईएक वल-वान् यवन योद्धाओंने पीछेसे आकर राजकुमारको अचानक घेरलिया और उसकी अनभिज्ञतामें यकायक उसपर टूट पडे. पांचों सवार यकायक चमके और इधर उधर देखा, किन्तु कुछ वश नहीं चला. इन्होंने अपने शस्त्र संभाले इतनेमें तो राजकुमारके शरीरपर कई प्रहार होचुके और एक यवनने एक तीक्ष्ण शक्ति (सांग) का वार किया जो राजपुत्रके हृदयको वेधकर आरपार निकल गई. कुमार विलासचक्षु मूर्छित होकर घोड़ेपरसे गिरने लगा परन्तु एक प्रधानपुत्रने उसको घोडेसे कसकर वांध दिया, और दूसरे यवन आवें इतनेमें तो उन प्रधानपुत्रोंने राजकुमारको मारनेवालोंको समूल नष्ट करदिया और राजकुमारको लेकर चले.

वे लोग राजपुत्रको लेकर सेनामें आमिले. इस समय सेना नगरको लौटनेकी तयारीमें थी. राजकुमारकी ऐसी दुरवस्था देखकर सबको अत्यंत खेद और आश्चर्य हुआ. प्रधान विशालकेतु तो चकित (स्तम्भित) होगया. क्षणभर राजपुत्रका आत्मा विशेष घवराने लगा और अनेक उपचार किये गयें किन्तु एकभी सार्थक नहीं होने पाया. उसके मर्मस्थानमें जो घाव लगा था वह कुछ साधारण नहीं था. जब सवारी नगरमें पहुँची और राजकु-मारको महलमें लेगये तव वह विलकुल वेसुध होगया था. सारा कुटुंव उसके आसपास आ वैठा और एकपर एक अनेकों उपाय किये गये तिसपरभी उसके नेत्र वंद होगये और अन्तमें महाकष्टसे ‘श्रीहरि सच्चिदानन्द प्रभु परमात्माकी जय !’ इतना कहकर उसका अविच्छिन्न आत्मा घायल देहको छोड़कर श्रीपरमप्रभु परमात्माके शरण चला गया. अहो ! भावी टालनेमें कौन समर्थ है ? ‘ कर्मगति टारी नहिं टरै.’ राजपुत्रकी मौत टालनेके लिये प्रधानने अपनी शक्तिभर प्रयत्न किया तो भी परिणाम श्रीहरिकी इच्छानु-सारही हुआ. जिस भांति रात दिन प्रभात सांझ शीतोष्ण ऋतु क्रम २ से होते रहते हैं इसी प्रकार काल सैकड़ों क्रीड़ा करता रहता है. अनेकोंकी

मृत्यु दिखलाता है, आयु भी क्षीण होती जाती है, मृत और मरनेवालोंकी गतिको भी जानता है, तिसपरभी यह व्यावहारिक मनुष्य आशाके अंकुरका त्याग नहीं कर सकता, यह भी कालकाही खेल है.

राजपुत्रका शोक बीतनेके पश्चात् एक दिन राजाने प्रधान विशालकेतुके साथ बातचीत करते २ कहा-" हे प्रिय सचिव ! क्या भावीकी बात तेरी समझमें आई ? राजपुत्रका विवाह कर देते तो क्या आपन आज सुखसे बात करने पाते ? उस विधवा राजपुत्रीके करुणाजनक विलाप और रुदनको हम किसप्रकार सहन कर सकते ? जो हुवा सो भगवान्की इच्छानुसारही हुआ और अच्छाही हुआ. " राजाके मुखसे ऐसे वचन सुनकर तथा उसका धीरज देखकर, प्रधानने विनयसहित पूछा-" महाराज ! तो क्या भविष्य किसीसे भी नहीं टल सकता ? क्या कोई समर्थ पुरुष भी भावीको नहीं टाल सकता ? " इसके उत्तरमें यज्ञभूने कहा-" विशालकेतु ! जो भविष्य टलने जैसा होता तो फिर जगत्में कोईभी नहीं मरता, किसीका कार्य नहीं बिगडता, कोई भी दुःखी नहीं होता. सब पहले पहल अपने भलाईका प्रबन्ध करलिया करते. परन्तु हे मित्र ! बडे २ धीर वीर पुरुषोंको भविष्यसे हार खानी पडी है तो अपने जैसे मनुष्योंकी क्या गिनती ? भविष्यको टालनेके विषयमें मैं तुझे एक पुरातन कथा सुनाता हूं.

भावीके संबंधमें जनमेजयके कोढकी कथा.

हे विशालकेतु ! एक समय पांडवकुलोत्पन्न परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजयकी राजसभामें स्वेच्छासे श्रीवेदव्यास मुनि पधारे. जनमेजयने साष्टांग नमस्कार करके अर्घ्य पाद्यादिक उपचारोंसे विधिपूर्वक उनका पूजन किया, उन्हें सुवर्णसिंहासनपर बिठाया, और स्वयं दोनों हाथ जोडकर मस्तक नमाकर विनीत भावसे उनके सन्मुख खडा रहा. महर्षि वेदव्यासजीने उसकी प्रजा, सेना, राज्यकार्यभार, कुटुंब, संतति, धन, धान्य इत्यादिक संबंधमें बहुतेरे कुशल समाचार पूछे. तिसपीछे प्रसंगवशात् बातचीत करते २ कहा कि "हे राजन् ! हे निष्पाप जनमेजय ! भावी (भविष्यने जिसे निर्माण किया है सो) कदापि नहीं टलता. बडे २ समर्थ और भविष्यवेत्ता भी उसको टाल नहीं सकते अर्थात् उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते. " यह सुनतेही राजा जनमेजय, तेरी नांई आश्चर्यान्वित होकर पूछने लगा—"हे महाराज!

आपने यह क्या कहा ? क्या भावी नहीं टल सकता ? कदाचित् अनजानपनेमें कोई बात होजाय तो संभव है किन्तु अदृश्यको जान लेनेपर पूरी २ सावधानीसे रहनेवाले मनुष्यसे भी भावी न टले क्या यह संभव है ? आपका यह कथन तो मुझको मिथ्याप्रलाप जैसा दिखाई देता है ।" राज्यके गर्वके कारणसे सर्वत्र ऐसाही हुआ करता है जिससे उसने महामुनि वेद व्यासजी जैसे महात्माके वचनको तुच्छ समझ लिया. यह देखकर व्यास-जीने कहा–" वत्स जनमेजय ! तेरी यही इच्छा है तो सुन, तू दूर कहां जाता है ? मैं तुझको तेराही एक भविष्य जो अत्यन्त अनिष्टकारक है सो कह सुनाता हूं. क्या तू उसे टाल सकेगा ?" राजा जनमेजयने कहा–" हां आप कहिये तो सही, वह क्या वात है कि जो न टले ? " भूत भविष्यके ज्ञाता मुनिने कहा कि " तेरे अठारह प्रकारका कुष्ठ–कोढ निकलनेवाला है. उस भावीको तू टाल देना. फिर भी जो तू उस भावीको टालनेका पूरा २ यत्न करना चाहता हो तो सुन, मैं तुझको भी सब उपाय बतलाये देता हूं. पहले तो यह वात है कि, चाहे जो हो तो भी तू अश्वमेध यज्ञके घोडेको कदापि मत खरीदना. जब अश्व खरीदना होता है तब कुछ भी यत्न करना पडता है किन्तु मैं तुझे यह कहता हूं कि विना प्रयत्नके अश्व खरीदनेका अवसर मिले तो भी तू उसको मत खरीदना, परन्तु यहभी तुझसे नहीं होसकेगा और तू भावीके वश होकर हरेक भांतिसे यज्ञाश्वको मोल लेवेगा, यही निश्चयात्मक है. अब दूसरी वात यह है कि, ऐसे करते भी जो तुझे अश्व खरीदनाही पडे तो खैर, परन्तु तू उस अश्वको लेकर दक्षिण दिशामें कभी मत जाना, परन्तु यह बातभी तू नहीं कर सकेगा. तू किसीभी वहानेसे दक्षिण दिशामें अश्वसहित जावेगा, यह भी अटल है. इतनेपर भी यदि दक्षिणदिशामें जानाही पडे तो एक काम करना. वहां तुझे एक अद्भुत लावण्यवती स्त्री मिलेगी और वह तुझको अनेक प्रकारसे ललचावेगी तोभी तू उसकी बातमें मत आना और उसको अपने साथ कदापि मत लाना. तिसपर भी तू उसको लाये बिना नहीं रहेगा, यह भी सिद्ध है. भला जो तू उसे ले आवे तबभी चाहे जो हो तथापि उसको पटरानी मत बनाना; परन्तु तू उसको पटरानी–सबसे बढकर मानवती प्रियतर प्रतिष्ठित राणी बनावेगा, इसमेंभी संदेह नहीं है. उसको पटरानी बनाकरही तू रुक जावे तोभी अच्छा है; किन्तु तेरा भावी तुझे और भी आगे

खैंचेगा, जिससे तू यज्ञ करनेको तयार होगा. यदि तुझे यज्ञ करनाही हो तो भी तू अश्वमेधयज्ञ कदापि मत करना, यह मैं तुझको कहता हूं, इसे मत भूलना; परन्तु यहभी तुझे स्मरण नहीं रह सकेगा. तू अश्वमेध यज्ञ करके अपने आप भावीका आवाहन किये विना नहीं रहेगा. जो अश्वमेध भी करना पडे तो इस बातसे अवश्य बचाना कि, यज्ञमें वृत (वरण) किये ऋत्विक् जो अठारह ब्राह्मण बुलाये जावें वे तरुण न हों, किंतु वृद्ध ब्राह्मणोंकीही योजना करना; परंतु तेरा भविष्य तुझको यह भी नहीं करने देगा. तू इस बातको भूलकर जवान ब्राह्मणोंकोही बुलावेगा. उन ब्राह्मणोंसे कदाचित् तेरा कोई अपराध बन पड़े तो उनपर क्रोध मत करना; परन्तु तू अवश्यही क्रोध करेगा. भला जो तुझे क्रोध भी चढ आवे तबभी उन ब्राह्मणोंको देहांत दंड देनेका संकल्प कदापि न करना, परन्तु भविष्य किसी भांति भी टलनेवाला नहीं है; इसकारण क्रोध उत्पन्न होतेही तू उन अठारह ब्राह्मणोंका शिरश्छेदन करेगा और इस ब्रह्महत्याके दोषसे तत्काल तेरे शरीरपर अठारह प्रकारका कोढ निकलेगा. इस कोढके निवारणार्थ जिसकी वाणी और हस्त दग्ध नहीं हुए हों ऐसे ब्राह्मणके मुखसे महाभारतके अष्टादशों पर्वोंका तू श्रवण करना, परन्तु उसमें किसी बातकी कुछ भी शंका मत करना तो तेरा सब कोढ़ मिट जावेगा; किन्तु तुझको उसमें भी शंका अवश्य होगी और इस कोढ़का एक भाग तेरे शरीरमें जैसेका तैसा रह जावेगा. यह मैंने तुझे तेरा सब भावी कह सुनाया है, अब तुझसे हो सके उतने सब उपाय करके तू इस भविष्यको टालना." इतना कहकर वेदव्यासजी वहीं अन्तर्धान होगये.

मुनिके चले जानेपर जनमेजय राजाने तुरंत 'पानी पहले पार बांधने' का लग्गा लगाया. उसने नगरमें दौंडी पिटवा दी कि, 'कोई गृहस्थ यज्ञके घोड़ेको न खरीदे, तथा कोईभी बेचनेके लिये यज्ञाश्व इस नगरमें न लावे.' थोडेही दिन पीछे इस बातकी चर्चा नगरमें होने लगी कि 'भैया हो, अब तो सचमुच कलियुग आगया. राजा अधर्मी होगये. कर्मपरसे (यज्ञादिक वैदिक कर्मोंपरसे) मनुष्यकी आस्था उठने लगी. राजाके यहां क्या कम पडा है कि जो यज्ञाश्व नहीं ले सके ? इस राजाकी बुद्धि कैसी फिर गई है कि स्वयं यज्ञ यागादि न करे, तो न करे परन्तु कोई दूसरा भी छोटा मोटा यज्ञ करे तो उसे भी बंद कर दिया और यज्ञाश्वको खरीदने तथा नगरमें लानेतककी

मनाई कर दी. स्वयं आपभी यज्ञ करता नहीं और दूसरे किसीको भी करने न देता. अधर्म! अधर्म!! घोर कलियुग!!!" इस भांति जगह २ लोग निन्दा करने लगे. राजाके प्रधानों तथा कार्यभारियोंको भी वारंवार कह २ कर प्रजा उनको भी त्रास देने लगी. अनेक प्रकारकी लोकनिन्दाके न सहन होनेसे उन्होंने राजाको इस वातकी सूचना दी. राजाने, यह सोच-कर कि इस वातसे मेरी वड़ी भारी निंदा होती है. उसने अपनी पहली आज्ञाको वदल कर ऐसी आज्ञा दी कि "यज्ञाश्व नगरमें लाने तथा वेचनेकी कुछ मनाई नहीं है और जिसको खरीदना हो सो भलेही खरीद करे, केवल राजाके लिये यज्ञाश्व न खरीद किया जायगा." इस आज्ञाके निकलनेपर नग-रमें अश्व लानेकी रोकटोक न रहनेसे देशदेशांतरसे व्यापारियोंने नानाप्रकारके अश्व लाना वेचना शुरू किया. उनमें अश्वमेधके भी वहुतसे अश्व आने जाने लगे. परन्तु यज्ञाश्व खरीद करना यह सहज वात नहीं है, जो यज्ञ कर सके वही उस अश्वको खरीदे. फिरभी समस्त दिशाओंको जीत लेनेवाला राजाही अश्वमेध यज्ञ कर सकता है. इसकारण यज्ञके अश्व उस नगरमें वेचनेको आते तो सही, परन्तु खरीदनेवाले न होनेसे पीछे लौट जाते. अश्वमेधका घोड़ा राजाके सिवाय दूसरा कोई खरीद नहीं सकता; परन्तु वहांके राजाको खरीदना नहीं था और नगरमें आया हुआ अश्व पीछा लौट जाय तो देशदेशान्तरमें अपकीर्ति हो, राजा निःसत्त्व समझा जाय, इसकारण विवश होकर कीर्तिरक्षाके लिये राजा जनमेजयको एक यज्ञाश्व खरीदनाही पडा; परन्तु उसपर सवारी नहीं करनेका राजाने निश्चय किया. कितनेही दिनों पीछे राजाने सोचा कि यज्ञाश्वपर सवारी करनेमें भी क्या दोष है? किधर जाना और किधर न जाना सो तो अपने हाथमें है, तव दक्षिणमें नहीं जायँगे और उत्तर दिशामें जावेंगे. ऐसा विचार कर राजाने यज्ञाश्व-पर आरूढ होकर उत्तर दिशाको गमन किया, परन्तु भावी प्रवल है. दौडते दौडते अश्व दक्षिण दिशामें जाने लगा, जाते २ मार्गमें एक स्थलपर एक अत्यन्त रूपवती नवयौवना सुन्दर स्त्री दृष्टिगोचर हुई. उसपर मोहित होजानेके कारण राजा जनमेजयनेही आगे होकर पूछा कि—"हे मनमो-हिनी! तू अकस्मात् इस स्थानपर कहांसे आई?" राजाके इन वच-नोंको सुनकर उसने उत्तर दिया कि—"स्वर्गलोकमेंसे." पुनः राजाने पूछा कि—"तेरी क्या इच्छा है? क्या तूं मेरे साथ चलेगी? मैं पृथ्वीपति

राजा हूं." उस सुन्दरीने कहा—"मेरे साथ प्रतिज्ञा करनेसे मैं आसकती हूं." राजाके पूछनेपर उसने फिर कहा—"मुझे पटरानी बनानेकी प्रतिज्ञा करनेसे मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूँ." जनमेजयने कहा—"चल, मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊंगा." उसीसमय उसने अपने मनमें यह विचार किया कि पटरानी बनावेंगे परन्तु यज्ञ नहीं करेंगे. तदनन्तर राजा उस सुन्दरीको अपने भवनमें ले आया और विधि-पूर्वक विवाह करके उसको पटरानीके पदपर स्थापित किया. भावी मिटा-नेके लिये यज्ञ न करनेका राजा निश्चय कर बैठा, परंतु सर्वत्र उसकी अपकीर्ति होने लगी. "अरे! अब तो राजा भी समयके अनुसारही होने लगे, सचमुच कलियुग आगया. जब यज्ञादिक कर्म बंद होगये तब वृष्टि क्योंकर होवे? अकाल पडने लगे, प्रजा पीडित होने लगी, और अश्व खरीदा हुआ है, दिग्विजय भी किया हुआ है, इतनेपरभी राजा यज्ञ नहीं करता इसका क्या कारण है? अरे भाई! राजाओंमें अब कलिप्रवेश हुआ है. उससेही डरकर धर्म पलायन करना चाहता है. पहले जैसे राजाभी अब कहां हैं? देशकाल बहुत बुरा आने लगा. हरि! हरि!! ऐसा न होता तो अश्वमेध जैसा महायज्ञ करनेकी तो राजाओंकी बडी लालसा लगी रहती है. इसी पांडवकुलदीपकमें वैसी लालसाका न होना यह कलिका माहात्म्य है!" इसप्रकार अपकीर्ति होने लगी; उसको सुनकर राजाने यज्ञका आरंभ किया. देशदेशांतरके सर्व राजाओंको तथा यज्ञ करनेवाले ऋषिमुनियोंको आमंत्रण भेजे गये और सर्व सामग्री तयार की गई. मुनिके कथनानुसार यज्ञके लिये वृद्ध ऋत्विजों* की बहुतसी ढूंढ़—खोज कराई गई, परन्तु एक भी वृद्ध ब्राह्मण नहीं मिला, प्रत्युत सब ब्राह्मण जवान और मस्करे मिले. निदान यज्ञ होने लगा; ब्राह्मण 'स्वाहा स्वाहा' शब्दोंकी गर्जना करतेहुए हवनीय पदार्थको आहुतियां देने लगे, मंडपमें वेदमंत्रोंका घोष होने लगा, बाजे बजने लगे, सुन्दरियां मंगलगीत गाने लगीं, और दर्शनार्थ आनेवाले राजाओं तथा प्रजाजनोंकी बड़ी भीड़ होने लगी. कई दिनतक यज्ञक्रिया इसीभांति होती रही. अब यज्ञमें अश्व होमनेका समय आया. वेदमंत्रोंका उच्चार होने लगा. अश्वके पृथक् पृथक् अंगभागकी आहुतियोंके लिये यजमान और यजमानपत्नी दोनों वेदीके पास आकर खड़े हुए.

* वरण किये गये ब्राह्मण.

ब्राह्मण मन्त्र पढ़ २ कर अश्वके एक २ अंगकी आहुति दिलाने लगे. महाराजा जनमेजयकी रानी अत्यन्त सौन्दर्यवती थी. अश्वमेध यज्ञकी विधि ऐसी है कि, यज्ञाश्वको वध करनेसे पहिले उसके सब अवयव जैसे कि पाद, गुल्फ, ऊरु, जंघा, कटि, गुदा, गुह्येन्द्रिय, नाभि, उदर, हृदय, कंठ, मुख, नासिका, नेत्र, कर्ण और शिर इत्यादि समस्त अंगोंका न्यास (अंगशुद्धि) यजमानपत्नीके हाथसेही करानी चाहिये. ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है. होमकर्मके समय यजमानपत्नी अपने कोमल हाथोंसे अश्वके उन सब अंगोंको स्पर्श करके मंत्रद्वारा शुद्धी करती है. इस विधिके अनुसारही ऋत्विक् लोग जनमेजयकी पटरानीके हाथसे न्यास कराने लगे, और जब अश्वकी गुह्येंद्रियको स्पर्श करानेका समय आया, तब वे वरणीके सब ब्राह्मण उस क्रियाको होती देखकर परस्पर नेत्रोंकी संज्ञा करके मस्करी करने लगे, यह देखकर जनमेजयको क्रोध उत्पन्न हुआ; किन्तु उस समय क्रोधको शमन करके उसने ब्राह्मणोंको एक बूरा शब्दभी नहीं कहा; क्योंकि न्यास करना आवश्यक कर्म है और गुह्येन्द्रिय अश्वका मुख्य अंग है; इसकारण उसको स्पर्श किये विना काम नहीं चल सकता था, सो राजा ब्राह्मणोंको क्या कह सकता था ? राजा मौन धारण कर बैठा; परन्तु जब उस अश्वका वध करके उसके अंग प्रत्यंग होमनेका समय आया, तब द्वैतभावके वशीभूत हुए उन भूदेवताओंके मनमें अन्य भाव प्रकट हुआ. अन्यान्य अंगोंकी आहुति हो चुकनेके अनन्तर गुह्येन्द्रियको होमनेका समय आया तब राणी दोनों हाथ पसार कर खड़ी रही और उसके हाथोंमें पूजा की हुई अश्वकी गुह्येंद्रिय रखनेमें आई. रानी नवयौवना, सौन्दर्यकी मूर्ति, लावण्यवती, मुग्धावस्थामें थी. उसके हाथोंमें, सबके देखतेहुए अश्वलिंग देखकर वे वरणीवाले–यज्ञका माहात्म्य नहीं समझनेवाले–अठारहों ब्राह्मण खिलखिलाकर हँसने लगे, उनको हँसते देखकर और सब दर्शकगणभी खड़ २ हँसने लगे. हे विशालकेतु ! तू जानता है कि, ऐसे समयमें ऐसा प्रसंग देखकर जो हँसी उत्पन्न होती है उसे दबादेना कितना कठिन है ? ब्राह्मण हँसनेमें लागये इसकारण बड़ी देरतक उनसे मन्त्रोच्चारण नहीं होसका, और जबतक मन्त्र नहीं पढ़ागया; तबतक रानी उस अश्वांगकी आहुति नहीं दे सकती थी, इस कारण वह परम लज्जावती रानी उसको हाथोंमें लियेहुए बडी देरतक खड़ी रही. जनमेजयके पहलेसेही तो क्रोध भराहुआ थाही, इतनेमें फिर यह नई

घटना घटती देखकर उसके क्रोधकी सीमा न रही, मानों जलती हुई अग्निमें घी डाल दियागया. क्रोधसे राजाके नेत्र लाल २ होगये, भ्रकुटि ऊंची चढ गई, और रोम २ में क्रोधाग्नि व्याप्त होगई. इसी आवेशमें वह यकायक बोल उठा—"अरे ! इन दुष्ट ब्राह्मणोंको क्या करूं ? ये मेरी स्त्री—राजपत्नीकी हँसी करते हैं ! ठीक है ! यदि इस समय मेरे पास चक्र होता तो मैं इन अठारहों ब्राह्मणोंके शिरश्छेद् करदेता, इतना कहता था इतनेमें तत्काल ब्राह्मणोंके सन्मुख धरेहुए चक्रके आकारके (तरभाणा—ताम्रपात्र) यज्ञपात्र उडने लगे और चक्ररूप होकर प्रत्येक ब्राह्मणके कंठपर आघात करने लगे और देखते २ सब ब्राह्मणोंके मस्तक भूमिपर गिरपड़े, सर्वत्र हाहाकार मचगया. अहो ! घड़ीभरमें क्यासे क्या होगया ! क्रोध कैसा विनाशकारक है ! भावी कैसी बलवान् है ! इसका तू विचार कर. तुरन्तही सबलोग राजाको धिक्कारदृष्टिसे देखने लगे, त्योंही वह महान् कुष्ठरोगी होगया. उसके शरीरमेंसे रक्त गिरने लगा. सारे शरीरपर घाव होगये, पीब वहने लगा, इस भांति उसके शरीरमें अठारह प्रकारका दुःखरूप कोढ व्याप्त होगया और वह त्राहि २ पुकारने लगा. अहो ! कैसा भविष्य ? कैसी ईश्वरकी गहन गति ? लोक उसको ब्रह्महत्यारा पापी दुष्ट कोढी इत्यादि कहने लगे और हरेक प्रकारसे उसकी निन्दा करने लगे.

तदनन्तर जैसे तैसे करके अन्यान्य ऋत्विज आदि ब्राह्मणोंने यज्ञकी समाप्ति की और सब अपने २ स्थानको चले गये. राजा कुष्ठरोगी होगया तो उसका सारा कुटुंब सगे संबंधी और प्यारेसे प्यारी सौन्दर्यमयी पट्टरानी कि, जिसके लियेही उसको क्रोध उत्पन्न हुआ था, और जिसको ब्याहनेसेही इस आपत्तिमें पड़ा था, उससमेत सबको वह (राजा) विषके समान अप्रिय होगया. कोई उसके निकट नहीं जाता, न प्रीति करके बुलाता; परन्तु क्या करे ? वह राजा था इसलिये विवश होकर उसकी आज्ञामें रहना पड़ता था. केवल एक तेरे समान सत्यवादी और सद्गुणपात्र प्रधान उसका था, वही दिनरात उसकी परिचर्यामें बना रहता और उसे किसी बातकी अड़चन नहीं होने देता था. राजाको वेदव्यासजीने कहा था कि इस कुष्ठरोगके निवारणका उपाय महाभारत श्रवण करना है और वहभी पूर्वोक्त सत्पात्र ब्राह्मणके मुखसेही श्रवण करना चाहिये, इसलिये राजाने अपने

प्रधानोंद्वारा जिसकी वाणी और हस्त दग्ध नहीं हुए हों ऐसे* ब्राह्मणको ढुँढ़वाया. ऐसे ब्राह्मण महातेजस्वी मुनि वैशम्पायन कि, जो महर्षि वेदव्यासजीके मुख्य शिष्योंमेंसे थे उन्हें बुलाकर साष्टांग प्रणिपात करके जनमेजयने महाभारत श्रवण करनेकी विनती की. मुनिने कहा-" हे राजन् ! यह महाभारत इतिहास वेदव्यासप्रणीत, परम सत्य और मोक्षप्रद है, तिसपरभी बड़ा अद्भुत है; इस कारण इसकी सत्यतामें तुझे किसी प्रकारकी शंका नहीं करनी चाहिये. अन्यथा तेरे सब पापोंका सर्वथा नाश नहीं होगा." तदनन्तर मुनिकी बातको मान करके जनमेजय कथा श्रवण करने लगा. यह तो प्रसिद्धही है कि, महाभारतमें कई इतिहास अति आश्चर्यकारक और असंभवितके समान दिखाई देते हैं; परन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे देखे जायँ तो उनमें पूरा २ सत्य समाया हुआ है. उसमें अतिशयोक्ति भराहुआ तथा मिथ्यावचन एकभी नहीं है; परन्तु जो होनहार है वह कोटि यत्न करनेपरभी होही जाती है. वैशम्पायन मुनिके सत्य वचनपर जनमेजयका पूरा २ विश्वास नहीं रहा. महाभारतके आदिपर्वसे लेकर अनुक्रमसे सत्रह पर्व मुनिने उसको श्रवण कराये उनमें तो उसे कुछभी शंका नहीं हुई, और ज्यों २ राजा पर्वोंको सुनता गया त्यों २ उसका एक २ प्रकारका कोढ़ नष्ट होता गया. इसभांति सत्रह जातिके कोढ़ मिट जानेके पीछे, अन्तके पर्वमें उसको शंका उत्पन्न हुई. कथामें ऐसा वर्णन आया कि-" भारतके युद्धमें भीमसेनने बड़ा पराक्रम किया था. भीमने शत्रुकी सेनाके हाथियोंके पांव पकड़ २ उनको फिरा २ कर आकाशमें फेंक दिया था; उनमेंसे अनेक हाथी अबतक आकाशके वायुमंडलमें भ्रमण कर रहे हैं, तथापि नीचे नहीं गिरने पाते." ऐसा आश्चर्यजनक वचन सुनकर जनमेजय उसको सत्य नहीं मानसका; इस कारण उसने कहा-" अहो मुनीश्वर ! आप यह क्या कथन करते हो ! यह तो ऐसी असंभवित-अघटित बात है कि, जिसे साधारण बुद्धिवाला मनुष्यभी सच नहीं मान सके तो मेरे जैसे बुद्धिमान्से किस प्रकार सत्य मानी जा सकती है ?" मुनिने कहा-"हे राजन् ! यह सर्वथा सत्य है और फिरभी कहता हूं कि यह सत्य है, सत्य है, और अवश्यही

---

* दानआदि प्रतिग्रह लेनेसे हाथ दग्ध होते हैं और असत्य अयोग्यादि भाषण करनेसे वाणी दग्ध अर्थात् भ्रष्ट होती है, ऐसे मनुष्यमें कुछभी पराक्रम तथा सत्त्व नहीं रहता है.

सत्य है. इसमें कुछभी शंका मत कर; नहीं तो तेरा अवशिष्ट कोढ़ ज्योंका त्यों रहजायगा ! मैं आजपर्यंत कभी असत्य नहीं बोला और न कभी असत्य बोलूंगा; परन्तु तेरा भविष्यही तुझको भ्रमाता है. अस्तु हे मूढ ! सचेत हो और मौन धारण कर." "महाराज ! जितना कोढ़ बाकी रह गया है उससे दुगुना भलेही क्यों न हो जाय, परन्तु ऐसी असत्य बातको तो मैं कदापि सत्य नहीं मानसकता." इसभांति कहकर राजा हठ कर बैठा. अनन्तर ऋषिने वारंवार राजाको समझाया तिसपरभी उसने नहीं माना. तब ऋषिको क्रोध उत्पन्न होनेसे उन्होंने कहा–" अरे दुष्ट ! गर्विष्ठ ! राजमदमें उन्मत्त ! तू नहीं मानता तो प्रत्यक्ष प्रमाण ले. देख, मैं तुझको बतलाता हूं. " इसप्रकार कहकर उक्त ऋषि सभाके बीचमें पद्मासन लगाकर बैठे और योगवलसे समाधि चढाकर समस्त ब्रह्मांडके वायुका अवरोधन कर दिया. क्षणभरमें सर्व जगत्को त्रास होने लगा. अन्न या भक्ष्य पदार्थ न मिले तो प्राणी कई दिनतक स्थिर रहसकता है ? ऐसेही जल न मिले तो कितनेही प्राणी कईएक प्रहरोंतक जैसे तैसे ठहर सकते हैं; परन्तु सबका जीवन–वायु नहीं मिल सके तो कोईभी प्राणी थोड़े क्षणमात्रसे अधिक जीता नहीं रह सकता. उस वायुके सर्वत्र बंद होजानेसे प्राणीमात्र महाव्याकुल हो गये. तब मुनिने उस अवरुद्ध वायुका आकर्षण किया. तत्क्षण आकाश मार्गसे अनेक हाथियोंके प्रचण्ड शरीरके खोखे धड़ाधड़ किसीके घरपर, किसीके चौकमें, किसीके आंगनमें और स्वयं जनमेजयके सभामंडपमें गिरने लगे. यह लीला देखकर अत्यन्त आश्चर्य करता हुआ राजा वारंवार अपने दुराग्रहकी क्षमा मांगता हुआ ऋषिके चरणारविंदमें गिरा. अनेक प्रकारसे स्तुति करनेके अनन्तर महामुनिने समाधि उतार कर वायुको मुक्त किया. तिस पीछे राजाने वारंवार स्वीकार किया कि–" महाराज ! आपने जो २ इतिहास कहे सो सर्वथा सत्यही हैं और मैं महामूढ हूं. मैंने आपके वचनोंपर मिथ्या शंका की. मेरी सर्वथा रक्षा करो. " पर इससे क्या होनेवाला था ? एकप्रकारका कोढ़ तो उसके शरीरमें रहही गया. तब मुनिने उसे समझाया कि " राजा ! इसमें तेरा क्या दोष है ? भावी हरेक रीतिसे अपना प्रभाव बता देता है. वह किसीसेभी किसी उपाय द्वारा कदापि नहीं टल सकता. " इस प्रकार उसको आश्वासन देकर मुनि अपने स्थानको चले गये और राजा पछताताही रहा. अतएव हे प्रिय सचिव !

भावीको टालनेके लिये किसी प्रकारका प्रयत्न करना, आकाशकुसुमकी प्राप्तिके लिये यत्न करनेके समान है.

यह वृत्तांत सुनकर विशालकेतुने कहा—"कृपानाथ ! आपका कथन यथार्थ है. केवल आपके कहनेपरसेही नहीं परंच अपने स्वतःके प्रत्यक्ष अनुभवसेभी यह बात सिद्ध होचुकी है कि, भावी अटल–अविचल है; परन्तु हे महाराज! आपने अपने कुँवरकी आयुका भविष्य किससे किसप्रकार जाना था ?" मंत्रीके इस प्रश्नपर क्षणभर विचार करनेके पश्चात् यज्ञभूने कहा—" प्यारे विशालकेतु ! अबतक यह बात मैं किसीकोभी नहीं कहना चाहता था; परन्तु तू परम भगवद्भक्त, सत्यवादी, मेरा विश्वासपात्र, और मोक्षका जिज्ञासुभी है इसी लिये तुझको यह वृत्तांत विस्तारपूर्वक कहूंगा. मैं यही एक नहीं किन्तु ऐसे अनेक भविष्योंको जानता हूं, परन्तु वे सब तुझे बतानेके पहले मुझको अपना सारा पूर्व इतिहास तुझे कह सुनाना चाहिये. वह सहज विस्तीर्ण होनेसे एकही दिनमें पूरा नहीं होसकेगा; इसकारण तू नियमपूर्वक थोड़ा २ प्रतिदिन सुना कर. "

महाराज यज्ञभूकी इसभांति आज्ञा होनेसे वह प्रधान प्रतिदिन प्रातःकाल अपने नित्याह्निकसे निवृत्त होकर, राजसभाके समयसे पहलेही, महाराजके पास जाता और आनन्दपूर्वक उनके वचनामृतका पान किया करता.

यज्ञभूने कहा—"हे विशालकेतु ! मैं बलिभक्ष नामक अपने महाप्रतापी पिताका पुत्र हूं. मेरे धर्मात्मा पिताकी अन्तिम अवस्थामें मैंही एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, इसलिये वे मुझपर विशेष प्रेम रखते थे. मुझपर जो उनका अनहद प्रेम था उसका बदला मैं देसकूं यह बात तो बहुत दूर थी; परन्तु मैं लगभग पांचेक वर्षका होकर अपनी लटपटाती हुई मीठी वाणी और मनोहर आकृतिसे उनको आनन्दित कर सकूं, इससे पहलेही मेरे पिता स्वर्गको सिधार गये. मैं निराधार बालक था तिसपरभी, पिताजीके मंत्रीगण बड़े सात्त्विक और स्वामिभक्त होनेसे उन्होंने मुझको राज्यासनपर अभिषिक्त करके उत्तमतापूर्वक राज्य चलानेका विचार किया; परन्तु पिताजीकी मृत्युकी वार्ता पाकर इस राज्यका एक कट्टर शत्रु राज्यपर चढ़ आया और सर्व अमात्यादिकोंको पराजित करके उसने, इस देहका माना हुआ मेरा राज्य अपने हस्तगत कर लिया उस समय मेरी दयामयी माता मुझको लेकर अपने पिताके यहां जा रही, वहां भलीभांति मेरा पालन पोषण करके मुझे बड़ा

किया. जब मैं योग्य वयका हुआ तब मेरे माभाने मुझको सत्यदेव नामक महाप्रतापी गुरुके पास अध्ययन करनेको भेजा. वह महात्मा गुरु ब्रह्मनिष्ठ तत्त्ववेत्ता थे. मेरे सिवाय उनके पास औरभी अनेक शिष्य वेद, व्याकरण, न्याय, मीमांसा, सांख्य आदि भिन्न २ शास्त्रोंका अभ्यास किया करते थे. कितनेही क्षत्रियपुत्र धनुर्विद्याका अभ्यास करते थे और बहुतसे ज्योतिष कितनेही वैद्यक और कितनेही शिल्पशास्त्र सीखते थे. परन्तु इन सबकी अपेक्षा उनके यहां वेदान्तविद्याका अध्ययन करनेवाले शिष्योंका समुदाय बहुत बड़ा था. गुरुदेव स्वयमेव सब शास्त्रोंके पूर्णतया परम ज्ञाता होनेसे साक्षात् सर्वज्ञ (ईश्वर) तुल्यही थे, ऐसा कहे विना मुझसे नहीं रहा जाता. उन्हींके पास मैंनेभी धनुर्वेद सीखा और उनके चरणप्रतापसे वह मुझे फलीभूतभी हुआ; परन्तु, एक बातकी मेरी जिज्ञासा उनके यहां तृप्त नहीं हुई. जिस समय मैं धनुर्वेद सीखता था उसी समय मेरे गुरुके मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छावाले तत्त्वेच्छु) शिष्योंके पाठ लेनेका था, बरंच गुरुदेव दूसरे समस्त विषयवाले शिष्योंको भिन्न २ पाठ देकर, बाकीका शेष समय वेदान्तचर्चामेंही विताया करते थे. मैं फुर्तीसे अपना पाठ समझ लेकर यह चर्चा सुना करता. मुझको और सर्व विषयोंसे बढ़कर उसमें आनन्द आता था; परन्तु गुरुकी आज्ञा थी कि–'विद्यार्थियोंको अपना चालू विषय सम्पूर्ण पढ़ लेनेके सिवाय दूसरे किसी विषयमें कभी मन नहीं लगाना चाहिये.' इस कारण वेदांतकी चर्चा चलती तब मैं गुरुसे गुप्त रहकर सुना करता था. और ऐसा करते जो कभी गुरुजीकी दृष्टि मुझपर पड़ती तो तत्काल उठकर अपने घरका रास्ता लेता. एक विषय सम्पूर्ण किये विना दूसरेमें चित्त नहीं लगा देनेका जो गुरुजीका नियम था उसमें बड़ा गंभीर हेतु था. विद्यार्थीका मन निर्मल दर्पणके समान होता है, उसमें प्रत्येक वस्तुका प्रतिबिंब स्वच्छ रीतिसे पड़ता है. जिससे प्रथम तो उसको, जो २ विषय देखता है उन सबमें आनंद और उमंग उत्पन्न होता है, परन्तु अपना चलता हुआ विषय छोड़कर दूसरेमें प्रवृत्त होता है तब उस दूसरे विषयकी छाप मनपर पड़नेसे, पहला विषय वहांका वहीं रुक जाता है. और वेदांत जैसा परम गहन विषय तो अल्पवयस्कों तथा विद्यार्थियों जैसे अस्थिर और अपक्व मनोवृत्तिवालोंके सीखने–जानने विचारनेके योग्य हैही नहीं; परन्तु मुझको तो

उन वेदांतियोंके नाना प्रकारके वाक्य और अहंब्रह्मास्मि (मैं स्वयमेव ब्रह्म-परमात्मा हूं), तत्त्वमसि (वह ब्रह्म तूही है) इत्यादि महावाक्य सुननेसे अनेक प्रकारका कुतूहल और नित्य नया आनंद होता था. मैं पहले वेद, वेदांग, शास्त्रादिका अध्ययन करके राजाके उपयोगी धनुर्वेदका अध्ययन करता था, और वह संपूर्ण होजानेपर मेरा मन वेदांतका अध्ययन करनेके लिये उत्कंठित होरहा था. परन्तु मेरी यह इच्छा पूर्ण नहीं होने पाई; जब मैं धनुर्वेद पढ़चुका तब मेरे गुरुजी, मेरे मामा तथा अनेक और २ राजाओं तथा ऋषियोंको आमन्त्रण करके मेरी परीक्षा लेने लगे. सब प्रकारके अस्त्र (फेंककर मारनेके आयुध) और शस्त्रों (हाथमें पकड़े रहकर घात करनेके आयुध), मुक्त अमुक्त मुक्ताऽमुक्त और मंत्रमुक्त इत्यादि सब जातिके शस्त्रोंके मंत्र, उनका विधिविधान, चलायेहुए आयुधोंको पीछा खैंच लेनेकी क्रिया, युद्ध समयमें अपेक्षित सर्वप्रकारकी चतुराइयां, सब प्रकारकी सेनाकी व्यूहरचना, अश्व, गज, रथ इत्यादि वाहनोंपर चढ़कर युद्ध करनेकी कला, आकाशमार्गमें स्थित होकर युद्ध करनेकी अद्भुत शक्तियां, इत्यादि सब विषयोंमें मैं उनके सन्मुख परीक्षोत्तीर्ण हुआ. तदनंतर मुझपर अत्यन्त प्रसन्न होकर मेरे मामाने गुरुको यथाशक्ति गुरुदक्षिणा दी. इसके पीछे जब मैं वेदान्तमार्गमें प्रवृत्ति करनेके लिये तयार हुआ इतनेहीमें मेरे गुरुजीका मुझसे सदाके लिये वियोग होगया. वे बहुतही वृद्ध होगये थे और अंत्यावस्था समीप आई देखकर किसी तीर्थमें जा निवास करना, इस विचारसे बदरिकाश्रम जानेको तयार हुए. उनके कई एक शिष्यभी साथ २ जानेको तत्पर हुए. सबके साथ २ मैंनेभी जानेका विचार किया; परन्तु मेरी दयालु माता और मेरे मामाने किसी भांतिसेभी गुरुके साथ जानेकी आज्ञा नहीं दी. माताने कहा—"हे पुत्र ! तूने अब बहुतसी विद्याएं सीखली हैं और एकबार उन सबका पूरा २ उपयोग कर लिये विना ब्रह्मविद्या (वेदान्त) पढ़नेकी आज्ञा मैं तुझे नहीं दे सकती. तू क्षत्रियपुत्र है, वीर्यवान् है, परन्तु निराधार और पराश्रित है. इतनेपरभी तेरे अन्तःकरणमें किंचिन्मात्रभी वैरभाव नहीं दीख पड़ता, और न क्षत्रियत्वका अभिमानही तुझमें निवास करता, इसका क्या कारण है ? तू इस बातका विचार नहीं करता कि, इस समय तेरी कैसी स्थिति है ? तेरा घरबार कहां है ? तू राजपुत्र होनेपरभी, तेरेलिये राज तो दूर रहा

परन्तु तेरे स्वतंत्र रहनेके लिये एक छोटीसी झोंपड़ीभी तेरे वतनमें नहीं है. तू अभी कहां है ? किसका अन्न खाता है ? तेरे पिताकी क्या गति हुई ? इसकाभी तुझें कुछ स्मरण होता है ? इन सब बातोंका तू विचार कर. तेरे पिताको मारनेवाले शत्रुसे वदला लेकर अपने राज्यको पुनः अपने हस्तगत कर. मैं कि जो अपने सहोदर भाईके यहां रहती हूं तोभी मैं परतंत्रतासे रहनेवाली हूं सो मेरेलिये रहने तथा पोषण करने योग्य वस्तु तथा समयका संपादन कर; पितासेभी बढ़कर विस्तृत राज्यका अधिपति हो, अपने हाथके नीचे अनेक विचक्षण विश्वस्त मंत्रियोंकी योजना कर और हाथी घोड़े रथ पैदलादिकी चतुरंगिणी सेना प्राप्त करके शिरपर छत्र धर और एकबार इस भूमंडलमें ' श्रीमान् यज्ञभू महाराजाधिराजकी जय ' ऐसा सर्वत्र डंका बजाकर मेरे चिरकालसे जलते हुए अन्तःकरणको शीतल कर. तिस पीछे तेरी इच्छा हो उसी स्थलको, तेरी इच्छा हो उसी कार्यके लिये, और तेरी इच्छा हो उसी समय जानेकी हर्षपूर्वक आज्ञा देऊंगी." ऐसे शूरतावर्द्धक शत्रुओंपर क्रोध और द्वेष उपजानेवाले और राज्यसंपादन करनेकी पूर्ण लालसाको जन्म देनेवाले जननीके वचनोंको सुनकर, मैंने उससमय गुरुजीके साथ जानेका विचार वदल दिया.

हे प्रिय विशाल ! मैं अपनी माताके प्रतिबंधसे गुरुजीके साथ जानेसे रुक गया तोभी परब्रह्मको शोधनेकी—जाननेकी मेरी प्रीति बिलकुल नहीं घटी. वरंच उलटा यह हुआ कि, उसके उपदेशसे मुझे उपजीहुई राज्य-संपादन करनेकी लगनके साथ २ परमश्रेष्ठ ब्रह्मविद्या—अध्यात्मविद्या संपादन करनेकी लगनकी जड़ अधिक दृढ़तर होगई. जैसे किसी अत्यन्त सौन्दर्यवती नवयौवना स्वकीयोंके साथ उसके पतिका क्षणभर नयन—मिलाप—तारा-मैत्रक होनेके उपरान्त थोड़ी देरतक दोनोंके अन्तःकरण एक दूसरेके पूर्ण प्रेमसे मिलनेके लिये उछलते रहते हैं, और अब ईश्वर कब मनोकामना पूर्ण करेगा ऐसी प्रेममयी बातें परस्पर कर चुकनेके अनन्तर तत्काल उनका वियोग होजावे तिस पीछे उनके मनोंमें परस्पर मिलनेके लिये जैसी इच्छा—प्रीति बढ़ती जाय और एक दूसरेका स्मरण कर २ के वे जैसे उदास और विशुद्धावस्थाको प्राप्त होते हैं, वेदान्तमें प्रीति होनेके कारणसे मेरीभी वही दशा होगई. मुझको वारंवार ऐसा स्मरण होने लगा कि, यह वेदान्तज्ञान कैसा होगा ? अहा ! जिसका कुछेक

ऊपर २ का संवाद और उड़तीहुई बातचीत सुनकर मुझको ऐसा आनन्द होता था तो उसको यथार्थ जान लेनेपर कैसा आनन्द होता होगा ? और उसको नित्य भोगकर संपूर्ण अध्ययन करके उसका अनुभव लेनेवालों तथा मैं स्वयं ब्रह्म (परमात्मा) हूं ऐसा समझकर उसके परम सुखमें मगन रहनेवालोंको कितना बड़ा आनन्द होता होगा ? पुनः अपने इस पंचतत्त्वके पुतलेकी अवस्थामें रहकर भी अपने स्वयम् ईश्वर (ब्रह्म) हैं इस बातको अन्तःकरण किस प्रकार और कौनसे प्रमाण तथा किस प्रतीतिसे कह सकता वा मान सकता होगा, इस विषयकी तोडमोड़भी मनही मन होने लगी. और 'मुझको इसकी प्राप्ति कब होगी, क्या मैं ब्रह्मविद्यासे वंचितही रहूंगा, हे परमात्मा ! मुझ दीनपर दया करो, कृपा करो ' ऐसे २ संकल्पविकल्प होने लगे तथा मैं विचार करने लगा कि, मैं कौन हूं ? कहाँसे आयाहूं ? कहां जाऊंगा ? यह जीवात्मा संसाररूप समुद्रमें डूब गया है उनको कैसे ज्ञानमें निष्ठा रखकर उद्धारना चाहिये ? मनुष्यदेहके मिलनेपर और उससे भी श्रेष्ठ पुरुषदेह प्राप्त होनेपर तथा उसमें विचारशक्ति होतेहुए और सद्गुरुके प्रसादको पाकरकेभी जीव मुक्तिके साधनसे विमुख रहे तो उससे अधिक बुद्धिहीन और कौन होगा ? इस संसारसागरसे पार उतरनेके लिये मेरी क्या गति है ? सद्गतिका क्या उपाय है ? यह जाननेके लिये मैं बहुत आतुर होगया; संसाररूप दावानलकी ज्वालामें मैं बहुत तप गया और ब्रह्मानंदके रससे भरेहुए पवित्र, शीतल, परमानन्दरूप, कानोंको-आनंद देनेवाले सद्गुरुके वचनामृत पान करनेमें मेरी लालसा अत्यन्त बढ़गई. इतना होनेपरभी अज्ञानके योगसे देहादिक अनात्म पदार्थोंमें बंधन होते देखा. संसार राजपाट माता पिता सब सत्य मानने लगा; परन्तु ज्ञानाग्निसे देहवासनाका दहन करनेमें सर्व पदार्थोंको तृणवत् समझने लगा. मेरा मन सदा भ्रमित रहने लगा. ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिकी दृढ़ अभिलाषाने मुझको अन्य सब कार्योंसे निःस्पृह और केवल अस्वस्थ बना दिया. ऐसा करते २ लगभग छः मास व्यतीत हुए इतनेमें मेरी विनतीपर श्रीहरिने कुछ ध्यान दिया हो ऐसा एक महान् आश्चर्य देखाः—

एक समय मैं अपने एकान्तभवनमें ऐसेही विचारोंमें तल्लीन होकर, एक तकियेका सहारा लेकर लेटा हुआ था. प्रातःकालके समय अनुमानसे डेढ़ प्रहर दिन चढ़ा होगा. मैं अपने नित्यके सब आह्निक कर्म पूजन-

भोजन इत्यादिकसे निवृत्त होकर घड़ीभर विश्रामके लियेही पड़ा हुआ था, कोईभी मनुष्य मेरे पास आता जाता न था. उस समय सब लोग खा, पीकर निपट चुके थे इसलिये सारा महल शान्त था किसी प्रकारका शब्द मेरे कानोंपर नहीं आता था, सब शून्यशान था. मैंभी विना कुछ बोले चाले चुपचाप लेटरहा था, उस समय मुझको आत्मा परमात्माको विचारनेका कुछ २ चक्करसा आने लगा. एक ओर परमात्माका विचार, दूसरी ओर दैवका, तीसरी तरफ देहका, चौथी तरफ मायाका ऐसेही विचारोंके चक्करमें जागृत अवस्थामें पड़ा हुआ था. मेरी आंख मिचनेकी तयारीमें थी, तथापि मैं निद्रावश नहीं होगया था. इसी अवसरमें मैं एका-एक स्वप्न जैसा देखने लगा. वह स्वप्न जैसा था किन्तु स्वप्न तो नहीं था; क्योंकि, निद्रा आनेकी तैयारीमें, जो कुछ सुनने वा देखनेमें आता है और अपना मन नींदको चाहनेवाला होनेके कारण उस वस्तुपर पूरा २ जमा हुआ न होनेसे स्वप्नवत् भान होता है; परन्तु वेह स्वप्न नहीं कहा जा सकता; वरंच उसे चेतनशक्तिकी क्रीड़ा कह सकते हैं. तत्क्षण एक अत्यन्त तेजस्वी और सौन्दर्यका भंडार दो भुजावाली स्त्रीको आकर मेरे एकान्तगृहमें प्रवेश करते मैंने देखा. उस स्त्रीके तेज और रूपसे मेरे नेत्र चकाचौंध होगये. उसकी अद्भुत कांति और विचित्र स्वरूप देखकर मैं समझने लगा कि, यह कोई परमात्माकी अलौकिक शक्तिही होगी. जिससे मुझे उसपर स्वाभाविक रीतिसेही मातृभाव उत्पन्न हुआ. और " अहो महामाये ! तू कौन है ? और किस कारण यहां पधारनेकी कृपा की है ? " यह कहनेका मैं विचार कर रहा था इससे पहले तो वह देवी वेगपूर्वक मेरे पास आकर मेरे मस्तकपर हाथ रखकर "वत्स ! तेरा कल्याण हो. तू किसी बातकी चिन्ता मत कर. तेरी मनोकामना पूर्ण करती हूं." ऐसा कहते हुए तुरन्त उसने स्फुर्तीसे मुझको अपने दोनों हाथोंपर, जैसे मा अपने बच्चेको उठा लेती है तैसे, आडा उठा लिया. मेरी ऐसी अव्यवस्थित स्थितिमेंही उसने अपनी दिव्यशक्तिसे मुझे उठाकर सड़सड़ाहट करती हुई जैसे आई थी वैसेही चली गई. उस समय मेरी वाणी बंद होगई थी इस कारण मैं कुछभी चूंचां नहीं करने पाया. वह महलमेंसे बाहर निकलकर तुरन्त आकाशमें उड़ी और इतनी शीघ्रतासे झपटकर उत्तरदिशामें चलने लगी कि, मार्गमेंके किसी पदार्थको मैं किंचि-

त्मात्रभी नहीं देख सका. उसकी तीव्रगतिके कारण मुझको चक्कर आगया और जैसे वादीके प्रभावसे आंखोंको अंधेरी और चक्कर आने लगते हैं, वैसीही मेरी दशा होगई. तब लाचार मैंने अपनी आंखें बंद करली. थोड़ीही देरमें उसने मुझे (मैं अनुमान करता हूं कि) हिमालयकी उत्तर-दिशामें एक सघन अरण्यके एक सुंदर घाटवाले आम्रवृक्षके नीचे भूमिपर रख दिया. पृथ्वीका स्पर्श होनेसे मैं चमका और नेत्र खोलकर देखने लगा तो चारों ओर भयंकर पर्वत और सघन झाड़ीवाला अरण्य दिखाई पड़ा और मुझको उठा लानेवाली वह दैवी शक्ति न जानें कहां अदृश्य होगई सोभी मैं कुछ नहीं जान सका. उस समय मेरे अन्तःकरणकी विलक्षण स्थिति होगई, मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही. 'मैं कहां था ? कहां आगया ? कहां जाऊंगा ? क्या करूंगा ? ' ऐसाही सोचते २ मैं घबराने लगा.

चैत्रमासका सूर्य मस्तकपर आया हुआ था. धूपभी खूब तेज पड़ रही थी. मेरे मनमें घबराहट बढ़रही थी जिससे मुझको तृषा लगी. मैं उस आम्रवृक्षके नीचेसे उठकर धीरे२ पानीकी खोजमें एक दिशामें चलने लगा. थोड़ी देरतक चारों ओर ताकता हुआ इधर उधर फिरता रहा. इतनेमें एक तरफ कुछ मार्ग—पगडंडी जैसा नजर पड़ा. 'उसके आधारसे जहां जा पहुँचूं वही सही' ऐसा सोचकर धीरे २ आगे बढ़ा.

उस समय ज्यों २ मैं आगे बढ़ता था त्यों २ मेरी घबराहट घटती जाती थी. दोनों तरफ स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न होकर अपने आप वृद्धिको प्राप्त हुए सुन्दर २ वृक्ष, वसन्तऋतुके कारणसे मंजरी और पुष्पोंसे शोभा-यमान होरहे थे. कईएक वृक्ष फलोंसे लद रहे थे. उनको देखनेसे मुझको अधिकाधिक आनंद होनेलगा. अपने यहांभी वृक्ष बहुतायतसे देखनेमें आते हैं और वे आनंददायकभी होते हैं तथापि उस समय जो वनलीला मैं देख रहा था, जिस २ जातिके वृक्ष मैंने देखे थे और जो आनंद मुझे होता था उसका वर्णन मुझसे नहीं होसकता. वह तो सचमुच कोई दिव्य देववनही था. मनुष्योंको उसके दर्शन दुर्लभही हैं. उस मार्गसे आते २ जो सौगंधिक वायुका मंद २ झकोरा आता था वैसा सुगन्ध मैं उस दिनसे पहले कभी नहीं सूंघने पाया था. उन वृक्षोंपर, भाग्यशाली (ऐसे अलौ-किक वनमें उत्पन्न हुए इसलिये भाग्यशाली) पक्षी आनंदमग्न होकर मधुर

आलाप कर रहे थे, जिसे सुनकर मैं वारंवार खड़ा रह जाता था. उस वनकी भूमिभी विलक्षण तेजोमयी थी. कहीं २ झाड़ीकी छांटमें होकर पर्वतके रम्य शिखर दिखाई देते थे. उनकी शोभा देखकर कभी २ तो मुझे भ्रम हो जाता कि; 'ये सुवर्ण वा मणिके देवालय तो नहीं हैं!' मैं उस परम शोभाको देखता हुआ अपने दुःखको भूलकर आनन्दमें गोते खाता चला जा रहा था. कुछ दूर आगे एक सुन्दर सरोवर दृष्टिगोचर हुआ. उसके तटपर चारों ओर सुन्दर सघन आम्रवृक्ष तथा वटवृक्ष अपनी लंबी २ शाखा और पल्लवोंसे शीतल छाया कर रहे थे. किनारे बड़े स्वच्छ और हंस आदिक पक्षियोंसे शोभायमान थे. निर्मल जलके ऊपर नील, पीत, श्वेत और रक्त कमलपुष्प प्रफुल्लित हो रहे थे. इस दृश्यकी अनुपम शोभा देखतेही, बिना जलपान कियेही मेरी तृषा शांत होगई. जब ऐसे सुन्दर जलके दर्शनसे मुझको अपरिमित आनन्द प्राप्त हुआ तब भला उसको पान करके मैं बड़भागी क्यों न बनूं, ऐसा विचार कर मैं उस सरोवरके तटपर गया और स्नानमुख प्रक्षालन करके अंजलि भर २ कर जल पीने लगा. अहा! प्यारे सचिव! उस जलको पीनेसे मुझे कैसा आनन्द हुआ सो मैंही जानता हूं. हे प्रिय! मैं कहांतक उसकी प्रशंसा करूं! वह सरोवर साक्षात् अमृतसेही भराहुआ था. जलपान करके तृप्त होनेके अनन्तर मैं उसके तटपर आम्रवृक्षकी सुन्दर शीतल छायामें बैठकर विश्राम लेने लगा; परन्तु ऐसे बैठ रहनेकी अपेक्षा चलफिरकर उस दिव्य वनकी सुन्दरता देखना उचित समझकर मैं वहांसे उठ खड़ा हुआ. अबतक तो मुझको दिशाका कुछ ज्ञान नहीं था; क्योंकि एक तो मैं पहलेपहल वहां गया था और दूसरे सूर्यभी मध्याह्नसमय मस्तकके ऊपर तप रहा था; परन्तु जैसे २ दिन घटता गया तैसे २ सूर्यकी गतिपरसे मैंने चारों दिशायें पक्की की और अब तो मैं सरोवरकी उत्तर दिशामें जा रहा हूं ऐसा समझने लगा. ज्यों २ मैं आगेको बढ़ता गया त्यों २ नवीन २ चमत्कार देखनेमें आये. मार्गमें अनेक सुन्दर फलवाले ऐसे २ नये २ वृक्ष मेरे देखनेमें आये जिनको मैं नहीं पहचान सका; क्योंकि पहले मैंने वैसे वृक्ष कभी नहीं देखे थे. वहां सुन्दर कृष्णमृग निर्भयतासे इधर उधर विचरते-दौड़ते कूदते थे. उनकी तरफ जो पवनकी लहरें आती थीं, उनमें कस्तूरीकी सुगंध भर रही थी. इसपरसे अनुमान किया कि, वे

कस्तूरी-मृग होंगे. इनके सिवाय अनेक तरहके पशु और पक्षी कोकिल, शुक, मैना मयूर इत्यादि मनोहर पक्षियोंको निहारता तथा उनके नवल २ मधुर २ कुहूकुहू किल किल कलरवको श्रवण करता हुआ विचरता २ मैं एक गुफाके द्वारपर जा पहुंचा. इस गुफामें भिन्न २ दिशाओंसे आयेहुए दो चार मार्ग प्रवेश करते थे. उनपर कहीं २ मनुष्यके पदचिह्न खंडखंड दिखाई देते थे. मैंने सोचा कि, 'इस गुफामें किसी मनुष्य प्राणीका निवास होगा. आगे जो श्रीहरिकी इच्छा होगी वैसाही होगा.' ऐसा विचार कर मैंने उस गुफामें प्रवेश किया. ज्यों २ मैं आगे बढ़ता था, त्यों २ पहले तो अधिकसे अधिक अंधकार होता गया; परन्तु उससे धीरज न छोडकर मैं निर्भय चलाही गया. आगे जानेपर एक चौगान आया. उसके वीचोवीच जाकर खडा हुआ. देखा कि वहांसे चारों दिशाओंको चार मार्ग जा रहे थे. प्रत्येक मार्गके द्वारपर जाकर देखनेका मैंने यत्न किया, परन्तु सघन वृक्षसमूहके कारण दृष्टि दूरतक नहीं पहुँच सकी, इस कारणसे तथा अपनी मनोवृत्तिकी प्रेरणासे, विशेष सोच विचार न करते मैं जिस मार्गसे आया था उसीके सामने जो मार्ग था वही मार्ग लेकर भीतर घुसा और चलने लगा. थोडी दूर जानेपर फिर एक सुंदर झील आई जो छोटे २ अनेक वृक्षोंसे भरपूर पर्वतमालासे वनीहुई थी. उसमें प्रवेश करनेका मार्ग उस पर्वतके ऊपर होकर जाता था. उसी मार्गके आधारसे मैं ऊपर चढ़ा. अहाहा ! ! विशाल ! उस पर्वतपर चढनेसे मैंने जो उस वनकी शोभा देखी उससे मेरा मन परम आनन्दमें मग्न होगया. यह सब देखते २ मैं पर्वतपरसे उस झीलके भीतरकी ओर नीचे उतरा, उस समय मुझको ऐसा भान हुआ मानों मैं इन्द्रके नन्दनकाननमें आ पहुँचा हूं. वह सारी झील ईश्वरकी अद्भुत लीलासे परिपूर्ण होरही थी. जिधर २ दृष्टि गई उधरही नई २ चित्रविचित्र फुलवाड़ियां, तुलसीके वृन्द, कदंब, आम्र आशापल्लव इत्यादिक कल्पतरु-समान वृक्ष, जगह २ सुन्दर कमलपुष्पोंसे सुशोभित छोटे २ सरोवर, भांति २ के रंग रँगीले पुष्पोंसे सुसज्जित लतायें चन्दनके वृक्ष,इत्यादिक जहां तहां सर्व दिशाओंमें लगे होनेसे उस स्थलपर सर्वत्र आनन्दही आनन्द छा रहा था. चलते २ मैं ठीक वीचोवीच जा पहुँचा. चहूंओर दृष्टि फैलाई तो एक सघन आम्रवृक्षके नीचे विराजमान हुई एक महातेजस्वी मूर्तिके मुझे दर्शन हुए. दूरसे देखनेपर पहले तो मैंने

यही जाना कि, वह तपायेहुए सुवर्णका ढेरही होगा; परन्तु जैसे २ निकट जाता गया तैसे २ एक परम दिव्य विलक्षण स्वरूपके दर्शन होने लगे. जब मैं बिलकुल निकट जा पहुँचा तबभी मुझे ऐसी शंका हुई कि, 'यह मूर्ति चैतन्य है वा सुवर्णकी प्रतिमामात्र है !' क्योंकि बिना किसी प्रकारकी हिलचल तथा नेत्रोंकी पलक ऊंची नीची किये बिना वह भव्य मूर्ति निरी शान्त थी. उक्त मूर्तिको वारंवार लक्ष्यपूर्वक देखते रहनेपर मैं कुछ २ समझने लगा. एक अखंड कृष्णाजिन* पर वह दिव्य शान्त मूर्ति विराजमान हुई थी. उसने सिद्धासन लगा रक्खा था. वल्कलकी कौपीन धारण की हुई थी. दोनों हाथ जंघाओंपर धरेहुए थे. चरणसे शिखापर्यंत समस्त अंग न तो अतिपुष्ट न अति कृशही थे. इसभांति नखशिखतक सब अंग सुवर्णमय रंगसे देदीप्यमान हो रहे थे. हृदय विशाल और बाहु प्रलम्ब थे. कंठ शंखके समान दिखाई देता था. मस्तकपर सुनहरी जटाजूट शोभा दे रहा था. वामस्कंधपर सुंदर यज्ञोपवीत धारण किया गया था; यही एक मात्र अलंकार देखनेमें आता था. हृदय, उदर तथा समस्त शरीरपरकी रोमराशी सुनहरी रंगकी होनेसे शरीरके रंगके साथ मिल जानेके कारण रोमावली है या नहीं सो नहीं समझा जाता था. कमलनेत्र मुँदेहुए और मुख बंद किये-हुए थे. मुखपर डाढ़ी तथा मूंछके केशभी अतिशय वृद्धिको पाये हुए नहीं थे. ऐसा होनेपरभी उस मूर्तिकी वय कितनी होगी सो नहीं जाना जा सकता था. इस सब दिखावपरसे मैंने सहज अनुमान किया कि, यह पुरुष कोई योगिराज-ऋषि होंगे. परन्तु मैं किससे पूछूं ? उस सारे वनभरमें मैंने मनुष्यरूप एक इन्हींको देखा था, और सोभी शब्दादिरहित, परमशान्त, निश्चेष्ट विराजमान थे. उनके निकट जलसे भरा हुआ एक कमंडलु रक्खा हुआ था. उनके आसनसे दशेक कदम दूर पर, एक हरे वृक्षोंकी, अपने आपही रचीहुई हो ऐसी कुंजसमान पर्णकुटी थी. उसके पास जाकर झुककर देखा तो उसमें कुछभी नहीं दीख पड़ा. चारों ओर वाटिकामें दृष्टि फिराकर मैंने पुनर्वार उक्त महात्माकी ओर देखा तो अब पहलेसे विभिन्न विलक्षण स्वरूप देखनेमें आया. जैसे २ मैं अधिकाधिक उनकी ओर देखता गया तैसे २ मुझको उनपर अधिकतर श्रद्धा होने लगी

---

* काले मृगका चर्म, जिससे खुर, पुच्छ, शृंग, मुखभाग इत्यादि सर्वअंग भिन्न २ दिखाई देते थे.

और स्वाभाविकतया मुझे ऐसा भान होने लगा, कि, केवल इस समस्त वनकेही नहीं परंच विश्वभरके चैतन्यरूप ये महात्मा हैं. तदनन्तर मैं और कुछ न करके दोनों हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा रहा. संध्यासमय होने आया था, तब मैंने दंडवत् (लंबा होकर साष्टांग नमस्कार) किया. इसभांति एक दो तीन नमस्कार कर और उठकर फिर नमस्कार करना चाहता था उसी क्षण उस भव्य मूर्तिने शिर उठाया, नेत्र खोले और मुखसे 'हरये नमः, हरये नमः' उच्चारने लगे. उस समय मुझे परमानन्द हुआ. मैंने फिर पुनः २ दो चार वार दंडवत् नमस्कार किये. "मैं कहां आया हूं ? यह कौनसा स्थल है ? आप कौन हैं ? मुझे अब कहां जाना चाहिये ? क्या आप मुझपर कृपा करेंगे ?" इत्यादिक शंकायें बड़ी देरसे मेरे मनमें चढ़ा उतरा कर रही थीं; मैं अनुक्रमसे उन्हें बोलनेका विचार करता था; परन्तु उनसे पहले मुझको उक्त महात्माकी कुछ स्तुति करना चाहिये इस विचारसे कुछ बोलना चाहता था, उसीक्षण वह महात्मा स्वयमेव, मानों आकाशमें परोक्षरीतिसे गंभीर वाणी हो रही है इस भांति मधुर और आत्माको अह्लादित करते हुए वचनामृतका पान कराने लगेः—

"हे मृत्युलोकके मानव ! इस हिमालयके उत्तरमें और कोई मनुष्य प्राणी अपनेआप यहां प्रवेश नहीं करसके ऐसे दुर्गम अद्भुत और ईश्वरी लीलासे परिपूर्ण त्रिविष्टपप्रदेशमें तू आया सो अच्छा हुआ. तू ऐसा समझ कि, तेरे भवनमेंसे तुझे यहां उठा लानेवाली योगमाया परमात्माकी दिव्य शक्ति थी, वह तुझको तेरेही कल्याणके अर्थ यहां लाई है. अब तेरी इच्छा पूर्ण होगी. तू चिन्ता मत कर. तुझको क्षुधा व्याप्त हुई है. अस्तु, तू उस सामनेके वृक्षके नीचे जाकर बैठ." केवल इतना कहकर वह अद्भुतमूर्ति वहांसे उठी और मैं कुछ कहूं, इतनेमें तो वह कहां किधर गुप्त होगई सो मैं कुछभी नहीं जानसका. आश्चर्यमें निमग्न होता हुआ मैं उनकी बताई हुई जगहपर जाके बैठा. वहां अनेक प्रकारके फल और पानीसे भराहुआ कमंडलु मैंने देखा. मैंने अपना सन्ध्यादिक नित्यकर्म करनेके अनन्तर, भलीभांति अपनी क्षुधा शान्त की. तब मेरे सामने कुछभी मैंने नहीं देखा. मुझे किसीकी अपेक्षाभी न रही थी. थोड़ीही देर पीछे चंद्रमाका प्रकाश हुआ, तब मुझको उक्त महात्मा उसी वृक्षके नीचे अपने पहले

स्थानपर बैठेहुए दिखाई दिये. मुझे अकेले बैठे २ अच्छा नहीं लगता था, इस कारण मैं उनके पास जाकर दंडवत् करके बैठ गया, तब वे स्वयंही कहने लगे.—

"हे यज्ञभू ! तू अब चिन्तामुक्त हुआ ? मैं तुझसे कहूं सो श्रवण कर. जीव और ब्रह्मकी एकताका अनुभव लेनेमें तेरी बुद्धि तत्पर हुई है, तेरी प्रवृत्ति नष्ट होगई है; दृश्यपदार्थपर तुझको मोह नहीं है; अदृश्य पदार्थको तू जानता नहीं है; ब्रह्म लगनका सुख अपार, अवधिरहित, निरन्तर होनेसे परंतु वह किसतरहका और कितना है सो जाननेका अधिकारी तू बना है. यह जगत् कैसा है ? कैसा था ? किसमें लीन होजायगा ? इत्यादिक प्रश्न इस समय तेरे मनमें और दृष्टिमें क्रीडा करते हैं. 'यह क्या ?' इस स्थितिमें पड़ा हुआ तू कुछ देखता नहीं, सुनता नहीं, जानता नहीं; परन्तु सदानंदमय, नित्य, अद्वितीय, आनंदस्वरूप व्यापकस्वरूपमें लीन होनेकी तेरी इच्छा है, तथा कृतार्थ होकर संसारसे मुक्त हो नित्य आनन्दरूप बनना चाहता है सो तू ब्रह्मकेही अनुग्रहसे ऐसा बननेमें भाग्यशाली हो. सर्व पदार्थके भीतर और बाहर ज्ञानरूपसे रहनेवाला ब्रह्म तेरा भावी कहता है कि, तू तेरे पिताको मारनेवालेसे वैर लेकर पश्चिम समुद्रसे पर्व समुद्रपर्यंत राज्य प्राप्त करेगा. तेरी धनुर्विद्याके पराक्रमसे तेरे सब शत्रु पराजय पावेंगे. तेरी जननीके तेरेलिये कहेहुए सब वचन सत्य होंगे; और बहुतकाल पीछे तेरें एक पुत्र होगा; परंतु तू उसका विवाह मत करना; कारण यह कि, वह युवावस्था-मेंही मृत्युवश होगा. तू परम धर्मात्मा होकर दीर्घकाल पर्यंत निष्कण्टक राज्य भोगेगा." इतना सुनकर मैं पूछना चाहता था कि, मेरी जो इच्छा है सो औरही (ब्रह्मज्ञान सम्पादनकी) है. इतनेहीमें उक्त महात्मा कहने लगे-"भो आर्य ! और सुन. तेरी जिज्ञासा मैंने जानली है. तू अध्यात्म-विद्याका पूर्ण जिज्ञासु और मुमुक्षु है; इस कारण कलसे प्रतिदिन प्रभात कालमें एक २ मुहूर्त्ततक मेरे पास बैठाकर, मैं जो २ सिद्धांतवाक्य कहूं सो तू श्रवण किया कर. तदनन्तर संध्यातक मेरी समाधिका समय है. सांझको सहज समाधिसे निवृत्ति पाकर फल मूल प्राशन करके पुनः प्रातः-कालपर्यंत समाधिस्थही रहता हूं. अब समाधिकाल आ पहुँचा है. अत-

एव तू उसी वृक्षके नीचे जाकर निश्चिंत शयन कर. किसी प्रकारका भय मत रख. अत्र द्रष्टा नहीं, दृश्य नहीं, कर्त्ता नहीं, भोक्ता नहीं; संग नहीं, अत्र मंगलही है. तेरा कल्याण होवे!" तत्क्षण उठकर मैं उसी पहले वृक्षके नीचे गया और मुनींद्र समाधिस्थ हुए.

वृक्षके नीचे जाकर मैंने विचार किया कि "अरे मैं कहां सोऊंगा ?" क्योंकि मैं राजपुत्र था, और साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा विशेष सुखमें दिन विताये थे. "यहां तो कुछ वस्त्र वा बिछोना नहीं है. अस्तु, यह जो सुन्दर कोमल घास उगा हुआ है इसीपर सो जाऊं" यह विचारते २ पीछे फिर कर देखा तो एक सुन्दर तकिया सहित बिछौना तयार है. उसीपर मैं सोगया. अब मैंने समझा कि, यह वृक्ष साधारण नहीं है, परन्तु सच-मुच कल्पवृक्षही है; क्योंकि मैं जो २ इच्छा करता हूं वही तुरन्त प्राप्त होता है. रातभर सुखसे शयन करनेके अनन्तर प्रातःकाल होनेके पहलेही उठकर मैं जिस मार्ग होकर आया था उसी मार्गसे गुफाके बाहर निकलकर शौच स्नानादिक क्रियाके लिये उसी सरोवरपर गया, जहां पिछले दिन जल-पान कर चुका था; वहां अपने सब प्रातःकालीन कृत्यसे निवृत्त होकर तुरन्त उक्त महात्मा मुनिके कहेहुए समयपर गुफामें जाकर उनके सामने खड़ा हुआ और दंडवत् नमस्कार करनेपर आज्ञा पाकर एक निर्दिष्ट स्थलपर बैठा.

प्रथम बिन्दु.

ज्ञानमार्ग.

द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव ।
योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम् ॥
अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

अर्थ— हे राघव ! चित्तनाशके दो मार्ग हैं-१ योग और २ ज्ञान. योग अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका निरोध, और ज्ञान अर्थात् सम्यक्-दर्शन. अभ्यास और वैराग्यसे उस (चित्त) का निरोध होता है.

यज्ञभू कहता है- बैठे २ मेरे मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि, मैं मुनिवर्यको कहूं कि "आपकी सेवा करनेकी मुझे आज्ञा दीजिये" इतनेमें तो वेही बोले-"जिज्ञासु मानव ! शिष्यको अवश्य चाहिये कि, गुरुकी सेवा भक्तिभाव तथा प्रेमपूर्वक करे, जिसके द्वारा वह स‍ुरुकी कृपा संपादन करनेमें समर्थ होता है. गुरुकी सेवा करना शिष्यका परम धर्म है. गुरुसेवामें आलस करनेवाले शिष्यको कदापि (जो कि गुरुसेवा करानेकी इच्छा न रखते हैं तोभी) इच्छित विद्या-सत्ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती. गुरु सेव्य और शिष्य सेवक है. गुरुको किसी प्रकारका किंचिन्मात्र भी श्रम न होने देकर उनकी इच्छानुरूप कार्य करना और उनको सन्तुष्ट रखना, इसे गुरुसेवा कहते हैं. जैसे गुरुसेवा करनेवाले शिष्यको अत्यन्त लाभ होता है, तैसेही सेवाप्रमादी शिष्यको बहुत हानि होती है.

किसी समय हस्तिनापुरमें निर्मलयश नामका राजा राज्य करता था. उसकी दो रानियां थीं. एक तो विषयाभिलाषी पुरुषको पुरानी स्त्रीकी अपेक्षा नई स्त्रीके साथ स्वाभाविकही अधिकतर प्रेम होता है और जब कोई कारण बन जाय तब तो कहनाही क्या ? किसी कारणसे राजा आर

उसकी पहली रानीमें अनवनाव होजानेसे उसने उसका त्याग कर दिया था. जिस समय राजाने उसका त्याग किया तव वह गर्भवती थी. उसको आठेक मासका गर्भ था. चाहे जैसी अनमानिती (अनादृत) होनेपरभी वह राजाकी रानी थी इसलिये वह राजमहलके एकान्तभवनमें रहने लगी. वहां उसके एक सुन्दर पुत्र पैदा हुआ. उस अमान्य रानीके संतति होनेके पहलेही, नई रानी दो २ वरसके अन्तरसे दो पुत्र प्रसवकर चुकी थी. वे तीनों राजकुमार वड़े हुए तव राजाने उनको एक ऋषिके आश्रममें विद्या पढ़नेके लिये भेजा. ऋषि महान् समर्थ तथा एकान्तमें निवास करनेवाले थे. वे अपने पास बहुतसे शिष्योंको रखना नहीं चाहते थे; परन्तु उस राजाके साथ बचपनसेही उनकी प्रीति चली आती थी, इस कारण उन्होंने तीनों राजकुमारोंको विद्याध्ययन कराना स्वीकार किया. ऋषिके पुत्र वा पुत्री आदि कोई नहीं थे. दंपती मात्र अकेलेही वागड़थिन्ना करते थे अर्थात् दोनोंही स्त्री–पुरुष श्रीहरिचरणारविन्दोंके ध्यानमें मग्न रहा करते. वे सन्ततिकी कुछ इच्छाही नहीं करते थे. उनके मनमें यही समा रहा था कि, सन्तति आदिका प्रपंच, इस संसारजालमें फसाकर भगवद्भक्तिमें अन्तर डालनेवाला है. ऐसा अपने आप समझते हुए भी मूर्खता करके वे अपायमें गिरना नहीं चाहते थे; प्रभुसेवा करके सदा आनन्दमग्न रहनेवाले उक्त ऋषि और ऋषिपत्नी पूर्ण वृद्धावस्थाको पहुँच गये थे और अपुत्र होनेसे इन राजकुमारोंको देखकर वे बड़ा आनन्द मानते और उन्हें अपनी सन्ततिके समानही समझते थे. तीनों राजकुमार परस्पर सौतेले भाई थे. उनमेंसे बड़े दोनों राजकुमार इन भगवत्स्वरूप गुरु तथा लक्ष्मीस्वरूपा गुरुपत्नीकी कृपाको संपादन नहीं कर सके. वे दोनों वड़े भाई नई रानीके पुत्र थे; अतएव उनकी माता राजाकी मानिता–माननीया रानी होनेके कारणसे वेभी स्वाभाविकतया राजाके मानीते–मानपात्र (आदरणीय) थे. वे अनमानीती (अप्रिय) रानीके पुत्र अपने छोटे सौतेले भाई भाई, कि, जिसका नाम विमलमति था उसके साथ टंटा बखेड़ा किया करते थे. विमलमतिकी माता सुशीला, पतिव्रता, चतुर और साध्वी थी. उसने पुत्रको पढ़ने भेजा तव यह सिखाकर भेजा कि–"प्रियपुत्र ! तेरा कल्याण होवे. तुझपर सरस्वती तथा गुरुदेव प्रसन्न होवें, यही मेरी आशिष है; परन्तु गुप्तसे गुप्त और सर्वथा हितकारक एक वात मैं तुझे कहती हूं जिसको तू कभी मत भूलना. सरस्वती (विद्या) संपादन

करनेका मुख्य साधन गुरुकी कृपांही है कि, जो उन (गुरु) की सेवा करनेसे अपने आपही प्राप्त होती है; इसलिये मैं तुझको वारंवार यही कहती हूं कि, तेरे अध्ययनके उपरान्त जितना समय तुझे मिले उसको वृथा मत गँवाना. अवकाशके समयमें तू तनमनसे गुरु-सेवामें तत्पर रहना. गुरुसेवामें कभी प्रमाद-आलस-नहीं करना. गुरुसेवापरायण होनेके कारण तुझको अध्ययन करनेको समय न मिले तो भी कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु तू निरन्तर शुद्धमनसे गुरुकी सेवामें तत्पर रहना."

तीनों कुमारोंको साथ लेकर राजा ऋषिके आश्रममें गया और गुरुको उन्हें सौंपकर भलीभांति विद्या पढानेकी सिफारिश करते समय मुनिको विनती कर कहा कि—"हे ऋषिराज! मैं इन पुत्रोंको आपकी शरणमें छोड़े जाता हूं सो कृपा करके इनको विद्याध्ययन कराइये. ये आपकेही पुत्र और आपके चरणोंके सेवक हैं. अस्तु, ये सदा आपकी परिचर्या करेंगे." मुनि उनको क्रमपूर्वक विद्याभ्यास कराने लगे और कितनेही समयमें वे व्याकरण, वेद, धर्मशास्त्र, न्याय, सांख्य आदिकमें पारंगत हुए. तब उनको धनुर्वेद जो क्षत्रियोंको परम हितकारक है उसका अध्ययन आरंभ कराया गया; परंतु वे तीनों उपरोक्त शास्त्रोंका अध्ययन करते समय किस-भांति रहते थे सो तुझे कहता हूं. हे यज्ञभू! उन तीनोंके रहनेके लिये गुरुके आश्रमके निकट एक पर्णकुटी थी जिसमें वे अध्ययन कर चुकनेके उपरान्त रात्रिको सोया करते थे. अभ्यास करनेमें विमलमति सबके आगे रहा करता था; क्योंकि वह बडा बुद्धिमान् और गुरुभक्त था. वह गुरुजी जो कुछ कहते उसको एकाग्र चित्तसे सुनकर अपने ध्यानमें रखता जाता और आगेका पाठ लेनेके लिये गुरुको विनती करता रहता था. इसके विप-रीत वे दोनों बडे भाई अपने पिछले पाठमेंही गोते खाया करते तो आगे पाठ लेनेकी चर्चाही कैसी? परन्तु अध्ययनमें सौतेले भाईको आगे २ बढता देखकर वे उसके साथ ईर्षा करने लगे. गुरुजीसे छुट्टी मिलतेही वे अपनी पर्णशालामें जाते तब नये २ कौतुक करके विमलमतिको चिढाया करते और नानाप्रकारका कष्ट दिया करते. प्रतिदिन ईर्षा बढनेसे वे गुरु-जीसे पाठ लेते समयभी उसके आडे आते और किसी न किसी बहानेसे उसको वहांसे हठाकर अपना पाठ लेने लगते. विमलमति उनको कुछ सीखकी बात कहता वा समझाता कि—"भाइयो! आपन सब एकही

पिताके पुत्र हैं, एकही गुरुके शिष्य हैं, और सहपाठी हैं इसलिये आपन सबको परस्पर एकता और प्रीतिसे वर्तना चाहिये; तिसपरभी तुम ऐसा करते हो यह ठीक नहीं. ऐसी बातें सुनकर वे बडे क्रुद्ध होते और उसको दंड देनेकी धमकी देते और कभी २ समय पाकर मारपीटभी कर वैठते ! विमलमति प्रथम तो उनसे छोटा था और अकेला था, इस कारण उनकी बराबरी नहीं कर सकता था. इसके सिवाय अपनी माता राजाकी अनमानीती (अमाननीया) होनेसे उसको आगे किसी प्रकारकी सहायताकी भी आशा नहीं थी. इस लिये वह जैसे तैसे सुखदुःखसे अपने दिन बिताकर अभ्यास करता रहता. इतना कष्ट होनेपरभी वह उन सबसे आगेका आगे बना रहता. यह तो कौरव–पांडवों जैसे बात हुई. जिस प्रकार अर्जुनको अभ्यासमें अपनेसे अधिक बढता देखकर कौरव उससे द्वेष करते थे तैसेही वे दोनों अज्ञानी, आलसी, जड, निद्रालु, प्रमादी और मूढ भाईभी विमलमतिको विद्या–कलामें चतुर अपनेसे अधिक बढता देखकर उससे अधिकाधिक द्वेष करने लगे. विद्यार्थियोंको पढनेमें स्पर्धा करना उचित है किन्तु कोई अपनेसे अधिक तेज निकले तो हरप्रकारसे उसको द्वेषपूर्वक पीडित करना तथा उसके उत्साहको भंग करना उचित नहीं है. विद्वानोंमें जिस गुणका होना अवश्य है वह द्वेष नहीं है, किन्तु द्वेषकी सखी स्पर्धा है. दूसरेको अपनेसे अधिक क्षमतासंपन्न, परिश्रमी और बुद्धिमान् होता देखकर शुद्ध अन्तःकरणसे उसके समानही नहीं उससेभी बढकर योग्य बननेका प्रयत्न करना चाहिये. यदि ऐसा न हो सके तो दूसरेसे द्वेष न करके अपने आत्माके साथ ईर्षा करना और सोचना चाहिये कि 'क्या कारण है जो मैं उसकी बराबरी नहीं कर सकता ? मुझमें कौनसी बातकी त्रुटी है जो मुझको आगे बढनेसे रोकती है. मुझको औरभी इतना अधिक परिश्रम करना चाहिये कि, जिससे मैंभी उसकी बराबरी कर सकूं' इसको स्पर्धा कहते हैं और ऐसी स्पर्धा करनाही श्रेयस्कर है; परन्तु जो स्वयं तो प्रयत्न करते नहीं और दूसरेके प्रयत्नमें विघ्न डालकर दुष्ट ईर्षा करते हैं वे अपना तथा पराया दोनोंका अहित करते हैं. ऐसीही बुरी रीतिसे विमलमतिके दोनों भाई उसके साथ वर्त्तने लगे. ऐसा सदाका क्लेश कहांतक सहन हो सके ! निदान विमलमतिने अपने ज्येष्ठ भ्राताओंको कहा कि–" जो तुम यही चाहते हो कि, मैं तुम्हारे पास न रहूं तो लो मैं तुम्हारी पर्णकुटीमेंसे निकल

जाता हूं" उनको तो यह बात अभीष्ट थी इसलिये उन्होंने 'हाँ' कही तब गुरुसे आज्ञा लेकर वह आश्रममेंही रातको सोने लगा.

तीनों राजकुमार ऋषिके आश्रमको गये तबसे निरन्तर उसी मठहीमें रहा करते थे और गुरुजी जिस कामके लिये कहते सोही वे किया करते थे. गुरुके लिये निकटवर्त्ती नगरमेंसे भिक्षा मांग लाना, वनमेंसे पकेहुए फल, फूल तथा अग्निहोत्रके लिये दर्भ, समिधा इत्यादिक ले आना, गंगामेंसे जलके घड़े भरलाना, आश्रमको झाड़ बुहार कर स्वच्छ करना, छोटे मोटे वृक्षोंको जल सींचना इत्यादिक उन राजपुत्रोंका नित्यकृत्य था. यह काम तीन शिष्योंके लिये कुछ अधिक नहीं था, बातकी बातमें झपाटेसे हो सकता; परन्तु बड़े भाइयोंकी ईर्षाके कारण विमलमतिपर बोझा अधिक रहा करता था. पानी भरने वनफल लाने इत्यादिक हरेक कामके लिये वे दोनों भाई साथ २ जाते और २ सब काम विमलमतिसे कराते, तिसपरभी उलटा दबाया करते कि तुझसे कुछभी काम नहीं होता. सारा काम हमही करते हैं. बड़े भाई चाहे सो करते और चाहे जो कहते तोभी उनके कहनेपर कुछ ध्यान न देकर वह निरन्तर अपनी माताके कहे–अनुसार, प्रेमपूर्वक शुद्ध अन्तःकरणसे गुरुकी सेवा करते रहनेमेंही अपना कल्याण समझता था. बहुतेरा काम उसके बड़े भाई नहीं करते और उसको करना पड़ता जिससे उसके अभ्यासमें विघ्न पड़ता तोभी वह चुपचाप सहन करलिया करता था. मध्याह्न हो चुकनेपर गुरुपत्नी उनको भोजन कराती; इसके सिवाय सांझको वा सबेरमें कदाचित् क्षुधा लगे तो वे वनफलका आहार कर लेते थे; रात होतेही वे दोनों तो लंबे पांव करके निश्चिंत सोजाते, तब विमलमति गुरु तथा गुरुपत्नीकी चरणसेवा करने लगता. उस समय गुरुजी अपनी स्त्रीको अथवा विमलमतिको संबोधन करके अनेक प्रकारकी कथायें, नाना भांतिकी गुप्त बातें, अनेकानेक नवीन वृत्तान्त, इतिहास, और धर्मसंबंधी उपाख्यान कह सुननेके उपरांत योगका माहात्म्य और उसके प्राप्त करनेके मार्ग बताया करते थे. तथा दिनमें पाठ याद करते समय कोई शंका होती अथवा कोई विषय कठिन होनेसे उसकी समझमें नहीं आता तो वह उस समय गुरुजीसे पूछकर अपने मनका समाधान कर लिया करता था. हे यज्ञभू ! तू विचार कर कि, गुरुसेवामें अपना हित समझनेवाले विमलमतिको ऐसा करनेसे कितना लाभ होता था ? और उसको उस समय कितना अधिक

आनन्द होता होगा ? किन्तु उतनेही आनन्दसे गुरुने उसका मन नहीं झुकाया था, उसको गुरुसेवाका अगाध लाभ मिला था. उसके सेवाप्रमादी सौतेले भाई जो सदा गुरुजीको कहा करते कि 'सब काम-काज विमलमतिसे अधिक हमही करते हैं, वे अमूल्य लाभसे वंचितही रहे.

विमलमति रात-दिन अपने माता-पितासे भी अधिक, गुरु तथा गुरुपत्नीकी तन-मनसे सेवा करता रहता था, यह बात गुरुजीके ध्यानमें थी. ऐसी शुद्ध मनकी सेवासे वह उस दंपतीके अतुल प्रेम और पूर्ण कृपाका पात्र बनगया था. हरघड़ी वह गुरुके काम-काजमेंही तत्पर रहता था. जो काम उससे होसकने जैसा होता उसके लिये तो वह कभी गुरुजीको किंचिन्मात्र श्रम नहीं होने देता था. उसके द्वेषी गुरुजीके समक्ष वारंवार उसकी निंदा किया करते, उसपर वह कुछ ध्यानही नहीं देता; बल्कि वह कभी एक शब्दभी अपने द्वेषी भाइयोंके विषयमें गुरुजीको नहीं कहता. इसभांति रहते २ उनको कईवर्ष बीत गये. इतने कालमें उन्होंने बहुतसी विद्या सम्पादन करली. तदनन्तर धनुर्विद्या कि जो केवल कण्ठस्थ करलेने अथवा गुरुके वचनोंको स्मरण रखनेसेही नहीं आसकती है वरंच जिसमें शरीरको बहुतसा श्रम देकर अभ्यास करना पड़ता है, उसका अध्ययन चलने लगा. बहुत करके यह अभ्यास समाप्त होने आया था इतनेमेंही एक विघ्न आ उपस्थित हुआ.

ऋषि और ऋषिपत्नीकी वृद्धावस्थाके कारण उनके शरीर बहुत जर्जर होगये थे. वे कई वर्षोंसे इस पृथ्वीपर दीर्घायु भोग रहे थे और सत्कर्म करके कालक्षेप करते थे. चाहे जितना दृढ हो तथापि परिणामको पहुँचनेवाला यह पंचभूतात्मक शरीर तो नाशवंतही है, सो उनकीभी अवधि आ पहुँची. समाधि (योग) द्वारा ऋषिने जान लिया कि, अब अल्पकालमेंही यह शरीर गिर जानेवाला है. एक समय रात्रिमें उक्त महात्मा पवित्र आसनपर लेटेहुए थे, महासती उनकी पत्नी एक ओर उनके पास बैठी हुई थी; विमलमति ऋषिराजकी चरण-सेवा कर रहा था. सारा तपोवन तथा उनका वह आश्रम नितांत शांत था. लगभग दोपहर रात बीत चुकी होगी, उससमय वे ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव अचानक कहने लगे कि-" हे साध्वी धर्मपत्नी ! तुझे कुछ स्मरण है वा नहीं ? लगभग तीन वर्ष पहले मैंने तुझको कहा था कि 'अब थोड़ेही कालमें अपनी इस संसार-

प्रदेशकी लंबी यात्राकी समाप्ति होगी, वही दिन आज आपहुँचा है सो झटपट फुर्ती कर. सब भवबंधनोंमेंसे, निमिषमात्रमें मुक्त करनेवाले परमानन्ददायक श्रीहरिके मंगल चरणारविन्दका अपने अन्तःकरणमें ध्यान धर. केवल अपने आत्माकाही हृदयस्थलमें चिन्तन करती हुई समस्त चित्तवृत्तियोंको उसीमें तल्लीन कर. शीघ्रतासे समस्त इंद्रियों सहित इस देहको गंगास्नानसे शुद्ध कर. दाभ गोमयादिकसे आसन करने योग्य पृथ्वीको पवित्र कर; अग्निहोत्रके अग्निको अन्तिम नमस्कार कर; उसका पूजन कर; वाणी अथवा मनसे जानेपर वा अनजानमें यत्किंचित्‌भी पाप होगया हो उसको भस्म कर डालनेके लिये अग्निदेवसे विनती कर. तिस पीछे स्वस्थ होकर, शान्त एवम् सर्व वस्तुसे निस्पृह होकर परमात्माके साथ इस आत्माका ऐक्य करके इस अस्थिर देहके संगसे, सदा सर्वदाके लिये, अलग हो. अब इस अजर अमर अविनाशी जीवात्माको इस देहका कुछ प्रयोजन नहीं है. अब वह आत्मा किसी अलौकिक देहको धारण करेगा, और थोड़ी देर पीछे, किसी दिन भी नहीं देखा था ऐसे अद्भुत और पुण्यमय लोकको वह देखेगा." इतना कहकर ऋषि झटझट उठ बैठे और जैसे कोई विदेश जानेकी तयारी करता हो इसभांति "चलो २ शीघ्रता करो; अब समय होचुका है, अभी मध्यरात्रि होती है." ऐसा कहते हुए हाथमें कमंडलु लेकर गंगास्नानके लिये खडे हुए. ऋषिपत्नीभी उठकर अपने पतिके कहे अनुसार सारी तैयारी करने लगी. एकाएक ऐसा ढंग देखकर विमलमति जो गुरुदेव तथा गुरुपत्नीकी चरणसेवा करता था, बड़ा अचंभित हुआ और 'गुरुजीने यह क्या कहा ? अभी तो केवल डेढ़ प्रहरके लगभग रात होगई है और स्नानके लिये जानेमें दो प्रहर बाकी हैं, तब अभीसे कहां जानेकी तैयारी करते हैं!' ऐसा सोचविचार करने लगा. इतनेहीमें ऋषि मानों कुछ भूल गये हों इसभांति एकाएक स्मरण करके कहने लगे—"हे सुभगे! मुझको एक बात याद आई है, उसका इसी क्षण वर्त्ताव करना चाहिये. अपुत्र मनुष्य अथवा जिसके कोई उत्तराधिकारी (वारिस) न हो ऐसा मनुष्य, यदि वह विवेकी तथा सारासारका ज्ञाता हो तो, अपना सर्वस्व धन अपने अन्तिम समयमें दान कर दें; क्योंकि जो वह ऐसा नहीं करेगा तो उसका जन्मपर्यंत श्रम सहकर उपार्जन किया हुआ द्रव्य किसी कुपात्रके हाथमें चला जायगा; जिससे या तो अधर्म होगा या निरर्थक व्यय होगा, तो

उस धनके लिये किया हुआ श्रम व्यर्थ होगा. इसमें भी जो प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला धन है वह तो किसी (अच्छे वा बुरे) उपयोगमें आवे-हीगा, परन्तु जो धन परोक्ष अर्थात् अपने अन्तःकरणमें छिपाकर रक्खा हुआ होगा अथवा किसी प्रकार गुप्त रहा हुआ होगा तो वह स्वतः अपनेही हाथोंसे नहीं खर्चा जायगा तो उसका किसी प्रकार कोईभी उपयोग नहीं कर सकेगा. इसभांति धनको गाड़ रखनेवाले मनुष्य कृपणही नहीं; किन्तु कृपणकाभी शिरोमणि समझना चाहिये. भय, शंका तथा संकोचका नाम कृपणता है. कृपणतासे केवल द्रव्यको नहीं वापरना यही प्रयोजन नहीं है, किन्तु उपयोगमें न लाने (नहीं वापरने) की वृत्तिको उपजानेवाली हृदयकी संकीर्णता, स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित भय, शंका संकोच और वस्तुगतिको यथार्थ रीतिसे अनुभव न करनारूप अज्ञान और उस अज्ञानसे उत्पन्न हुई जो कृपणता है वह सदा सर्वदा इन जीवोंको पीछे हटा देती है. हे सती ! इसभांति मेरी दशा है. मेरे पास अगाध गुप्तधन–परोक्ष संपत्ति है; जो कि मैंने उसका बहुतसा वारंवार परार्थ वा परोपकारार्थ उपयोग किया है तोभी किसीको उसका दान अबतक नहीं किया है और वह मेरा परोक्षधन अन्यान्य लोगोंके समान नहीं है, अर्थात् जितना२ दान किया जाय अपने पाससे उतना घट जानेवाला वह नहीं है, किन्तु ज्यों २ दूसरोंको दियाजावे, त्यों २ उसकी वृद्धि होतीरहे ऐसा है तथापि मैंने किसीको उसका दान नहीं किया. ऐसा न करनेमें मेरा अज्ञान वा कृपणताका कारण नहीं है; परन्तु उस अनमोल सर्वसिद्धिदाता परोक्षधनका दान करने योग्य कोई पात्र जीव अद्यापि मुझको नहीं मिला था. योग्य पात्र बिना अमूल्यवस्तुका दान करना महादोष है; परन्तु अब मुझको पात्र मिला है, और मेरा अन्तसमयभी निकट आगया है इस कारण मेरे इस सर्वस्व परोक्ष धनका दान मैं शीघ्रही करदूंगा. मेरा परोक्ष धन जिसको मैंने जन्मपर्यंत बड़े श्रमसहित गुरुसेवा करके संपादन किया था वह मेरी अनेक प्रकारकी ब्रह्मविद्या है–आत्मा परमात्माकी एकताका ज्ञान है. यह जीवात्मा बुद्धिमान्, गुणज्ञ, पंडित, चतुर और सूक्ष्मविषयोंका ज्ञाता होनेपर तथा समस्त कलाओंको जाननेवाला होकरभी जबतक व्यवहारसे घिराहुआ होता है तबतक पात्राऽपात्रकी परीक्षा नहीं कर सकता है; वह (जीवात्मा)

तमोगुणमें लिपटा हुआ होनेसे स्वात्माभिमानमें मस्त रहता है; इस कारण 'मैं' 'मेरा' इत्यादिक आवरणशक्तिके संसर्गमें रहकर सदा संशयात्मक बना रहनेसे विक्षेपशक्तिका सेवन करके सदा दुःख भोगा करता है; उससे छूटनेका कारण सत्त्वगुणका सेवन है. इस सत्त्वगुण–सेवनके द्वारा परम शांति, हर्ष, और परमात्मामें निष्ठा होनेसे जब शुद्ध बनता है तब अहंभाव टल जाता है; इस कारण जीवको अपनेमेंसे अपनापन (ममत्व) छोड़नेके लिये, दैवी संपत्ति, जो कोई सत्पात्र हो उसे देकर आनन्दरसकी प्राप्तिके अर्थ केवल अकेला होजाना चाहिये. मैं भी ऐसी रीतिका बन जानेके लिये जो कुछ मेरे पास है सो किसी सत्पात्रको देडालनेके लिये उत्सुक हूं. ये तीनों राजपुत्र मेरे शिष्य हैं इनमेंसे विमलमति मेरी सेवा करनेवाला, सुशील, बुद्धिमान्, और पूर्वजन्मका संस्कारी है. यही इस सर्व संपत्तिका–ज्ञानका अधिकारी है. इसके पूर्वजन्मकी वासनाओंके बन्धनसे इसको यह देह धारण करनी पड़ी है; परन्तु अब मुझको ज्ञात हुआ है कि, यह अपनी पूर्वजन्मकी वासनाओंके बन्धनमेंसे मुक्त हुआ है. इसकी योग्यतापरसे विश्वासयुक्त हुआ है. मैं अपनी सर्व विद्याका इसीको दान करूंगा. अस्तु, अब तू शीघ्र अपने काममें लग जा और मैं इसको उपदेश देता हूं" यह सुनकर सती (ऋषिपत्नी) ने कहा– "कृपानाथ! आपने यह बहुत योग्य सोचा है. मैंभी आपको इस विषयमें प्रार्थना करनेवाली थी. यह विमलमति सर्वथा आपकी कृपाका पात्र बना है, और मुमुक्षुपन; श्रद्धा, भक्ति, निरभिमानीपन आदिक गुण इसमें निवास करते हैं. इसने अपने पितासेभी बढकर प्रेमके साथ आपकी और माताकी अपेक्षा विशेष भाव रखकर मेरी सेवा की है. मैं अन्तःकरणसे कहती हूं, कि इसका कल्याण होवे. इसपर प्रभु प्रसन्न होवें और आपकी कृपासे यह सदा सर्वदा मुक्त होवे." इतना कहकर ऋषिपत्नी गंगातीर जाने लगी. तब ऋषिने विमलमतिसे कहा–" वत्स! तू अपनी मातारूप गुरुपत्नीके साथ शीघ्रतासे गंगास्नान कर आ. तदनन्तर राजपुत्रके लिये आवश्यक और उपयोगी धनुर्विद्या जो बडे २ धनुर्धारियोंकोभी दुर्लभ है सो मुझसे संपादन कर. तिस पीछे एकाग्रचित्तसे इस संसारार्णवको टालनेवाली सर्वोत्तम तथा दुष्प्राप्य ब्रह्मविद्याकोभी ग्रहण कर.

तत्काल विमलमति तथा गुरुपत्नी स्नान करके गंगाजल तथा गोमय लेकर मठमें आये. इतनेमें गुरुने अग्निहोत्रके अग्निको प्रज्वलित* करके उसमें घी, जव, तिल इत्यादि संयुक्त अन्तिम आहुति देकर अग्निदेवको स्तुति करके संतुष्ट किया. उनकी स्त्री मठको गोमयसे लीपकर तथा गोमूत्र गंगाजल छींटकर शुद्ध करने लगी और गुरुदेव विमलमतिको उपदेश देने लगे:—

" हे विमलमति ! मेरी बाईं ओर इस दर्भासनपर तू स्वस्थ बैठ, और आचमन तथा प्राणायाम करके दश वार गायत्री मंत्रका जप कर. मैं तेरी सेवा तथा तेरे सुशीलपनको देखकर तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं. अतएव तुझको संपूर्ण धनुर्विद्या सिखाता हूं. उन सब शस्त्रोंका अभ्यास (अर्थात् उन आयुधोंका किसभांति व्यवहार करना, और कैसे धारण करना आदि भली- भांति जानना तथा उनका शुद्ध रीतिसे महावरा करना) तो तूने किया है; परन्तु उनका विधान तथा उन शस्त्रास्त्रोंमें उनकी देवताओंका आवाहन करनेसे उन २ देवताओंका तेज उनमें आकर इच्छित कार्यकी सिद्धिके लिये जिस दिव्य शक्तिकी आवश्यकता है उसका तूने अभ्यास नहीं किया है कि, जिसके बिना वे अस्त्र–शस्त्र किसी कामके नहीं. जैसे आत्मा विना यह देह किसी कामका नहीं ऐसेही देवताओंके बल बिना वे अस्त्रशस्त्रभी निरर्थक हैं. इसलिये उनको सतेज करनेके लिये मैं तुझको मंत्र देता हूं सो तू ले जिससे युद्धसमयमें तुझको मनोवांछित विजयकी प्राप्ति होगी. "

विमलमति एकाग्र–चित्त होकर गुरुकी आज्ञानुसार आसनपर बैठा. तदनन्तर एकके पीछे एक अर्थात् क्रमसे अनेक प्रकारके चक्र, बाण, शक्ति (सांग), पाश, खड्ग, गदा, औरभी जितनी जातिके अस्त्र हैं उन सबके पृथक् २ मंत्रोंका विधानसहित उसको गुरुने उपदेश दिया. और " ये समस्त शस्त्र अस्त्र सफल होवें और समयपर तेरा कार्य साधनेमें तत्पर रहें" ऐसा आशीर्वाद देकर गुरुने कहा " हे वत्स ! इन अस्त्र शस्त्रोंका उप-

---

* अग्निहोत्रका अग्नि सदा अखंड रहना चाहिये; क्योंकि वह अरणिसे मन्थन करके सिद्ध किया जाता है. एक वार बुझ जानेसे फिरभी प्रायश्चित्तके साथ अग्नि सिद्ध करना पडता है. केवल हवनके समय उसको प्रदीप्त कर आहुति देचुकने पश्चात् फिर कंडेके साथ उसे ढांक देते हैं.

योग, अयोग्य समयमें और किसी निरपराधीपर कभी मत करना तथा किसी अपात्रको इनका उपदेशभी कदापि न करना; क्योंकि इनमें बहुतेरे शस्त्र एकही बारमें सारे ब्रह्मांडको हिला देनेवाले–खलबली मचा देनेवाले हैं. इन अस्त्रोंको राजा केवल अपनी प्रजाके रक्षणके लिये तथा दुष्टोंका नाश करनेके लियेही काममें लावे, अन्यथा नहीं. अतएव तू सर्व दुर्जनोंका शासन करके धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करना और उस कार्यमें समय २ पर ये सर्व आयुध तुझको सहायक होवें ! ”

क्षणभर ठहरकर फिर गुरु कहने लगे–“ पुनः सबसे बढकर एक श्रेष्ठ वस्तु मैं तुझको देना चाहता हूं वह श्रीहरिकी पूर्ण कृपा विना किसीकोभी प्राप्त नहीं होती है. तू अपने पांवकी दोनों एंडियोंको दोनों जंघाओंके मूलमें रखकर सिद्धासन लगाकर बैठ; दोनों हाथ पिंडुलियोंपर रख; दृष्टिको नासिकाके अग्रभाग (अनी) पर स्थिर कर, मुखको बंद करके केवल नासिकाद्वाराही श्वास ले; यह चित्तवृत्तिका निरोध करने–स्थिर करनेकी क्रिया है. और इसीको प्राणायाम कहते हैं. तत्पश्चात् अपने हृदयके भीतर प्रथम दीपशिखा जैसा और पीछे सूर्यबिंबके समान तेजोमय बिंबकी कल्पना करके उसको एकाग्र चित्तसे देख. उस बिंबके बीचोबीच–मध्य- भागमें एक सुन्दर सुकोमल तथा रक्त (गुलाबी) वर्णकी सहस्रपंखु- रियोंवाला पूर्णतया विकसित–प्रफुलित कांतिमान् कमल तुझको दिखाई देगा. उस हजार पखुडियोंवाले कमलके केन्द्रमें–ठीक मध्यभागमें एक विस्तीर्ण, वर्तुलाकार तपोवन देखनेमें आवेगा. उस तपोवनकी पृथिवी कोमल तथा नवीन २ तृणांकुरोंसे हरी २ तुझको दिखलाई देगी. उस दिव्यभूमिपर नाना प्रकारके मंगल पुष्पवृक्ष तथा आम्रादि फलवृक्षोंको तू अवलोकन करना. उस सुन्दर रम्य वनके मध्यमें स्थित एक ललित और फूलोंसे सजाहुआ कदंब वृक्ष तुझे दिखाई देगा. वह वृक्ष स्कंध शाखा, प्रतिशाखा तथा पल्लवोंसे परिपूर्ण मनोहर छटावाला–सघन घन देखनेमें आवेगा. उस समय ऐसी कल्पना करना कि, ठीक नहीं मध्या- ह्नका समय है. उस कदंबवृक्षके नीचे, शीतल छायामें, चारों ओर नवांकुर चरती हुई सुन्दर, युवा, हृष्ट पुष्ट शरीरवाली गौर, श्वेत, श्याम, रतनार, रंगकी तथा बछड़ेवाली गौओंको देखना. उस धेनुवृंदके मध्यमें, कदंब- वृक्षके निकट, षोडश वर्षकी वयवाले सुन्दर बालकके दर्शन तुझे होंगे.

उस किशोर कुमारका शरीर तेजोमय (दिव्य) होनेपरभी उसका वर्ण आषाढ़मासमें उमड़ी हुई (चढ़ी) जलभरी नवीन घटा जैसा (घनश्याम) दिखाई देगा, जिसके सब अवयव मानों सांचेमें ढाले गये हैं ऐसे समान और अत्यन्त मनोहर आकृतिवाले परम सुकुमार और लालित्यसे भरपूर हैं उसके मंगलमय युगल चरणोंमें सुवर्णके रत्न–जटित नूपुर और कटिमें पीतवर्णका सुन्दर कौशेय वस्त्र (दिव्य पीतांबर) शोभायमान हो रहा है. उसके ऊपर अमूल्य रत्नोंसे भूषित कटिमेखला (करधनी) पहनेहुए है. नाभि अति गंभीर और उदर सूक्ष्म है. उसका अति विशाल वक्षःस्थल (हृदय) अनेक अमूल्य दिव्य मोती और मणियोंकी मालाओंसे जिनके मध्यभागमें सर्वश्रेष्ठ कौस्तुभमणि लगी हुई है ऐसा भूषित हो रहा है. उसके गजशुंडाकार (हाथीकी सूंडके समान ऊपरसे मोटे और नीचे उतरते पतले होते चले आये हुए) दोनों कोमल आजानु बाहु–घुटनोंतक लंबी भुजाओंमें, सुन्दर रत्नों और मोतियोंके बाजूबंद सुशोभित हैं. पहुँचों (कलाइयों) में मोतीकी चौप-डी चार २ लडियोंवाली अति उज्ज्वल चमत्कृत हरित मणियां लगीहुई पहुंचिया पहने हुए हैं. प्रफुल्लित कमल सदृश सुन्दर हाथोंकी कोमल अंगु-लियोंमें पहनी हुई रत्नमुद्रिकायें विचित्र शोभा दे रही हैं. उस दिव्यमूर्तिके चंद्रोज्वल मुखारविन्दकी शोभाका अवलोकन करनेमें तू कदापि तृप्त और सन्तुष्ट मत बन बैठना; परंच उल्लसित, असन्तुष्ट और अतृप्त मन तथा उत्कट उत्कंठाके साथ निरन्तर उसका अवलोकन करते रहना. इस जगतमें कामदेव सबसे बढ़कर सुन्दर, परम मनोहर और शोभाकी खानि समझा जाता है; परन्तु ऐसे अनेक कामदेवोंके गर्वका एकही साथ गंजन करनेवाले अलौकिक अद्वितीय सौन्दर्यसम्पन्न उस किशोर मूर्त्तिके सर्व सुखस्वरूप, समस्त श्री (शोभा) के परम स्थान मंद २ मुसकाते हुए मुखारविन्दकी पृथक् २ परम अलौकिक अनुपम शोभाको निरखनेमें कौन तृप्त हो सकता है ? कोई नहीं; उसको तू देख. उसके, शंखके भीतरके भागके समान सुन्दर गुलाबी रंगका और ऊँचीरेखा रहित व अत्यंतमृदु कंठ, जिसके ऊपरके भागमें खूब भरीहुई, आगेसे कुछ तीखी और मध्यमें कुछ बांकेपन-वाली मनोहर ठोड़ी, सुन्दर प्रवालसदृश चमकते हुए अधर तथा ऊर्ध्व ओष्ठ मंद २ मुसकानके कारण मुखके भीतर दिखाई देते हुए दाडिमबीजकी द्युतिवाले सुन्दर दशन (दन्त), ओष्ठपर लटकती हुई मनोहर मोतीकी बेसर (लट-

कन)* वाली तथा शुक (तोते) के समान कुछ गोलाई लिये हुए तिरछी और तिखी नासिका तथा कमलकी पंखुरी जैसे विशाल और अनियारे-अनीवाले, अत्यन्त कोमल, गुलाबी रेखावाले तेजस्वी नेत्र, धनुषके समान भृकुटि, भव्य प्रशस्त ललाट, विशाल मस्तक और उसपरके स्निग्ध भँवरसे काले केशोंकी कानोंके आगे लटकती हुई काली नागनकी नाई बलखाई हुई आडी टेढ़ी जुलफें, दोनों कर्णोपर लटकते हुए सुन्दर रत्नजटित मकराकृति अथवा मत्स्य-मछलीके आकारके कुंडल, और मंद २ हास्यके खंजन पडेहुए दोनों कोमल तथा प्रफुल्लित गालोंपर गिरती हुई उन कुंडलोंकी झलक इत्यादिक अवर्णनीय शोभा तथा परम सौन्दर्यकी खानिरूप वह अमृतस्वरूप दिव्य तेजोमय मूर्ति है; उसके तू भक्ति श्रद्धा और विवेक सहित दर्शन कर. उस श्रीमुखारविन्दके मस्तकपर केशर-कस्तूरी-मय चंदन-चर्चित ललाटपर ठेठ दहिनी भृकुटि और कपोलपर लटकता हुआ मयूर चन्द्रिकाका अति सुशोभित मुकुट तुझे दिखाई देगा; और उसकी दाहिनी ओर लटकते हुए तेजस्वी मोतियोंके झूमके और बाईं ओर झुकी हुई मयूरपिच्छकी तिरछी कलँगियोंकी शोभाको निहारकर तेरे हृदयचक्षुओंको आनन्दित कर. वह महामंगल स्वरूप, दक्षिण चरणको वाम चरण-पर तिरछा झुकाये हुए (त्रिभंगी रूपसे) दोनों हाथमें, रत्नोंसे जडी हुई तथा मोतियोंके झूमकोंवाली वेणु-वंसीको धारण करके उसका मनोहर नाद करते हुए जान पडेंगे. तब उस परम शान्त आनन्दघन मूर्तिको पूर्ण प्रेमके साथ मनोमय जलसे पाद्य अर्पण करके उसके चरणारविन्दका प्रक्षालन कर; उनको कोमल स्वच्छ वस्त्रसे पोंछकर, उनपर मनोमय केशर कस्तुरी इत्यादि सुगंधित द्रव्योंका लेप कर; मनोमय सुन्दर दिव्य पुष्प, तुलशी इत्यादि अर्पण कर; तदनन्तर उस मंगलमूर्तिको मनोमय सुवासित कमलपुष्पकी-कंठसे चरणपर्यंत लंबी-वनमाला धारण कराके, मनोमय धूप दीप करके, नानाप्रकारके स्वादिष्ठ श्रेष्ठ पक्वान्नका नैवेद्य धर (भोग लगाकर भक्तिभाव-पूर्वक जल तांबूल इत्यादि अर्पण कर.) तिसपीछे तेरे मनरूप बडे प्रज्व-

* यह बेसर अथवा वेसर (रती) का मोती लंबगोल-परंतु नीचेसे अधिक गोल तथा ऊपरसे उतरता २ गोल तथा अनीवाला (०) ऐसी आकृतिका होता है. वह नासापुटोंके मध्यभागमें बारीक वालीके साथ लटकाया जाता-पहिना जाता है. इसकी उत्तरहिंदुस्थानमें बहुत चाल है. यह बहुतही अधिक शोभा देता है, इसको बुलाक कहते हैं.

लित दीपकसे उसका नीरांजन (आरति उतारना अर्थात् उस मंगलदीपकके प्रकाशमें भगवान्के अंगप्रत्यंगोंका भलीभांति अवलोकन) करना. फिर अपने दोनों हाथोंकी मनोमय अंजलिमें मनोमय मंगल सुगंधित पुष्पोंको भरभर पूर्ण प्रेमसे उनको संवर्द्धित कर लेना और दोनों हाथ जोडकर इस प्रकार उन प्रभुकी स्तुति करनाः—" हे परब्रह्म ! अद्वितीय परमतत्त्व ! शान्त ! निरंजन ! सर्वदा पूर्ण ! आनन्दघन चिद्रूपब्रह्म ! हे श्रीकृष्ण ! हे गोपाल ! हे गोविंद ! हे मुरारि ! हे जगत्कारण ! हे सत्स्वरूप ! हे सर्वलोकाश्रय ! हे चित्स्वरूप ! हे अद्वैततत्त्व ! हे आनन्दस्वरूप ! हे मुक्तिप्रद ! हे ब्रह्मस्वरूप ! हे सर्वव्यापी ! हे सनातन ! हे सच्चिदानन्द ! हे परमात्मा ! मैं आपको नमस्कार करता हूं. हे प्रभु ! आपही एक मात्र अशरणके शरण हो. आपही जगत्के पालनकर्त्ता हो और आपही सबमें प्रकाशमान हो. आपही सृष्टिके सृजनहार और संहारकर्त्ता हो. आप परसेभी पर हो. आप निश्चल और निर्विकल्प हो. आप सारे भयकेभी भय और भीषणके भीषणरूप हो. प्राणीमात्रकी गतिरूप तथा पावनोंकेभी पावनरूप आप हो. सबसे ऊंचेसे ऊंचे और बड़ेसे बड़े पदके नियंताभी आप अकेलेही हो. आपही सब रक्षकोंके रक्षकरूप हो. हे प्रभो ! हे जीवके साक्षी ! मैं आपहीका स्मरण करता हूं और वारंवार आपहीको नमस्कार करता हूं. हे सत् ! हे एक ! हे निरालंब ईश्वर ! मैं सर्वदा सर्वथा केवल आपहीके शरण हूं. मुझे अन्यथा आश्रय वा शरण नहीं है. मैं आपहीकी वन्दना करता हूं; आपकोही पूजता हूं; आपहीका आराधन करता हूं; आपहीका ध्यान धरता हूं; आपहीको अपने हृदयमें धारण करता हूं. आपके सिवाय जगत्में मैं और कुछ नहीं देखता हूं. सर्वत्र आपही आप हो. आपही मेरे कोटि २ अपराधों और पापोंका नाश करके मुझे अपने चरणकमलकी शरणमें लेओ और इस जीवको पूर्ण प्रेमसे पूर्ण आस्थावाली भक्ति प्रदान करो."

इसप्रकार उस परमात्मस्वरूप परब्रह्मकी स्तुति पूजा करके पश्चात् नखसे शिखापर्यंत उस मंगलमूर्तिको वारंवार स्थिरचित्तसे अवलोकन कर, अपने कोमल हृदयमें उसको दृढतासे स्थिर कर. कदापि इसका विस्मरण मत करना. जिसके ज्ञानसे अमृत भोगा जाता है वह ज्ञेय और वह यही है. यह अनादि परब्रह्म है. वह सत्भी नहीं कहाजाता तैसेही असत्भी उसको

नहीं कह सकते हैं. वह सर्वत्र हस्तपादादि संयुक्त है; सर्वत्र चक्षु, मुख, मस्तकादिवाला है; सर्वत्र श्रोत्रवाला है; सबको आवृत करके रहता है; समस्त इंद्रियगणका आभासकर्त्ता है, सर्वेन्द्रियरहित है; अशक्त होकरभी सशक्त है; निर्गुण होनेपर भी सगुण है; प्राणीमात्रसे बाह्य है; अंतर है, चर है, अचर है, सूक्ष्म है, अविज्ञेय है, विना हाथके ग्रहीता और विना पांवके गतिवाला है; अचक्षु होकरभी सर्वको देखता है, अकर्ण होनेपरभी सब सुनता है. वह वेद्यको जानता है, परन्तु उसका वेत्ता (जाननेवाला) कोई नहीं. वही सर्वाग्रणी महापुरुष है, वही परम सीमा है, वही परम गति है. इन्द्रियोंसे अर्थ, अर्थसे मन, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे महत्, महत्से अव्यक्त और अव्यक्तसे पुरुष परब्रह्म पर है. जिस पुरुषसे परे कुछभी नहीं है, वही यह है. यही सनातन, पुराण पुरुष, परब्रह्म, नित्य, परमज्योति है. यही साक्षात् मोक्षका फल है. यही परमात्माका नित्य, मुक्त, साक्षात् साकार स्वरूप है; परमात्मामें साकार तथा निराकार दोनों स्वरूप विद्यमान हैं अर्थात् वह मूर्तिमान्भी है और अमूर्तिमान्भी है. *परमात्मा जगत्रूपसे साकार और ब्रह्मरूपसे निराकार है. निराकारको अगोचर स्वरूपका ज्ञान होना अतिविकट है, इसीसे अन्य सब साधनोंको छोड़कर इस साकार स्वरूपका निरंतर ध्यान और सेवन करनेसे अपने आप उस (निराकार स्वरूप) का दृढ और पूर्ण ज्ञान होता है. जिससे उस परमात्माका अनन्य भक्त ज्ञानी पुरुष मुक्त होकर परम पदको प्राप्त करता है. यह मैंने तुझको सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञान कहा है, जिसका नित्यप्रति अभ्यास करनेसे तू परब्रह्मके चरणारविन्दको पावेगा. यह मैंने तुझको समस्त साधनोंका साधन, सब योगोंका योग, और सर्व ज्ञानोंका ज्ञान कहा है. केवल नास्तिकपनसे मनको समझानेवाली झूठी सच्ची युक्ति प्रयुक्तियों तथा तर्क वितर्कोंके द्वारा परमात्माका ज्ञान होनेकी इच्छा करनेवालोंको जैसे कोई बौना (वामन–ठिंगना) मनुष्य आम्रफलकी इच्छा करे अथवा कोई अज्ञानी आकाशकुसुम लेनेको प्रयत्न करे उसके समान जानना. उनकी वह इच्छा सदेह सूर्यमंडलमें जानेके समान है; इसलिये ऐसे दांभिकोंसे निरन्तर अलग रहकर, प्रेमपूर्वक परमात्माकी मानसिक सेवा पूजा करनेका प्रयत्न करना, जिससे पूर्ण पुरुषोत्तम परमात्मा,

---

*द्वे वा व ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च । श्रुति–उपनिषद्वचनपरसे.

तुझपर कृपा करके, तुझको नित्यप्रति अपने स्वरूपका अभिनवानुभव प्रदान करेंगे और उससे तू देही होनेपरभी, विदेही होकर परमात्मस्वरूपानन्दमें मग्न होता हुआ, जीवन्मुक्त होकर इस जगत्में विचरेगा."

इतना कह कर गुरुजी चुप हुए. उस समय विमलमति गुरुके निकट आसनपर ध्यानस्थ होकर, जिस प्रकार गुरु उपदेश करते गये वैसेही, एकाग्रचित्तसे चित्तवृत्तिको उधरही लगाता गया. उसके रोम २ में आनन्द व्याप्त होनेसे वे खड़े होगये अर्थात् उसको रोमांच होआया. सारे अंगसे प्रस्वेद छूटने लगा और वह हर्षके आवेशसे, ध्यानके ध्यानहीमें यकायक बोल उठा—" अहाहाहा ! परम कृपालु गुरुदेव ! सन्तमहात्मा ! आपने आज मुझे परम कृतार्थ कर दिया. मुझ पामरको यह अलभ्य लाभ कहांसे ! केवल आपके चरणारविन्दकी कृपासे. हे प्रभो ! मैं अब अपने इस परमानन्दका वर्णन क्यों कर करूं ? मेरा यह भगवद्दर्शनानन्द किसी भांतिभी मेरे हृदयमें नहीं समाता. बल्कि त्रैलोक्यमेंभी नहीं समाता. हे परोपकारी दयालु गुरुदेव ! आपके कथनानुसारही मैं अपने सन्मुख उस आनन्दके महासागररूप, घनश्याम सुन्दर, ललित त्रिभंगी, कोटिमदनमोहन परमात्मा—परब्रह्मकी साक्षात् मूर्तिको देख रहा हूं. हे महाराज ! यद्यपि उस महामंगलस्वरूपका मुझे यथार्थ दर्शन हो रहा है तथापि आपके सन्मुख उसका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है. स्वरूपानन्दरूपी अमृतसे परिपूर्ण भरेहुए परब्रह्मसागरकी महिमाका शब्दोंद्वारा वर्णन नहीं किया जासकता. वैसेही मनसे उसका अनुमानभी नहीं हो सकता. हे देव अब यह जगत् कहां गया ? सोभी मुझको नहीं जान पड़ता. आप महात्माके अनुग्रहसे मैं भाग्यशाली हुआ हूं; कृतकृत्य हुआ हूं; मोहसे छूट गया हूं अखंड आनन्द वैभववाले आत्मपदको पाचुका हूं. हे कृपालु ! मेरे अनधिकारी होनेपरभी आपका मान रखनेके लिये प्रभु मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने शरण लेते हैं. हे दयालु ! मेरे भाग्यका पारावार नहीं. आपने मुझ पंगुको यकायक सुमेरुके शिखरपर बिठा दिया है. मुझ पामरको उस परमात्माकी शरण क्योंकर ? और परब्रह्मका दर्शन कहांसे ? धन्य मेरे भाग्य ! धन्य आपकी मुझपरकी कृपादृष्टि ! " यह सुनकर ऋषिने कहा— " शिष्य ! अब इस परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तमको बारंबार प्रणाम करके, सर्वदा अपने शरण रखनेकी उसे विनती करके अपने नेत्र खोल. "

नेत्र खोलतेही विमलमति हर्षित होकर यकायक उठ खडा हुआ और दंडवत् नमस्कार करके ऋषिके चरणारविन्दमें गिर गया और आनन्दाश्रुओंसे उनके चरणोंको भिगो दिया. तब ऋषिने उसको उठाकर अपने हृदयसे लगाया और कहा—" तेरा नाम आजसे द्युतिमान रखना. तू केवल नाम मात्रकाही द्युतिमान् (तेज-प्रभा-कांतिवाला) नहीं है; परंच आजसे परमात्माके ज्ञानरूप द्युतिवाला हुआ है. तुझको मैंने अपनी समस्त ब्रह्मविद्याका मूलमंत्र उपदेश किया है, सो तुझको सफल होवे. यह उपदेश तू किसी अपात्र, अभक्त, नास्तिक, दुष्ट, कृतघ्न, शठ, दंभी, पापी, वेद और परमात्माकी निंदा करनेवाले इनमेंसे किसीको अथवा परमात्मामें द्वैतभाव रखनेवालेको कदापि मत देना." इसभांति कहनेके पीछे उक्त मुनिने अपनी स्त्रीकी ओर देखा तो उसने सब तयारी कर रक्खी थी. मध्यरात्रिका समयभी हो चुका था. तब गुरुने स्थिरचित्तसे खड़े होकर कहा—'हे द्युतिमान्! पहले घृतदीपोंकी ज्योतियोंको सतेज कर; उनमें बहुत घी भरदे, और मेरा अन्तिम वचन सुन.—" हम अब इस असार संसारको त्याग करके परमात्मा-(जिसका तूने अभी दर्शन किया है) के परम आनन्दरूप धामको जावेंगे. इस बातका तू कुछभी शोक न करना. हमारे मृत देहोंको तू इस तेरे समक्ष प्रज्वलित हुए कुण्डकी होत्राग्निसे संस्कृत करना (अग्निसंस्कार करना). इस आश्रमका मेरा सर्व वित्त मेरे पीछे; श्रीपुरुषोत्तम-प्रीत्यर्थ; सत्पात्र ब्राह्मणोंको अर्पण करना. जो मेरी कामधेनुके समान सौ गौएँ हैं उनको तू मेरे पीछे सत्पात्र ब्राह्मणोंको दान कर देना; परन्तु इतना ध्यानमें रखना कि, ऐसा करनेमें उनको किंचित् मात्रभी दुःख न होने पावे और कदाचित् ऐसा होना संभव न दिखाई देता हो तो उनको दान न करके तू स्वयमेव उनका भलीभांति पालन (जैसा अभीतक किया है वैसा) करना. और उनसे उत्पन्न हुए गोरस आदिकसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका पोषण करना. तुझको अब शीघ्रही राज्य और महालक्ष्मी प्राप्त होगी. तिसके द्वारा; तू परम सद्धर्मवान् और राजनीतियुक्त होकर, तेरे आश्रित प्रजाका उत्तम प्रकारसे पालन करना; दुष्टोंको दंड देकर, साधुजनोंका निरन्तर रक्षण करना और दीर्घकालतक उस सुखका अनुभव करके; अन्तसमयमें तू श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होगा. यह मेरी अन्तःकरणपूर्वक आशिष है. मेरा समय हो चुका है. मैं उठता हूं. तू दूर बैठ जा."

इतना कहकर ' विष्णवे नमः, विष्णवे नमः, विष्णवे नमः ' इसभांति बोलतेहुए ऋषि उठ खड़े हुए. तदनन्तर कुंडमें प्रज्वलित हुए भगवद्विभूतिरूप हुताशनको नमस्कार करके, अपनी धर्मपत्नीके गोमयलिप्त भूमिपर बिछाये हुए दर्भासनपर सिद्धासन लगाकर बैठगये. उनके साथमें साक्षात् महायोगिनीस्वरूपा ऋषिपत्नी भी उसी रीतिसे बैठी. दोनोंने एक साथ योगमार्गसे प्राणायाम करके समाधि चढ़ाई और परब्रह्म–परमात्माका मंगल ध्यान धरके आत्माको ब्रह्मरंध्रमें स्थित किया.

मध्यरात्रि बीत गईथी. सर्व स्थलमें शान्ति फैल गई. पवन बंद हुआ. मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, नदियोंमें बहता हुआ जल, और एकप्रकारसे कहा जाय तो समस्त जगत् केवल शान्त होगया. सब जगह शून्यता छागई. ऐसे समयमें द्युतिमान्के देखते २ उन दोनों दंपती (योगी योगिनी) के ब्रह्मांड फट् फट् अवाजके साथ फट गये और उनमेंसे केवल प्रज्वलित तेजके प्रतिबिम्ब निकले, जो निमेषमात्रमें दिव्य मूर्तियां बनगये. तत्क्षण आकाशमार्गसे नानाप्रकारके मनोहर शब्द करता हुआ सूर्यसमान तेजस्वी विमान नीचे उतर आया. उसको देखतेही द्युतिमान् तो दिङ्मूढ होगया. उसमें अनेक भांतिके दिव्य शृंगारसे सजीहुई देवसुन्दरियां हाथोंमें व्यजन, चमर, पूजाके उपचारादिक लिये हुए तत्पर खड़ी हुई थीं; गन्धर्व वीणा, वेणु इत्यादि मनोहर बाजे बजा रहेथे, कितनेही दिव्य स्त्री, पुरुष उत्तमप्रकारसे भगवन्नामोच्चारण सहित संगीत आलाप कर रहे थे, वह दिव्य विमान बाहरसे तथा भीतरसे अपरिमित बैठकोंसे सजा हुआ था. तुरन्त उसमेंसे दो दिव्य पुरुष (शंख, चक्र, गदा, पद्मादि-चतुरायुधात्मक चतुर्भुजस्वरूप) निकलकर उन दंपतीके शरीरमेंसे प्रकटेहुए तेजकी दिव्य मूर्तियोंके पास आ खड़े हुए और उनको विमानारूढ होनेकी विनती करने लगे. तदनन्तर अपने साथ लाये हुए दिव्य वस्त्र आभूषण तथा चंदन पुष्पमालादिकसे अलंकृत करके उनको विमानपर ले गये. दंपतीके विमानपर बैठतेही आकाशमेंसे मंगल सुमनोंकी वृष्टि हुई. देवदुंदुभि बाजे बजने लगे और जय २ कारकी ध्वनि छागई; तुरन्त विमान उठा और अनेक प्रकारके बाजोंका घोष करता हुआ विष्णुलोकको चला गया. आश्रममें घोर अँधेरा होगया. तेजस्वी आत्मा स्वधाम पधार गये और उस शून्य मठमें अकेला द्युतिमान् रहगया. जब विमान आकाशमें अदृश्य होगया

तब द्युतिमान् बड़ी भारी निराशा और शोकसे विह्वल होकर " हे गुरु ! अहो गुरुजी ! हे मातुश्री ! " पुकारता और रोता हुआ मठके द्वारपार आया और मूर्च्छित होकर गिरपड़ा.

उषःकाल हुआ. धीरे धीरे पूर्वदिशा अरुणप्रकाशसे कुंकुमवर्णी दिखाई देने लगी. बंद पड़ा हुआ पवन फिर मंद २ बहने लगा. पक्षीगण शनैः २ जागृत होकर अपने २ काममें लगे. ब्राह्मणोंके आह्निक कर्मोंका आरंभ होचुका. उस समय ब्रह्मलोकनिवासी ऋषिराजके दोनों सेवाप्रमादी शिष्य (राजपुत्र) जो मठसे कुछ दूर एक पर्णकुटीमें निश्चिन्ततासे सोये पड़े थे सो अपने सदाके नियमित कालमें जाग उठे और शीघ्रतासे शौचादिक क्रिया कर स्नान करनेके लिये सुरसरितापर गये और वहां फुर्त्तीसे स्नान, संध्या, तर्पणादिक करके झटपट जलके घड़े भरकर पर्णकुटीमें लौटे. चलते २ बड़े भाईने छोटेसे कहा-" भाई ! जल्दी कर. आज स्वाध्यायका दिन है. वह विमलमति प्रतिदिन पहले २ पाठ लेलेता है; परन्तु आज आपन जल्दी उठे हैं. सो उसके निपटनेसे पहलेही जाकर आपन गुरुजीके पास संथा* लेलेंगे. वह तो अबतक उठाभी नहीं होगा और जब उठेगा तब मठमें संमार्जन † करेगा, स्नान करने जायगा, संध्या जपादि करेगा; फिर गुरुके यहां जल भरेगा, गौओंको चारापानी देगा, पीछे दुहेगा, तब उनको वनमें चरनेको छोड़ेगा, गुरुके अग्निहोत्रके लिये वनमेंसे समिधा दर्भ लावेगा और लुनेहुए खेतोंमेंसे हविष्यान्न शिल+विन कर लावेगा. इतनी देरमें तो आपने पाठ सीखकर पीछे चले आवेंगे. पीछे भलेही वह अकेला भिक्षा करनेको जावे, और पढ़नाभी पूरा करले. उसके सत्रह प्रपंच पूरे होते २ तो आपनभी भिक्षा ले आवेंगे ! चल, जल्दी कर. गुरुजीके घरकेभी एक दो घड़े पानी ले आवें और तब नगरमें जावेंगे " ऐसे बातें करते २ बड़े उत्साहसे, अपनी कुटीमें पानीके घड़े रखकर, मठमें गये. पर ज्योंही वे मठके द्वारमें घुसे कि, द्युतिमान् मृतप्राय होकर पड़ा हुआ दिखाई दिया. उसको मूर्च्छा आई थी इस कारण वह अभीतक उसी स्थितिमें सीधा, सलंग, चित्, निराधार, शून्य होकर बेसुध पड़ा था. उन दोनों भाइयोंने पास

*गुरुसे नया पाठ सीखनेको 'संथा' कहते हैं. † झाडू बुहारी करना, लीपना, चूपना (अग्निकुंड आदिमें). +पकेहुए अन्नके खेतमेंसे खेतके मालिक किसानने सब अन्न निकाल ले लिया हो तिस पीछे जो कहीं२ अन्नके दाने पड़े रह गये हों उनको चुनकर लेआनेको शिल कहते हैं.

आकर देखा तो यकायक बड़े चौंके और परस्पर कहने लगे कि—"भाई! इसको क्या हो गया? देखो तो सही! जीता है कि मरगया?" ऐसा कहकर जोर २से उसको पुकारने लगे और हिला डुलाकर उसको बैठा दिया. थोडी देरमें वह मानों स्वप्नमेंसे उठा हो इसभांति धीरे २ कोमल करुणाजनक स्वरसे "हे गुरु! ओ गुरुजी!" कहने और निःश्वास छोड़ने लगा. थोड़ा सचेत होनेपर, उन प्रमादी राजकुमारोंके पूछनेसे, अपनी आंखोंसे आंसुओंकी धारा वहातेहुए रात्रिका (अपनेको किये हुए उपदेशके सिवाय) सब वृत्तान्त कह सुनाया—"भाइयो! आपन वड़े मंदभागी हैं. अपने कृपालु गुरु आपनको बनहीमें छोड़कर परलोक सिधार गये! इस कारण अब दूसरे सब काम छोड़कर वनमेंसे चन्दनकाष्ठ तथा समिधा शीघ्रतासे इकट्ठी करो, और सूर्योदय होते २ उनके पवित्र शरीरका अग्निसंस्कार कर दो.

यह समाचार सुनकर वे भी निराशा और शोकातुर मुखसे द्युतिमान्के साथ मठके भीतर गये. वहां अग्निहोत्रका अग्नि अवतक बड़ी २ ज्वालाओंसे प्रज्वलित हो रहा था, घृतदीपकोंकी ज्योति अखंड वनी हुई थी, और दर्भासनोंपर उन महापुण्यवान् पतिपत्नीके शरीर, अपनी स्थितिमें—समाधिमें बैठे हुए योगियोंकी भांति बैठे हुए थे. तदनन्तर एकजनको मठमें छोड़कर दूसरे दो जने (द्युतिमान् और वड़ा राजकुमार) वनमें काष्ठ एकत्रित करनेको गये. काष्ठ ले आनेपर गंगाके उत्तरतीरपर एक वड़ी चिता चुनी. तिस पीछे आश्रमके आसपासके अन्यान्य आश्रमोंमेंसे वहुतेरे ऋषियों, ऋषिपुत्रों इत्यादिकोंको वुलालाये और उनके समक्ष शास्त्रोक्त क्रियासे उन दोनों शवोंका होत्रके अग्निसे अग्निसंस्कार किया और पुत्रकी भांति द्युतिमान्ने अपने माता—पिताके समान ऋषि तथा ऋषिपत्नीकी सर्व उत्तरक्रिया की. सपिंडीकरण, मासिक, त्रैपाक्षिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक, सांवत्सरिक इत्यादिक सर्व क्रिया उनके पीछे यथोचित रीतिसे की और उनके सर्व गोधनादि वित्तकाभी उनकी आज्ञानुसार सदुपयोग किया. तदनन्तर गुरुवियोगसे शोकातुर हुआ और गुरुके गुणानुवादका वारंवार स्मरण करता हुआ द्युतिमान् अपने दोनों भाइयोंको कहने लगा—"वड़े भाइयो! साक्षात् ब्रह्मदेवस्वरूप अपने गुरुदेवकी कृपासे आपनने सर्व विद्या संपादन की है. अब उस विद्याका पराक्रम जगत्को दिखाकर ब्रह्मपुरनिवासी गुरुजीकी कीर्तिको प्रकाशित करनेके लिये नगरमें चलो."

पुत्र विद्यासंपादन करके लौटकर आते हैं ऐसा सुनकर राजा अति प्रसन्न होकर पुत्रोंको लिवा लानेके लिये गया, और बड़ी धामधूमसे उनको नगरमें लिवालाया. तत्पश्चात् उनकी परीक्षा लेनेपर द्युतिमान् सबसे बढ़कर श्रेष्ठ और निपुण समझागया. इस लिये उसी दिनसे राजा, अन्य पुत्रोंकी अपेक्षा, उससे विशेष स्नेह करने लगा. द्युतिमान् तुरन्त अपनी दयालु माताके पास गया, और जब उसके चरणोंमें अपना मस्तक रक्खा तब उन दोनोंके नेत्रोंसे आनंदाश्रु बहने लगे. तिस पीछे बड़े आनन्दके साथ उसने अपनी माताको अपना सब वृत्तांत कह सुनाया.

"हे जननी ! मैं आपके उपदेशका अनुसरण करने तथा अपने गुरुजीकी सेवा करनेके कारण उनकी पूर्ण कृपाका पात्र हुआ हूं तथा अमूल्य विद्यायें और श्रीमद्भगवच्छरण सम्पादन करके आया हूं. मैं यही समझता हूं, कि, जगत्में मेरे समान अलभ्य लाभ कदाचित्ही किसीको हुआ हो. यह केवल तेरे दयालु चरणोंका प्रताप है.' इस दिनसे द्युतिमान् अपने गुरुके किये हुए ब्रह्मविद्योपदेशका निरन्तर अभ्यास करने लगा. दयालु गुरुका वारंवार स्मरण करने लगा; और भलीभांति माताकी सेवा करता हुआ अपनी माताके उसी एकान्त महलमें रहने लगा. प्रतिदिन अपनी विद्याद्वारा नानाप्रकारके चमत्कार दिखला २ कर, वह अपने पिताके चित्तको अधिकाधिक आकर्षण करने लगा, तथा अपने बाहुबलसे अनेक देशान्तरोंके राजाओंको जीतकर, उन्हें आधीन बनाकर, अपने पिताके चरणोंमें झुकाने-नमाने लगा. इससे चकित और प्रसन्न होकर उसने (राजाने) अपना मुख्य अधिकार उसे सौंपा. इस गुणमें तथा प्रजाके रक्षणमें वह अपने बड़े भाइयोंसे बढ़कर कुशलता दिखाने लगा, जिससे अवस्थामें छोटा होनेपरभी, प्रजाकी विनतीसे तथा अपनी अन्तःकरणकी प्रीतिसे, राजाने उसको युवराज बनाया. निदान पिताकी वृद्धताके कारण वह सिंहासनारूढ़ हुआ और परम धर्म और न्याय नीतिसे पुत्रवत् प्रजाका पालन करने लगा, तथा गुरुके उपदेशको सफल करके, परमात्मस्वरूपके अनुभवानन्दमें मग्न होता हुआ अन्तकालमें वह परमपदको प्राप्त हुआ.

हे प्रिय सचिव विशाल केतु ! (यज्ञभूने कहा) इतना इतिहास कहकर उस महात्मा योगी पुरुषने मुझको कहा-"हे मृत्युलोकके मानव ! इस इतिहासपरसे तुझे ज्ञात हुआ होगा कि, 'गुरुकी सेवा करनेवाले द्युतिमान्को

कैसा परम लाभ हुआ होगा, उसने कैसे २ ईश्वरी चमत्कार देखे होंगे, उसको ध्यानस्थ परमात्माके कैसे २ दर्शन हुए होंगे, और सेवाप्रमादी राजपुत्र सब लाभोंसे कैसे वंचितही रहे होंगे' सो सब तूने जाना, देख इसका तू मनन कर, निदिध्यासन कर. गुरुसेवाही मनुष्यका श्रेयःसाधन करनेवाली है. इस इतिहासके अंगभूत प्रसंगोपात्त मैंने तुझको परम दुर्लभ परमात्माकी मानसिक सेवाका भी उपदेश किया है; उसको तू कदापि मत भूलना, उसका तू निरन्तर ध्यान करता रहना. अब तुझको गुरुसेवाकी कुछ आवश्यकता नहीं रही तथापि तेरे गुरुशुश्रूषा करनेकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये, इस पीछेवाली वाटिकामेंसे मेरे लिये थोड़ेसे फलफूल लेआ."

हे विशाल ! गुरुकी आज्ञा पाकर उनके कहेहुए द्युतिमान्के इतिहाससे अत्यन्त आह्लादित होता और उसीका मनन करता हुआ मैं वनमें गया. एक सुन्दर वृक्षसमूहमें मैं घुसा. अपने मनमें मैं यही सोचता था कि, "अहो द्युतिमान् कैसा प्रारब्धवान् पुरुष था कि, जिसको केवल एकही रात्रिमें पंच दोही घटिकाओंमें कितना लाभ, कैसा परम ज्ञान प्राप्त होगया ! उसको जिस प्रभुके दर्शन हुए वह प्रभु कैसे होंगे ! क्या उस आनन्दघन परमात्माकी स्तुति करते हुए उन्होंने (द्युतिमान्के गुरुने) सर्वव्यापी विशेषण दिया था ! क्या वही परमात्मा मेरे अन्तःकरणमेंभी वैसेही स्वरूपसे विराजते होंगे ! क्या मुझकोभी वह परम कृपालु भगवान् कृपा करके दर्शन देवेंगे !" इसभांति चिन्तन करता हुआ मैं एक आम्रवृक्षपर चढ़ा, और महकते हुए सुगंधसे मगजको तृप्त कर देनेवाले पकेहुए फलोंको तोड़कर, झोलीमें भरकर, नीचे उतरने लगा; परन्तु मैं वनमें गया, वृक्षपर चढ़ा और फल तोड़े और नीचे उतरा इत्यादिक किसी बातमें मेरा मन नहीं था. मेरा आत्मा तो श्रीहरिके स्वरूपकी तरफही एकाग्रतासे लगा हुआ था. जैसे बालक भूख प्यासका भान न रखकर, अपने प्यारे खिलोनोंमें रमण करता है, तैसेही मैं भी सब अहन्ता, ममताको भूलकर निजस्वरूपमेंही रमण कर रहा था. वह स्वरूप स्वयंप्रकाश, अनन्तशक्तिसंपन्न, प्रमाणसे अगम्य और सर्वानुभवी था; इस प्रकारकी चित्तवृत्तिसे वृक्षपरसे उतरते २ एक छोटीसी टहनीपर लटकता हुआ एक पकाहुआ आम्रफल मुझे दिखाई दिया. उसको लेनेके लिये ज्योंही मैं आतुरतासे हाथ लंबा करके कुछ झुका त्योंही मेरा पांव उस पेड़परसे फिसल गया और मैं धड़ामसे नीचे गिर पड़ा. ऊपरसे गिरनेके कारण

मुझको चक्कर आगई, आंखोंके आगे अँधियारी छा गई. शरीर शिथिल हो गया, और मैं मूर्छित होकर पड़ा. उस समयके आश्चर्य और आनन्दका मैं कहांतक वर्णन करूं ? मुझको अँधेरी आई; उस समय ऐसा जानपड़ा कि, कुछ प्रत्यक्ष-साक्षात्कार होगा. प्रथम सर्वत्र निबिड अंधकारही अंधकार दिखाई दिया. अनन्तर उसमेंसे यकायक जगमगाता हुआ दिव्य प्रकाश चहूं ओर फैल गया. क्षणभरमें उस प्रकाशमें अनुक्रमसे मैंभी वही लीला देखने लगा, कि, जैसा द्युतिमान्‌के गुरुजीने वर्णन किया था. तादृश वैसेही प्रभुके मुझको भी दर्शन हुए और उसी विधिसे मैं भी उनका पूजन करने लगा और मंगल नामोच्चारण करके स्तुति की. अत्यन्त प्रेमसे पुलकित होकर मैंने वारंवार प्रभुकी प्रदक्षिणा की और हर्षोन्मत्त होकर उच्चस्वरसे पुकार कर "हे सच्चिदानन्द परमप्रभु ! परब्रह्म दीनदयालु ! मैं आपका दास-आपके दासका भी दास हूं; मुझको अन्य शरण नहीं; केवल आपहीके जगदुद्धारक चरणारविन्दका आश्रय है. अस्तु, हे प्रभु ! मुझे अपने शरणमें रखिये ! " इस भांति स्तुति करता हुआ दण्डवन्नमस्कार करके ज्योंही मैं उनके कोमल पादपंकजमें गिरना चाहा कि, तत्क्षण एक आम्रफल धड़ाकसे मेरे छातीपर गिरपड़ा. यह वही आम्रफल था कि जिसको तोड़ लेनेके लिये झुकतेहुए मैं नीचे गिरा था. वह मेरे गिरते समय शाखाओं (डालियों) में मेरा शरीर उलझने और टकरानेसे डालियोंके खूब हिलनेके कारण अपने आप गिरपड़ा. उसके जोरसे आ गिरनेपर मैं यकायक चौंक पड़ा, मेरी आंखें खुल गई और मेरे ज्ञानचक्षु (हृदयचक्षु) जिस अलौकिक लीलाको देख रहे थे वह तत्काल अदृश्य होगई.

तुरन्त मैं वृक्षके नीचेसे उठ खड़ा हुआ और ऊपरसे गिर पड़नेका कुछभी कष्ट वा चोट लगनेकी कुछभी पीड़ा मुझे नहीं हुई. वरंच मेरे शरीरमें अधिक बल बढ़ा हुआ दिखाई दिया. अपरोक्ष अनुभव होनेके कारण मुझको सर्व ब्रह्मरूपही प्रतीत होने लगा. मुझमें जो शोक मोह था उसका कहींभी ठिकाना न लगा. मैं तो अब सत्यस्वरूपानन्दमें खेलता हुआ हँसने और नाचने लगा और उसी धुनही धुनमें फलोंकी झोली लेकर, भगवद्दर्शन संबंधी विचार करता २ गुरुजीके पास गया. ऐसा ज्ञानोपदेश मिलनेसे मेरा मन, सूर्यदर्शनसे विकसित हुए कमलपुष्पकी नाईं प्रफुल्लित होने और ऊपर बढने लगा. मुझको एकपर एक इसप्रकारका अनेकानेक सुविचार

सूझने लगे और 'यह आत्माही ब्रह्म है, यही सर्वरूपसे स्थिर है' ऐसा नूतन ज्ञान अपने आप स्फुरने लगा. पर चाहे जैसा भी सही तथापि अभी तो मैं नया तथा आरंभिक ज्ञानी था. इस कारण मैं मनही मनमें सृष्टिमें प्रचलित कईएक धर्ममार्गोंकी निन्दा और तिरस्कार करने लगा. सबसे पहले मुझे ऐसा विचार आया कि, संसारमें कितना बड़ा अंधेर है कि, जो परमात्मा अनन्त और सर्वव्यापक, दिव्यतेजोमय और परमानन्दरूप है, उसको पाषाणमय, धातुमय, मृत्तिका तथा काष्ठमय प्रतिमारूपसे लोग पूजते हैं, यह बडी भारी अविद्या है. उन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा करते हैं और जिस प्रकार भगवान्‌को पूजते हैं वैसेही भावसे शृंगार व नैवेद्यादिक उपचारोंसे उनकी पूजा करते हैं, यह बडे आश्चर्यकी बात है. अरेरे ! ये लोग कैसे भारी अज्ञानसे आवृत हैं—कैसी अंधपरंपरामें फँसेहुए हैं ! अनंत शक्तिमान् प्रभु पाषाणादिकी मूर्तिरूपसे अंतःकरणमें क्योंकर विराजमान हो सकते हैं ? जैसे आकाशमें नीलत्व मिथ्या है, मरुभूमिमें जल मिथ्या है, वृक्षके ठूंठमें भ्रांतिसे पुरुषाकृतिकी कल्पना होती है, तैसेही पाषाणादि मूर्तिमें अखंडानंदरसभोगी परब्रह्मकी कल्पना की जाती है. यह केवल भ्रांतिही है और ऐसी भ्रांतिसे कल्पित जो सत्य है वह सत्य नहीं है; परंतु हे सचिव ! ऐसी कल्पनाओंके उठनेसे मैं कुछ ऐसाही निश्चय नहीं मान बैठा. फिर मुझे शंका हुई कि, कौन जाने, इसमेंभी कुछ चमत्कार होगा, नहीं तो ऐसा होनेका क्या कारण है ? इस रीति–भांतिको (मूर्तिपूजादिकको) परंपरासे शिष्टजन मान देते चले आये हैं तो अवश्य इसमें कुछभी कारण होगा. ऐसे विचारमें मग्न होता हुआ मैं उस दिव्य पुरुषके पास जा पहुँचा और फलोंकी झोली अर्पण कर दंडवत् प्रणाम करके बैठगया. जैसा मैं उनके सामने बैठा, तैसेही उक्त महात्मा अपनी दिव्य वाणीसे पुनर्वार मुझको तृप्त करने लगे.

उन्होंने कहा—" मृत्युलोकके मानव ! श्रवण कर. एक विशेष बात कहता हूं. तेरे मनमें नई २ शंकायें उत्पन्न होती होंगी कि, इस जगत्‌का कैसा विचित्र खेल है ? यह शंका उचित है. ऐसा मनमें आना (शंका होना) यह मुमुक्षुका लक्षण है. यह निश्चित वार्ता, ईश्वरकृपासे अपने आप तेरी समझमें आ जावेगी. जगत्‌में मूर्तिपूजादिक कर्मकांडकी अनेक लीला प्रवृत्त हैं. हे यज्ञभ ! यह प्रथा (मूर्तिपूजादिक) केवल अयोग्य

और निरर्थक नहीं है. वह कारणसहित और उचितही है. यहां सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेकी आवश्यकता है. इसमें महात्माजनोंका गूढ आशय है. यह प्रथा मनुष्यको कुमार्गमें प्रवृत्त करनेवाली नहीं है; परंच सन्मार्ग-प्रवर्त्तक और परमात्माके स्वरूपके दर्शन–साधनकी पहली पैड़ी (सोपान)है. हे राजतनय! तू विचार कर कि, राजपुत्र प्रथम बाल्यावस्थामें धनु-विद्याका अभ्यास करते हैं, उसका मुख्य हेतु प्रौढ वयमें राज्यरक्षण कर-नेके लिये शत्रुओंके साथ युद्ध करना पडे, तब स्वशरीरकी रक्षा करते हुए शत्रुका पराजय करना है; परन्तु योग्यायोग्यका विचार करके सत्यविवेकसे धनुर्विद्या सीखते समय उसका अभ्यास किया गया हो तबही युद्ध समय वह फलदाता होती है. नहीं तो चाहे जैसा बलवान् योद्धा होनेपर भी निश्चय शत्रुसे पराजित होता है. उस अभ्यासके समय राजपुत्रके सन्मुख यथार्थ सचे शत्रु नहीं होते; किन्तु उनके आयुधों (बाण, गदा भाला–बरछा, परशु–फरसा आदि) के प्रहारको सहन करनेके लिये उनके सन्मुख अनेक कल्पित शत्रुओं–निशानोंकी रचना की जाती है और उनपर शस्त्रा-स्त्रोंका प्रयोग करके एकाग्रतासे अभ्यास करना होता है. इन कल्पित शत्रुओंकी आवश्यकता तबही तक रहती है जबतक कि, शस्त्रसंचालनमें निपुणता प्राप्त न हो. जब हाथ जम जाता है, निशान नहीं चूकता; दृष्टि और मन समयानुसार स्थिर, चंचल और अभ्यस्त होजाता है तब, उन कल्पित शत्रुओंकी अथवा उनसे कृत्रिम युद्ध करनेकी कुछभी आवश्यकता नहीं रहती. फिर तो वे निश्चिंत होकर सचे असली शत्रुके सन्मुखभी खडे होकर अपने अभ्यासका अनुभव करने लगते हैं. और जैसा अभ्यास–महावरा किया हो तदनुसार जयपराजयको प्राप्त करते हैं. हे पुरुष! इसीसे प्रथम भक्तिपथारूढ मुमुक्षुको भगवत्सेवा करने तथा मानसिक पूजन कर-नेका हेतु सिद्ध होनेके लिये, मूर्तिमें परमात्माकी कल्पना करके उसका ध्यान, सेवन इत्यादिका पूरा २ अभ्यास करना पडता है; क्योंकि, मायाकी आवरणशक्तिसे घिरेहुए प्राणीके चक्षुमें तथा देहमें चिदाभासके तेजसे 'मैं' नामका अभिमान घुस बैठा है; उसका लय किये विना अगम्य, अगोचर, अविनाशी, सर्वव्यापी भगवत्स्वरूपका यथार्थत्व लक्ष्यमें नहीं आ सकता; परन्तु नित्यप्रतिका अभ्यास होजानेसे श्रीहरिकी मंगलमूर्ति, नेत्र मूंद लेनेपरभी, मानों दृष्टिके सन्मुख क्रीडा कर रही है ऐसी भावनासे समस्त

इंद्रियां एकाकार–तदाकार हो जाती हैं, और शनैः २ उस अखंडानन्द रसके वहतेहुए स्वरूपमें तल्लीन होजानेपर पाषाणादिककी मूर्त्तिकी कुछभी आवश्यकता नहीं रहती. आत्मा परमात्माकी एकाकार वृत्ति जाने–देखे पीछे कौनसा आत्मज्ञ जीव उस परमानन्दरसको चखनेसे विमुख रहकर नश्य पदार्थका सेवन करेगा ? प्रत्यक्ष चन्द्रमाका दर्शन–लाभ होनेपर चित्रमें चित्रित चन्द्रको कौन पछता है ? वह जानता है कि, इस मिथ्यापदार्थके सेवनसे न तो सुख मिलता है और न दुःख टलता है. वह अद्वितीय आनन्द-रससे परिषिक्त हो चुकनेके अनन्तर सर्वदा ब्रह्मनिष्ठही हो जाता है. जैसे रज्जुका ज्ञान हो जानेसे सर्पके भ्रमका नाश हो जाता है, वैसेही अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान हो जानेपर सर्व मायाका लय हो जाता है. जीव बुद्धिमान् पंडित, चतुर और सूक्ष्मदर्शी है; परन्तु जबतक तमोगुणी मायामें रहकर काम क्रोध, लोभ, दंभ, अहंकार, ईर्षा और मत्सरका वशवर्त्ती होता है तबतक उसमेंसे मुक्त होनेके लिये सगुण उपासना प्रारंभिक कर्म है. जीव आवरण शक्तिसे घिराहुआ है. उसको उलटा निश्चय और संशय पीडित करत रहता है. इसीसे वह दुःख भोगता है. उस दुःखसे छूटनेके लिये या उपासनामार्ग श्रेष्ठ है. 'इस जडमूर्तिरूप भगवान्‌को कैसे मानना ?' ऐसी शंका होती हो तो उसका निवारण यही है कि 'सर्वं विष्णुमयं जगत् अखिल विश्व—सारा जगत् भगवान् विष्णुस्वरूपही है. सर्वत्र विष्णु* निवास कर रहे हैं; इस कारण यह पाषाणादिककी मूर्त्तिभी विष्णुस्वरूपही है इसपरभी उस (मूर्त्ति) में विशेष देवत्व आनेके लिये वेदमंत्रोंके द्वार उसकी प्राणप्रतिष्ठा की जाती है; जिससे वह प्रतिमा ईश्वररूप हो जाती है अर्थात् उसके पूजनका अभ्यास करनेवालेका हेतु सफल हो जाता है इसमें कुछभी संदेह नहीं. हे राजपुत्र ! ऐसे कारणको समझकर मूर्तिपूजा करनेवालेको ही सच्चा अर्थ (भगवत्स्वरूपके दर्शनका मार्ग) प्राप्त होता है, दूसरेको नहीं. बालकको अक्षर–ज्ञान करानेके लिये कैसा प्रयत्न करना पड़ता है ? इसीका तू पहले विचार कर. उनको सिखानेका हेतु विशेष प्रौढ और आगे जाकर अत्यन्त उपयोगी बन जानेवाला होता है. पूरा २ अक्षरज्ञान हो जानेपर नाना प्रकारके उत्तम लेख लिखे तथा पढ़े जा सकते हैं; अनेक प्रकारके ग्रंथ शास्त्र, पुराण, वेद इत्यादिक

*विष्णु शब्दका सच्चा अर्थ 'सर्वत्र बसनेवाला' ही है.

ढ़े तथा समझे जा सकते हैं और व्यवहारादिकमें भी वह (ज्ञान) सर्वत्र उपयोगी होता है; परन्तु अक्षराभ्यास हुए विनाही बालकके आगे बड़े २ ग्रन्थ रखनेमें आवें तो वह उनका क्या उपयोग करेगा ? उनमेंसे एकभी अक्षरको वह नहीं पढ़ सकेगा. इसलिये प्रथम उन ग्रंथोंका अभ्यास कराना चाहिये. अनन्तर वे अपने आपही पढ़े जा सकेंगे. अभ्यासिक अक्षरज्ञानके लिये प्रथम बालकको अक्षरोंके आकारके बड़े खर्डे बना (नक्शे) दिये जाते हैं. और वे अक्षर अपने आप विना (किसीकी सहायताके अर्थात् सामनेके अक्षरको विना देखेही) लिख सके तबतक उसको खर्डा घोटना पड़ता है. जब खर्डा घोटते २ उसका हाथ जम जावेगा तब अपने आप उसको छोड़ देगा, और अक्षर लिखने तथा अन्यत्र लिखेहुए अक्षरोंको पढ़नेको मन चलेगा. इसलिये हे यज्ञभू ! तू निश्चयपूर्वक समझ कि भगवत्सेवाका अभ्यास करनेके लियेही मूर्तिपूजा है, और अभ्यासार्थ कियेहुए सेवन पूजनको (यदि भक्तिभाव पूर्वक किया गया हो तो) प्रभु प्रेमसहित ग्रहण करते हैं; अतएव उस (मूर्तिपूजा) को मिथ्या, निरर्थक, दोषयुक्त, और कुमार्गमें चढ़ानेवाला बताने कहनेवाले लोग केवल प्रमादी, अविचारी, अज्ञानविवश और भ्रान्तिवश हुए ही जीव हैं. यथा शरीरको नीरोग करनेके उपचारसे पहले जुलाबकी आवश्यकता है तैसेही परमात्माका शुद्ध स्वरूप जाननेके लिये प्रारंभमें उपासना—भक्तिकी आवश्यकता है. कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनोंका उत्पत्तिस्थान एकही है. मूर्तिपूजनकी माया सत्य नहीं है तो असत्यभी नहीं है, और सत्यासत्यके स्वभावयुक्तभी नहीं ! परब्रह्म—स्वरूपके दर्शनके आश्रयवालीभी नहीं और विना आश्रयके रहनेवालीभी नहीं, साकार निराकारवाली और उससे भिन्नभी नहीं, किन्तु अद्भुत और अनिर्वचनीय है."

इसभांति उपदेश देनेके अनन्तर उक्त महात्मा उस वृक्षके समीपही कहां अदृश्य होगये सो मैं नहीं जानसका. तिस पीछे मैं पासके वृक्षकी छायाके नीचे बैठा हुआ—'यह महात्मा कौन ? मैं कौन ? मैं यहां कहांसे आया ?' इत्यादि विचार करता २ क्षणभरमें मानों सकारणही निद्रावश हो गया हूं इसभांति मुझे गहरी निद्रा आगई.

द्वितीय बिन्दु.

तू स्वयम् अपना गुरु बन बैठ.

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ १ ॥

अर्थ— हे पार्थ ! दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पारुष्य, और अज्ञान इतनी आसुरी संपदा अभिजात (भोगोंको भोगनेके लिये उत्पन्न हुए) मनुष्यको प्राप्त होती है. समदर्शन योगयुक्त आत्मावाला पुरुष सर्वत्र आत्माको सर्व भूतस्थ और सर्व भूतको आत्मस्थ देखता है.

महात्मा यज्ञभू विशालकेतुको अपने दूसरे दिनकी व्यतीत वार्ता इस भांति कहने लगा:—

"भो आर्य ! तू सुन, मैं कहता हूं. उस हिमालयके शिखरपर, मैंने पीछेसे जाना कि, मैं वहीं था; मुझको उन महात्माके वाक्योंका मनन करते २ कईएक शंकायें उत्पन्न हुईं और उनका विचार करते २ कुछ निद्रा आई और नहीं आई इतनेमें रात बीत गई और प्रभात होगया. प्रातःकाल जल्दी उठकर झटपट उसी सरोवरपर जाकर शौचस्नानादि करके सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्म किया और पीछा गुफाको चला. चलते २ मैंने मार्गमेंके अनेक सुवृक्षोंके सुगंधित पुष्प, जो प्रातःकालके मंद २ पवनवेगसे अपने आप भूमिपर गिर पड़े थे, चुनलिये और उनकी एक सुन्दर माला बनाई; तथा सफल वृक्षोंपर चढ़कर पके २ फलोंको तोड़कर मैंने झोलीमें भर लिये; और आश्रममें गया. महात्मा गुरुदेव सद्गुरुराज अपने स्थानपरही विराजमान थे. मानों मेरे आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे.

मैंने जाकर उनके जगदुद्धारक चरणारविन्दोंमें दंडवत् प्रणाम किया और पुष्पमाला तथा फल उनके सन्मुख धरे. गुरुदेवने बड़े प्रेमके साथ पुष्पमाला उठाकर अपने जटाजूटपर लपेट ली, और वनफलकी झोली अपने निकट, दूसरीओर रखदी. तिस पीछे मैं कुछ पूछना चाहता था इतनेमें वे स्वयमेवही परम गंभीर गिरासे मुझको आनन्दित करने लगेः—

हे मृत्युलोकके मानव ! तू मेरे वाक्योंका मनन करता है, और उनको भलीभांति अपने अन्तःकरणमें ठसाता है जिससे पाया जाता है कि, तू अब निश्चय परमज्ञानका अधिकारी होचुका और यह सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञान ऐसी दुर्लभ वस्तु है, कि, जिसकी प्राप्तिके लिये महान् योगीजन निरन्तर अपरिमित श्रम किया करते हैं, तिसपरभी ईश्वर–इच्छासेही उनको प्राप्त होती है, अर्थात् हठ अथवा पुरुषार्थसे नहीं. वह ब्रह्मज्ञान केवल अधिकारी वर्गके लिये निर्द्धारित है. जिज्ञासु पात्र विना कोई वस्तु स्थिर नहीं रह सकती; और पात्रभी उस वस्तुके योग्य हो तो उसमें वह वस्तु रक्खी जाती है. यदि वह अयोग्य हो तो वह पात्र नहीं, किन्तु अपात्रही है. विना पात्रके वस्तु नहीं रह सकती. इतनाही नहीं, किन्तु कदाचित् तोड़मरोड़ कर अथवा बलपूर्वक कोई वस्तु किसी अयोग्य पात्रमें रक्खी जावेगी तो वह पात्रसहित नाशको प्राप्त होगी. सिंहिनीका दूध अत्यन्त बलवान् और उत्तम है तथापि उसको उसके बच्चेके सिवाय दूसरा कोईभी नहीं पचा सकेगा. उस दूधको यदि किसी धातुके बरतनमें रख दिया जाय तो उसको चीरकर वह बाहर निकलेगा अर्थात् गिरजायगा और बरतन निकम्मा होजायगा; परन्तु यदि उसको उसके योग्य धातु सुवर्णके पात्रमें रक्खोगे तो जबतक चाहोगे तबतक रक्खा रहेगा और न तो बिगड़ेगा और न ढुलेगा. इसी भांति जगत्‌मेंके सब पदार्थ उनके योग्य पात्र–अधिकारीमेंही रहते हैं, अनधिकारीमें नहीं ठहर सकते. तब यह परम दुष्प्राप्य तत्त्वज्ञान जैसी महत् वस्तु विना पात्रके कैसे ठहर सकती है ? दूसरी सब वस्तुओंके लिये जैसे धातु, मिट्टी तथा काठ आदिके बरतन होते हैं, वैसेही इस ज्ञानरूप पदार्थके लिये परम जिज्ञासु मुमुक्षुका निर्मल–निष्पाप अन्तःकरणरूप योग्य पात्र है; उसीमें वह यथार्थरीतिसे ठहर सकता है और भोक्ताको (ज्ञानको यथार्थ जाननेवालेको) उस महा अविनाशी सुखका अनुभव कराता है. ऐसे निर्मल अन्तःकरणरूप योग्य पात्रके बिना अर्थात् अज्ञानी पुरुषके मलिनान्तःकरणरूप अयोग्य पात्रमें उसको (ब्रह्मज्ञानरूप

सर्वोत्कृष्ट वस्तुको) रख देवें तो उससे लाभ होनेके वदले और उसका सदुपयोग होनेके विपरीत, वडा अनर्थ होगा. पात्र होनेके लिये मनुष्यको उचित है कि, वह अपने आपको जाने. जो मनुष्य स्वयम् अपने तई नहीं जानता, अपनेमें आपको नहीं खोजता, वह अन्तमें अपना नाश करता है. यह अपना जीवात्मा जो संसाररूप समुद्रमें निमग्न होगया है, उसका योगारूढत्व संपादन करके तथा सम्यग्दर्शनमें निष्ठा रखके, अपने आपही उद्धार करना चाहिये. फलकी सिद्धि होनेमें योग्य अधिकारीकी आवश्यकता हैं. फिर उसमें देश—कालकी सहायताभी होनी चाहिये. जो विवेकी, विरक्त, शमादिगुणशाली, मुमुक्षु होता है, वही ब्रह्मज्ञानका अधिकारी होता है. ऐसा अधिकारी, अविद्या, काम, क्रोध और कर्मको छेदन कर, अपने आपको देखे. अपने शिरपर ऋण हो तो उससे पुत्र छुटकारा करदे, शिरपर वोझा हो तो कोई भी दूसरा आदमी उसे उठा लेवे, परन्तु यदि भूँख लगी हो तो उस दुःखसे कौन छुडावे ? अपने आप खावे तवही क्षुधा मिटे. इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानके लिये अपने तई आपही देखे. इस विषयमें मैं तुझको एक उपाख्यान कहता हूं.

किसी नगरमें वृद्धिचंद्र नामका राजा राज्य करता था. पितासे युवराजपद प्राप्त कर चुकनेपर, उसने अपने चातुर्य और सैनिक वलसे राज्यादि समृद्धिमें वहुत कुछ वृद्धि की. उस राजाको सव प्रकारका सुख था. अर्थात् मंत्रीगण तथा अन्य राज्यकारभारी जन विश्वस्त, सत्यवादी और उसका हित चाहनेवाले थे. सेनाधिपति, महारथी, रथी और अन्य सव सैनिक उत्साही, पराक्रमी और स्वामीके हितके लिये अपना प्राण समर्पण करनेमेंही धर्म है, ऐसी सद्बुद्धिवाले तथा उसकी आज्ञानुकूल चलनेवाले थे. उसके यहां हाथी, घोड़े, रथ आदि सव जातके वाहन, सोना, चांदी, हीरा, मोती आदि रत्नोंके तथा धनादिकके भांडार निरन्तर भरपूर रहते थे. राज्यभरकी समस्त प्रजा ब्राह्मणादिक श्रेष्ठ वर्णसे लेकर अन्त्यजपर्यन्त—सव सुखी, परस्पर प्रीतिवाली, धनधान्यादिसे परिपूर्ण, तथा एकनिष्ठ राजभक्त थी. राजाके मित्र (राज्यके सीमान्त प्रदेशके राज्योंके भूपाल) उसके साथ वन्धुभाव रखते थे. शत्रुगण उसके प्रतापसे सदा नम्र और आधीन वने रहते थे. राजाके कुटुंवमेंभी किसीभांतिका क्लेश वा द्वेष नहीं था. स्वयं राजा हृष्ट पुष्ट और नीरोगी था, उसकी रानी पतिकोही परमेश्वर जानने-

शाली, सुशीला, सौन्दर्यवती और भाग्यशालिनी थी. इसप्रकार वृद्धिचन्द्रने अपने सम्पूर्ण सुखमेंका बहुतसा भाग भाग्यबलसे और कितनाही बाहुबलसे संपादन किया था. इन सब सुखोंके होतेहुएभी ईश्वरने उसकी एक इच्छा पूरी नहीं की थी. यह संसार केवल दुःखका मूल है, तब संसारी जीवको सब प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति कैसे संभव हो ? उसमें यत्किंचित् सुख कदाचित् प्राप्त होता है सोभी नाशवान् है. इसी लिये शिष्ट पुरुषोंने इसको असार (संसार) का विशेषण लगाया है. यद्यपि सबही मनुष्य यह बात जानते हैं और कहते हैं कि "भाई ! इस संसारमें क्या है ? केवल धुँएको बगलगीर करने (भुजभर भेटने) के समान संसारसुखकी इच्छा है. इसमें कुछभी सार नहीं है. यह तो नाशवान् है " इत्यादि. परन्तु उनमेंसे कोई भी इस बातको अन्तःकरणमें नहीं ठसाता. केवल मुखसे कहकरही बैठ रहते हैं. इसी प्रकार यह वृद्धिचन्द्रभी कि, जिसको एकही साथ और सब सुखोंकी प्राप्ति हो रही थी, तिसपरभी असन्तोष मानकर अपनी अपूर्ण इच्छाको पूर्ण करनेकी आशामें तथा उसीका यत्न करनेमें निरन्तर संतप्त रहता था. जिस किसीको सुख तो मिला हो, परन्तु उसको भोगनेकी उसको इच्छा न हो तो उसको वह सुख किस कामका ? वह सुख होनेपरभी दुःख है. अपना मन माने सो सुख और मन न माने सोही दुःख. इस राजाके सब सुखोंके निरर्थक होनेका इतनाही कारण था कि, उसके कोई पुत्र नहीं था. लौकिकमें अपुत्रत्व संतापका कारण माना जाता है. विशेष कर जिन स्त्री-पुरुषोंके पुत्र नहीं होता, उनके लिये तो अत्यन्त दुःखका कारण होता है. इससे वह वृद्धिचंद्र अपनी स्त्रीसहित सदा खेदयुक्त रहा करता. उसको वारंवार पुत्रकी अभिलाषा हुआ करती. आज सन्तान होगा, कल होगा, ऐसी आशाही आशामें बहुतसा काल बीत गया. निदान उसने पुत्रप्राप्तिके उपाय करना आरंभ किये; नये २ वैद्य, ज्योतिषी, मंत्रशास्त्री, सिद्ध महात्मादिकी सेवा सत्कार करके उनको पुत्रप्राप्तिके उपाय पूछने लगा. वैद्योंने निदान करके राजाको कहा कि—"आपके अथवा आपकी स्त्रीके शरीरमें किसी प्रकारका रोग नहीं पाया जाता; इससे रानीको संतति अवश्यही होनी चाहिये; तिसपरभी होती नहीं, इसका यह कारण दिखाई देता है, कि, कोई दिव्य दोष इसमें बाधक है. " ज्योतिषियोंने ग्रहगोचर देखभालकर प्रकट किया कि—" राजन् ! आपके सन्तानभवनमें उच्चग्रह पडा है, इस कारण

निश्चय आपके एक महाप्रतापी पुत्र होनाही चाहिये; परन्तु कईएक (शनि–राहु) ग्रहोंकी दशा अन्तर्दशाओंने आपकी राशिके विरुद्ध और कठिन होनेसे पुत्रयोगको निष्फल कर रक्खा है; अतएव उनका निवारण करना चाहिये." सामुद्रिक देखनेवालोंने तथा कर्मविपाकियोंने निर्णय किया कि–"महाराज ! पूर्वजन्मके अमुक पापके कारण आपको सन्तति नहीं होती. अस्तु; विधिपूर्वक उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये." सिद्धलोगोंने अमुक बूटीसे, मंत्रशास्त्रियोंने अमुक अनुष्ठानद्वारा, तांत्रिकोंने अमुक तंत्र (जंत्र-मन्त्र) द्वारा राजाको पुत्र होनेका उपाय बताया. तथा महात्मा सन्तपुरुषोंका समागम होनेसे उन्होंने उसको अपनेही मार्गमें लानेका यत्न किया अर्थात् कहा कि–"हे राजा ! किसलिये तू मिथ्या प्रयत्न करता है ? किस कारण अधिकाधिक प्रपंचमें फँसता जाता है ? यह संसार केवल दुःखरूप और मिथ्या है. इसमें परमात्माका भजन मात्र सार है. संसारमें जन्म लेनेवालेको उसके पीछे लगेहुए प्रारब्धके योगसे नाना प्रकारके सुख, दुःख भोगने पड़ते हैं. प्रारब्धकर्म पीछे लगे रहनेपरभी, उस समयमेंभी चतुराईसे श्रीहरिकी सहायतासे जो पुरुष कुछ पुरुषार्थ (परमात्माकी प्राप्तिके निमित्त) करता है तो वह कभी न कभी इस प्रारब्धजन्य भवबन्धनमेंसे छूटनेका मार्ग, देखकर सोच विचार कर, प्राप्त कर लेता है. इसके शिवाय बाकी जो कुछ होता है वह सब प्रारब्धानुकूलही होता रहता है. निर्धनता, द्रव्य–प्राप्ति, वन्ध्यत्व, पुत्र–प्राप्ति, सुख–दुःख इत्यादि सब कुछ प्रारब्धसे प्राप्त होता है; इस कारण उपायान्तरसे प्रारब्धको मिटानेका यत्न करना बिलकुल मिथ्या है. जो प्रारब्धमें होगा वो हुआही करेगा तो फिर तू किस लिये पुत्र २ करके, दूसरे प्राप्त हुए सुखोंकोभी दुःख करके मानता है ? पुत्र किसका और यह सब किसका ? मैं और मेरा ऐसे अहं भावयुक्त मोहका मूल यह शरीर मांस, हाड़, चर्म, कफ, पीब, रुधिर, चर्बी आदिसे भरा हुआ है. और हाथ, पांव, जांघ, पीठ, मस्तक, मुख आदिक अंग उपांग हैं सो इस स्थूल शरीरमें पंच भूतोंकी तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध हैं और जिसमेंसे मूढ मतिवाले लोग महान् कष्टसे छूट सकें ऐसा जो रागरूप पाश है उसके द्वारा विषयोंमें जकड जाते हैं–(बन्धनको प्राप्त होते हैं) वे कर्म और विषयके मोहपाशमें बँध कर, इस हिलोरे लेतेहुए संसारसागरमें बारंबार गिरकर, ऊंच नीच योनियोंमें आवागमन करते रहते हैं. जो इ

विषयों-(मोहपाशों) मेंसे छूटा विरक्त हो वही मोक्ष पानेके योग्य होता है. यह मोक्षही सर्व कल्याणोंका कल्याण, सर्व सुखोंका सुख, और समस्त आनंदोंकाभी आनंद है. ये पुत्र कलत्र तो जीवकी फांसी हैं. एक पुत्र हो अथवा अनेक पुत्र हों तोभी वे सुखके कारण नहीं. अंतमें उनसे दुःखही है. इस कारण यह आशा छोडकर तू भगवत्प्राप्तिका यत्न कर, जिससे अखंड सुख होगा." इतना समझाने परभी राजाकी पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषा घटी नहीं, जिससे महात्माओंने सोचविचार कर फिर कहा कि-"जगत्में पुण्यसे सब वस्तुकी प्राप्ति हो सकती है. पुण्यके द्वारा ऐहिक (इस संसारके) और पारलौकिक (स्वर्गके) सुखोंकी प्राप्ति होती हैं. पुण्यसे परमात्माभी प्रसन्न होता है. सब कामनाओंकी सिद्धिके लिये पुण्यके समान और कोई दूसरा साधन नहीं है. भगवत्प्राप्तिभी पुण्य करनेवाले पुरुषको सुलभ है. पुण्यसे अन्तःकरण निर्मल होता है. पुण्यके योगसे सद्गुरु-महात्मा संतपुरुषोंका समागम होता है; उनके वचनोंपर विश्वास होने लगता है और उनके उपदेशसे अन्तमें भगवत्प्राप्तिभी होती है. अतएव तू सबको छोडकर यथाशक्ति पुण्यकार्य कर."

राजाको यह वात पसन्द आनेसे अब उसने हरेक भांति-जैसे बने तैसे पुण्यदान करना आरंभ किया. निर्जल गांवोंमें कुए, बावड़ी आदि जलाशय बँधाए; अशक्त, निराधार, अपंग मनुष्यों तथा पशु-पक्षियोंके पोषणके लिये अन्न-जलादिके सदाव्रत नियत किये; निरुद्यमी स्त्री-पुरुषोंको उद्यमसे लगाकर उनके दारिद्र्य दूर किये; बालक बालिकाओंकी सद्विद्याका ज्ञान होनेके लिये ग्राम २ स्थल २ पर छोटे २ बड़े २ विद्यालय स्थापित किये; जीर्ण-शीर्ण देवालयों, धर्मशालाओं व तीर्थस्थानोंका जीर्णोद्धार कराया; इसके सिवाय योग्य स्थलोंमें नूतन धर्मशालायें बनवाईं; वारंवार बड़े २ यज्ञ होम इत्यादि सत्कर्म करके देवताओंको सन्तुष्ट करने लगा. उसका नाम-कीर्ति सुन २ कर देशदेशांतरसे आयेहुए अनेक पंडितों विद्वानों इत्यादिको योग्य आश्रय देने लगा. इस प्रकार वह अपने राज्यके उत्पन्नका बहुतसा भाग ऐसे २ पुण्यके कामोंमेंही लगाने लगा. इतना करनेपरभी राजाका अन्तःकरण स्थिर नहीं हुआ. तबभी वह पुत्र-प्राप्तिके लिये तड़पता रहा. एक इन्द्रियके ज्ञानवाले प्राणीको-एकही इच्छामें निमग्न हुए पुरुषको अपने फंदमें फँसानेवाले कोई न कोई पाखंडी आ मिलते हैं और ऐसे अवसरपर उनकी खूब बन पड़ती है.

वृद्धिचंद्रके साथभी ऐसाही हुआ. उसको पुत्रप्राप्तिके लिये सतत एक निष्ठासे प्रयत्न करता हुआ देख सुनकर एक वेषधारी बाबाजी (पाखण्डी) उस नगरमें आया. उसका शरीर खूब लंबा चौड़ा और हृष्ट पुष्ट तथा भव्य आकृतिवाला था; सारे शरीरपर विभूति रमाई हुई थी; कपाल भुजा, छाती आदि अंगोंपर लाल सिंदूरके टीके तथा काजलकी बिंदियां लगीं होनेसे उसका विचित्र डौल–डौल (रंग–ढंग) दर्शकोंको यकायक अचंभित करता था. वह हाथोंकी चेष्टा और बोलनेकी चालाकीसे हरेक मनुष्यको तुरन्तही किसी न किसी आशामें लुभाकर अपने वश कर लेता था; वह अपने एक हाथमें काठका एक मजबूत डंडा रखता और दूसरे हाथमें, सिंदूर करके पुष्प आदिसे पूजा हुआ तथा ध्वजायुक्त त्रिशूल धारण करता था. उसको देखतेही प्रत्यक्ष जान पड़ता था, कि, वह कोई पाखंडमतानुयायी–वाममार्गी है. उसके गलेमें कई जातके गुँथेहुए तावीज लटक रहे थे; भुजाओंपर नानाप्रकारके जन्त्र तथा तावीज बँधेहुए थे, और हाथोंमें कई तरहके अष्ट-धातुके, हाथीदांतके तथा तांबे–पीतलके कड़े पहन रक्खे थे. उसने कई प्रकारके मारण, मोहन, उच्चाटन इत्यादिक मलीन मंत्रोंके अनुष्ठान करके भूत, प्रेत, पिशाच, भैरव, योगिनी, वैताल आदि नीच देवताओंको साधे होंगे ऐसा लोगोंको प्रत्यक्ष अनुमान होता था. उसकी मुखमुद्रा बड़ी भव्य थी, परन्तु कभी २ दांभिक तथा क्रोधयुक्तभी दिखाई देती थी. अनेक तंत्रोंको जाननेवाला होनेसे वह उसके दर्शनके लिये आनेवाले मनुष्योंको उनसे (तंत्रोंद्वारा) चकित करके उसका मन हर लेता. अपनेपर आस्था बिठा देनेमें तो वह बकसाधु (बगलाभगत) बड़ाही निपुण था.

निदान उसने बड़े ढोंगसे वृद्धिचन्द्रके नगरमें आकर एक प्रसिद्ध धर्म-शालामें डेरा डाला. वहांपर बड़े दंभ और ठाठबाठके साथ आसन लगाकर सिद्ध महाराज बैठे, और अपने दो पुत्रोंको–जिन्हें वह अपने शिष्य बत-लाता था, अपने आनेके समाचार और कीर्ति–महिमा प्रकट करनेके लिये नगरमें भेजा. जैसे गुरु तैसे चेले! उन शिष्योंकाभी अद्भुत वेष था. अब उन्होंने अपनी वाक्पटुता और चालाकीका परिचय देना आरम्भ किया. नित्यप्रति नगरमें गली २ घूमने लगे. थोड़ेही दिनोंमें उन्होंने नगरभरमें सब लोगोंको प्रगट कर दिया कि, 'कोई बड़े सिद्धपुरुष महाचमत्कारी महात्मा यहां पधारे हैं और अमुक धर्मशालामें ठहरे हैं, भगवती महामाया

आदिशक्ति दुर्गाके प्रतापसे वे सबकी मनोकामना पूर्ण करते हैं.' फिर क्या था ? लोगोंके झुंडके झुंड चले महाराजके दर्शनको. संसारी जीवोंको अनेक प्रकारकी कामनायें लगी रहती हैं और जब वे सहजमें पूरी होने-वाली हों तो किसका जी नहीं ललचाता ? जिनका विवाह नहीं हुआ था वे स्त्रीकी कामनासे, जो निर्धन थे वे धनाढ्य होनेकी इच्छासे, जो रोगी थे वे नीरोग होनेकी अभिलाषासे, जो ऋणी थे वे ऋणमुक्त होनेके लिये और निःसन्तान थे वे लड़का-लड़कीके लिये उस सिद्धपुरुषके पास जाने लगे. ऐसेही अनेक पुरुष स्त्रियोंको वश करनेके लिये, अनेक स्त्रियां अपने पतिको वश करनेके लिये, कोई २ पराये धनकी आशामें डूबे हुए, कोई २ दूसरेके प्राणोंके प्यासे, कोई बड़ा पद पानेके लिये, कोई शत्रुका पराजय करनेके लिये, कोई रोजगार धंधेके लिये, कोई परीक्षामें पास होनेके लिये, कोई मुकद्दमा जीतनेके लिये, इत्यादि सैकड़ों सहस्रों नर नारी अपनी मनोवांछा पूरी करानेके लिये सिद्ध महाराजके चरणोंकी शरण लेने लगे. वह सिद्ध-बाबा देवी-उपासक, दुर्गाका परम भक्त था. उसका नाम कालिकाप्रताप था. वह अपने पास आनेवाले लोगोंको बड़े आडंबरसे, बड़ी सफाई और चालाकीसे नाना प्रकारके चमत्कार बताकर उनका मन रंजन करता था और उनकी आशा पूरी होनेके लिये लंबी मुद्दत बतलाता, तथा कईएक सच्चे, झूठे गंडे, तावीज, डोरे, चिट्ठी इत्यादिक बना देता था. संसारके लोग भेड़ोंके झुंडके समान हैं, वे 'गतानुगतिको लोकः' एकके पीछे दूसरा, दूसरेके पीछे तीसरा इसी प्रकार अंधेके समान चलनेवाले हैं. सत्यासत्यको देखने विचारनेवाले उनमें बहुत थोड़े हैं. कालिकाप्रतापके पास आने जाने-वालोंमेंसे उसके कथनानुसार किसीका सीधा पांसा पड़ा अर्थात् दैवयोगसे किसीकी कामना सफल होती तो वह बंगलाभगत दूसरोंको कहने लगता कि-" देखो; अमुक सेठने मेरे कहनेके अनुसार किया तो उसका मनोरथ सिद्ध होगया; परन्तु तुमने मेरी बताई हुई क्रियामें कोई भूल की होगी जिससे तुम्हारा कार्य सिद्ध होनेमें विघ्न पड़ा, परन्तु भाई महाकालीके प्रतापसे आजतक तो यहां आकर कोई निराश न लौटा. तुम धीरज धरो, भगवती तुम्हारा काम पूर्ण करेगी. महामायाके अनुग्रहसे कुछभी असंभव नहीं." इसभांति आड़ा टेढ़ा समझा बुझाकर सारे नगरमें उसने अपनी महिमा बढ़ा दी. धीरे २ राजद्वारतक इसकी बात पहुँच गई.

एक दिन वृद्धिचन्द्र अपनी राजसभामें बैठा था. कईएक सरदार, कारभारी और अन्य सद्गृहस्थ भी वहां उपस्थित थे. उनमें परस्पर विविध भांतिकी चर्चा चल रही थी. होते २ एकने कहा—" अपने नगरमें को दिनसे एक महान् सिद्धपुरुष आया है और दरवारकी वनवाई हुई बड़ी धर्मशालामें ठहरा है. यह बड़ा प्रतापी है. मैंने तो आजतक ऐसा चमत्कारी पुरुष कोई नहीं देखा." दूसरेने कहा—" हां हां, मैंभी जानता हूं. मैंने उसकी वहुत प्रशंसा सुनी है. ऐसा सुना है कि, वह चाहे जैसे अशक्य कार्यको शक्य कर सकता है; असंभवको संभव करता है. अपने नगरमें आकर उसने कईएक वन्ध्याओंके यहां पालने बँधवाये हैं." यह सुनकर तीसरा बोला—" यह वात सही है. मेरा एक पड़ोसी है उसके कई वर्षोंसे वालवचा नहीं होता था; परन्तु इस सिद्धके प्रतापसे एक लड़का हुआ है, वह चार पांच महीनेका होने आया है." चौथेने कहा—" यदि ऐसाही है तो क्या दरवार (राजा) इस वातको नहीं जानते हैं ? हम सब लोग जानते हैं कि, कई वर्ष हुए तबसे महाराज पुत्रकी इच्छासे अनेक प्रयत्न और वडे २ धर्मकार्य कर रहे हैं, तिसपरभी अवतक कुमार वा कुमारी किसीका भी मुख नहीं देखा; मेरी रायमें तो महाराजके सन्मुख इसकी चर्चा चलानी चाहिये. भगवान् करें तो अवश्यही इस सिद्धके प्रतापसे महाराजकुमारका जन्म होगा. मेरे ध्यानमें तो यही आता है कि, परमात्मानेही कृपा करके महाराजके मनका संताप मिटानेके लियेही इस सिद्धपुरुषको यहां भेजा है." इसभांति सवकी एक सम्मति होजाने पर उन लोगोंने अवसर देखकर राजाको सव वृत्तान्त कहा और भलीभांति समझाया कि—" वेशक इस सिद्धपुरुषसे आपका कार्य सिद्ध होगा. यह चमत्कारी पुरुष साक्षात् महामायाका परम भक्त और अनुचर सदृश है भगवतीके प्रतापसे उसने अपने नगरमें अनेक लोगोंको सुखी बनाया है औरभी उसमें खूबी यह पाई गई कि, लोगोंके बड़े २ कार्य पूर्ण करके भी किसीसे कुछ याचना नहीं करता! वड़ा निःस्पृह है. उसको क्या कमी है ? आदिशक्ति महामायाके अनुग्रहसे अष्टसिद्धि नवनिधि उसके हुक्ममें हैं." इत्यादि वचन सुननेसे राजाको उसपर श्रद्धा हुई तत्क्षण आज्ञा दी कि, वह राजसभामें बुलाया जावे. तुरन्त कईएक कार्यभारी, अनुचरोंसहित धर्मशालामें गये. वहां बड़े ठाटसे बैठेहुए का का

प्रतापको देखा. सिद्धमहाराज एक बड़े व्याघ्रांवरको बिछाकर उसपर पद्मासन लगाकर बैठे हुए थे. कईएक स्त्री-पुरुष दोनों तरफ खड़े हुए उनपर पंखा कर रहे थे. कोई हाथ जोड़कर बैठेहुए थे. कोई खड़े २ विनती करते थे. कोई दंडवत् नमस्कार कर रहे थे. कोई 'अंबामाताकी जय' पुकार रहे थे. कोई दुर्गा महादेवीकी जयध्वनि कर रहे थे. इसभांति सैंकडो नर-नारी उनके पास मनवांछित फलकी प्राप्तिके लिये, इकट्ठे हो रहे थे.

कार्यभारी वहां जाकर, सब मनुष्योंके समान, उनके चरणोंमें गिरा और सब वृत्तान्त सुनाया. उसने कहा "आपको श्रीमहाराजने राजसभामें बुलाया है सो आप कृपा करके हमारे साथ पधारो, आपकी सवारीके लिये म्याना तैयार है." कालिकाप्रतापका जो आजतकका प्रयत्न और ढोंग धतूरा था वह सब इसीलिये था. कार्यभारीकी बात सुनकर वह अपने मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ; परन्तु इस समय सचमुच अपनी निःस्पृहता दिखानेके लिये बड़े ढंगसे कहने लगा-"तेरे राजाकी इच्छा हो तो भलेही हमारे पास आवे. हम वहां नहीं आते. जगदंबाके इस झलझलाहट करतेहुए स्थानमें तो जिस किसीको कुछ कामना हो वह अपने आप नम्र होकर आवे." ऐसा प्रत्युत्तर मिलनेपर कारभारी पीछा गया और उसने राजाको सब वृत्तान्त कह सुनाया. इससे राजाको उसपर अधिकतर विश्वास हुआ. राजाने दूसरे दिन स्वयम् उस देवीभक्तके पास जानेका निश्चय किया. दूसरे दिन आह्निक कृत्यसे निपटकर, राजाने कईएक म्याने, पालकी आदिक सवारी तैयार कराई और एक प्रधानको साथ लेकर कालिकाप्रतापके स्थानपर गया. वृद्धिचंद्र जैसा नृपति उसके वहां आया इसकी कुछ परवाह न करके उसने उसकी तरफ देखाभी नहीं. राजाने बिना परीक्षा कियेही मान लिया कि, 'अवश्यही यह कोई महाप्रतापी सिद्ध पुरुष है; इसको नमन करनेमें कोई हानि नहीं.' ऐसा सोच विचार कर, उसने कालिकाप्रतापको प्रणाम किया और अपने ऊपर दया करनेके लिये विनती की. वह अब किस लिये बाकी रक्खे? वह यकायक अपने मुखमेंसे धुँएके गोटेके गोटे निकालता और अग्निकी चिनगारियां फैलाता हुआ बड़ी गंभीरतासे कहने लगा-"बेटा! तेरी क्या इच्छा है? किस लिये महामायाके स्थानपर आये? इतने दिन कहां सो गया था? तेरा सब दुःख रफा दफा (दूर-नष्ट) हो जायगा. माता सब अच्छा करेंगी. महामाया आद्यशक्ति सब प्रकार बलवती है" ऐसी

मीठी २ आशाजनक वाणी सुनकर राजाने-" हे देवीपुत्र ! आपका यहां पधारना, महामायाने मेरे कल्याणके अर्थही रचा हो ऐसा जान पड़ता है. पुत्रकी इच्छासे, आशाही आशामें मैंने अवतक अनेक वर्ष विताये. अनेक उपाय किये तिसपरभी मेरी पुत्रप्राप्तिकी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई. मैंने वहुतेरे औषधोपचार किये, अनेक ज्योतिषियों और सामुद्रिकोंसे भविष्य दिखाया, कईएक अनुष्ठान कराये, कितनेही महात्माओंकी सहायता ली तोभी मुझे कुछ लाभ नहीं हुआ. हे महाराज ! अन्तमें निराश हो बैठा था, इतनेमें श्रीहरिने आप कृपालुके दर्शन दिये. " ये अन्तके शब्द (श्रीहरिने) राजाके मुखसे सुनतेही कालिकाप्रताप यकायक क्रोधित होकर कहने लगा-"अवे वेवकूफ ! यह तेरा 'हरि २' कौन ? मरता है तवभी नहीं समझता 'हरि २' करता है. कैसा आदमी है ! कैसे हरामखोर लोग हैं जगन्माता, आद्यशक्ति, जगज्जननी, महामाया, ऐसी साक्षात् जगदंबा, जो स्थावरजंगमादि सब जगत्की माता है, सबको उत्पन्न करती है, और सबका रक्षण करती है, उसको छोड़कर पागल लोग अन्याश्रय करते हैं. ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर, और रज, सत्त्व और तमोगुणके तीन अधिकारी देवता हैं, उन्होंनेभी महामाया जगदंबाकी सहायता ली है, तो तू कौन ? तेरा हरि कौन ? जो देव सब कार्य करते हैं सो सब महामायाका प्रताप है. उनको जन्म देनेवाली वही आद्यशक्ति है. इस जगत्में शक्ति विना दूसरा है क्या सब जगह शक्ति, शक्ति, और शक्तिही व्याप रही है. सब देवगण उसीके अधिपति इंद्र, सूर्य और नवग्रह, सब नक्षत्रगन सहित चंद्र, पितृ, गंधर्व, यक्ष राक्षस, दैत्य, और महान् २ तीन वर्गके ऋषि* सब नागलोक और सप्तपाताल और सप्त ऊर्ध्वलोक, और यह समग्र ब्रह्मांड शक्तिके आधारसे रहे हैं शक्तिसेही उत्पन्न हुए हैं और अंतकालमें शक्तिही सबका लय करनेवाली है यह महामायाकी उपासना तजकर सब वेवकूफो ' हरि हरि ' करते हो. जो शक्तिको सेवता है उसीको धन्य है और उसीकाही उद्धार है. मातुश्रीको छोड़कर तेरी माफक अन्य किसीका आश्रय लेनेवाला कृतघ्न है और वह माताका प्रसाद पाता नहीं है. सुन वे पागल ! जगन्मातुश्री आद्यशक्ति जगदंवा यही प्राणीमात्रकी सत्य देवता है, उसको तन मन और धनसे भज तेरी सब मनकामना सफल होगी."

---

* देवर्षि, ब्रह्मर्षि, और राजर्षि.

हे यज्ञभू ! देखा ! पाखंडीलोग अपने मतको प्रवल करनेके लिये कैसी चतुराई करते हैं ? चाहे जैसे पंडितको भ्रमा देनेके लिये कैसी ढिठाई करते हैं ? इसी भांति कालिकाप्रतापने उस वृद्धिचन्द्रको भ्रमाकर अपनेपर सर्वथा पूर्ण श्रद्धालु बना लिया. उसको ऐसाही जँचने लगा कि, "यह सिद्ध-पुरुष कहता है सोही यथार्थ है. मैंने अबतक जो २ यत्न किये, तथा जो २ कुछ भगवत्संबंधी कार्य किये सो २ सब वृथाही थे." ऐसा समझकर वह उस देवीपुत्रको कहने लगा-" महाराज ! हे दुर्गापुत्र ! जबतक आपके दर्शन नहीं हुए तबतक यह भाग्यहीन दास निराश होकर इधर उधर भ्रमता भटकता रहा. किन्तु अब सब यत्न छोड़कर केवल आपहीकी आज्ञाका अनुसरण करेगा. अब आप अनुग्रह करके सेवकका दुःख दूर करो." देवीपुत्रने राजाके ऐसें वचन सुनकर अपने मनमें विचार किया कि, 'अब मैं अपने प्रयत्नमें पूरा २ सफल हुआ हूं.' उसने राजाको सपाटेमें लेना शुरू किया. खूब समझाकर पक्का किया और कहा-" जो तुझको तेरी मनकामना पूरी करनेकी इच्छा हो तो आजसे प्रतिज्ञा कर कि, मेरेसिवाय और किसीकी (कोई अन्य मतवालेकी) वात न मानना. सिर्फ मैं कहूं वैसाही करना." राजाने ऐसाही करना स्वीकार किया तब उसने राजाको अपने वाममार्ग (देवीमार्ग) की मंत्रदीक्षा दी और कहा कि " इस महामंत्रका प्रातः सायम् और मध्याह्न, तीनों बार अमुकसंख्याका जप करना. इसके उपरान्त महामायाके दर्शन पूजन तुझे करना चाहिये. इसलिये इस गंगातटपर जो महाकालिका मंदिर है उसमें जाकर तू जप करना और हमभी आजसे वहीं जाकर तेरे कार्यके लिये प्रतिदिन देवीकी पूजा करेंगे. अस्तु सवप्रकारका पुजापा (पूजाकी सामग्री) हमको पहुँचा दिया कर. "

इतनी वातचीत हो चुकनेपर राजा उठ खडा हुआ और महलमें पहुँचनेपर तत्काल उस देवालयको साफ सफेद करनेकी आज्ञा दी. इस नगरमें किसीको वाममार्गपर प्रीति न होनेके कारण कोई विरलाही देवीका पूजन करनेको जाता था. उस मंदिरमें दूसरेही दिनसे राजाके नामकी पूजा होने लगी. कालिकाप्रतापनेभी वहां अपना अखाड़ा जमाया. राजा नित्यप्रति नियमपूर्वक प्रातः सायं दो वार देवीके दर्शनको जाने लगा. 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार नगरभरके लोग उधरही झुक गये. जहां अज्ञान, अविद्या और मोहने निवास किया हो वहां ज्ञान, विद्या और

सत्पदार्थप्रीति कैसे और कहांसे हो ? चित्तको जिस २ पदार्थपर अनुभवसिद्ध मोह होता है उस २ मोहके स्थानमें राग उत्पन्न होता है, यह अज्ञानका लक्षण है. जैसे किसी वृक्षके पिंडमें अग्नि होता है तो वह कभी हरा नहीं होता, ऐसेही जहां मायिक पदार्थपर प्रेम होता है वहां ज्ञान नहीं होता. ऐसे अज्ञानमय नगरमें तथा देशमें वह कालिकाप्रताप राजाके समान होगया. जिसकी, राजाभी आज्ञा माने और उसके कहे अनुसार करे तो फिर उसको प्रजा क्योंकर न माने ? होनहारकी वात 'कागका वैठना और ताड़का गिरना' इस न्यायके अनुसार दैवयोगसे राजाकी रानीको गर्भ रहा और दश मास पूरे होनेपर पुत्र उत्पन्न हुआ. अब तो उस दंडीके मानका पूछनाही क्या ? कालिकाप्रताप आकाशमें चढ़ वैठा और राजा तथा प्रजा सब एकही आवाजसे कहने लगे—"धन्य है कालिकाप्रतापको ! जिसने अपुत्र राजाकी वन्ध्या रानीको आज साठ वर्षमें पलना वँधवाया !" राजा प्रजा सबका वह ईश्वर बनगया. सब उसीकी आंखोंसे देखने लगे. मुखमेंसे निकलनेके पहलेही राजा उसके शब्द उठाने लगा. जो कुछ वह वोले सोही न्याय और वही धर्म. आज कल करते २ राजकुमार पांच वर्षका हुआ, और राजा रानी पुत्रसुखमें निमग्न होगये. इसी अवसरमें एक नया चमत्कार देखनेमें आया.

वसंतऋतुके दिन थे, नगरमें कहींपर द्विजबालकोंके यज्ञोपवीतसंस्कार होते थे, कहींपर विवाहकी तैयारियां हो रही थीं. मंगलबाजोंका घोष सुनाई दे रहा था, कहीं स्त्रियां मांगलिक गीत गा रही थीं. सन्ध्याका समय था. गंगाके निर्मल जलकी पापनाशक धारा गंभीरतासे वह रही थी. छोटी वड़ी नौकाओंमें वैठेहुए विलासीजन लंबे आलापसे गान करते थे, कोई वीणा वजाता था, कोई वंसीकी धुनि कर रहा था, गंगाकी गंभीर लहरोंपर लहरें आ रही थीं. सायंकालकी वेला होनेसे स्नातक ब्राह्मण सायंसन्ध्याका प्रारंभ कर रहे थे. एक सुन्दर घाटपर, विशाल शैलशिखरके समान, और कालिकाप्रतापके अद्भुत प्रतापसे सर्वमान्य हुआ महाकालीका मंदिर, उसके भीतर होतेहुए घंटानादसे गूंज रहा था; उत्तमोत्तम वस्त्रालंकार सजकर सुन्दरियां तथा छैलछबीले पुरुषोंके झुंडके झुंड महादेवीके दर्शन करनेको आते थे. महामायाकी सन्ध्या आरति होनेमें कुछ विलंब था, इसलिये उसका परमभक्त वह कालिकाप्रताप, मंदिरके

बाहरके मंडपमें व्याघ्रांबरपर बड़े आडंबरसे ध्यान करनेका ढोंग करके गोमुखीमें हाथ डालकर बैठा हुआ था. निजमंदिर कि जिसमें देवीकी मूर्त्ति थी उसकी अपेक्षा बाहरका मंडप बड़ा विशाल और खुला हुआ था. पाषाणके बड़े २ मजबूत तथा ऊंचे २ आठ स्तम्भोंसे सुशोभित था. मंडपके तीनों ओर, बाहरके मनुष्योंको भीतर जानेकी पैड़ियां बनी हुई थीं, इससे मंदिरमें जानेसे पहले मंडपमें जाना होता था. देवीके मंदिरसेभी बढ़कर, उस मंडपमें ध्यान लगाकर बैठेहुए कालिकाप्रतापके आगे लोग बड़े भाव-भक्तिपूर्वक नमन करते थे. उस समय एक उन्मत्तके समान घूमता हुआ साधारण डीलडौलका एक पुरुष उस देवालयकी ओर आता हुआ दिखाई दिया. उसके शरीरपर कुछभी अलंकार नहीं था, केवल वल्कल पहनेहुए था. वह सबभांतिसे सीधा सादा होनेपरभी उसके शरीर और मुखमुद्रापरसे ऐसा पाया जाता था कि वह कोई मस्त निःस्पृह और आनन्दी पुरुष है. वह चलता २ चारों ओर ऊपर नीचे देखता जाता और मार्गपरके मनुष्य, गंगाके घाट, नानाप्रकारके वृक्ष इत्यादिको देख २ कर हँसता और प्रसन्न होता हुआ दिखाई देता था. क्षणमें किसी ओर देखकर मानों उससे उसे कुछ खेद हुआ है ऐसी गंभीर मुखमुद्रा बना लेता था. मार्गमें आते जाते वाहन गाड़ी घोड़ावाले और पैदल मनुष्य उसको मार्गमें उन्मत्तकी नाईं झुमता हुआ देखकर 'चलो २ हटो २ रस्ता छांड़ो' इत्यादि शब्द कहते जाते थे तिसपरभी वह बहरेके समान–कुछ सुनताही नहीं इसभांति अपनी इच्छानुसार पूर्ववत् निश्चिन्ततासे चला जाता था. कभी २ वह कुछ सीधा २ चलता और कभी सामनेसे आनेवाले मनुष्य अथवा पशुके साथ जडवत् टकरा जाता; कभी किसीने उसको कुछ पूछा और उसके मनमें आगया तो उसके साथ जैसे बोला जाता तैसेही बोलता और कभी गूंगेके समान चुपचाप रहता. कभी २ किसी वस्तुपर दृष्टिको स्थिर करके एकाग्र चित्तसे अचल खड़ा २ बड़ी देरतक उसेही देखा करता और कभी कुछ तरंग आई तो नाचता कूदता आगे बढ़ता मार्गमेंकी भीड़के कारणसे धक्का मुक्की होता तो वह चुपचाप सहन कर लेता था; कभी किसीने कुछ खानेको दिया तो विना आनाकानीके वहीं खड़े २ वा चलते २ उसे खाता जाता था उसकी ऐसी विलक्षण रीति भांति और ढंग देखकर कभी २ बालक उसके पीछे २ भागते और हुर्रे २

करते उसपर धूल फेंकते और उसको छेडते तब वह उनको देख २ कर हँसता दिङ्मूढ बन जाता; कभी २ भूतकीसी चेष्टा करके दौडने लगता. ऐसा जड़, गूंगा, बहरा और पिशाचकी चेष्टा करता वह पुरुष इस महाकालीके मंदिरके चबूतरेपर आकर थोड़ी देर खड़ा रहा. तदनन्तर मानों गंगापरकी सृष्टिलीलाको अवलोकन करना चाहता है इसलिये गंगाकी ओर देख करके, मंदिरकी महाकालीके सामने पीठ देकर निश्चिन्त बैठ गया. कालिकाप्रताप ध्यानस्थ होकर बैठा था तब भी उसकी दृष्टि मंदिरमें दर्शनको आने-जानेवालोंपर लग रही थी. 'कौनसी सुन्दरी आई !' किसने क्या भेंट चढ़ाई! अमुक कारभारी अभीतक क्यों नहीं आया ! राजा आज विलंब करके आवेगा क्या ?' इत्यादि विचारोंसे चारों ओर चपलतासे फिरतीहुई उस देवीपुत्रकी दृष्टि इस बावलेपर पड़ी. इसको देखतेही कौन जाने कैसे, परन्तु अकस्मातही, उस कालिकाप्रतापको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ जिससे वह कहने लगा-" अरे ! यह दुष्ट कौन है ? अरे क्या इसका काल आ पहुँचा है ? यह चांडाल महामाया कालिकाकी तरफ गांड़ करके बैठा है! इसकी इसे कुछ खबरही नहीं ? अरे ! ओ दुष्ट ! क्या तू इस मातेश्वरीको नहीं जानता है ? माताजीके सन्मुख होकर बैठ, नहीं तो अभी प्राण गँवायेगा. " ऐसे क्रोधयुक्त वाक्य सुनकर वह पुरुष तुरंत उठ खड़ा हुआ और नमस्कार कर देवीके सामने मुख करके बैठा. उस समय, मानों उसको देवीपुत्रके क्रोधवचनोंका कुछभी बुरा नहीं लगा हो इसभांति अपनी स्थितिमें यत्किंचित्भी फेरफार न करके शान्त बैठा रहा और कालिकाप्रताप, मानों 'स्वयं ज्ञानमूर्तिही हूँ' ऐसा ढंग बनाकर फिर ध्यानस्थ होगया. थोड़ी देर पीछे वही विलक्षण पुरुष, सब लोगोंको सुनाकर बड़े उच्चस्वरसे कहने लगा-" अरे ! ओ देवीपुत्र ! तू क्यों चिन्ता करता है ? जिसका तू ध्यान करता है सो तो तेरे पांवके नीचेही है. इसकारण पांवके नीचेही खोज (खोद) तो तेरे हाथमें आवे." ऐसे गूढ वचन सुन करके सब लोग चकित स्तम्भित होगये और मूर्ख दंभी देवीपुत्र घबरा गया. उसने सोचा कि 'यह मेरे मनकी बातको कैसे जान गया ? नहीं; कदाचित् मैंने बैठेहुए इसको उठादिया था इसीलिये यह द्वेषपूर्वक मुझे ऐसा कहता होगा; परन्तु इसपरसे लोग क्या समझेंगे ? मैं तो कालिकाका ध्यान करता हूं. और मैं जिसका ध्यान करता हूं वह मेरे पांवके नीचे है, अर्थात् क्या

कालिका मेरे पांवके नीचे है ? अररर ! ऐसा विचार लोगोंके मनमें आवेगा तो वे क्या समझ बैठेंगे ? यह मेरी कीर्तिके नाशका प्यासा शत्रु है. शत्रुओंका तो निःसंदेह निडरतासे नाशही कराना चाहिये; क्योंकि आज मैं गम खाकर चुप बैठूंगा तो कल कोई मुझे कुछ न समझेगा–मेरी कुछ न सुनेगा " ऐसा विचार मनमें आतेही वह फिर कुपित होकर आग ववूला होगया और भयंकर गर्जना करके बोला–" अरे कोई हाजिर है ? ऐसा कृतघ्न, पापी, चंडाल यहां कैसे आया ? यह दुष्ट कैसे कुवाच्य बोला ? अंबे ! अंबे ! जगन्माता महाकाली मेरे पांवके नीचे है ? इस पापात्माका बोलना कितना अनुचित है ? मातेश्वरीका और मेरा कितना बड़ा अपराध इसने किया है ? ऐसे दुष्टका शिरश्छेद होना चाहिये. इसका मुंह देखनेसे पाप लगता है. अस्तु, विलंब मत करो. सिपाहियो ! महाकालीकी आज्ञा है, अरे खास आज्ञा है कि, इस दुष्टका बलिदान देओ. "

यज्ञभू ! पहले कह चुका हूं कि सारे नगरकी–समस्त प्रजा और राजा वृद्धिचन्द्र उस कालिकाप्रतापको साक्षात् देवीपुत्र मानते थे. जो वह कहे सोही धर्म, वह कहे सोही सत्य, उसकी वाणी दैवी और वह साक्षात् परब्रह्म! राजाभी सदा उसकी आज्ञाके आधीनही रहता था और उसकी आज्ञा होतेही हरभांति उसका अमल करना पड़ता था. फिर चाहे वह अयोग्य हो वा योग्य. उस समय उस देवालयकी परिचर्या–रक्षा आदिके लिये राजाके नियत कियेहुए कितनेही हाथियारबंद योद्धा तयारही थे. उनको कालिकाप्रतापने आज्ञा दी कि, 'इस बावलेका शिरश्छेद करो.' निमेषमात्रमें उस अद्भुत पुरुषके लिये खड्ग निकले और हजारों मनुष्योंके बीचमेंसे उसे देवीके मंडपके बाहर घसीट लेजाकर खड़ा किया. पर जब सिपाहियोंने खड्ग उठाया तो वह विलक्षण पुरुष खिलखिलाकर हँस पड़ा. फिर चुप होगया. फिर मुसकुराने लगा. घातक और दर्शक लोग भयभीत होगये. सब लोग अचम्भा करने लगे कि, मरते समय इसकी इतनी प्रसन्नता कैसे? इसप्रकार लोग आश्चर्य कर रहे थे इतनेमें फिर वह हंसता २ निर्भयतासे कुछ कहने लगा. लोगोंके साथ २ वे घातकभी ऐसी विलक्षणता देखकर स्तब्ध होगये. उनके हाथ जहांके तहां स्थिर हो गये. वह पुरुष अपने शरीरको देख भालकर मानों उसीको कुछ कहता हो इसभांति कहने लगा–"अहो मित्र ! (हे देह!) मेरे साथ अन्तसमय तक मित्रता निबाहनेवाले सद्गुणसम्पन्न परममित्र ! मुझपर तेरा बड़ा उपकार

हुआ है. इतने वर्षोंतक तेरे साथ रहकर मैं कृतार्थ हुआ. तेरी मित्रता मेरे लिये परम उपकार और योग्य सिद्ध हुई है. उससे मुझको ऐसा परिपूर्ण लाभ प्राप्त हुआ है कि, अब कभी तेरे जैसे किसी दूसरे मित्रके साथ मित्रता करनेकी मुझे आवश्यकता नहीं रही. प्यारे भाई शरीर! जो जीव तेरे साथ संबंध होनेपरभी तेरा कुछभी सदुपयोग नहीं करता औ महादुर्लभ अवसरको सहजमें खो देता है, उसपर जगत्पिता बड़ा कोप करता है, जिससे उसको अनन्त कालपर्यन्त तुझसे नीचतर और विलक्षण पंक्तिके केवल अज्ञान (ज्ञान प्राप्त करने योग्यभी नहीं) और पराधीन तथा क्षुल्लकमित्रों (मित्र नहीं वरंच अनेक प्रारब्धकर्म भुगतानेवाले शत्रु) के साथ बसना पड़ता है. परम भाग्यवंत जीवकोही तेरे जैसे सन्मित्र मिलता है कि, जिससे वह (तेरे संबंधमें रहकर) परमात्मपदको पाता है. इस जगत्‌में समस्त जंगमों (चलने फिरनेवाले पदार्थों प्राणियों) से तू श्रेष्ठ है. कल्याण! कल्याण! आज तेरा और मेरा कितनेही वर्षोंका घनिष्ठ संबंध पूरा होना चाहता है. मैं सफल! तू सफल! तुझसे मैं सफल! मुझसे तू सफल! जो मैं जान बूझकर तेरी मित्रताका त्या करूं तो कृतघ्न कहलाऊं; परन्तु ईश्वरेच्छासे सहजही ऐसा होनेका प्रसंग आया है तो अब उसको अटकानेका यत्नभी क्यों करना? तू जानता है कि इस अन्तसमयमें मैं तेरा लालन-पालन करके तुझको कुछभी सुख नहीं पहुँचा सकता. तुझको अपनी मर्जीसे जहां चाहता हूं वहीं, गांवमें वा जंगलमें, वा घरमें, भूमिपर, पत्थर वा घासपर सुलाता हूं. जो कुछ अनायास प्राप्त हो जाता है उसीसे तेरा निर्वाह होता है. उसके शिवाय तुझको खानेके लियेभी कुछ नहीं मिलता. तदुपरान्त और किसी रीतिसेभी मैं तुझको सुख पहुँचानेकी कुछ अपेक्षा नहीं रखता. अब मैं जानता हूं कि, आज आपन जुदे २ होंगे. मैं तुझको छोड़ दूंगा, इस बातसे तुझको कुछभी दुःख न होगा. अबभी तुझको मेरे साथ पड़े रहनेसे कुछ सुख प्राप्त होनेवाला नहीं तो फिर औरभी आपन साथ २ रहनेकी क्या आवश्यकता है? अब तू निडर होकर सचेत हो. तू अपने घर जाना (अर्थात् जावेहीगा) और मैं अपने घर जाता हूं; परन्तु हे भाई! तू चिन्ता मत कर, जबतक तेरा मेरा संयोग है-साथ है, तबतक दूसरे अज्ञान, पामर, क्षुद्र बुद्धिवाले आत्मद्रोहियोंका तुझे स्पर्श नहीं होगा. हे सदाके साथी आत्मा! प्राची दिशामें विस्तरते चंद्रोदयकी ओर तू दृष्टि कर

उसका और तेरा उदय साथही साथ है. प्रेम और शोकको सहन करनेवाला मैं हूं सो अब तू मुझको स्वप्नमें भी नहीं देखेगा; विपत्ति और व्याधिका संग तुझको होनेवाला नहीं. किन्तु दिव्य प्रकाशही तुझको अनन्तमें विलीन करेगा. पंचतत्त्व (देह) पंचतत्त्वमें मिल जायगा, और तू अनन्तमें मिल जायगा. अहो! आया! चला! बस बस. सब शमन हुआ. रम गया. हँस! और सब वृथा बातको छोड़, जगदुद्धारक श्रीहरिके मंगल-नामका उच्चारण कर तथा जुदे होनेके समय महाकृपालुका जयघोष कर."

इतना कहकर वह पुरुष चुप हुआ कि साथ २ उसके शरीरकी चेष्टाभी एकाएक बंद होगई. उसके हँसने और बोलनेसे स्तब्ध हुए घातक जो उसपर खड्ग उठाकर खड़े हुए थे, यह रचना देखकर, अधिकतर विस्मयमें पड़गये. यह मनुष्य इतनी देर क्या बकगया और चुपचाप खड़ा होकर क्या करता है? यह देखकर मानों उसे मार डालनेकी बातही भूल गये हों इसभांति एक घड़ीतक जैसेके तैसे खड़े रहे. इतनेमें मंदिरमेंसे निकलकर कालिकाप्रताप क्रोधसे नेत्र लाल करता हुआ आया और चबूतरेपर खड़ा होकर बोला-"क्यों रे! अबतक महामायाकी आज्ञा अमलमें नहीं लाये? इस कुपात्रको अबतक क्यों जीता रख छोड़ा है? अरे! यह तो बड़ा दांभिक है. यह अपनी मृत्यु टालनेके लिये अनेक ढोंग करके खड़ा है. अस्तु, अब शीघ्रता करो. इस दुष्ट पापात्माका शिरश्छेद करनेमें देर मत करो. नहीं तो, तुम सबको उसके बदलेका दंड दिया जावेगा. जगज्जननी आद्यशक्तिकी अवज्ञा करनेवाले पापीको देहान्त दंड देनेमें मत डरो." ऐसी कड़ी आज्ञाको सुनकर वे घातकलोग चौंक गये और पुनर्वार अपने खड्ग खैंचे, परन्तु वे उसपर प्रहार करें उससे पहलेही उस मुक्तात्माका शरीर चैतन्यरहित हो गया. तत्काल आकाशमेंसे गिरती हुई बिजलीकी नांई, उसके शरीरमेंसे एक तेजबिम्ब लपलपाहटसे प्रकाश करता हुआ निकला और लोगोंकी तथा कालिकाप्रतापकी आंखोंको चकाचौंधी करता हुआ आकाशमें विलीन होगया.

सब कोई स्तब्ध होगये. यकायक यह क्या हुआ इसका भेद किसीकी समझमें नहीं आया. चैतन्य निकल जानेके पीछे शरीर निस्तेज होकर जैसेका तैसा खड़ा था. उसपर एकही साथ कइएक प्रहार होनेपर वह घायल होकर पृथ्वीपर गिर गया. कालिकाप्रतापके कहनेसे तुरन्त उसका

भूमिदाह किया गया. इकट्ठे हुए सब लोग आश्चर्य करते और मनमें खेद पातेहुए तथा भयभीत होते हुए चबूतरेपर आकर खड़े हुए. 'देवीपुत्र अब क्या कहेगा ? इसके मुखसे क्या आज्ञा निकलेगी' ऐसा भय सबके मनोंमें व्याप्त होगया. इतनेमें कालिकाप्रतापने घोर स्वरसे कहा–" ऐ महामायाके सेवको ! अभी तुम लोगोंने प्रत्यक्ष देखा कि, महामाया कालिकाकी अथवा उसके पुत्र कालिकाप्रतापकी अवज्ञा करनेवालेकी कैसी दुर्दशा होती है ? देखते २ वह महामायाके कैसे भोग लग जाता है ? मातुश्री उसको तत्काल बिजलीके रूपसे अपने खप्परमें झपट लेती है. इसलिये सबको सावधान रहना चाहिये. महामाया तथा उसके सेवकका अपराध न करना चाहिये; नहीं तो इस दुष्टकी जो गति हुई है वैसी गति होते कुछभी देर न लगेगी." इतना कहकर समय होजानेसे, उसने बड़ी धूमधामके साथ माताकी आरती की. क्षणभरमें सबलोग दर्शन करके नानाप्रकारके संकल्प विकल्प करते २ अपने २ घर गये.

पाखंडी लोग इस रीतिसे लोगोंको भुलावा देकर अपने आधीन कर लेते हैं और अपने विरुद्ध जानेवालोंका प्राण लेनेमें तनिक भी संकोच नहीं करते. सन्तजनोंको वे अपना शत्रु समझते हैं और हरेकभांतिसे उनको कष्ट देते हैं; परन्तु हे राजपुत्र ! अन्तमें ऐसे लोगोंका अवश्य पराजय होता है. मरनेवाले पुरुषको पहँचाने विना–उसका कैसा प्रताप है और वह कैसा जीव है यह जाने विनाही कालिकाप्रतापने उसको मारडाला; परन्तु उसको स्वयं बड़ी दुर्दशाके साथ मरणा पड़ा. वह उन्मत्त पुरुष कि जिसके स्वभावका मैं वर्णन कर चुका हूं, और जिसको उस देवीपुत्रने मारडाला था, कोई साधारण मनुष्य नहीं था; किन्तु परम भगवद्भक्त था. उसका अन्तःकरण साक्षात् परमात्मस्वरूपमें लीन हो रहा था. वह इस संसारकी सब दृश्य वस्तुओंको मिथ्या समझकर उनसे निःस्पृह रहता था, इस कारण वह दीवाना पागल अथवा चित्तभ्रमवाला है ऐसा लोग समझते थे. वह महात्मा सत्पुरुष वृद्धिचन्द्रराजाके नगरके बाहर एक पवित्र स्थान पर पर्णकुटीमें रहता था. उसकी परम ब्रह्मनिष्ठाको देखकर, निकटके ग्रामका एक ब्राह्मणका लड़का–ऋषिपुत्र उसका शिष्य हुआ था. वह प्रतिदिन उस (गुरु) के पास आकर श्रद्धापूर्वक उसकी सेवा करता और उससे ब्रह्मज्ञान संपादन करता था. कालिकाप्रतापने उस महात्माका घात नहीं कराया था बल्कि उसने स्वेच्छासे योगबलद्वारा इस संसारका त्याग किया था.

उस योगिराजने अपना देहत्याग किया उसके दूसरेही दिन उसका एक शिष्य उसकी पर्णकुटीको गया और आश्रमकी हदमें पांव रखतेही निःश्वास त्यागने लगा. आज उसको सारा आश्रम और मठ, चैतन्यरहित देहके समान निस्तेज दिखाई देने लगा. जब चारों ओर भटका, सब जगह ढूँढा, पर कहीं गुरुजीका पता नहीं लगा; तब वह शिष्य अपने मनमें विशेष शंका लाकर निराश होकर बड़ी देरतक आश्रममें बैठा रहा; परन्तु उसको कुछ चैन नहीं पड़ा. वहभी महात्मा गुरुका शिष्य होनेसे, पूर्ण योग्यताको प्राप्त हुआ था, तथा गुरुकी कृपासे सिद्धपुरुषही हो गया था; इसलिये उसको ऐसा भासमान होने लगा कि, "गुरुजी इस जगत्‌में अब नहीं हैं. ईश्वरेच्छा, परन्तु 'उनका क्या हुआ' इस बातका पता अवश्य लगाना चाहिये" ऐसा निश्चय करके वह वहांसे उठ खड़ाहुआ और इधर उधर भटकता खोजता वृद्धि-चन्द्र राजाके नगरमें गया. वहां उसको सब समाचार मिले. गतरात्रिमें बड़ी त्रासदायक घटना हुई थी. उसकी नगरभर बालक, युवा, वृद्ध, नर–नारी सब चर्चा कर रहे थे. सब मनुष्य उस वृत्तान्तको सुनकर भयभीत हो गये थे. ऋषिपुत्रको यह समाचार समझनेपर बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ. वह सोचने लगा कि, " अरे मेरे गुरुजीका अकाल मृत्यु ? क्या विना अपराधके एक वाममार्गीने उनका घात कराया ? अरेरे ! इस वृद्धिचंद्र जैसे घमंडी राजाके नगरमें पाखंडियोंकी इतनी प्रबलता ? क्या ऐसे पापी पाखंडियोंका और उनको आश्रय देनेवाले राजाका नाश नहीं होना चाहिये ? परन्तु मेरे परम सामर्थ्यवान् गुरुजीने इस अपराधको क्यों सहन किया ? महाप्रतापी, होने-परभी उन्होंने ऐसे दुष्टको दंड क्यों नहीं दिया ? नहीं २, गुरुजी साधारण जीव नहीं थे. वे बड़े महात्मा थे. वे मनआदि इन्द्रियोंके तथा कामक्रोधादि षड्रिपुओंके वशीभूत क्षुद्र प्राणी नहीं थे. इसीसे उन्होंने अपने देहके नाशके लिये दूसरेपर क्रोध करना अनुचित समझकर, शान्तभावसे अपनेही देहपर क्रोध करके उसका साथ-संबंध तोड दिया होगा. वे तो परमात्मरूपको पहुँचेहुए साक्षात् ब्रह्मरूपही थे. उनको क्रोध कैसा ? नाशवंत प्राणीको शासन क्या ? वे तो पहलेसेही देहोपाधिको चाहतेही न थे, फिर जब देह त्यागनेका अपने आप अवसर आगया तो देह त्यागनेमें परम प्रसन्नतायुक्त होने चाहिये थे. लोग कहते हैं कि–" जब उनको मार डालनेके लिये घातकोंके आगे खड़ा करनेमें आया था, तब वे प्रसन्न हुए थे. फिर संक्षेपमें जो कुछ

उन्होंने कहा वह बहुत गूढ था और अपने शरीरको कुछ शिक्षा-उपदेश दे रहे थे ऐसा जान पड़ता था, उस समय वे आनन्दसे हँस रहे थे यह क्या ? मैं अनुमान करता हूं कि, देह त्यागते समय गुरुजीने परम प्रसन्नता प्रकट की होगी और जो कुछ कहा सो भी देहपरही अन्योक्ति होगी. यह सब कुछ सही; परन्तु हा ! मेरा तो ऐसे भगवद्रूप गुरुसे सदाके लिये वियोगही हुआ. उन्होंने तो आसपासकी दूसरी किसी बातपर ध्यान नहीं दिया. क्योंकि वे बिलकुल निःस्पृह थे; परन्तु मेरे लिये तो सर्वत्र लक्ष देनेका समय भगवान्ने अपने आप ला दिया. मेरे हाथमेंसे सद्गुरु जैसा अमूल्य रत्न चला गया, सोभी पाखंडकी प्रबलताके कारणसे. शुद्ध सन्त पुरुषोंका यही काम है कि, पाखंडमतका खंडन करके सद्धर्मकी वृद्धि करें. मैं अब अपने गुरुकी कृपाका प्रताप दिखलाऊंगा और दुष्टोंका शासन करना तथा सद्धर्मको स्थापन करना ऐसी जो शास्त्राज्ञा है उसीका अनुकरण करूंगा." इस प्रकार सोच विचार करके वह ऋषि-शिष्य नगरमें फिरने लगा और गुरुमरणकी बात पूछता हुआ सायंकालकी प्रतीक्षा करता हुआ, और सर्वथा आनन्दरूप समुद्रमें निमग्न अन्तःकरणवाले अखंडरसके भोक्ता बनेहुए परमगुरु अनन्त तेजमें विलीन होगये, इसीका वारंवार विचार करता हुआ वहीं (उसी नगरमें) रहा.

सांझ हुई. लोगोंके झुंडके झुंड महादेवीके दर्शनोंके लिये जाने लगे. वह शिष्यभी गंगातटपरके कालिकाजीके मंदिरतक गया और जिसतरह उसके गुरु बैठे थे उसी प्रकार वहभी देवीको पीठ देकर गंगाकी ओर मुख करके बेधड़क चबूतरेपर बैठगया. कालिकाप्रतापकी जब उसपर दृष्टि पड़ी तब वह क्रोधमें आकर कहने लगा-" अरे आज फिर यह कंटक कहांसे आया ? अरे दुष्ट ! ओ चांडाल ! क्या तुझेभी मौतने आ घेरा है ? एकका तो कल महामायाने बलिदान लिया, और आज तू बाकी रहगया था सो आया है क्या ? उठ मूर्ख ! माताके सन्मुख होकर बैठ, नहीं तो तेरीभी वैसीही दशा होनेमें कुछ देर मत समझ." तुरन्त उसनेभी अपने गुरुजीका अनुकरण किया-माताकी ओर मुख करके बैठा. परन्तु इसपरसे उसने निश्चय समझ लिया कि, मेरे गुरुजीका वध करानेवाला यही दुष्ट है. उसने सोचा कि गुरुजीने इसको कहा था कि-" जिसका तू चिन्तन करता है वह तेरे पांवके नीचे है, सो क्या देखकर कहा था ? यह दुष्ट किसका चिन्तन कर रहा है" ? ऐसा विचार करके उस देवीपुत्रके हृदयको योगबलसे अव-

लोकन करने लगा तो भेद खुल गया. उसने जान लिया कि कालिकाप्रताप किसका चिन्तन करता है और उसके पांवके नीचे क्या है ?

आजभी कालिकाप्रतापके मनमें कल जैसी तरंगें उठ रहीं थीं. उसने डौल तो महादृढ़ ध्यान-समाधिका वनाया था, परन्तु उसका अन्तःकरण संसारके प्रपंचमें भटकता था. ऋषिपुत्रने योगवलसे उसका गुप्त रहस्य भलीभांति जान लेनेपर निश्चय किया कि " जो कुछ गुरुजीने इस दांभिकको कहा था वह यथार्थ था. जिसका यह ध्यान करता है सो तो इसके पांवके नीचेही है; परन्तु हरि ! हरि ! ! गुरुजीने ऐसे अनधिकारीको उसका उपदेश किया सो वड़ा वुरा किया. अस्तु, मैं उसको अपने कियेका फल भुगवाऊंगा. "

आज माताजीका वड़ा उत्सव था. चैती पूनमका दिन था. महाराज वृद्धिचन्द्रभी कुटुंवसमेत महामायाके दर्शनार्थ आनेवाले थे. इस कारणसे सारा मंदिर भलीभांति सजाया गया था. झाड़, फानस, हांडी, झूमर लटकाये गये थे. वड़े २ आईने (दर्पण) और अनेकभांतिके सुन्दर चित्र लगाये गये थे. झकझकाहटसे रोशनी की गई थी. माताजीको प्रिय लगनेवाले भांति २ के धूप सुलगा दियेगये थे. भगवतीको नये २ वस्त्र और आभूषण धारण कराकर खूव शृंगार सजाया गया था. भोगके लिये हृष्टपुष्ट मेष-मेंढे लाकर चंदनपुष्पोंसे सजाकर तैयार कर रक्खे थे. नानाप्रकारके स्वादिष्ट मद्य और आसव माताजीके मधुपानमें भोग लगानेके निमित्त, सुन्दर सुवर्णपात्रोंमें भरकर सन्मुख रख दिये गये थे. औरभी कई प्रकारकी तैयारी करनेमें आई थी. राजाके आनेका मार्ग देख रहे थे. उस समय ऋषिपुत्रने उस ध्यानमग्न कालिकाप्रतापको ललकार कर कहा-" अरे ओ देवीभक्त ! कल इसी समय मृत्युवश होनेवाले पुरुषने जो कहा था वही सत्य है. तू उस महात्माका वध कराकर वृथा पापसे लिप्त हुआ है. सचेत हो अपने आपमें देख. अरे पापात्मा ! तू जिसका चिन्तन करता है सो तो तेरे पांवके नीचे है." अर्र् ! अव क्या कहना था ? देवीपुत्र तो यह सुनकर क्रोधसे जलने लगा; आंखें लाल २ सुर्ख होगईं; दांत पीसने लगा; कलकेही शब्द आज फिर कानमें पड़े मानों उसपर दैव कुपित हुआ हो इस भांति चिल्लाकर कहने लगा-" अरे कोई हाजिर है ? सिपाहियो ! पकड़ो इस दुष्टको-वांधो वांधो, जाने न पावे. आज यहांतक

अच्छा हुआ. पूर्णिमाके उत्सवके दिन माताजीको नरपशुका भोग लगेगा." देवीपुत्रकी आज्ञा पातेही सिपाहियोंने तत्काल उसको पकड़कर मुश्कें बांधीं. चारों ओर लोग घिर आये. सारे मंदिरमें बड़ा शोर गुल मच गया. कितनेही सिपाहियों और उद्धत-स्वभावके दर्शकोंने उस ऋषिपुत्रको लात घूंसे लगाना प्रारंभ किया. किन्तु गुरुकृपाका प्रताप कुछ कम न था, ऋषिशिष्यका सर्वांग वज्रके समान होगया था इससे जो लोग उसको लात मुक्केका प्रहार करते थे उनको यही जान पड़ता था कि वे लोहेकी भीत-दीवारपर प्रहार कर रहे हैं; ऐसा होनेसे उन्हींको चोट लगती थी, न कि उस ऋषिशिष्यको. ऐसा कोलाहल मच रहा था, इसी अवसरमें महाराज वृद्धिचन्द्रकी सवारी मंदिरमें आ पहुँची. सब लोग शान्त होगये. चपरासियोंने लोगोंकी भीड़ हटाकर मार्ग खुला किया "महाराजाधिराजको वड़ी क्षमा है" इत्यादि शब्दोंसे नेकी पुकारतेही राजा मंडपमें आया. उसके साथ २ रानी, राजपुत्र, प्रधान और अन्यान्य कारबारीभी आये. इस समय सिपाही उस ऋषिशिष्यको बांधे लिये खड़े थे! उन्हें देखकर राजाने आश्चर्यसे पूछा-"अरे! यह कौन है? इसको किस लिये पकड रक्खा है?" तत्काल देवीपुत्रने गंभीरतासे कहा-"हे राजन्! यह कृतघ्नी पुरुष महामायाकी अवज्ञा करनेवाला है. कलभी एक दुष्टने मातुश्रीके शापसे प्राण खोये हैं और आज फिर यह चांडाल आया! हे राजा! माताजीकी इच्छाही प्रवल है. आजके उत्सवके दिन अनायास यह नर-पशु भोगके लिये चला आया है." यह सुनकर राजाने प्रश्न किया कि-"महाराज! कल किसने और किस रीतिसे माताजीकी अवज्ञा की थी? उसने माताजीका क्या अपराध किया था?" तव "तू जिसका चिन्तन करता है वह तेरे पांवके नीचे है" इत्यादि इन गुरुशिष्योंका कहा हुआ सब वृत्तान्त उसने कह सुनाया और पीछे 'सन्ध्यासमयकी आरति करके उत्सवका महानैवेद्य तथा यह नरपशु माताजीके भोग लगाऊंगा.' ऐसा कहकर कालिकाप्रतापने महामायाके मंदिरके किवाड खोले और बडी गर्जनाके साथ महामायाका जयघोष करके जल्दी २ मंदिरके भीतर गया. और तैयार धरी हुई आरती सिलगा कर, द्वारके पास आकर खड़ा हुआ. राजा आया है, उसको सब प्रकारका सेवाचातुर्य तथा पूजाकी धामधूम दिखानेकी धुनमें उसने मूर्त्तिकी ओर तो देखाही नहीं. घंटानाद होने लगा; मंडपमें

लटकते हुए बडे घंटोंके घणणणकारसे मंदिर गूंजने लगा. नगारे और नौबतें बजने लगीं. दर्शन करनेवाले नरनारियोंकी तालियोंका बडा शब्द हो रहा था. उस समय कालिकाप्रताप बड़े आडंबरसे, परदा खोलकर, जगमगाती हुई प्रज्वलित आरती लेकर देवीकी आरती उतारने लगा. परन्तु ज्योंही देवीपुत्रने 'जय आद्यशक्ति मा! जय आद्यशक्ति'का प्रारंभ किया तबही तत्काल राजासहित सब लोगोंकी दृष्टि देवीके सिंहासनपर पड़ी और, अत्यन्त आश्चर्यके साथ राजा बोल उठा "महाराज! आप किसकी आरती उतारते हो? माताजी कहां हैं? महामायाका सिंहासन तो खाली पड़ा है. भगवती कहां गई?" देवीपुत्र तुरन्त चमक कर देखता है तो सचमुच सिंहासनपर कालिकाजीकी प्रतिमा नहीं. उसका मुख पीला पड़ गया और बड़ा लज्जित हुआ; परंतु उसने एक चालाकी खेली. तुरंत दरवाजा बंद करके सबको समझाने लगा कि–' आज उत्सवका दिन है इसलिये माताजी कहीं खेलनेको गई होंगी ' राजासहित सब लोग माताजीके पधारनेकी बाट देखते २ घडी देरतक खड़े रहे. इतनेमें तो उस देवीपुत्रकी बड़ी दुर्दशा होगई. वह अत्यन्त आश्चर्यसे घबरा गया और 'अब क्या करना, अपनी लज्जा कैसे रखना और प्राण कैसे बचाना' इत्यादि बातोंका वह विचार करने लगा. उसने ऊपराऊपरी–एकपर एक अनेक जंत्र मंत्र और स्तुति–प्रार्थना करके देवीको प्रसन्न करने तथा पीछी स्वस्थान पधारनेके बहुतेरे उपाय किये; परन्तु सब व्यर्थ! उस देवीपुत्रके चिरकालतक भलीभांति कियेहुए अर्चन-पूजनसे देवी परम प्रसन्न और सन्तुष्ट होगई थी–अघा गई थी, तब भला उसको पीछे पधारनेकी इच्छा कैसे होगी?

कठिन समस्या तो अबही थी. हे यज्ञभू! देख, पापकर्मसे सन्तुष्ट किये हुए देवताभी पापात्मा प्राणीके पापकर्मका दंड भुगतनेमें कुछ भाग नहीं लेते–पापकर्मका बदला तो करनेवालेकोही स्वयं कपालपर हाथ रखकर भुगतना पड़ता है. अब कालिकाप्रतापके शिरपर महादुस्तर संकट आ पड़ा. उसने वारंवार " ओ मा! ओ मैया! हे मातुश्री! हे जगज्जननी!" कह २ कर बहुतसी हांक मारी; परन्तु देवीने दर्शन दियेही नहीं. निदान, राजाके तथा लोगोंके खलबली मचानेसे हारकर उसने मंदिरके पट उघाड़े किन्तु सिंहासन तो बिना प्रतिमाके खाली पड़ा हुआ दिखाई दिया. तब राजाने देवीकी बहुतसी विनती की और समस्त लोगोंने एक साथ बड़ी

भारी गर्जना करके भगवतीका जयघोष किया. उस समय मंदिरके भीतरके गह्वरमेंसे एक बड़ा भारी शब्द सुनाई दिया. सब शान्त होनेपर परम अदृश्य गंभीर गिरासे, मानों कोई क्रोधांध होकर कह रहा हो इसभांति सबके सुननेमें आया. हे यज्ञभू ! यह गंभीर वाणी देवी कालिकाकीही थी, और वही अदृश्यरूपसे मंदिरमेंसे इसप्रकार कहने लगीः—

"हे राजा ! अरे दुष्टकी संगति लगाहुआ बुद्धिचंद्र ! अब मैं कदापि तेरी अपवित्र सेवाको ग्रहण नहीं करूंगी. केवल अपनी जिह्वाके स्वादके लिये और अपने शरीरका पोषण करनेके लिये, अवाचक प्राणियोंका मेरे निमित्तसे वध करते हैं वे मेरे भक्त नहीं हैं. किन्तु मेरे द्रोही हैं. वे अपने उन पापकर्मोंका यथार्थ फल भोगते हैं और मैं उसमें उनकी कदापि सहायता नहीं करती. मैं सच्चिदानन्द परब्रह्मकी मायाशक्ति हूं. मैं उस परमात्माके त्रिगुणात्मक विभूतिरूप धारण कियेहुए ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीनों देवताओंकी सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती आदि शक्तिरूपसे सर्वत्र व्याप्त हूं. मेरा काम दुष्टोंकी सहायता करनेका नहीं है, किन्तु उनको उनके कर्मोंका दंड देनेका है. इस दुष्ट कालिकाप्रतापके कपटपाशसे तू बँध गया है, इससे तेरे राज्यमें और तेरी आँखोंके आगे होते हुए अधर्मकी तुझको खबर नहीं पड़ती. फिर वह अधर्मभी कैसा कि परमात्मस्वरूपको पहुँचे हुए और साक्षात् ब्रह्मस्वरूप महात्माओंका—जो मेरेभी वन्दन करने योग्य हैं, उनका विना अपराध, निर्भयताके साथ वध किया जाता है, तिसपर आज दो दिन होगये तो भी तेरी ओरसे इस विषयमें कुछ पूछताछ—छानबीन नहीं हुई. हे दुष्ट भूपति ! धिक्कार है तुझे. तू इस महाचांडाल कालिका-प्रतापका, जो केवल पाखंडमतका प्रवर्त्तक है, उसकाही अनुसरण करता है. धिक् ! धिक् ! ! धिक् ! ! ! इस दुष्टने कल बड़ी क्रूरतासे एक महापुरुषका वध कराया है और आज फिर अधूरेमें पूरा जैसा, मेरे उत्सवके निमित्तसे उस मृतमहात्माके कृपापात्र शिष्यका—परमात्मपदको पहुँचे हुए, शुद्ध, सात्विकस्वरूप, जीवन्मुक्त, तेरे पीछे खड़ेहुए ऋषिशिष्यका मेरे भोग धरनेकी इच्छा करता है. धिक् ! धिक् ! ! इस महाचांडाल ब्रह्मघातीको मैं क्या दंड देऊं ? अरे राजा ! इन ब्रह्मपदको पहुँचेहुए महात्माओंका कैसा प्रताप है सो क्या तू नहीं जानता ? ये साक्षात् भगवद्रूप हैं. इनको देखकर कालभी कंपित होता है. इंद्रादिक देवता इनकी आज्ञा मानते हैं,

और सबके ऊपर इनकी सत्ता चलती है. इनके दर्शनमात्रसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं. गंगादिक तीर्थ समस्त जगत्के पापको भस्मीभूत करते हैं; परन्तु उन तीर्थोंका पाप ब्रह्मरूप महात्माओंसे नाशको प्राप्त होता है. ऐसे महापुरुषोंकी अवज्ञा करनेवालेको मैं नहीं देख सकती तो फिर उनकी देहका नाश करनेवालेको तो बड़ा कड़ा दंड मिलना चाहिये. अस्तु, हे राजा! मेरे नामको तथा मार्गको बुरे कर्म करके दूषित करनेवाले इस दुष्ट कालिकापुत्रको यहाँसे हटाकर दूर कर, इसका काला मुँह कर और इसको उचित दंड दे. इस महात्मा ऋषिशिष्यको प्रसन्न कर, इसकी आज्ञाको मान. इसीको अपना गुरु बनाय, इसहीकी भलीभांति सेवा कर, जिसको मैं अपनीही सेवा समझूंगी."

अब अदृश्य वाणी बंद होगई. राजा तथा प्रजाके चित्तमें आश्चर्यने अपना घर किया. कालिकापुत्रपर महाकाली भगवतीके कियेहुए आक्षेपसे सब लोग भौंचकसे रह गये. देवीपुत्रके आत्माको छुटकारा होनेका कोई मार्ग नहीं मिला. वह निःसत्व, निस्तेज, निश्चेष्ट होकर जैसेका तैसा खड़ा रह गया. उसको कोई उपाय नहीं सुझ पड़ा; सब चालाकी और उस्तादी धूरमें मिल गई; प्रतापकी महिमा मिटगई; वह जितनाही ऊंचा चढ़ा था उतनाही वरंच उससेभी अधिकतर नीचा-गहरे खड्डेमें गिरा. लोग उसको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे. राजाने ऋषिपुत्रकी ओर दृष्टिपात किया. उस समय वह महात्मा अति भव्यस्वरूप, शान्त, गंभीर, निर्भय तथा महातेजस्वी दिखाई दिया. पामर लोगोंको उसकी ओर आंख उठाकर देखनेकी शक्ति न रही, तो फिर उसके पास जानेकी तो बातही कैसी? महामाया कालिकाके परोक्ष वचनोंको सुन करके, राजा अत्यन्त नम्र होकर उस महानुभावके चरणोंमें गिरा और "क्षमा करो, क्षमा करो" इत्यादि शब्द कहता हुआ बारंबार प्रणाम करने लगा. अनन्तर बहुतसी विनती करके, उसने ऋषिपुत्रको उसके गुरुकी मृत्युका सब वृत्तान्त पूछा. उसके उत्तरमें ऋषिशिष्य कहने लगा-"हे राजन्! मेरे पुण्यात्मा गुरुदेव फिरते २ आकर इस मंदिरके चबूतरेपर बैठे, और गंगाकी ओर मुख करके सृष्टि-सौंदर्य-ईश्वरकी अद्भुत लीलाका अवलोकन करने लगे. उस समय इस दुष्ट पाखंडीने उनका अपमान करके, उनको सन्मुख बैठनेको कहा; परन्तु महात्मा लोगोंके तो मान अपमान दोनों समान हैं इससे इसके कुवाच्योंपर

कुछ ध्यान न देकर इसके कहनेके अनुसार मंदिरकी ओर मुख फेर लिया: उस समय जहां कालीपुत्र ध्यानस्थ होनेका ढोंग करके बैठा हुआ था वहां उनकी दृष्टि गई. हे महाराज ! क्या महात्मा पुरुषोंसे मनकी बात छिपी रह सकती है ? नहीं. उन्होंने दिव्यदृष्टिसे इस पाखंडीके मनका रहस्य जान लिया, और इसपर दया करके, इसको कहा कि–' अरे देवीभक्त ! तू क्यों चिन्ता करता है ? जिसका तू चिन्तन करता है वह तो तेरे पांवके नीचेही है. यह सुनकर, उनके प्रभावको न जाननेवाले इस दुष्टने बड़ा कष्ट देकर उनका वध करवा डाला ! मैं उनको ढूंढ़ता खोजता यहां आया तो आजभी मैंने इसको उसी वस्तुका चिन्तन करता देखा. इसपरसे मैंने जान लिया कि, मेरे गुरुजीका घात करानेवाला यही दुष्ट है. यही पापात्मा ढोंग करके सबको ठगाता है. तिस पीछे मैंने अपने गुरुदेवकाही वचन इसको कह सुनाया, परन्तु वह इसको न सुहाया. इसने लोगोंको दिखानेके लिये ऐसा ढोंग कर रक्खा था कि, यह तो आद्यशक्तिकाही चिन्तन करता है. हे राजा ! अब इसे पूछ कि, तू किसका चिन्तन करता था ? जो यह नहीं कहेगा तो मैं इसी समय बताऊंगा. "

इसपरसे राजाने कालीपुत्रको डांट डपटकर पूछा परन्तु उसने सीधा उत्तर नहीं दिया. तब ऋषिशिष्यने कहा–महाराज ! धूर्त्त दुष्टात्मा लोग अपने अपराधको कभी स्वीकार नहीं करते हैं. वे हरेक प्रकारसे अपनेको लोगोंमें बड़ा बहुमान्य कहलानेका प्रयत्न करते हैं. परन्तु हे राजा ! यह किसका ध्यान करता था सो इसके अन्त:करणकी बात सुन. उस समय यह कालिकाप्रताप अपने लड़केके विवाहके लिये तुझसे विपुल द्रव्य निकलवानेकी योजना कर रहा था. यह अपने मनमें यही चिन्तन कर रहा था कि आज कल लगनसरा (विवाह होनेका अवसर) है सो राजा आवे तो उससे कहकर पुत्रके विवाहके लिये बहुतसा धन प्राप्त करूं. इस रहस्यको जान लेनेपर मेरे कृशलु गुरुजीने इसको कहा कि ' तू चिन्ता मत कर. तू जिसका चिन्तन करता है सो तेरे पांवके नीचेही है ' परन्तु यह मूढ इसका भावार्थ नहीं समझा. हे राजा ! इस बातकी प्रतीतिके लिये इस कालिकाप्रतापके आसनके नीचे इसी समय खुदवाकर देख कितना द्रव्य यहांसे निकलता है. अत्यन्त आश्चर्यसे चकित होकर राजाने तत्काल अनुचरोंको आज्ञा दी और वहांके संगमरमरकी लादियोंको हटवाकर उनके

नीचे खुदवाने लगा. दो चार हाथ खोदनेपर एक बड़ा ताम्रपत्र मिला. उसमें लिखा था कि, इससे तीन हाथ नीचे तांबके बडे २ सात घड़े गढे हुए हैं; वे अनुक्रमसे लक्ष लक्ष चांदी और सुवर्णकी मुद्रायें, हीरा, मोती, माणिक, पन्ना, और नीलमणि इन्होंसे भरे हुए हैं. ज्यों २ खोदते गये त्यों त्यों एकके नीचे एक इसी क्रमसे, बड़ी मजबूतीसे बंद किये हुए सातों घड़े निकले. वह द्रव्य निकालकर देखनेसे सब लोगोंके आश्चर्यकी सीमा न रही. मंदिरके मंडपमें अपार द्रव्य—हीरा माणिक आदि रत्नोंके ढेर लग जानेसे सारा मंडप जगमगाने लगा. अनायास अपार द्रव्यभंडार हाथ लगनेसे राजाने परम प्रसन्न होकर बड़े प्रेमके साथ अत्यन्त विनीतभावसे ऋषिशिष्यके चरणोंमें मस्तक रख दिया और विनती की, कि—" हे महात्मा ! हे साक्षात् भगवद्रूप परब्रह्मपुत्र ! आपके प्रभावको न जाननेवाले तथा आपके महान् प्रतापी गुरुदेवका घात करानेवाले इस दुष्ट कालीपुत्रको मैं बड़ा कठिन दंड देऊंगा; आपके समक्षही इसको यमलोकको भेज देऊंगा; परन्तु महाराज ! मुझ अज्ञानीका अपराध क्षमा कीजिये. मुझपर दया करिये. आपका प्रताप साक्षात् महाकालिकासेभी सहन नहीं हो सका तब मेरे जैसे पामरकी सामर्थ्य कितनी ? हे महात्मन् ! हम सब आपके शरण हैं ? मैं आपका शिष्य हूं. मुझपर अनुग्रह करो." इस प्रकार स्तुति करते हुए वृद्धिचंद्रको महानुभाव ऋषिशिष्यने अपने पवित्र हस्तस्पर्शसे उठाकर बैठा दिया और उसके मनका समाधान—शान्ति की. राजाने कालिकाप्रतापको कैद करके बंदीगृहमें भेजनेकी आज्ञा दी और ऋषिशिष्यके साथ आप (राजा) उत्तम रथमें सवार होकर राजभवनको गया.

राजगृहमें राजाने ऋषिशिष्यकी परम भावभक्तिपूर्वक अर्घ्य पाद्यादिसे पूजा करके भोजन पानेके लिये विनती की; परन्तु अपने गुरुकी उत्तरक्रिया किये बिना उसने अन्न जल लेना अस्वीकार किया. तब राजाने तत्काल जहां उस महात्माका शव गढ़ा हुआ था वहांसे उसे निकलवाकर, उस ऋषिपुत्रसे सौंप दिया. उसने उसे गंगातटपर लेजाकर, चंदनकाष्ठादिकी चिता रची और यथाविधि अपने गुरुका अग्निसंस्कार किया. दूसरे दिन राजाने अत्यन्त कुपित होकर कालीपुत्रको कटिपर्यन्त भूमिमें गड़वा दिया और लोगोंको कड़ी आज्ञा दी कि, सब लोग इसके पांच २ पत्थर मारो

अथवा शस्त्रके घाव करो. ऐसा दंड मिलनेसे वह सिसक २ कर, कई दिनों-तक सड़ २ कर, घोर कष्टसे चिल्लाता हुआ भयंकर यमदूतोंके आधीन हुआ.

तदनन्तर उस राजाने उस ऋषिशिष्यका शिष्य बनकर निरन्तर उसके वचनामृतको सद्भावसे श्रवण करके पूर्णज्ञान संपादन किया, जिससे उसने जीवन्मुक्त होकर परमात्माके स्वरूपको प्राप्त किया. महात्मा पुरुषोंके दर्शन, सेवन और अनुसरण करनेसे परम सद्गति होती है.

इस इतिहास परसे तुझे ज्ञात हुआ होगा कि, कुपात्र (अपात्र) को उपदेश करनेवाले पुरुष उक्त ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी नाईं प्राण खोते हैं और ऐसे महात्मा-ओंको दुःख देनेवाले दुराचारी पुरुषकी उस पाखंडी देवीपुत्रके सदृश दुर्गति होती है. हे पामरजनो ! जिस ब्रह्मरूपको खोजना चाहिये–जानना चाहिये–विचारना चाहिये, वह स्वरूप तुम्हारेही पास है; तुम्हारे भीतरही है; परन्तु जो उसको जानता नहीं, विचारता नहीं, वह किस प्रकार देख सके ? इसी कारण वह भूलमें भ्रमता रहता है. सूर्यचंद्रका स्वरूप अपनेही नेत्रोंसे देखा वा जाना जा सकता है तथा अनुभव किया जा सकता है; परन्तु वह किसी दूसरेके द्वारा नहीं जाना जा सकता. इसी प्रकार आत्माका स्वरूप अपने अंतश्चक्षु खोलकरही समझने विचारनेसे प्रत्यक्ष होता है, तबही जीव–ब्रह्मकी एकता समझी जा सकती है और उसको समझ लेने पश्चातही परमात्मस्वरूपको प्राप्त कर सकता है.

हे सचिव ! (यज्ञभू अपने प्रधान विशालकेतुको कहता है) जिस समय ये महात्मा मुझको यह आख्यान सुना रहे थे तब जब उस ऋषिशिष्यके गुरुको कालिकाप्रतापकी आज्ञासे मारनेके लिये घातक लोग शस्त्र खैंचकर खड़े हुए, उस समय महात्माने हँसकर जो गूढ़ भाषण करना आरंभ किया था, वह किस लिये था, यह बात पूछनेकी मेरे मनमें इच्छा हो रही थी, किन्तु उक्त ब्रह्ममूर्ति तत्क्षण अपने आप कहने लगेः–" धन्य है राज-पुत्र ! सद्गुरुके पास तेरे जैसेही सच्छिष्य होने चाहिये और तेरे जैसेही श्रोता होने चाहिये; क्योंकि वे गुरुके प्रत्येक वचनपर अपनी मनोवृत्तिको लगाकर उसका भलीभांति मनन करते हैं. सद्गुरुके हरेक वचन मनन करनेके योग्यही होते हैं. जो कि, मैंने तुझे पात्रापात्रके विचारके लिये इतिहास मात्र कहा था और उसका फल–अपात्रको उपदेश करनेसे विड-म्बना और सन्तपुरुषको दुःख देनेवाले दुष्टको अपने आप योग्य दंड मिल

जाता है, यह दिखलाया था, तथापि अपने आपको जाने विना आत्मा-परमात्माके स्वरूपके दर्शनके लिये तड़पना बड़ा भारी अज्ञान है सोभी इस दृष्टान्तका तात्पर्य था. सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो इस दृष्टान्तमें भिन्न २ बहुतसे अध्यात्मप्रकरण आ गये हैं. पाखंड करनेवाले कैसे होते हैं, लोगोंको किसप्रकार अपनी तरफ खेंच लेते हैं. वे कितना बड़ा दंभ और आडम्बर करते हैं, अपने लिये—अपनी बड़ाई—प्रतिष्ठाके लिये वे ब्रह्महत्यादि महापातक करनेमें नहीं डरते. औरभी ब्रह्मवित् परमात्माके स्वरूपको जाननेवाले पुरुषोंके लक्षण कैसे होते हैं, वे केवल बावले और भ्रान्तके समान रहते हुए जड, मूक, बधिर और भूतके समान वहिराचरण करते हैं. जो कहा जाय—चाहे गालियां दी जायँ अथवा उनकी प्रशंसा की जाय तो भी उनको इसका कुछ खेद नहीं होता, न आनन्दभी होता है; वे अपना शरीर नष्ट हो वा जीता रहे इस बातकी कुछ भी चिन्ता नहीं करते; तथा मरते समयभी उनको कुछ दुःख वा शोक नहीं होता. इत्यादि अनेक उदाहरणोंका समावेश ऊपरके इतिहासमें होगया है. इसीभांति यह तेरे पूछनेकाभी एक दृष्टांत है, इसलिये श्रवण कर. उस महात्मा—ऋषिपुत्रके गुरुदेवने मरते समय सब लोगोंके समक्ष खड़े होकर जो कुछ कहा था सो अपने देहके प्रति कहा था. उसको अपना मित्र ठहराया था—जन्मसे मरणपर्यन्त क्षणभरभी जुदा हुए विना, वह (देह) उनके साथ रहता था और देहरूप अपने मित्रका अपने (आत्मा) पर परम उपकार होना स्वीकार किया था. इस जगत्में प्राणधारी मात्रके जो देह हैं (स्थावर जंगमादिक समस्त जलचर, स्थलचर व गगनचर प्राणियों—मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि तिर्यक् जीवमात्रके जो देह हैं) उन सबमें नरदेह अत्यन्त श्रेष्ठ है, और जब परमात्माकी पूर्ण कृपा होती है तब जीवको यह मनुष्यशरीर प्राप्त होता है. आत्मा मनुष्यदेहका संग करके अनेक सत्कर्म कर सकता है, सद्विद्या प्राप्त कर सकता है, तथा भगवद्भक्ति करके परब्रह्म परमात्मा पुरुषोत्तमके चरणकमलोंकोभी इसी मनुष्य देहद्वारा प्राप्त कर सकता है. इसलिये उस महात्माने अपने देहको कहा था कि—" हे मित्र ! तेरी मित्रता मुझे बड़ी उपकारक और मेरे योग्यही हुई है, कि, जिससे मैंने हरिभक्ति करके परमात्माके स्वरूपका ज्ञान संपादन किया है और मैं जीवन्मुक्त होगया हूं. अब मुझको तेरे परम हितकारक मित्रकी आवश्यकता नहीं होगी अर्थात् मुझे पुनर्वार नरदेहकी कदापि

आवश्यकता नहीं होगी. "नृदेहमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" 'नरका देह धर्मसाधनोंका मुख्य साधन है.' उसने फिर कहा कि, 'हे देहमित्र! तेरा दुर्लभ संग प्राप्त होनेपर भी जो मनुष्य तुझको वृथा गँवा देते हैं अर्थात् अनेक कष्टोंको सहन करके धारण किये हुए इस मनुष्यशरीरके महत्त्वको नहीं समझते, तथा उत्तम सत्कर्म नहीं करते, अपनी आयुको केवल हँसने खेलने, परनिन्दा, विलास, विषयादिक ऐसे २ अनुचित कार्य करनेमें पूरी कर देते हैं, उनपर अवश्यमेव परमात्माका कोप होता है. मोहमायामेंसे छूटने–संसारसागरको तरने–रूप साधनको साधनके लियेही परमात्माने यह मनुष्यशरीर दिया है, उसको सहजमें गवा देनेपर दयालु प्रभु क्यों कर कुपित न हो? परमात्माके कोपके कारण जीवोंको अन्य नीचे दर्जोंके (हलके अयोग्य मित्रोंके) साथ रहना पडता है अर्थात् नरदेहके दुर्लभ प्रसंगको वृथा खो देनेवाले जीवोंको और २ विलक्षण (नरदेहसे भिन्न, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जलचर इत्यादि योनियोंके देह कि, जिनमें ज्ञानप्राप्तिका सुख नहीं है) नीचदेह धारण करने पडते हैं और ऐसे नीचदेहमें वसनेसे संसारसे पार उतरनेका कोई साधन नहीं वन सकता.

उस महात्माने अपने देहके प्रति ऐसी उक्ति करके नरदेहका माहात्म्य प्रगट किया था. नरतनु परम दुर्लभ है, उसमेंभी आत्मानात्माका विवेक अधिकतर दुर्लभ है, उसमेंभी स्वस्वरूपका ज्ञान अधिकतम दुर्लभ है. नर–शरीरके योगसे जीव साक्षात् शिव (ब्रह्म) रूप वन सकता है. प्रत्यक्ष मोक्षका द्वार यही नरदेह है. इस महादुस्तर भवसागरको तर जानेकी श्रेष्ठ नौका यही मनुष्यशरीर है. नरतनु शरीरमात्रका अधिपति है. अन्य समस्त तनुधारियोंपर उसकी सत्ता चलती है. तू प्रत्यक्ष उदाहरण देख कि, एक नरदेहधारी पुरुष अपनी आत्मशक्तिके द्वारा वड़े ऐरावत जैसे हाथीको अपने वश करके अपनी सत्ताके अधीन रख सकता है. लंबे क्यों जाना चाहिये? क्या तूने कभी देखा वा सुना है, कि, किसी हाथी अथवा विकराल सिंहने किसी पुरुषको अपना वशवर्ती कर लिया है?

यह सब ठीक, परन्तु अबतक मैंने तुझको जो इतिहास सुनाया उसका असली तात्पर्य तो औरही है. आज पहले तूने अपने मनमें यह शंका की थी, कि, 'परमात्मा जो सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, तथा सर्वेश्वर है उसकी

सेवा करना और परमप्रेम–भक्तिसे सर्वव्यापी प्रभुके स्वरूपको प्राप्त करना, यह सर्वोत्तम सिद्धान्त है सो उस परमात्माको प्राप्त करनेका कौनसा मार्ग है ? क्या वह कहीं अन्यत्र रहनेवाला है अथवा हमसे जुदा है ?

तेरी इस शंकाका समाधानरूप ऋषिपुत्रके गुरुका कालिकाप्रतापको कहा हुआ वचन था. उन्होंने उस ध्यान करते हुए देवीपुत्रको ध्यानमार्गसे इधर उधर दौड धूप करता भ्रमता हुआ तथा जिसका करना चाहिये उस वस्तुका मनन–स्मरण नहीं करते हुए उसको दूसरीही वस्तुका चिन्तन करते देख, उसका भ्रम मिटानेके लिये उसपर दया करके ही कहा था कि– “ हे देवीभक्त ! तू जिसका चिन्तन करता है, वह तो तेरे पांवके नीचेही है अर्थात् तेरे पासही है; इस लिये तुझको अन्यत्र यत्न नहीं करना पडेगा, इसलिये वृथा दौड धूप क्यों करता है ? ” उस महात्माका यह वचन बड़ा गंभीर–परम गूढ था. इसका एक दृष्टांत तो मैंने तुझको स्पष्टरीतिसे कह सुनया (कि तू जो द्रव्यकी चिन्ता कर रहा है सो तेरे पांवके नीचेही है और उसी जगह खोदनेसे धनके घड़े निकलेभी थे.) किन्तु इसका महागूढ और आनन्ददायक अर्थ औरही है. महात्मागण अपने अन्तःकरणमें सदा सर्वदा परमात्माके स्वरूपकाही चिंतन किया करते हैं और इसीलिये वे जो कुछ बातचीत करते हैं सोभी उसीके संबंधमें करते हैं. इसीसे उन्होंने उस ध्यानीको इस अभिप्रायसे कहा था कि–“ अरे ! तू ध्यान लगा कर तो बैठा है, परन्तु तेरा सब ध्यान दांभिक है, और इसका तुझको कुछभी फल नहीं मिलेगा; क्योंकि जो वस्तु पासमें है उसको न देखते वा न जानते हुए अन्यत्र ढूंढनेमें वृथा कष्ट करनेसे वह वस्तु किस प्रकार मिल सकती है ? तू जिस द्रव्यका चिन्तन करता है वहभी तेरे पासही है अर्थात् ध्यान करनेयोग्य तथा चिन्तन करने योग्य जो परमात्माका स्वरूप है वह तो तेरे पासही अर्थात् वह तूही है, तेरे घटमें है, तुझमेंही है, तेरेही आत्मामें है, जब तू उसको जानेगा तथा देखेगा तब तेरा चिन्तन किया हुआ सारा द्रव्य तुझे मिल जायगा. ऐसा अमूल्य बोध उस वचनमें समाया हुआ है, कोई मनुष्य थोड़ासा सुवर्ण प्राप्त करनेके लिये बहुतसा प्रयत्न करता था. जब वह जानगया कि, उसके हाथमें जो अँगूठी है उसमें लगीहुई मणि– पारस मणि है कि, जिससे स्पर्श होतेही लोह जैसी निकृष्ट धातु सुवर्ण बन जाती है तब तो उसके हाथहीमें सुवर्णकी खानि लगगई. फिर उसे थोड़ेसे

सुवर्णके लिये प्रयत्न करनेकी क्या आवश्यकता रही ? तैसेही परब्रह्म परमात्मा जिससे मैं तू और जड़ चैतन्यादि समस्त ब्रह्मांडकी उत्पत्ति हुई है और जो उसीके स्वरूपमें स्थित है तो जिस समय उस परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति होगई तबही सारे ब्रह्मांडकी समस्त वस्तुकी प्राप्ति होगई. फिर औरको ढूंढ़नेकी क्या आवश्यकता ? परमात्माके सिवाय और द्रव्य किस कामका है ?

'वह परमात्मा क्या जुदा है ? नहीं. वह तेरे पासही है अर्थात् वह तूही है, तुझमेंही है और उसीको तुझे जानना है, वही तू है. केवल तूही क्या ? सारा जगत् वही है और वही समस्त ब्रह्मांड है. अभी मैंने तुझे कहा है कि, सारा जगत् उसी एक परमात्मासे उत्पन्न हुआ है. जैसे एक दीपकसे दूसरे अनेक दीपक प्रकट हो सकते हैं अर्थात् वे सब एकहीमेंसे उत्पन्न होते हैं और उनमें प्रकाश करनेवाला अग्निका भागभी उन सबमें एकही है. जैसे सुवर्ण मूल वस्तु है. अब उससे अंगूठी, बाजूबंद, चंद्रहार, कंठी, कड़े, झुमके, तोड़े, हथफूल, कर्णफूल आदि अनेक अलंकार बने परन्तु उन सबको गला डालें तो वही सोनाका सोना; और जो न भी गलावें तबभी वही सोना रहा; तब प्रत्येक अलंकारसे सोना भिन्न वस्तु है ऐसा कहना क्योंकर बन सकता है ? इसीभांति परमात्मा कि, जिससे तू और यह सब विश्व उत्पन्न हुआ है वह तुझसे भिन्न नहीं है. जैसे गहने (जेवर) टूट फूट जानेसे कालान्तरमें अपने मूलस्वरूपकाही आश्रय कर लेते हैं अर्थात् कड़े कुंडल, पहुंची, अंगूठी आदिक अपने नाम तथा रूपको त्यागकर सोनाके नामसे व्यवहारोपयोगी होते हैं, ऐसेही उस परमात्मारूप मूलस्वरूपको प्राप्त हो जाना यही तेरी तथा समस्त संसारकी गति है. अतएव तू अपने स्वरूपको प्राप्त कर—अपने स्वरूपको देख और उसीका तू चिन्तन कर; उसको जान, जिससे सारा जगत् हस्तामलकवत् (हाथमें धरेहुए आंवलेके समान) तेरे आधीन और दृश्यमान रहेगा, औरभी कदाचित् तू ऐसा सोचता हो कि, परमात्मा जगद्रूपसे किसलिये हुआ होगा ? तो सुन. शास्त्रमें कहा है कि–' रमणार्थमिदं सर्वं ब्रह्मैव स्वेच्छयाऽभवत् ' जब परमात्माको रमण करनेकी—नाना प्रकारकी क्रीडा करनेकी इच्छा हुई, तब वह स्वयमेव अपनीही इच्छासे यह समस्त जगद्रूप बन गया. इसको पुष्ट और सिद्ध करनेके लिये श्रुतिमेंभी कहा है कि–' एकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत् '

अर्थात् वह (परमात्मा) अकेला रमण नहीं करता; इसलिये दूसरेकी इच्छा करता है. हे वत्स ! अपने रमणके लिये–अपनी क्रीडाके लिये, परमात्माने इस जगत्को उत्पन्न किया (उसमेंसे उत्पन्न हुआ; क्योंकि उसे उत्पन्न करनेका कुछ परिश्रम नहीं पड़ता. उसकी इच्छा होतेही उसके स्वरूपसे जगत् उत्पन्न हो जाता है) इसलिये–उस स्वरूपका अवलोकन करनेके लिये–प्रथम तू अपने स्वरूपको यथार्थ देख. परमात्माके स्वरूपके दर्शन होनेके अनन्तर तुझको सर्वत्र ब्रह्मही ब्रह्म दिखाई देगा.

हे मृत्युलोकके मानव ! तू जो ऐसा विचार करता है कि, उस कालिकाप्रतापको उक्त महात्माने दांभिक कैसे कहा ? एकाग्र मनसे चिन्तन करनेको ध्यान कहते हैं और ध्यानावस्थामें जहां मन लगा रहता है अथवा जो व्यापार करता रहता है उसीका वह ध्यान कहलाता है; अर्थात् तद्व्यतिरिक्त दूसरेका (जिसका ध्यान करनेका ढंग बनाया है उसका) ध्यान नहीं समझा जासकता. परमात्माका ध्यान करनेको बैठा, परन्तु नेत्र मूंदतेही मन किसी रूपवती स्त्रीकी ओर अथवा द्रव्यपर दौड़ने लगा; 'वह मुझे कैसे मिले ? उसके मिलनेका मैं कौनसा यत्न करूं ? वह मुझे मिल जाय तो मैं कैसा सुखी बनजाऊं' इत्यादिक संकल्प करने लगे तो वह परमात्माका ध्यान नहीं किंतु विषयोंका ध्यान है. इन विषयोंका एक लक्ष्य होनेसे अनेक नये २ विषय उत्पन्न होते हैं, और उनका संहार करनेकी शक्ति न होनेसे परिणाममें उस मनुष्यका पतन होता है. यह दृढ नियम है कि, जहां मनकी एकाग्रता होती है उसी वस्तुकी प्राप्तिभी होती है. अतएव मनुष्यको प्रथम अपने मनको जानना पहचानना और वश करना चाहिये. इसीसे सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं. भक्ति, ज्ञान, चिंतन, 'मैं, मेरा तेरा' आदि अभिमान, और सारासारविचार ये सब, मनुष्यके मनको अवलम्बन करके रहते हैं. जहां मन रहता है वहीं ये सब रहते हैं, जहां मन जाता है वहीं ये सब चले जाते हैं. शरीरस्थ कर्म करनेवाली तथा ज्ञानकी दशों इन्द्रियां मनकेही आधीन हैं. मन सबका राजा है. जो मन कहता है वही इंद्रियां करती हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना हो तो सुन. संक्षिप्त उदाहरणसेही तुझको समझाता हूं. समझ कि, किसी स्त्री अथवा पुरुषने किसी मनुष्यका बध किया है और राजा उसको देहांत दंडकी आज्ञा देचुका है. उसके मरनेकी घड़ी पास आ पहुंची है.

उस समय उसको नानाप्रकारके सुन्दर स्वादिष्ठ भोजन तैयार करके खानेका आग्रह किया जावे तो क्या वे व्यंजन उसको स्वादिष्ठ लगेंगे? क्या कोई नवयौवना सौंदर्यसंपन्न स्त्री अपने हावभावसे उसको मोहित कर सकती है ? क्या भांति २ के सुगंधित पदार्थ–पुष्प, इत्र इत्यादिक सुँघानेसे वह आनंदित होगा ? अथवा, कोमल मधुरस्वरके गानसे क्या वह अपने मरणकी चिंताको भूल सकेगा ? कदापि नहीं. उस समय उसको इन बातोंमेंसे कोईभी किंचित् मात्र प्रिय नहीं लगेगी ! यदि कोई उसको कहेगा कि "आप बड़े बुद्धिमान् हो, परम योग्य हो, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य-सम्पन्न हो, आप बड़े गुणज्ञ हो, आपने अमुक २ बड़े २ कार्य किये हैं" इत्यादि २, तो क्या वह उस समय इन बातोंसे प्रसन्न होगा ? क्या ऐसी स्तुतिसे वह अपनेको श्रेष्ठ समझेगा वा अपने गुणोंका गर्व करेगा ? नहीं; कभी नहीं. 'कण्ठपर कुठार और मुखमें मिश्री' क्योंकर मीठी लगे ? पंचामृत लेते समय उसकी नासिका, चक्षु, श्रोत्रादि पांचों इंद्रियोंमेंसे सूंघने, देखने, सुनने आदिक गुण नष्ट नहीं हो जाते हैं; परन्तु उनका अधिष्ठाता मन उन (इंद्रियों) पर ध्यान नहीं देता; वह केवल मरण–चिन्तामें एकाग्रतासे लीन हो जाता है. इसीसे उसको कोई वस्तु अथवा स्तुति पसंद नहीं आती. ' मुझे अभी मरना है ! अभी मेरे प्राण निकल जायँगे. हाय ! हाय ! ! अभी मेरा शिर कटेगा ? ' ऐसी चिन्ता लगी रहनेसेही उसको कोई बात अच्छी नहीं लगती. वह किसी वस्तुपर ध्यान नहीं देता. जिस विषयपर मन लगा रहता है उसी विषयको इंद्रियां ग्रहण कर सकती हैं. जिस वस्तुपर मन नहीं लगा होगा उसपर इंद्रियां कदापि स्वतंत्रतासे नहीं जा सकेंगी. इसपरसे समझना कि जब मन दृढ़–अटल होता है तब वह ध्यान सिद्ध होता है. कालिकाप्रतापका ध्यान देवीमें नहीं था वरञ्च द्रव्यमें था, इस कारण उसको दांभिक कहा था.

अज्ञानीके ध्यान वा पूजाका कोई स्वीकार नहीं करता. इसलिये हे यज्ञभू ! तू एक बार पहली ओर सब बात छोड़कर, अपने मनका गुरु बन बैठ. स्वाधीन और स्थिर हुआ मन परमात्माके स्वरूपमें लगतेही तत्काल तुझको उसकी प्राप्ति होजायगी और जब परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति हुई तो जगत्की सर्व वस्तुकी प्राप्ति हो चुकी. जिज्ञासु जीवको, स्वरूपानुसंधान होनेके लिये, विशुद्ध उपासना और परम तत्त्वज्ञान इन दोनोंपरही ध्यान देना चाहिये और अन्य भ्रममें पडकर वृथा दौड़ धूप नहीं करनी

चाहिये. जीव–ब्रह्मकी एकताको समझना, यही मोक्षका साधन है. पंडिताई, कर्मकांड, शास्त्रमें कुशलता, इत्यादिक वातें मोक्षकी साधक नहीं; किन्तु भोगकी साधक हैं. कोईभी मनुष्य अपने मनको वश किये विना, मन कितना प्रवल है और उसके क्या २ गुण हैं सो यथार्थतः जान लेने पीछे उसको स्वाधीन रक्खे विना, करोडों वर्षोंतक परमात्माको जाननेका प्रयत्न करे तोभी उसका [illegible] सव श्रम मिथ्या होजायगा. किन्तु मनको वश रखनेवाले पुरुष थोड़ेही दिनोंमें अथवा गिनी हुई घड़ियोंमेंही, परम पुरुषके दर्शनको प्राप्त हुए हैं और होवेंगे. इस कारणही मेरी यह आज्ञा है, कि, सवसे प्रथम मनोनिग्रह करना. मनोनिग्रही परीक्षित राजा केवल सात दिनमें और खट्वांग राजा केवल दोही घड़ीमें परमात्माके पदको पहुँच गये थे. श्रीहरि परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम, परमात्मा तुझसे जुदा नहीं हैं. उसको जाननेकी इच्छा करनेवाले मनोनिग्रहवान् दृढ़ जिज्ञासु पुरुषपर कृपा करके वह परमात्मा उसको अपने आपही अपने स्वरूपका ज्ञान करा देता है. अस्तु; मैं तुझको सव वातोंका साररूप एक वात कहता हूं कि—" वह तेरे पासही है, तुझको अपने आपकोही प्राप्त करना है और तुझको स्वयंही जानना है. अस्तु, तू अपने आपको देख. वह तूही है. तू स्वयम् अपना गुरु वन वैठ. "

हे विशाल ! इतना कह चुकनेपर, वे महानुभाव, अप्रतिम तेजवाले, और मैंने कभी नहीं देख पाया ऐसे अद्भुत स्वरूपवाले योगीश्वर प्रभु शान्त हुए उनके शरीरको समाधिके लिये अत्यातुर हुआ देखकर मैं वहांसे उठा और उनको साष्टांग प्रणाम करके अपने स्थानको गया.

तृतीय बिन्दु.

भवाटवी.

आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते ।
इहामुत्र फलभोगविरागस्तदनन्तरम् ॥
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षत्वमिति स्फुटम् ॥ [शंकराचार्य.]

अर्थ—प्रथम नित्यानित्यवस्तुका विवेक, पीछे इहलोक परलोकसंबंधी फलोंको भोगनेमें वैराग्य, तिसपीछे शमादि षट्क संपत्ति, तदनन्तर मोक्षकी इच्छा, ये चारों ब्रह्मविद्याके प्रसिद्ध साधन गिने जाते हैं.
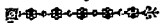
महाराज यज्ञभूने अपने प्रधान विशालकेतुको, तीसरे दिनकी अपनी विगतवार्ता इसप्रकार कह सुनाई:—

हे वत्स विशाल ! वे महाप्रतापी महात्मा कौन थे सो मैं कुछभी नहीं जानता. परन्तु जिन्होंने मुझको मुक्तिदायक उपदेश दिया है उन्होंने प्रथम मुझको सत्संगका प्रताप दर्शाया; पीछे उस नित्य, अजर, अमर, प्रभुका पूजन भजन कैसे करना चाहिये, यह कहा. तदनन्तर ज्ञानीको कौनसा कार्य करना किसको देखना–जानना चाहिये, यह मुझे समझाकर मौनावलम्बन किया. तीसरे दिन प्रभातमें उदयाचलके शिखरोंको शोभायमान करता हुआ, उनके ललाटमेंके महातेजस्वी हीरेके समान शोभा देता हुआ सूर्योदय हुआ; इससे पहलेही मैं अपने स्नानादिक कार्यसे निवृत्त होकर उन महात्माके समीप गया. मार्गमें जहां तहां वकुल–पुष्प बिखरेहुए पड़े थे, मंद २ पवन उनके परागका सुगंध चारों ओर फैलाता था. उन पुष्पोंको चुनकर मैंने चलते २ एक माला गूंथी. अमर, किन्नर, विद्याधर, गंधर्व, दैत्य, दानव जिस स्थानमें वारंवार विलास वैभवको भोगते हैं, जो पर्वत, पराक्रममें मंदराचलसे श्रेष्ठ होनेके कारण अपनी कीर्तिरूपी किर-

णोंको चारों ओर फैलाता हुआ श्वेतरूपसे सुशोभित हो रहा है. उसकी शोभाको अवलोकन करता २ मैं आगे बढ़ा. चलते २ मुझे विचार उत्पन्न हुआ कि, ये महात्मा कौन हैं? क्या अनेक देव उपदेव-सेवित साक्षात् शंकर तो नहीं हैं? कदाचित् ऐसाही हो तो वे इस गिरिवरपर गिरिजारहित क्यों? उनके जटाजूटमें गंगा कहां है? ऐसेही विचार करता २ मैं उक्त महात्माके पास गया. महात्माभी मानों मेरीही मार्गप्रतीक्षा करते हुए बैठे थे, ऐसी प्रेमदृष्टिसे मुझे देखकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और निकटवाले वृक्षके नीचे बैठ जानेका इशारा किया और मैं वहां जा बैठा. थोड़ी देर पीछे, किसी मंत्रका जप कर चुकनेके अनंतर उन महात्माने कहा:—"हे यज्ञभू! यहां आ." मैं उठकर उनके समीप गया और पुष्पोंकी माला उनके जटाजूट-पर धारण कराके साष्टांग प्रणाम किया. तदनंतर वे महात्मा कहने लगे:—

हे मृत्युलोकके मानव! मुझे स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, कि, मैंने तुझको गत दो दिनमें जो उपदेश दिया है वह तेरे मनमें वज्रके समान दृढ होगया है और सबभांति उसका अधिकारी तू बन चुका है. प्रारब्धयोगसे कभी २ ऐसा होता है, कि, मनके मनोरथ मनमेंही रह जाते हैं और मनुष्यका हृदय व्याकुल होकर मोक्षमार्गसे विचलित होजाता है, और वह अनेक विघ्नों-संकटोंको सहन करता हुआ संसारमें रगडकर फिसल पडता है और मूर्ख-तासे पश्चात्ताप करता है; परन्तु यदि उसने सत्कर्म किये हों, सत्पात्रोंको दान दिया हो, और संतसमागम किया हो, तो वे कदापि व्यर्थ नहीं जाते. इस जन्मका कर्तव्य बिलकुल निराला है. संसारमेंका जितना योग्य कर्म है उसको अवश्य करलेना चाहिये, परन्तु सदा ऐसीही इच्छा रखना कि, भगवच्चरणोंकी प्राप्ति मुझे कब होगी? क्योंकि विकराल व्यालवत् काल अपना मुख फैलाकर ग्रास लेनेके लिये तत्पर होकर बैठा हुआ है; वह अकस्मात् किससमय कंठ पकड़ दबालेगा यह कोई नहीं जानता. देवताभी कालके आधीन हैं तब हे मानव! मनुष्य किस गणनामें हैं? इसलिये मेरी आज्ञा है कि, मनुष्य दया, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दान, शम, दम, क्षमादिको धारण करें. यह दैवी सम्पत्ति है, सर्वोत्तम है इसके जैसी श्रेष्ठ अन्य कोई संपत्ति नहीं. इस संपत्तिको प्राप्त करनेके लिये सबसे पहला कर्त्तव्य कर्म यह है कि, इस देहादिकमेंसे और तत्सम्बन्धी पदार्थोंपरसे मोह

ममता-मायाका त्याग करना. इस असार संसारमें घर बार स्त्री पुत्र, धनादिकपर जो मोहप्रीति रहती है, वह भगवच्चरणारविन्दके तथा भगवत्प्राप्तिके लिये बड़े अनर्थका बीज है. मूर्ख मनुष्य पंचतत्त्वके पुतलेको सत्य मानता है, और सबको अपना समझकर 'मेरा तेरा' करता हुआ उचित कार्य-कर्त्तव्य कर्म-करनेमें विमुख रहता है. मनुष्य जिसको 'मैं' शब्दसे पहचानता है वह कुछभी पदार्थ नहीं है. केवल व्यवहारदृष्टिसे 'मैं तू' इत्यादि कहनेमें आता है; वस्तुतः वह कुछ नहीं है. ज्ञानी मनुष्य देहके भोग देहको भुगतने देता है किन्तु उसके भोगमें स्वयं लीन नहीं होजाता और न उसमें सुखदुःख, आनन्द अथवा उदासीनता मानता है; क्योंकि इन सब भोगोंका सम्बन्ध देहके साथ है, न कि आत्माके साथ. जब आत्माके साथ उनका कुछभी संबंध नहीं तो लोकव्यवहारदृष्टिसे जो सुख दुःख माना जाता है वह सत्य नहीं; क्योंकि देह स्वयम् असत्य होनेसे तत्सम्बन्धी सब वस्तुयेंभी असत्य हों इसमें क्या आश्चर्य ? और ऐसे देहके मानेहुए भाई बंधु कुटुंब कबीले कदापि सच्चे नहीं हो सकते.

मनुष्य स्वयमेव आधि व्याधि और उपाधिसे लिपटाहुआ होनेपरभी मिथ्या पदार्थोंपर मोहमाया रख रहा है, इससे क्या वस्तु सत्य है, क्या असत्य है, इस बातको सोच समझकर वा अनुभवद्वारा नहीं जान सकता. जगत् कभी सत्य नहीं है तोभी सत्यमार्गको प्रदर्शित करनेवाला है. इसमेंभी उसका व्यवहार-कर्मव्यवहारभी सर्वांश मिथ्या है, केवल तत्त्वज्ञानव्यवहार-परमात्माको जाननेका व्यवहारही सत्य है. कर्मव्यवहारका लोकव्यवहारके साथ घनिष्ट संबंध है तथापि ये दोनों मिथ्या होनेपरभी मनुष्य ऐसा समझता है कि; इस संसारमें जो २ व्यवहार हैं सो सब सत्य हैं और इसीसे वह इस पंचमहाभूतमय, नाशवंत, आशारहित, भयंकर त्रासके पाशमें पड़ेहुए देहको अपना मानता है और व्यवहारके छलप्रपंचमें फँसकर ब्रह्मपरायणतासे वर्तनेके बदले छलप्रपंच-परायणतासे वर्तता है. मनुष्यको मोहके कारणसे यह संसार सत्य जान पड़ता है; परन्तु जबतक वह निरभिमानी नहीं बनता और परब्रह्मके सत्य स्वरूपको नहीं पहँचानता तबतक उसकी स्थिति सुखद- सुखकारक नहीं होती; और मायाके मोहपाशसे बँधा हुआ-मनुष्य स्वयं सत्य कर्त्तव्यको भूलकर, मिथ्याप्रयत्नोंके द्वारा मुक्त होना चाहता है तो यह इच्छा क्योंकर पूरी हो सकती है ? इस लोकका प्रपंचकुशल जीव सत्यको असत्य मान-

कर, असत्यमें पड़ा रहकर, वारंवार ठोकरें खाता है, टकराता है, गिर पड़ता है, और निराश होता है, तबभी पुनःपुनः आधि व्याधि और उपाधिकी पीडामें लिपटा हुआ रहनेमेंही यह जीव अपने कर्त्तव्यको पूर्ण हुआ समझता है; परन्तु हे वत्स ! जबतक वह मोहनिद्रामेंसे जागृत होकर अभिमानसे मुक्त नहीं होता तबतक वह सर्वकर्त्ता, सर्वज्ञाता, सर्वभोक्ता, सर्वेश्वर, एकेश्वर परब्रह्मको नहीं जान सकता; वल्कि उसको जाननेकी इच्छाभी नहीं कर सकता तब कैसे जान सकता है ? अज्ञानमें फँसा हुआ वह प्राणी असत्यमें सत्य मानता है, और पंचतत्त्वके वनेहुए समस्त दृश्य पदार्थोंको भूलसे-अज्ञानसे सत्य मानकर मोहको प्राप्त होता है; परन्तु सव दृश्य पदार्थ झूठे हैं और माया–ममताभी झुठी है, एकमात्र परब्रह्मही सत्य है. वह एक है, विशुद्ध है, नित्य है, अविनाशी है, अजर है, अजन्मा है और जहांतक मनुष्य उसको नहीं जानता–पहँचानता वहांतक संसारचक्रमें भटका करता है. मायाका आवरण होनेसे जीवको नित्यवस्तुमें 'मैं–मेरा–तेरा' इत्यादिक मिथ्या भास होता है. इस संसाररूप भवाटवीमें पडेहुए प्राणी सदा सर्वदा ऐसाही मान वैठते हैं, कि, जो दृश्य पदार्थ हैं, वे सव अविनाशी और सुखदायी हैं. जबतक यह भास मन और नेत्रोंपर घिरा हुआ पड़दा नहीं हटता, तबतक कदापि भगवत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती. किन्तु वह आवर्जन विसर्जनमेंही चक्कर खाया करता है. जो जीव, अपने पास मुक्त होनेकी सव सामग्री विद्यमान रहनेपरभी उसका सदुपयोग नहीं करता और अन्तमें अपने भाग्यको दोष देता है; परंतु ऐसा नहीं है. उसके सव प्रयत्न निष्काम नहीं होते; वरंच व्यवहारलीन होते हैं, इसीसे वह डगमगाता है, भ्रमता है, परिताप पाता है, निराश होता है और अन्तमें गिर पड़ता है. भोगके लिये किये गये प्रयत्नोंद्वारा, मुक्तिका लाभ कभी नहीं होता. इस लिये संसारार्णवको तर जानेके लिये सिद्धियोंकी इच्छा न करके भगवत्स्वरूपकी इच्छा करनेसेही सव मनोरथ सफल होते हैं.

यज्ञभू ! वास्तविक विचार करनेसे इस संसारमें कुछभी सत्य नहीं है. जो जीव ज्ञान धर्मद्वारा नित्य और तत्त्ववस्तुका अवलोकन करके वाह्य चित्तवृत्तिका निरोध करके प्रवृत्तिका त्याग करते हैं, परमात्माके साथ आत्माका ऐक्य करते हैं, वे सत्य तत्त्वरूप पदार्थको पाते हैं. संसार अनित्य, परप्रकाशित और नाशवंत है. इसमें सव दुःख, दुःख और

दुःख, शून्य शून्य और शून्य, नाश, नाश और नाश, जन्म, मरण, और जन्म इसी तरहकी अनेक प्रकारकी कला हुआ करती है. संसारके असत्यमें फँसा हुआ मनुष्य अनेक जन्मोंमेंभी उसमेंसे नहीं निकल सकता. वह संसारमेंके जिस २ पदार्थका अवलोकन करता है सो २ वास्तवमें (असलमें) कुछ नहीं है; क्योंकि स्थावर और जंगम सब पृथ्वीकी उत्पत्ति है और उस पृथ्वीके नाशके साथ नष्ट होते हैं. ऐसे जगत्के सब पदार्थोंमें मोहबुद्धि करनाही दुःखका कारण है. संसारचक्रमें भटकता हुआ प्राणी, प्रवृत्तिका भ्रमायाहुआ होनेसे कैसे २ दुःख भोगता है सो तू देख.

इस असार संसारमें मार २ की पुकार करनेवालोंके साथ प्यार करके जीव अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये अपने स्थानमेंसे बाहर निकलता है; जगत्प्रवासके लिये निकलनेके समय वह अपने मनमें बड़ी २ आशायें करने लगता है, परन्तु संसाररूप दुःखमय अरण्यमें प्रवेश करनेपर वह अनेक दारुण दुःख भोगता है. इस समय जीवको सहायक बुद्धि है; परन्तु उसके अपने यथार्थ कर्त्तव्यको न जाननेके कारणसे षडिन्द्रियरूपी चोरोंने उसको मार्गमें लूट लिया है. इस कारण विना समझे वह आनन्द मानने लगता है. वह धर्ममें खर्चनेके लिये जो धन लेकर आया था, उसको उसने अपने विषयभोगमें खर्च डाला, जिससे उसने संसारयात्रामें पहलेही बड़ी भारी भूल की. जैसे २ वह यात्रामें आगे २ बढ़ता गया तैसे २ सिंह, व्याघ्र, भेड़िये, शृगालादिक उसपर झपटने लगे और उस गाफिल (अचेत) जीवनको इधर उधर खेंच ले जाने लगे. ऐसे कष्टमेंभी वह सुख मानने लगा. इन स्त्री पुत्रादिक सिंह व्याघ्रादिकमें वह तल्लीन होगया; परन्तु ये उसको कितना दुःख पहुँचानेवाले हैं इस बातका उसको किंचित्मात्रभी भान नहीं. इन व्याघ्र भेड़ियादिके साथमें रहकर वह उससे अधिक लीला देखनेको निःसंकोच आगे बढ़ा तो उसको तृष्णा और कर्म आदिक झीलझांखर और घासके ढेरोंने बहुत दुःखित किया, तथा उस अरण्यमें समूहके समूह उड़तेहुए मच्छरोंने काट २ कर दुःखी किया. तिसपरभी वह कुछभी नहीं समझता. यह देह असत्य है, उसको वह सत्य मानता है और जगद्रूपी अरण्यको लताकुंज मंडप समझता है और उसीमें उत्कंठापूर्वक विलास करता है. आगे बढ़कर घड़ीमें प्रकट और घड़ीमें अप्रकट होतेहुए गंधर्वपुरमें प्रवेश करता है.

और भूतोंकी मायाके समान आवर्जन विसर्जन होतेहुए धनको–सुवर्णको सत्य वस्तु समझकर ग्रहण करनेके लिये दौड़ता है. जब वह हाथमें आया हुवा दिखाई देता है तब यह जीव आल्हादित होकर बड़ी धूमधाम करता है; परन्तु जब उसको हाथमेंसे चला गया देखता हैं तब शिर पीट २ कर रोता और चिल्लाता है, और बावला बनकर शिर तथा मुखमें धूल डालने लगता है. इसभांति वह अपने साथीके साथ २ बहुतेरा भटकता है; परन्तु कितनेही कालतक तो उसको विश्रामस्थलही नहीं मिलता; ऐसे समयमेंभी यह जीव किसी उत्तम मार्गदर्शकको नहीं ढूंढ़ता जिससे वह संसाररूप अरण्यमें भटकता रहता है. उस जंगलमें वह खाना पीना और विषयभोगमें व्यस्त रहता हुआ मृगतृष्णाके जलके समान कामादिक विषयोंको पकड़नेके लिये दौड़ता है और जब वह विषय हाथ नहीं लगता तब दुःखित होकर छाती माथा कूटता है. कभी वह बगूले (वायुगोल) के सदृश सुन्दरी स्त्रीको देखता है तो तत्काल अंधा बनकर उस बगूलेमें लिपट जाता है और जब उसकी उड़तीहुई धूर आँखोंमें गिरनेसे कुछ नहीं दीखने लगता तब विवेक और मर्यादाको ताक (कोने) में रखकर यह जीव उसीमें लीन होजाता है. उस समय, कभी २ उसके साथी, जो कुछ विचारशील होते हैं वे उसकी निन्दा करने लगते हैं, गालियां देते हैं; परन्तु यह निर्लज्ज होकर मजे उड़ाता है. तब कोई उसका साथ नहीं करता और अंधेपनसे उसको अच्छा बुरा कुछभी नहीं दिखाई देता. जो कभी कोई उस वनका जानकार मिल जाता है; तो विषयवासनामेंसे निकलनेका अवश्य प्रयत्न करता है तोभी फिर यह जहांका तहांही रह जाता है, क्योंकि उसको सच्चे मार्गपर चलनेकी इच्छाही नहीं; परन्तु जब उस अरण्यका स्वामी (राजा) क्षुद्र अपराधके लिये कठोरवचनोंसे निन्दा करता है और दंड देता है तब वह अरण्य (संसार) को मिथ्या माननेपरभी क्षणभरमें फिर उन्हीं विचारोंमें भ्रमने लगता है–गोते खाता है. मानभंग होनेपर वह उदरपोषणके लिये भटक २ कर थक जाता है, और अन्न वा जल कुछभी नहीं मिलता तो चहूंओर बावले हाथीकी नाईं इधर उधर भटकता है और निराश होकर फिर अपने स्थानको लौटाता है. वहांपर निरन्तर दावानल सुलगता रहता है, उससे शोक और संताप होनेके कारण शिर फोड़ २ कर विलाप करता है.

घरमें आनेपर संताप होनेसे उसको शान्ति नहीं होती. पुत्र–स्त्रीके संतापित करनेसे और क्षुधा तृषा आदिक कांटे कंकर वारंवार लगनेसे दरिद्रतारूपी व्याधि उसके शरीरका रुधिर पान करने लगती है. तव वह निंदारूप अजगरके मुखमें जा गिरता है और मृतकतुल्य हो जाता है. उस समय वह सब संतापको दूर करनेका उपाय करता है. सब प्रकार सोच विचार करता है, जगन्नायकका स्मरण करता है, कि, वह मुझे इस वनमेंसे सीधा मार्ग बतावे. परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि वह फिर कड़ा पड़ता है.—पैसा टका स्त्री पुत्र मिलतेही पहली सब बातोंको भूल जाता है और फिर उसी दावानलमें जा गिरता है, पीछा कांटे कंकडोंमें उलझता है, और उसीमें मग्न और मस्त रहता है. परन्तु समय पाकर वे दुर्जन–घातक प्राणी उसका दर्प भंग करते हैं, तव वह महान् संताप करता है. उस समय उसकी भूख, प्यास, नींद सब उड़ जाती है, स्त्री–पुत्र उसको बुरे लगते हैं और मनमें व्यथा होने लगती है; तव वह अपने आपको भूलकर अज्ञानगुफामें जा घुसता है. यह जीव अपमानके लिये वैर बदला लेनेको पचता है, जब वहां हाड़ मारी होती है तब फिर सोचने लगता है. इस समयभी यह जीव विषयरूप मधुको अमृत मानकर पीनेकी इच्छा करता है और परद्रव्य तथा परस्त्रीकी लालसा करता है; परन्तु जब मधुकी मालिकन मधुमाखी आकर उसको डंख मारती है तब वह जो शोकके साथ क्लेश भोगता है, उससे चेतकर, अविद्याकी खंदकोंमेंसे निकलकर विद्याको नहीं खोजता; यह जीव ऐसा महामूढ़ है. कदाचित् वह घी अथवा मधुका कुप्पा पाजावे तो भी वह उसके हाथमें नहीं ठहर सकता, दूसरे २ लोग उससे छीन लेते हैं और उससेभी औरही और छीन ले जाते हैं. इस भांति उत्तरोत्तर एकके हाथसे दूसरेके हाथमें धन और स्त्री चले जाते हैं. वह सुखसे कभी उनका उपभोग नहीं कर सकता. यह जीव घड़ीभरमें तो इंद्रभवन जैसे और क्षणभरमें यमसदन जैसे घरमें बच्चोंके तोतले २ वचन और स्त्रियोंके हावभावसे मोहित होकर वारंवार दौड़कर उपाधिको ग्रहण करता है. जब कभी वहां रोना पीटना मचता है तब उसे देखकर उसको संसार कडुआ लगने लगता है; परन्तु वह नित्याऽनित्यवस्तुके विवेकसे रहित होनेके कारण फिर संसारमें भटकनेको ललचाता है. यह संसार उभय रीतिसे मोहको उपजाता है. शास्त्रमें कहा है कि–' आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः ' धन प्राप्त करते समयभी दुःख होता है और जब वह

खर्च होता है तबभी खेद होता है. इस भांति संसारवनमें सुख, दुःख, राग, द्वेष, आशा, तृष्णा, ईर्षा, अहंता, प्रमाद, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि, व्याधि, उपाधि इत्यादि जन्मसे लेकर जरापर्यंत जीवको दुःखी करते हैं, और मायाके कोमल हाथके आलिंगनसे हर्षित होकर विवेकशून्य बनकर विहारवैभवको भोगनेके लिये आतुर होता है. इस वनमें किसी २ जगह सुखाश्रम (ज्ञानी जनोंके घर) हैं, परन्तु वे देखनेमें सुन्दर नहीं लगते इस कारण यह जीव वहां जानेकी इच्छाही नहीं करता और जो ऊपरसे बहुत मनोहर दिखाई देते हैं ऐसे विषयविलास (ऐश—आराम) के महलोंको देखता है तो उनमें तत्काल प्रवेश करता है. उनमें निरन्तर 'ता ता थेई ता ता थेई' होती रहती है, वह इस जीवके कानोंको बड़ी प्रिय लगती है, इसलिये वहीं विश्राम लेकर पड़ा रहता है. अनन्तर जब इसको मोहनिद्रा व्याप्त होती है तब 'थेई थेई ' करती नायिकायें इसको लूट लेती हैं, और नंगा करके किसी नाले वा खंधकमें फेंक देती हैं. तब यह जीवराम 'हे भगवन् ! हे ईश्वर ! हे राम ! अब तू बचा, इस एकही बार मुझे बाहर निकाल' इत्यादि कहकर चिल्लाता और अपने किये पर पछताता है. वह वनमें फिरता २ रोगादिक गुफाओंमें जा गिरता है, तिस पीछे उसे उन पहली झोंपडीयोंमें क्या था सो देखनेकी इच्छा होती है; किन्तु अब वह अशक्त होजानेके कारण शोक करता, रोता चिल्लाता, महामायाका तिरस्कार करता, वारंवार संकल्प—विकल्प करता—'यह मेरा' ऐसा चिल्लाता और तड़पता है; ऐसेही समयमें विकराल यमपाशके आधीन हो जाता है.

इस वन (संसार) में जो कोई जीव पुण्यदान आदि करके भटकते हुए प्राणियोंको आश्रय देते हैं, वे मृत्युके अनन्तर स्वर्गादिलोकमें जाते हैं. कोई पीछा स्वधाममें नहीं आता; क्योंकि, पुण्यफलोंको भोग चुकनेपर वह स्वर्गमेंसे फिर पृथ्वीपर जन्म धारण करता है और उसी चक्करमें पड़ता है. इस चक्करमेंसे निकलनेका सबसे उत्तम एकही मार्ग है; वह यह कि, आत्मशोधन करके परब्रह्मके साथ स्वात्मस्वरूपका अनुसंधान करे; इसलिये एकाग्रचित्त होकर सर्व मायामोहका त्याग करे. प्रायः ऐसा होता है कि, मनुष्य अपने मूल कर्त्तव्यको भूलकर डाली पत्तोंमें उलझ रहता है. ऐसा करनेसे उसको अवश्य सुखकी प्राप्ति होती है; परन्तु वह निरन्तरके सुखका अलौकिक लाभ नहीं ले सकता. जीव, सज्ञान निवृत्तिपर प्रीति रक्खे विना, अज्ञान और विकलस्थितिका

द्रोह किये विना, देहके सम्बन्धका त्याग किये विना, अनित्य कर्मका परित्याग किये विना, सुखका विचार किये विना, उन्नत भावनाओंको जन्म दिये विना, और निजस्वरूपका अनुभव लिये विना निजानन्दका भोक्ता नहीं हो सकता. ऐसा भोक्ता बननेके लिये इस अरण्यरूप संसारमें मिथ्याबुद्धि लानी चाहिये. अपनी इच्छानुसार सत्य तथा दृढ़व्रत पालन करके तत्त्व और सत्को विचारते रहनेसेही सत्य और नित्य पदार्थ प्राप्त होता है. इस संसारमें सबसे बड़ा दुःख अहंताका है. अहंताके कारणसेही मनुष्य भ्रष्ट होकर संसारमें भटका करता है. यह जगत् जो कि, अपनी दृष्टिमें प्रत्यक्ष देख पड़ता है और आपन उसमें व्यवहारभी करते हैं; तोभी वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो यह स्वप्नवत् मिथ्या है. जैसे जागृत होनेपर स्वप्नमें देखी हुई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती; तैसेही बोध होजानेपर असत्य दिखाई नहीं देता. व्यवहार, स्त्री, पुत्र, सुवर्ण इनमेंसे कोईभी सत्य नहीं; वरंच केवल एक पुरुष (परमात्मा) ही सत्य है. मनुष्यजन्म धारण करनेका सार्थक्य इस पुरुषको जाननेमेंही है. इस परम पुरुषको जाननेसेही इस पुरुषको प्राप्त हो सकता है और तबही आवर्जन विसर्जनकी सब क्रियाओंका लोप हो जाता है. जागृत्, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनोंही दशा वास्तविक विचारसे सत्य नहीं हैं. ये तीनों गुणके योगसे तथा मायामोहके कारणसे दिखाई देती हैं. इन तीनों दशाओंका साक्षी परमात्माभी सत्य है. जगत् कुछभी नहीं है, यह मिट्टीके घड़ेके समान है. सुवर्णकी अँगूठी जैसा है, जलके बुद्बुद सदृश है, और जहाजमें बैठेहुए मनुष्यको सब चीज फिरतीहुई दिखाई पड़ती है तद्वत् यहभी है. विचार करके देखा जाय तो घड़ा मिट्टी है और अँगूठी सुवर्ण है. और कोई वस्तु नहीं है. जलका बुलबुला फुटते कुछ विलम्ब नहीं लगता. और जहाज फिरता है; परन्तु पृथ्वी नहीं फिरती तैसेही असल (मूल) में यह जगत् कोई पदार्थ नहीं. अतएव, परब्रह्मको जाननेसे मनुष्य सहजहीमें संसारचक्रको उल्लंघन कर जाता है.

इसपरसे तुझको समझना चाहिये, कि, प्रारब्धयोगसे यह सब आ मिला है, सो इसमें मोहित नहीं होतेहुए सत्यका शोधन करनेके लिये मथन करना चाहिये; और विरक्त बनकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके, परमात्माके परमपदको पहुँचना

चाहिये. इस प्रसंगपर एक कथा सुनाता हूं, उसपर तू ध्यान देकर निष्ठा कर. ' तत्त्व-चिन्तामणि ' में एक विरक्तकी कथा इस प्रकार है:—

विरक्तका उपाख्यान.

संसारके विषयों-इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति-प्रीति-रहित मनुष्य विरक्त कहलाता है. उसीको अरक्तभी कहते हैं. अरक्त अर्थात् विषयोंमें राग (प्रीति-आसक्ति) रहित. ऐसा अरक्त नामा एक पुरुष किसी नगरमें रहता था. वह परम सुशील और कुटुंबवत्सल था. उसका कुटुंब बहुत बड़ा था और उसको पालनेवाला वह अकेलाही था, इसकारण वह बड़ी कंगाल स्थितिको प्राप्त होगया था. एक ओर तो उसके मनमें द्रव्य संपादनके लिये नाना प्रकारके तर्क वितर्क होते थे, और दूसरी तरफ उसके कुटुंबकी भूख २ और खाऊं २ की दयाजनक पुकारने उसके अन्तःकरणको घबराहटमें डाल दिया था. इसपरसे अति खिन्न होकर उसने वनमें चले जानेका विचार किया. एक दिन वह बड़े सवेरे उठा और स्त्री-पुत्रादिको कुछभी कहे सुनाये विना घरसे निकल कर दो तीन कोस दूर गया, तब प्रभात होनेपर उदय होतेहुए सूर्यनारायणके दर्शन हुए. चलते २ थोड़ी दूरपर उसे बहुतसे वृक्षोंका समूह दिखाई दिया. वह एक सुन्दर वन था. उसमें अरक्तने प्रवेश किया. वहां छोटे बड़े; नानाप्रकारके कोमल २ पत्तोंवाले प्रफुल्लित-सघन वृक्ष शोभायमान हो रहे थे. उनके भांति २ के मनोहर पुष्पों और मंजरियोंकी सुगंधसे सारा वन महक रहा था. सुगंधसे भरपूर मंद २ पवन वह रहा था. उन वृक्षोंकी डालियोंपर बैठेहुए शुक, सारिका, कोकिला, मयूरादि पक्षीगण कर्णप्रिय और हृदयको हर्षित करनेवाले मधुर शब्दोंसे वनको गुंजा रहे थे. उस वनकी ऐसी छटाको देखकर, दरिद्रताके क्लेशसे व्याकुल हुए उसके मनने थोड़ी शांति पाई; उस वनमें धीरे २ वह थोड़ी दूर आगे गया तो एक नदी मिली और वह उसके पार उतारता था उस समय उसकी दृष्टि सामनेके नदीके दूसरी ओरके गहरे घने वृक्षोंपर गई. दूरसे वह स्थल परम मनोहर दिखाई देनेसे उसने वहां जानेका निश्चय किया. नदी पार करके उस जगह गया तो उसे मालूम हुआ कि, वह किसी महात्माका आश्रम है. अरक्त डरता २ कुछ और आगे बढ़ा; परन्तु उसको वहां कोई मनुष्य नहीं दिखाई दिया. वहां केवल एक पर्णकुटी बनी हुई थी; परन्तु वहभी शून्य—मनुष्यरहित थी. निराश होकर आश्चर्यसे वह इधर उधर देखने लगा; परन्तु कहींपर कोई दृष्टि नहीं

पड़ा; तब विवश होकर पर्णकुटीके आंगनमें एक अशोक वृक्षके नीचे बैठकर विश्रान्ति लेने लगा. बैठे २ चारों ओर दृष्टि फिराता हुआ आश्रमकी शोभा देखने लगा. तो रास्तेपर कोई आ रहा है ऐसा जान पड़ा. उस अरक्तने निर्भयतासे उस आश्रममें आतेहुए महापवित्र और तेजस्वी पुरुषके दर्शन किये. उनके हाथमें जलका भरा हुआ कमंडलु था; दूसरे हाथमें बनफलोंकी झोली लटक रही थी; बगलमें मृगचर्म दबाये हुए थे; मस्तकपर सुन्दर जटाजूट शोभा दे रहा था; कटिमें वल्कल पहने हुए थे; पांवोंमें खड़ाऊँ धारण कियेहुए खटखटाते हुए उन्हें आश्रममें आते देख वह अरक्त उठकर खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उसने दंडवत् नमस्कार किया. उक्त महात्माने पर्णकुटीमें जाकर मृगचर्म बिछाया और वे जब झोली कमंडलु पृथ्वीपर रखकर आसनपर बैठे तब अरक्तको आशीर्वाद देकर सन्मुख बैठनेको कहा. उसने झोलीमेंसे पकेहुए स्वादिष्ठ फल निकालकर उसको दिये. अरक्त बड़ी प्रसन्नतासे उनको खाकर और कमंडलुका शीतल जल पान कर बड़ा तृप्त हुआ और स्वस्थ होकर शान्त अन्तःकरणसे हाथ जोड़कर महात्माके सन्मुख बैठा. महात्माने उसका सब वृत्तांत जाननेकी इच्छा प्रकट की तब अरक्तने अपने वैराग्यका कारण कह सुनाया. महात्माने जाना कि, यह जीव दरिद्रताके दुःखसे भागकर द्रव्यके लिये बाहर निकल आया है. और उसनेभी बहुतसी विनती की कि–" महाराज ! आप सर्वज्ञ हो, कृपा कर मेरे दुःख दूर होनेका कोई उपाय बतलाइये." इसपरसे उक्त महात्माको दीन दुःखी उस अरक्तपर बड़ी करुणा आई और तत्काल उन्होंने एक सुगम उपाय उसको बतला दिया. एक तलवार और एक कुदली उसको देकर महात्माने कहा–' अरे अरक्त ! इन दोनों शस्त्रोंको लेकर इस आश्रमसे पचीस कदम दूर उत्तर दिशामें जा और जहां सबसे पिछला कदम पड़े वहींपर खोदना आरंभ कर. खोदते २ जो तुझको कोई कौतुक अथवा चमत्कार दिखाई पड़े तो उससे डरना नहीं और बराबर खोदते रहना. खोदते २ तुझको एक कोठरी दिखाई देगी; परन्तु उसे देखकर तू खोदना बंद मत करना और उस कोठरीको खोद डालना तथा फिरभी खोदते रहना. अधिक खोदनेपर एक दूसरी कोठरी मिलेगी, उसको भी तू खोद डालना. उसके आगे खोदनेपर तीसरी, चौथी, पांचवीं इस भांति पांच कोठरियां निकलेंगी; तू उन सबको खोद डालना.

इन पांचोंके खुद जानेके पीछे जो छठी कोठरी आवेगी, उसमें निधि अर्थात् महाद्रव्यका जो भण्डार भरा हुआ है वह तुझको प्राप्त होगा जिससे तेरे सब दुःख दूर होजायँगे."

तिस पीछे उस अरक्तने दोनों हथियारोंको कन्धेपर रखकर, महात्माको प्रणाम करके आश्रमके बाहर निकलतेही कदम गिनना शुरू किया और वह चौवीस कदमतक बराबर चलता रहा; ज्योंही पचीसवां कदम पृथ्वीपर पड़ा त्योंही वहीं खड़ा होगया. तलवारको नीचे रखकर कुदाली ले उसने खोदना शुरू किया. पहला प्रहार करतेही उसको एक अद्भुत चमत्कार दिखाई दिया. प्रहार करनेके साथही पृथ्वीमेंसे चार रूपवती स्त्रियां प्रकट हुई और नमन करके अरक्तके सन्मुख खडी होगई. उसने पूछा कि "तुम कौन हो?" इसके उत्तरमें वे नवयौवनाएँ कहने लगीं:—"हम ब्राह्मणियां हैं." यह सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ. उसने फिर उनसे पूछा—"तुम सब कहां रहती हो?" उनमेंसे एक बोली—"महाराज! मैं अग्निस्थानमें रहती हूं," दूसरीने कहा—"मैं द्वारमें रहती हूं;" तीसरी कहने लगी—"मेरा निवास धर्मशालामें है;" चौथी बोली कि—"मैं अन्तःपुरमें रहती हूं." यह सुनकर उसने उनको एक ओर बैठ जानेके लिये कहकर, फिर खोदनेका काम चलाया. फिर प्रहार करतेही दूसरा चमत्कार देखनेमें आया. तत्काल बड़े बलिष्ठ योद्धाके समान चार पुरुष प्रकट हुए. उनके पूछनेपरसे जान पड़ा कि, वे चारों क्षत्रिय हैं. अनन्तर उनका निवासस्थान पूछनेपर एकने अग्निस्थानमें, दूसरेने द्वारमें; तीसरेने धर्मशालामें और चौथेने अन्तःपुरमें अपना घर कहा. अरक्तने पूंछा कि—"ये स्त्रियां किसकी हैं" तब उन्होंने कहा कि—"हमारीही हैं." यह सुनकर अरक्त विचार करने लगा कि ये स्त्रियां तो ब्राह्मणियां हैं और ये पुरुष क्षत्रिय हैं, तो ये इन स्त्रियोंके पति कैसे होंगे. अवश्यही ये लोग झूठ बोलते हैं और मलिन निष्ठावाले (पापदृष्टि विषयवाञ्छावाले) महा दुराचारी धूर्त्त हैं इनको जीते छोड़ना यह अनुचित है, इस विचारसे क्रोधपूर्वक उसने अपने खड्गद्वारा चारोंके शिर काट डाले. उनको मरेहुए देखकर वे चारों स्त्रियां रोने लगीं कि—"हाय हाय! तुमने हमारे स्वामियोंको मार डाला! अब हम उनके साथ सती होंगी." उनमेंसे एक स्त्री जो परम रूपवती और गुणवती थी उसको छोड़कर, उसने उन स्त्रियोंकी सहायतासे काष्ठ इकट्ठा करके बाकी तीन स्त्रियों और चारों पुरुषोंको एकसाथ जला डाला.

फिर उस पुरुषने, महात्माकी आज्ञाके अनुसार खोदना जारी किया. खोदते २ पहली चार स्त्रियोंसेभी बढ़कर सौंदर्यवती दूसरी चार स्त्रियां फिर प्रकट हुईं, उनको देख आश्चर्यान्वित होकर, अरक्तने पूछा कि—"तुम कौन हो ?" उन्होंने उत्तर दिया कि "हम ब्राह्मणियां हैं." पुनः उसने प्रश्न किया कि—"तुम विवाहिता हो वा कुंवारी ?" उन्होंने उत्तर दिया कि "हम कुंवारी कन्यायें हैं. जो कोई विशुद्ध श्रद्धासे हमारे साथ विवाह करना चाहे उसीको हम अपना पति बनावें." यह सुनकर अरक्तने उन चारोंको बड़े मानके साथ एक सुन्दर वृक्षकी शीतल छायामें बैठनेको कहा और पहली चारमेंसे जो एक मौजूद थी उसको इनकी सेवा-परिचर्यामें रक्खा. तब वह फिर खोदने लगा. खोदते २ उक्त महात्माकी बताई हुई एक कोठरी देखनेमें आई. उसके भीतर क्या देखता है कि, जहां तहां सर्वत्र (लालचके) शीशेही शीशे धरेहुए हैं; परन्तु गुरुदेवने कहा था, कि, तू उस कोठरीको खोद डालना सो उसने उसका मोह न करके उसे खोद खोद कर बराबर कर डाला. फिर एक दूसरी कोठरी निकली उसमें सर्वत्र लोहाही लोहा (निकृष्ट कर्मसे प्राप्त होनेवाला धन-स्त्री आदि) भरा हुआ था. उसकाभी लोभ न करके उसकोभी खोद डाला. अनन्तर तीसरी कोठरी निकली जिसमें तांबाही तांबा (मौरूसी द्रव्य) भरा था. उसको खोदकर मटियामेट कर डाला. आगे खोदनेपर चौथी कोठरी देखनेमें आई. उसमें चांदीही चांदी (उद्योग-धन) भरी हुई थी. उसकी भी कुछ परवा न करके खोद खादकर अलग फेंक दिया; और गुरुजीके वचनानुसार आगे खोदने लगा. जब पांचवीं कोठरी प्रकट हुई और उसके भीतर उसने दृष्टि डाली तब देखा कि उसमें सुवर्ण (शुष्क ज्ञान) भरा हुआ है. उसकाभी लोभ न करके उसेभी खोद डाला और फिर खोदता रहा. खोदते २ अन्तमें छठी कोठरी भी निकल आई. उसमें अपार हीरा, मोती, माणिक आदि अमूल्य रत्न-भंडार (सत्य ज्ञान) दिखाई दिया. उसको लेकर वह अरक्त अपनी पांचों स्त्रियोंके साथ अपने स्थानको गया. वहां अनन्त कालतक उन कामिनियोंके साथ स्वानन्दसाम्राज्यका वैभव भोगता हुआ आनन्द करने लगा और अन्तकालमें वह परमपदको प्राप्त हुआ.

हे यज्ञभू ! इस कथाका मतलब तू समझा वा नहीं ? न समझा हो तो सुनः—आत्मरूप-सत् ज्ञानरूप धनसे रहित, अपने घरमें अर्थात् संसारमें

दीन दुःखिया, अरक्त अर्थात् विरक्त–वैराग्यवान् एक जीव एक दिन गुरुके आश्रमरूपी वनमें गया. वहां उसे दयालु महात्मा सद्गुरुसे भेंट हुई. उनसे उसने प्रार्थना की कि—“ हे प्रभु ! इस संसारतापरूपी दावानलकी ज्वालासे मैं जला जाता हूं. मुझको ब्रह्मानन्दरससे परिपूर्ण पवित्र, ठंडे, योग्य और मनको शान्ति देनेवाले वचन सुनाइये. मुझको आत्मतत्त्वरूपी धनकी इच्छा लगरही है, और उस (द्रव्य) के विना मैं बड़ा कंगाल बन गया हूं; इस लिये आप कृपा करके मुझे उस धनकी प्राप्ति कराइये. मैं इस संसाररूप भयंकर समुद्रसे किस भांति पार उतारूं ? मेरी उत्तम गति किस प्रकार हो सके ? और सद्गतिका क्या उपाय है ? सो मैं नहीं जानता. अतएव; हे दयालु ! परम गुरुदेव ! अनुग्रह करके मुझ दीनकी रक्षा कीजिये. ” उसके ऐसे दीन वचन सुन कर उक्त परम दयालु महात्माने उसको विवेकरूप खड्ग और वैराग्यरूपी कुदाली नामके दो शस्त्र दिये और उन्हें लेकर पचीस पांवड़े जानेको कहा. इन पांवड़ोंको प्रकृतिरूपी गुण समझना; चौवीस पांवडे और पचीसवीं खोदनेकी जगह. यहां खोदना (खोजना) किसको ? शरीरको. शरीर क्या है ? मैं कौन हूं ? कर्त्ता कौन है ? मैं कहांसे आया हुं ? इनका विचार करना यही खोदना है. तथा अहंकार और द्वेषदृष्टिको दूर करनेकोभी खोदना कहते हैं. इस शरीरको खोदने लगतेही–यह शरीर क्या है; आत्मा क्या है ऐसा विचार करतेही सत्त्वगुणकी कार्यवृत्तियों रूप चार स्त्रियां निकल आती हैं. उनमें—

पहली रति—लज्जा, यह अग्निस्थान अर्थात् चक्षुओंमें रहती है.

दूसरी दया—यह द्वारमें अर्थात् मुखमें निवास करती है.

तीसरी कीर्ति—यह धर्मशालामें अर्थात् प्राणमें रहती है.

चौथी धृति—यह अन्तःपुरमें अर्थात् अन्तःकरणमें रहती है.

आगे अन्नमय कोशमें खोदने लगा. अर्थात् शरीरमें विचारने लगा कि “ मैं कौन हूं ” ऐसे विचारनेसे चार पुरुष प्रकट हुए. इनमेंसे—

पहला काम—जो अग्निस्थानमें रहता है, उसकी स्त्री रति लज्जा है.

दूसरा क्रोध—जो द्वारमें रहता है. इसकी स्त्री दया है.

तीसरा लोभ—यह प्राणमें रहता है और कीर्ति उसकी स्त्री है.

चौथा मोह—जो अन्तःकरणमें रहता है और धृति उसकी स्त्री है.

परन्तु जहां काम है वहां लज्जा नहीं, जहां क्रोध है वहां दया नहीं, जहां लोभ है वहां कीर्ति नहीं और जहां मोह है वहां धृति नहीं. इस जीवको उचित है कि, उनका नाश करडाले.

ये चारों स्त्रियां सत्त्वगुणवाली होनेके कारण ब्राह्मणियां हैं. उनको रजोगुणवाले क्षत्रिय भोगते हैं इस अन्यायको जानकर काम क्रोधादिक चारों क्षत्रियोंको मार डाला. इसी भांति मुमुक्षु काम क्रोधादिका शमन करे; यह उसका कर्तव्य कर्म अर्थात् तरने-पार उतरनेका साधन है. इन ब्राह्मणियों (सात्त्विक वृत्तियों) को क्षत्रिय (राजसी वृत्तिवालें) नहीं भोगने पावें इसलिये उनको मारकर भस्म करने लगा. तब चारों स्त्रियां उनके साथ सती होनेको तयार हुई तो उनमेंसे लज्जा, दया और कीर्ति इन तीनोंकोभी उन्हींके साथ जला दिया और धृति-धीरज नामकी स्त्रीको रख दिया. क्योंकि मुमुक्षुको परमतत्त्व जाननेके लिये धृति धीरजको सदा साथ रखना चाहिये. मुमुक्षुको लज्जा, दया और कीर्ति प्राप्त करना परब्रह्मका ज्ञान संपादन करनेका बाधक है. अतएव, उनको भस्मीभूत करदेनाही श्रेष्ठ है.

पुनः खोदते २ अर्थात् शरीरही खोजते २-विचार करते २ दूसरी बार दूसरी चार स्त्रियां निकलीं. उनमेंसे—

पहली मैत्री—सबके साथ समान भाव-मित्रता रखना.
दूसरी मुदिता—उत्कृष्टको देखकर प्रसन्न होना.
तीसरी करुणा—दीनपर कृपा करना.
चौथी उपेक्षा—परित्यक्त वस्तुका फिरसे चिन्तन नहीं करना.

और पांचवीं (पहली चारमेंसे बची हुई) धृति प्रारब्धकर्मके वश होकर इन चारोंकी सेवामें रही, अर्थात् मुमुक्षु पुरुषको ऊपरवाली चारोंका उपभोग करते हुए धीरजकी आवश्यकता रहती है.

अब लज्जा, दया और कीर्तिको मुमुक्षु त्याग देवे ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है, कि, कुब्जाने लज्जाका परित्याग किया तो रोगरहित शरीरवाली होकर पटरानी बनगई और श्रीहरिकी प्रिया होगई तथा देहसे पवित्र बनकर आत्माको विशुद्ध करके संसारको तर गई; और गोपियोंने लज्जा रक्खी उससे वे विरहदुःखमें तड़प २ करही मरगई.

दयाके विषयमें सुन. जड़भरतने मृगी (हरनी) पर दया की जिससे उसमें वासना रहजानेसे वह तीसरे जन्ममें मुक्तिको प्राप्त हो गया. इस लिये स्त्री, पुत्र, शरीर अथवा इन्द्रियादिक पर दया करते रहनेवाले पुरुष जन्म-मरण

भोगतेही रहते हैं. अतएव ब्रह्मविद्या संपादन करनेवाला जीव, इसकी क्या दशा होगी, स्त्री भोली है, व्यवहारको नहीं समझती है, वाल-बच्चे अभी छोटे हैं, काम-धंधेमें नहीं लगे हैं, व्यवहारका इनको ज्ञान-अनुभव नहीं है, ऐसा सोच समझकर उनपर प्रीति करता हुआ संसारमें लिपटा न रहे; किन्तु समय आनेपर तयार रहे; इसकारण दयाका त्याग कहा गया है.

अब रही कीर्ति. इसको छोड़ देनेको क्यों कहा सोभी सुन. वलिराजानें बहुतसा दान करके बड़ी भारी कीर्ति प्राप्त की, और उसी कीर्तिके कारण अन्तमें नागपाशोंसे बँधना पड़ा था. शृंगी ऋषिको गणिकाके दियेहुए मिष्टान्नके स्वादका लोभ लगा था, जिससे अन्तमें कीर्ति नष्ट हुई. इसभांति लोभ* न करना और कीर्ति हो वा न हो इसकी किंचित्भी चिन्ता किये विना जो श्रेष्ठ साधन है उसको साधनेमेंही तत्पर रहना.

अब धृतिका माहात्म्य श्रवण कर. इसको तो इसके पति-मोहका परित्याग करकेभी, अपने साथमें रखना और सुख तथा दुःख दोनोंमें इसको धारण करना चाहिये. दुःख आ पड़े तब धीरजका उपयोग इसभांति करना कि-'क्या चिन्ता है ? यह दुःख भी सदा सर्वदा रहनेवाला नहीं है. इसका भी किसी न किसी दिन तो अन्त आवेहीगा और जब दुःख चला जायगा तब सुखही होगा.' तथा सुखमें धीरज रखना इसको कहते हैं कि-सब बातसे अपने तई सुखसम्पन्न समझकर गर्व नहीं करना और उन्मत्त न होजाना. सुखी होनेके कारण अपने दुःखके दिनोंको विलकुल न भूल जाना, दीन दुःखियोंका गर्वसे निरादर नहीं करना, तथा शान्तिसे ऐसा विचार मनमें रखना, कि, यह सुखभी सदा बना नहीं रहेगा. इसके अन्तमेंभी दुःख लगा है. दुःख-सुखका जोड़ा है. कहा है कि-"सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्" सुखके पीछे दुःख और दुःखके पीछे सुख लगा हुआ है. जिसप्रकार दिनके अन्तमें रात्रि होती है इसीभांति सुखके अन्तमें दुःख होता है. जो ऐसा जानता है और समझता है वह सुखसे उन्मत्त होकर, मर्यादाको उल्लंघन नहीं करता. ध्रुव, मयूरध्वज आदि मुमुक्षु महात्मा धैर्यको धारण करनेसेही कालके मस्तकपर पांव रखकर, तीनों लोकोंको जीतकर उनके भी ऊपर अखंडानन्द धाममें जा बसे और कैवल्य पदको प्राप्त हुए.

*जीवनपर्यन्त (प्राण रहता है तवतक) मनुष्य लोभ करता रहता है, इसी कारण अन्तकालमें प्राणोंमें लोभ रहता है, ऐसा कहा है.

दूसरी वार उत्पन्न हुई अर्थात् विचार करनेसे जानी गई जो मैत्र्यादि चार स्त्रियां हैं उनको स्वल्पकालतक अंगीकार करनेके लिये अनेक प्रवल प्रमाण हैं. यथा—

मैत्री—मनुष्यके साथ नहीं, किन्तु श्रीहरिके साथ स्नेह करनेके कामकी है.

मुदिता—प्रभुकी मूर्तिका दर्शन करके आनन्दमग्न होनेके लिये आवश्यक है.

उपेक्षा—मन त्याग करनेके पीछे उस तरफ देखनेकी, स्वाभाविक रीतिसे किसीको भी इच्छा नहीं होती; इसी तरह जिन्होंने एकवार संसारको त्याग दिया है उन्हें फिर उसकी ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिये. इसभांति उपेक्षाका उपयोग किया जाता है.

ऊपर दर्शाई हुई विधिसे शरीरका शोधन करनेके उपरान्त फिर खोदने अर्थात् विचारनेसे जिज्ञासुको पहली कोठरी—अन्नमयकोश दिखाई देता है; परन्तु उसको मिथ्या समझ (झूठा जान) कर खोद डालना चाहिये. ये जीवगण, ' मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं, मैं वैश्य हूं, मैं शूद्र हूं, मैं अमुक हूं, मैं तमुक हूं ' ऐसा समझते और मानते रहते हैं और जो २ दृश्य (दिखाई पड़नेवाले) पदार्थ हैं वे सव झूठे हैं ऐसा जानतेहुएभी, इन दृश्य पदार्थोंके धर्मोंको बुद्धिमें आने देते हैं; किन्तु ये सव विचार ब्रह्मज्ञानमें बाधक होते हैं. इसकारण ये सव दृश्य—पदार्थभी ब्रह्मवेत्ताको भ्रष्ट करनेवाले हैं ऐसा जानकर इनका सर्वथा परित्याग करना. त्वचा, मांस, मज्जा, हाड़ और विष्ठाके समूह-वाला अन्नमय (कोश) देह नित्य तथा शुद्ध आत्मा वननेके योग्य नहीं. देह अन्नसे उत्पन्न हुआ है, उसीसे अन्नमय कोश वनता है, परन्तु वह असत्य—नाशवंत है इस कारण उसमें प्रीति रखना उचित नहीं. वह देह जन्म होनेके पूर्व नहीं था और मरनेपरभी यह नहीं रहेगा. और आत्मा सदा नित्य और सत्य है. आत्मा देह नहीं है, इस देहका नियंता है. देहका—उसके धर्म कर्मका तथा अवस्थाका साक्षी है. वह (आत्मा) देहसे भिन्न है, विलक्षण है, अतएव शुद्धचित्तवाला पुरुष इस देहाभिमानको त्याग देवे.

दूसरी कोठरी प्राणमय कोश है. वह प्राणभी पर—प्रकाश होनेसे अनित्य है. प्राण कुछ आत्मा नहीं हैं अर्थात् ये द्रव्य (चैतन्य) नहीं; किन्तु जड़-वेदार्थरूप है. नींदमें कोई पगड़ी ले जावे तोभी यह चोरको नहीं पकड़ता और किसीने वाण मारा तो जैसा वह वाण, उस चलानेवालेके लक्ष्यके अनु-सार वेगसे चला जाता है, तथापि स्वतंत्र नहीं है. ऐसेही प्राणभी वाणवत्

समझना. प्राणका प्रेरक चैतन्य पुरुष है इस कारण प्राणभी मिथ्या (झूठा) है और प्राणके धर्म भूख, प्यास, जाना, आना इत्यादि आत्माको नहीं लगते. 'अन्नादभ्यन्तरं प्राणः प्राणादभ्यतरं मनः' तदनुसार अन्नमय कोशमें प्राणमय कोश है वह सत्य होगा वा नहीं इस बातका विचार मात्रभी मुमुक्षु पुरुष न करे.

दूसरी कोठरीको खोद चुकने (प्राणमय कोशको झूठा जान चुकने) पर तीसरी कोठरी प्रकट हुई. वह मनोमय कोश है. निद्रामें प्राणके साथ मनका संबंध नहीं, इससे मन स्वतंत्र है. यहां शंका होती है कि, तब क्या मनही आत्मा है ? परन्तु विचार कर देखनेसे जान पड़ेगा कि, मन अन्तः-करणकी संकल्पविकल्पात्मक एक वृत्ति है; किन्तु आत्मा नहीं और यह आत्मा नहीं इसलिये अनित्य है. फिर मन बड़ा चंचल और जन्ममरणके बंधनमें डालनेवाला है. ऐसा समझकर इस कोठरीकोभी नष्ट कर डालना अर्थात् मुमुक्षु जीवको अपने मनको मारना चाहिये. यह मन अविद्याके साथ मित्रता-सखाभाव रखनेवाला है और अविद्याही संसारबंधनका मुख्य कारण है; इस कारण यदि इस मनका नाश होजावे तो सब प्रपंचका नाश होजावेगा. यही मन देहादि विषयोंमें जीवको दौड़ाता है .इसीसे मनोमय कोशको भी झूठा समझना.

चौथी कोठडी विज्ञानमय कोश है. यह कोश बुद्धि, वृत्तियां, और ज्ञानेन्द्रियोंके संमेलनसे बना है. यह कोश-'मैं कर्त्ता भोक्ता हूं' ऐसा मानता-जानता है. बुद्धि कर्त्ता है, मन कर्म है, बुद्धि मनको प्रेरणा करती है और वह विज्ञानमयकोशके भीतर स्थित है, इसीसे ऐसा भ्रम होता है कि क्या वही (बुद्धि) आत्मा है, परन्तु बुद्धिभी परिणामशील होनेके कारण मिथ्याही है और वहभी आत्मा नहीं; अतएव उसको सहायककी भांति रखना, परन्तु स्वतंत्र नहीं होने देना चाहिये. परमात्माके समीपत्वके कारण यह विज्ञानमय कोश बहुत प्रकाशमान है और इसीसे यह आत्माका उपाधिरूप है. जिस उपाधिसे जीव 'मैं मैं' का अभिमान किया करता है और जन्म-मरण पाया करता है. विज्ञानमय कोशको, जागृत स्वप्नादि अवस्था, सुख-दुःखके भोग, देहादिमें रहेहुए आश्रम, धर्म, कर्म, तथा गुण ये मेरे हैं ऐसा अभिमान बना रहनेसे उनमें वह अपना एकत्वं माननेसे आप स्वयं परिच्छेदको प्राप्त होकर, स्वरूपके सर्वात्मक होनेपरभी, मिट्टीके

बड़ेकी नाई, अपने आपको जुदा समझता है, उसका मोक्ष होना संभव नहीं. यह कोश विकारमय, जड़, दृश्य, परिच्छिन्न और व्यभिचारी होनेके कारण यहभी सत्य नहीं अतएव इसकाभी त्याग करना.

पांचवीं कोठरी आनन्दमय कोश है. चैतन्य (प्रज्ञान) आनन्दरूपही है. परन्तु केवल विकारोंके मिल जानेसेही कोश होता है. प्रियता इसका मस्तक है. मोद और प्रमोद ये दोनों इसके पंख हैं. आनन्दव्यष्टि और अज्ञान इन दोनोंके मिलनेसे इसका धड़ बनता है और शेषसे रहा ब्रह्म सोही इसकी पुच्छ है. यहभी उपाधिसहित है; प्रकृतिके विकाररूप है; कार्यरूप है; और पुण्यके विकारके आधीन है. इसीसे यहभी सत्य नहीं.

इस आनन्दमय कोशसे अथवा इन पांचों कोशोंसे भिन्न स्वयंप्रकाश, तीनों अवस्थाओंका साक्षी, निर्विकार, और सच्चिदानन्दरूप जो तीनों कालमें अक्षय है वही परम निधि है. पांचों कोठरियोंको खोद फेंकने उसको मिथ्या जान लेनेके अनन्तर छठी कोठरी कहो अथवा पांच कोठरियोंके पश्चात् जो निधि रहा वही परम धन है, सोही आत्मा है. वही परमात्मा है. वही परम पुरुष है. उसको संग्रह करना—उसको जानना, यही जीवका मुख्य कर्तव्य है. अरे मृत्युलोकके मुमुक्षुजन ! जो जीव इन सबसे निर्विकारी बनकर साधुपुरुष होकर, अज्ञान और विकल स्थितिका सर्वथा त्याग करके निवृत्त होकर, निवृत्तिमें परायण रहता है वही परमपद पानेका पात्र समझा जाता है. यह संसार मिथ्या है, इसमें अन्तःकरणको शुद्ध करनेके लिये तप करनाही एक श्रेष्ठ साधन है. महात्मा पुरुषका सेवन करना यह मोक्षका द्वार है. समदृष्टि और शान्तवृत्ति ये सुखके स्थान हैं. शरीरशोधन यही शुद्धताका कारण है. और परब्रह्मका ज्ञानही अनन्तसुखका नित्यमुक्त स्थान है. कर्म और व्रत करके रहना, बंधनोंका सेवन करते रहना, इससे कुछ सुख नहीं मिलता; किन्तु जो जीव बन्धनोंको तोड़कर, कर्मको वशमें करके, आत्मामें प्रीति लगाकर रहता है वही परब्रह्मको पाता है; परन्तु इस लिंगदेहके अभिमानने सबको भुलौआ दिया है और देता है. यदि मनुष्य विवेकी बनकर कर्मका त्याग करे और मायिक पदार्थोंका मोह छोड़ दे तो वह मोक्षको प्राप्त हो जाता है. कर्मत्याग अर्थात् निष्कामतासे कर्म करना; कृष्णार्पण—ब्रह्मार्पण कर्म करना; जहांतक व्यवहार बना है तहांतक करना आवश्य है. व्यवहारमें रहकर कर्म त्याग करनेके निमित्तसे भूखेको भोजन,

तृषातुरको जल, अर्थीको अर्थ न देतेहुए कर्मत्यागका ढोंग करना महामूर्खता है. व्यवहार है तबतक नित्यनैमित्तिक कर्मभी लगे हुए हैं; परन्तु यदि कर्म निष्काम है तो वह कर्म त्यागके जैसेही है, इसमें कुछ सन्देह नहीं.

आत्माको खोजनेका ज्ञान सब शास्त्रोंके पढ़नेसेही आता है, ऐसा नहीं है; किन्तु शुद्ध चित्तवृत्ति और तत्त्ववस्तुको जाननेसे आता है. यह अधिकार प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको अध्यात्मज्ञानका अधिकारी बननेके निमित्त, कर्त्ता भोक्तापनका अभिमान त्याग देना चाहिये; और महात्माओंका समागम करके सत्यवस्तु क्या है सो जानना चाहिये. यह देह नष्टहोनेवाला है इसलिये इसपर प्रीति करना व्यर्थ है. यह जगत् नष्ट होनेवाला है इसलिये इसपर मोह रखना महामूर्खता है. स्त्री पुत्रादिक तेरे नहीं हैं, तेरे साथ आये नहीं और तेरे साथ जानेवाले भी नहीं. ये भी नाशवंत हैं; अतएव इनमेंकी लालसाभी झूठी है. अस्तु, ध्यान दे कि, परब्रह्म केवल एकही है, आत्मा एकही है, वह अद्वैत है, नित्य है; अजर तथा अमर है, आत्मा फेरफारसे रहित है, वह राग द्वेष रोग व दुःखसेभी रहित है, फिर आत्मा तीनों गुणोंसे विरक्त है. औरभी, आत्मा स्वच्छ, शुद्ध, अचल, अमर, अजन्मा और अपरिच्छिन्न है, तथा उस आत्माका इस मायिक नाशवंत पदार्थके साथ कुछभी संबंध नहीं है—संसारमें रहकर जो मनुष्य ऐसा सोचता और चिन्तन करता है वही सत्यपथपर चढ़ता है. किसीकोभी सत्य और नित्य वस्तुका यथार्थ ज्ञान ईश्वरकृपा और गुरुप्रसाद विना नहीं होता. जो शोधक पुरुष जीवनका कर्त्तव्य, हेतु, और कारण यथार्थ रूपसे जान लेगा वह सुखके मार्गमें निर्भयतासे गमन करेगा; वह निःशंक होकर सत्यासत्यका विचार कर सकेगा और नीति—अनीतिको भलीभांति जान सकेगा. परन्तु इन सबके लिये परम आवश्यक वस्तु है. जानना, विचारना, और मनन करना; इतना करनेसेही मनुष्य अपने सच्चे, अकृत्रिम, अप्रतिम स्वरूपको जान करके उपाधिरहित परब्रह्मरूप होजावेगा. हे विशाल! महात्मा गुरुजी इतनी कथा कहकर रुक गये और समाधि लगाकर प्रत्यक्तत्त्वका ध्यान करने लगे. और मैं उनको प्रणाम करके अपने आश्रमको आया.

चतुर्थ बिन्दु.

कर्त्तव्य.

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोपणात्।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम्॥
कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्त्ताऽस्य विद्यते।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः॥
अनेनैव प्रकारेण वृत्तिर्ब्रह्मात्मिका भवेत्।
उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम्॥ [अपरोक्षानुभूतिः]

अर्थ— स्ववर्णाश्रमधर्मसे, तपसे, हरिको संतुष्ट करनेसे पुरुषको वैराग्यादि साधन-चतुष्टयकी प्राप्ति होती है. मैं कौन? यह जगत् क्योंकर उत्पन्न हुआ? इसका कर्त्ता कौन है? इस जगत्का उपादान कारण क्या है? ऐसा विचार है? सोही ज्ञानका साधन है. शुद्ध चित्तवालोंके इस प्रकार विचार करनेसे ब्रह्माकार वृत्ति उदयको प्राप्त होती है, और वह वृत्ति उदय होनेके पश्चात् वृत्तिज्ञान अर्थात् वह वृत्ति स्थिर होती है.

यज्ञभू विशालकेतुसे कहता है– चौथे दिन मैं अपने आह्निक नित्य-नियमसे निवृत्त होकर, योगेश्वरके पास जानेको तैयार हुआ. उनके गत तीन दिनोंके सदुपदेशसे मेरा मन प्रफुल्लित होरहा था. मुझे ऐसा भासमान होनेलगा, मानों मैंने दीर्घ कालसे ज्ञानानुभव सिद्ध करलिया है. गत दिवस उन्होंने भवाटवी और शरीरशोधनका पूरा २ वर्णन किया था, जिससे मैं अपने मनमें सचमुच समझने लगा कि–' यह संसार केवल घोर अरण्यके समान है; और उसमें प्रवेश करनेवाले–प्रवृत्त हुए जीव उसका असली मर्म न समझकर, उसमेंके क्षणिक, दुःखद, नरकमें गिरानेवाले विषयसुखोंकी आशामें निरन्तर गोते खाया करते हैं, जिसका परिणाम दुःखही है, तब क्या किया जाय? संसारमें क्या करना? इसका मनन-

करता २ मैं जब उन योगेश्वरके निकट गया, और दंडवत् प्रणाम करके उनके सन्मुख बैठा, तब वे विना प्रश्न कियेही, मुझको आशिष देकर अपनी अमृतरूपी वाणीकी वृष्टि करने लगे

उस दिव्य मूर्तिने कहा-" साधु ! तेरी मनन करनेकी रीति (स्वभाव) देखकर मुझको संतोष होता है. मनुष्यजन्म धारण करके प्राणीको अपना कर्त्तव्य कर्म क्या है, सो अवश्य जानना चाहिये. मनुष्यदेहके महत्त्व, श्रेष्ठता, योग्यता आदिके संबंधमें मैं पहलेही तुझे कह चुका हूं; अस्तु. जो मनुष्य इस देहको धारण करके अपने कर्त्तव्यको नहीं समझता, वह सचमुच अपात्र समझा जाता है. वह अपना अलभ्य लाभ पानीके मोल गँवा देता है और इसीकारणसे उसको अनेक जन्म पछताना पड़ता है. इस मनुष्य शरीरका सार्थक्य-कर्त्तव्यकर्म, वास्तवमें तो यही है कि, जिसको जाननेके लिये यह मनुष्यदेह प्राप्त हुआ है, उसके सत्य स्वरूपको जानकर चित्तकी शुद्धि करना. इस मुख्य कर्त्तव्यको सिद्ध करनेकी साधनभूत और भी अनेक सामग्री हैं तो भी उनमेंसे जो केवल लाभकारी मुख्य २ साधन हैं सो तुझको कह सुनाता हूं:

जागृत रहना.

सब कर्त्तव्योंको दर्शानेवाला मुख्य कर्त्तव्य जागृत रहना है. जगत्में आकर मनुष्यदेह धारण करके जीवको निरन्तर जागृत रहना चाहिये. जागृत रहनेका अर्थ यह नहीं है कि, मनुष्य सदा सर्वदा निद्रारहित रहे. जितना श्रम उतनाही विश्राम कहागया है. किन्तु इसका अर्थ यह है कि सावधान रहे. मैं कौन हूं ? कहांसे आया हूं ? क्यों आया हूं ? इत्यादि वातोंका विचार करनेवाला तथा अपने मनको उन प्रश्नोंके प्रत्युत्तर देकर उसका समाधान करके सचेत रहनेवाला मनुष्य इस जगत्में 'जागृत' कहलाता है. संसारमें स्वार्थ और परमार्थ ऐसे दो मार्ग हैं. इनमेंसे स्वार्थ मनुष्य प्राणीके साथ पहलेसे ही अपना संबंध जोड़ता है और उसमें प्रवीण होनेसे मनुष्य अपने भरण-पोषणादि व्यावहारिक कार्योंको कर सकता है. यह स्वार्थ अर्थात् संसारका प्रपंच यदि यथार्थ रूपसे साधन करनेमें आवे तो उससे अपने आप परमार्थरूप फल उत्पन्न होता है. प्रपंच अर्थात् व्यावहारिक व्यापार और परमार्थ अर्थात् आत्मतत्त्वज्ञान संबंधी व्यापार. जो मनुष्य प्रपंचको यथार्थ रीतिसे नहीं साध सकता उसको परमार्थसाधन

अत्यन्त कठिन हो जाता है. परमार्थको जानने समझनेकी पाठशालारूपी यह प्रपंचमें है. प्रपंचमें कुशल हुआ मनुष्य सहजहीमें परमार्थको साध सकता है. प्रपंचमें (संसारव्यवहारमें) जितनी सावधानी और लगन रखनेकी आवश्यकता है उतनी ही परमार्थमें भी है. अतएव, प्रापंचिक प्रसंगमें किस भांति सावधान रहना उचित है, सो सुन.

प्राचीन कालमें किसी राजधानीमें एक धनाढ्य गृहस्थ रहा करता था, वह संसारके समस्त सुखोंसे परिपूर्ण सुखी था; अर्थात्, शरीर, स्त्री, संतति, द्रव्य और समय (देश काल) इत्यादिक सब उसके अनुकूल थे. वह व्यवहारमें बड़ा सत्यवादी और न्यायवान् था; उपार्जित लक्ष्मीका सदुपयोग करनेसे उसका यश चारों दिशाओंमें फैल रहा था; द्रव्योपार्जनके उसके अनेक मार्ग थे; जलमार्ग तथा स्थलमार्गसे सर्वत्र उसका बड़ा व्यापार चलता था; देश देशान्तरके मुख्य २ नगरोंमें उसकी अनेक कोठियां खुलरही थीं, जहां उसके मुनिम गुमास्ते लोग काम किया करते थे, वह अपनी मुख्य बड़ी कोठी (दूकान) अपनेही नगरमें रखता था, और देशावरकी शाखा-दूकानोंपर कारोबार करनेवाले मुनीम गुमाश्तोंको अपनी पसंद और इच्छानुसार अपनेही यहांसे अर्थात् राजधानीमेंकी मुख्य बड़ी कोठीपरसे चुनकर भेजा करता था. इन कर्मचारियोंका वेतन उनको योग्यताके अनुसार, अथवा जहां उनको भेजता वहांकी दूकानकी नामवरी और जोखमके प्रमाणसे, पहलेही नियत करदिया करता था; परन्तु जब किसी मुनीम गुमाश्तेको किसी देशावरकी दूकानपर भेजता तो उसको वहां कितने काल तक रहना पड़ेगा यह प्रकट नहीं करता था, वरंच यह कह देता था कि, मुनीमजी ! जिस दिन हमारा बुलौवा पहुँचे उसी दिन तत्काल बिदा होजाना चाहिये. हमारी (सेठकी) आज्ञा पहुँचनेपर वहां एक पलभरभी न ठहरकर, तुरन्त यहां लौट आना चाहिये. रही हिसाबकी बात सो जब हमारी इच्छा होगी तब हम अपना हिसाब आपसे मांगेंगे. इसप्रकार कारबारवालोंको चेता देनेमें उसका बड़ा उत्तम और गूढ़ अभिप्राय था. इसकारण देशान्तरोंमें, स्वतंत्रता पूर्वक उसकी दूकानोंका कारोबार करनेवाले मुनीम गुमाश्ते लोग कभी चालाकी, गफलत, दगाबाजी और तकरार नहीं कर सकते थे. यह बिदा करते समय प्रत्येक नौकरको इस भांति ठीक २ समझाकर सावधान कर दिया करता था कि, 'तुम ऐसी रीतिसे

न्यायनीति पूर्वक कामकाज चलाना कि, जिससे मेरी साथ पीढ़ी (पुश्त) से चलतेहुए मेरे बापदादेके नामको बट्टा लगने न पावे. अन्याय (जोर जुल्म) से कमाया हुआ लाख रुपया भी मुझको नहीं चाहिये और नीति-पूर्वक उत्पन्न हुई एक पाईमें भी मुझे संतोष है. जैसे बने वैसे धर्मपरा-यणता और सत्यपरायणतासे व्यवहार चालाना. प्रामाणिकपनको सहोदर बनाना. अपने कामके सिवाय और प्रपंचोंमें फँस जानेसे मेरे बुलानेपर यहां लौट आनेके समय, किसी प्रकार भय, घबराहट और रुकावट हो ऐसा काम कभी मत करना. मैं अधिक धन पैदा करनेकी कुछ परवाह नहीं करता हूं; किन्तु सर्वत्र चलते हुए मेरे व्यवहारसे जनसमाजमें सर्व साधारणमें कैसा संतोष उत्पन्न होता है और सब लोग मेरे नामको कैसा चाहते हैं इसीपर सदा सर्वदा मेरा अधिक लक्ष्य रहता है. चतुर और समझदारको इतना कह देनाही बस (काफी) है. आगे तो ' सेठकी सीख पल्लेतक ' तुम अपनी बुद्धिके अनुसार वर्ताव करोगे. किन्तु यथासंभव पहलेसे चेता देना यह मेरा कर्तव्य है. "

एक समय उस सत्यवादी सेठके पास दो वणिक्–पुत्र नौकरीके लिये गये. वे दोनोंभी भली भांति लिखे पढ़े और व्यापारीहीके लड़के थे. वे व्यव-हारकी रीतिभांतिको खूब समझते थे. उन दोनोंमें कुछ निकटका संबंध (रीश्तेदारी) नहीं था तोभी एकही गांवके रहनेवाले होनेके कारण बहुत कालसे उनमें परस्पर बड़ी मित्रता चली आती थी. उनमेंसे एकका नाम विवे-कचन्द्र और दूसरेका नाम अर्थगुप्त था. दोनोंको व्यवहारकार्यमें कुशल जानकर उस सेठने उनको नौकर रखना स्वीकार किया और अपने नियमोंसे जानकार करके जुदे २ देशावरोंकी दूकानोंपर उनको भेजा. इस जगत्में सबका प्रारब्ध अपने २ साथ हैं. उपनिषद्में कहा है—

> आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
> शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भगः ॥

" जीव जब नीचे बैठता है तब उसका भाग्यभी नीचे बैठता है, और जब जीव खड़ा होता है तब उसका भाग्यभी खड़ा होता है. जब जीव सो जाता है तब उसका भाग्यभी सो जाता है; और जब जीव फिरता है, तब भाग्यभी फिरता है." अपनी २ चतुराई, विवेक, सयानप इत्यादि अपनेही काम आते हैं. एकही माताके उदरसे जन्म पायेहुए दो सगे

भाइयोंके स्वभाव (ढंग, वर्त्ताव) भाग्योदय आदिकमें वड़ा भारी अन्तर होता है. ऐसेही विवेकचन्द्र और अर्थगुप्तमेंभी था. जो कि वे दोनोंही, व्यापारके काममेंभी समानरूप कुशल थे, तोभी विवेकचंद्र तो मूल–मुख्य वातपरही विशेष ध्यान देनेवाला था; और अर्थगुप्तका मन चारों तरफ– हरेक वातपर एकसाथ विचार करनेवाला था. विवेकचंद्र जवसे सेठके यहांसे रवाना हुआ तवसेही उसके मनमें यह वात वस गई कि " न जाने, कव और कितने दिनोंमें सेठ मुझको पीछा वुला ले. वुलौआ आनेपर तो मुझको अपने हाथका सव कामकाज समेटकर चलना होगा तथा मुझको अपने किये हुए व्यवहारका जमाखर्च लाभ हानिका हिसाव भी सेठको समझाना पड़ेगा. इसलिये, मैं अभीसे सव वातोंसे सावधान क्यों न रहूं ? मुझको अपने रास्ता–खर्च और दुकानके कामकाजके लिये उसके साथ संवंध रखनेवाली दूसरी दूकानोंके साथ होनेवाले लेनदेनका यथोचित हिसाव रखना चाहिये." ऐसा सोच समझकर विवेकचंद्रने तो आरंभसेही अपने कामकाजकी वड़ी चिन्ता रक्खी और अर्थगुप्त वेफिकरीके साथ अपनी नौकरीपर जानेके लिये विदा हुआ. अर्थगुप्तने अपने मनमें यह समझा कि " अभीसे क्या उतावल है ? सव हो जायगा. कमसे कम वरस दो वरस तो स्थिरतासे रहनाही होगा. तव अभी किसको हिसाव देना है ?" इसप्रकार भिन्न२ विचार करके दोनों मित्र, एकही दिन आपसमें चिट्ठी पत्री लिखनेकी प्रार्थना करके, एक दूसरेसे विदा हुए. विवेकचंद्रने अपनी जगहपर पहुँचतेही वहांके पुराने मुनीमसे सव पिछला हिसाव समझ लिया, दुकानका लेना देना वही-खाता देख जांचकर ठीक२जान लिया, नकद रुपया और हुंडी पुर्जा तथा दुकानकी माल–मिलाकात कितनी है सो सव गिन देखकर, रुजू होकर अपनी तसल्ली करके ठीक २ संभाल लेनेपर उसको पहुँच (रसीद) लिखदेकर छुटकारा किया और दूकानके व्यौरेवार सव समाचार अपने सेठको लिख भेजे. विवेकचंद्र नये सिरेसे अपना कारोवार चलाने लगा. अपने आधीन (मातहत) गुमाश्तोंको ताकीद देकर उगाही (वसूली) कराने लगा तथा लेनदारोंको, उनके लेने पेटे कुछ मालकी भरती करके तथा कुछ नकद रुपया देकर ठंडा कर दिया. जो माल दूकानमें वच रहा उसकी सेठके यहां आवश्यकता हो अथवा और २ दूकानोंमेंसे किसी दूकानपर उसकी खपत हो तो मंगा लेनेके लिये वारंवार चिट्ठियां भेजने

लगा; इसभांति चारों पछे साफ करके, दुकानका (व्यवहार) फूल जैसा हलका कर दिया. तिस पीछे सुखसे अपनी इच्छानुसार माल खरीदना और वेचना आरंभ किया तथा कई प्रकारके सौदे सूत करता हुआ पहलेसेभी बढ़कर दूकानकी साख (पेठ) वढ़ाई. वह किसी दिनभी दूकानका नामा नहीं चढ़ने देता—नित्यके नित्य लिखता वा लिखा देता था. रोजका हिसाब रोज बंद कर देता. देशान्तरसे आईहुई चिट्ठी—पत्रीका उत्तर देने वा काम काजकी चिट्ठी—पत्री लिखने पढ़नेमें किंचिन्मात्र आलस नहीं करता. वर्षके समाप्त होनेपर सालभरका मेल मिलाकर सेठके विना मँगायेही, उसके पास भेज दिया करता और अपने हाथसे किये हुए नफे वा टोटेको स्पष्ट दिखा देता था. इस प्रकार वहिवट (व्यवहार) करते २ उसने लगभग तीस चालीस महीनेमें अपने सेठको बहुतसा नफा कर दिखाया. सेठने उसपर बहुत प्रसन्न होकर अपनी तरफसे उसको शिरोपाव भेजकर उसका मान और उत्साह बढ़ाया. बहुत समयतक नौकरी कर चुकनेपर विवेकचंद्रने थोड़े दिन विश्राम लेनेका विचार किया और अपने सेठको अपने घर जानेकी छुट्टी मिलनेके लिये लिखा. तब सेठने उसके पत्रके उत्तरमें उसकी बहुतसी प्रशंसा करके वेतनमें वृद्धि कर दी और आग्रहपूर्वक लिखा कि " भाई विवेकचंद्रको मालूम हो कि, तुमने हमारी कोठीकी गद्दीपर बैठकर, हमारी प्रतिष्ठा तथा द्रव्यमें बहुत वृद्धि की है, जिससे हम बहुत सन्तुष्ट हैं; परंतु तुमको घर जानेकी छुट्टी देनेके लिये अभी हमारी मर्जी नहीं है; क्योंकि, इस समय तुम्हारी जगह पर तुम्हारे समान योग्यतावाला कोई मनुष्य हमको मिलना बड़ा कठिन है. तुम्हारा काम तुमकोही शोभता है. तुमने शरीरको विश्रांति देनेको दर्शाया सो अभी कामका बोझा कम होनेके लिये अपने हाथके नीचे और एक मनुष्य अधिक रख लेना. हम चाहते हैं कि, हमारा कहना मानकर तुम अभी थोड़े दिन और काम करते रहकर, दूकानकी प्रतिष्ठा बढ़ाओ. " इसपरसे विवेकचंद्र घर जानेका विचार छोड़कर अपना काम पहले जैसी सावधानी पूर्वक चलाने लगा.

परन्तु हे यज्ञभू! उधर विवेकचंद्रके मित्र अर्थगुप्तका क्या हुआ, सो सुन. यद्यपि अर्थगुप्त धर्मनिष्ठ और न्यायपरायण था तथापि विवेकचंद्रके स्वभावमें और इसके स्वभावमें बड़ा अन्तर था. यह बहुत आलसी और असावधान—बेफिकरा था. इसके मनमें हरेक कामके लिये—'अभी होता है, करते हैं,

कहां भागा जाता है' ऐसेही विचार बने रहते थे. सेठके यहांसे चला तबसेही यह अपने कामोंको मुलतवी रखने लगा. उसकी जगहपर जो पहला मनुष्य था वह बड़ा सावधान था, इस कारण अर्थगुप्तको आरंभसेही अच्छी वहिवट हाथ लगी थी. उसके पूर्वाधिकारीके काममें किसी प्रकारका गोलमाल वा भूलचूक नहीं थी. अर्थगुप्तको दूकानका कामकाज सँभल कर उसको सेठके पास चले जानेके पीछे कई दिनतक व्यवहार ठीक २ चलता रहा; क्योंकि, पहलेका ढंग अच्छा बँधा हुआ था और खातेदार तथा आढ़तिये लोग रुपयेकी भरती झट२ करते रहते थे; परन्तु पीछेसे जब उन्होंने अर्थगुप्तके स्वभावको खूब समझ लिया तब पोलम्पोल चलाने लगे. वह आलसी और ढिलंगा होनेके कारण आजका काम कलपर और कलका काम दो दिन आगेपर छोड़ने लगा. यह बात निश्चय है कि, आलस और प्रमाद प्रत्येक कार्यमें बाधक होता है और इसीसे ऐसे मनुष्यका सदा पराजय होता आया है. किन्तु प्रभुभजन और व्यापारके काममें तो इन दोनों दुर्गुणोंके होनेपर सर्वनाशही होता है. कोई मनुष्य पहलेसे दुर्गुणी नहीं होता तो जब उसमें पीछेसे दुर्गुण प्रवेश करने लगता है तब यह नहीं समझता कि, अमुक दुर्गुण मुझपर अपना प्रभाव जमाने लगा है उसको हटा देना चाहिये, किन्तु वह दिन प्रतिदिन अधिकतर उस दुर्गुणमें लीन होता जाता है, जिससे अनेक दूसरे दुर्गुण उत्पन्न होकर उसके स्वभावके साथ हिलमिल जाते हैं, और तबभी वह उनको नहीं जान सकता अर्थात् उसके मनमें यह विचार उत्पन्नही नहीं होता, कि, मुझमें अमुक दुर्गुण है. कदाचित् वह उसको जान लेता है तो भी इतने विलंबसे और दुर्गुणके दृढ़तर होजानेके पीछे फिर उसको नष्ट करनेमें वह स्वयं अशक्त हो जाता है.

अर्थगुप्तमें असावधानी और प्रमादका अवगुण बहुत दिनोंसे जड़ जमा चुका था. उसका अन्तःकरण दुष्ट न था, सचमुच उसके मनमें यही भावना थी कि मुझे जिस कामके लिये यहां भेजनेमें आया वह काम मुझसे बराबर–यथार्थ रीतिसे पार पड़ जाय और मुझको भेजनेवाले सेठका भला होजाय तथा उसकी प्रतिष्ठा बनी रहै, परन्तु केवल भावनासे क्या हो सकता है ? उसका प्रमाद और असावधान ये दोनों, उसकी भावनाके शत्रु बहुत प्रबल थे. उसके आधीन मनुष्योंपर उसका बिलकुल दबाव नहीं पड़ता था, जिससे वे प्रायः नामा चढ़ा रखते और रुपया उगाहनेमेंभी बड़ी सुस्ती

करते रहते थे. जब कभी उनपर ताकीद की जाती तो वे कह देते कि 'अमुक २ काम था इससे नामा पड़ा रह गया; परन्तु अब एक दो दिनमें पूरा कर दिया जायगा.' ऐसा कहकर उतावलीसे हिसाब जोड़कर नामा लिखने बैठ जाते थे. इस फूर्तीका परिणाम यह होता था कि, हिसाबमें बार बार भूल होजाती थी, जिससे वर्षके अन्तमें हिसाब मिलानेमें बड़ी कठिनाई पड़ती थी. देशावरोंकी चिट्ठी पत्री लिखनेमेंभी प्राय: आजका काम कलपर छोड़ दिया जाता था. इसी भांति अपनी ओरसे देशावरको माल चढ़ानेके काममें भी थोडे दिनकी ढील होती रहती थी. कभी २ इस ढिलंगेपनेसे भेजे हुए मालमें हानि उठानी पड़ती थी. उगाहीके काममें सुस्ती और बेपरवाही होनेसे, अथवा सामनेवाले धनीके कच्चे पड़ जानेकी मालूम होनेपरभी उससे अपना रुपया निकलवानेमें सहज ढील होजानेसे, अथवा रुपयोंके बदले अपने ढंगका माल उससे लेकर उसके दबावमेंसे निकलनेकी युक्ति न करनेसे उसका बहुतसा लेना डूब जाता था, इस प्रकार चारों ओरसे अव्यवस्था और गोलमाल चलता रहनेसे वर्षके अन्तमें वह अपने सेठको नफे टोटेका हिसाबभी नहीं भेज सकता था, और जो कभी देर अबेरसे भेजता तो भी हिसाब असन्तोषकारक होनेसे सेठको बहुत बुरा लगता था, किन्तु 'अब आगे कैसे चलता है सो देखना चाहिये' इस बातका अवलंबन करके सेठ अन्तिम उपाय करनेका निश्चय करनेमें धीरज रखता था, परन्तु ऐसा कब तक चल सकता था? निदान, थोड़े दिन औरभी रंगढंग देखकर, तथा आसपासके उड़तेहुए समाचार सुनते और अर्थगुप्तकी दूकानके विना मतलबके थोथे कागज–पत्रोंपरसे शेठने विचार किया कि अब ऐसे नये नादान मनुष्यके दूकानपर रहने देनेसे बड़ा भारी धक्का लगेगा, इसलिये उसने वहां भेजनेके लिये एक दूसरे निपुण मनुष्यको ढूंढकर अर्थगुप्तको तुरन्त लौट आनेकी आज्ञा लिखभेजी.

सेठका बुलौआ आतेही अर्थगुप्तके मनमें बड़ी भारी घबराहट लग गई. उसको कुछभी नहीं सूझ पड़ा, 'अब क्या करूं? सेठको मैं क्या जवाब दूंगा? सेठने मुझको अचानक बुलाया इसका क्या कारण? यह वर्ष पूरा होने तककी अवधि दे देते तो मैं अपना हिसाब बराबर कर देता. हे भगवान्! अब मैं यह बात किससे कहूं?' ऐसेही विचारसागरमें वह गोते खाने लगा. कभी आशारूप तिनकेके आश्रयसे पार उतर जानेके विचा-

रसे कुछेक धीरज आता तो तत्कालही सेठकी ताकीद और अपनी गफलत-रूप भयंकर हिलोरों और बडी २ लहरोंके उमड़ आनेसे फिर दुःखसागरमें डूबा जाता. इसभांति डूबते निकलते बड़ी देर होगई. तब उसको एक उपाय सूझ पड़नेसे उसकी मुरझाई हुई आशालता फिर हरी हो गई. उसको अपने परम मित्र विवेकचंद्रका स्मरण हो आया कि, जो उसको बहुत चाहता था और जिसके साथ निरन्तर पत्र-व्यवहार चलता था. मित्रसे बहुधा कभी कोई बात नहीं छिपाई जाती और उसको अपने सुख दुःखकी बात कहनेमें कुछ शंका वा भयभी नहीं होता; क्योंकि वह अपना हितैषी होता है. अर्थगुप्तको इस संकटसमयमें विवेकचंद्रके सिवाय और कोई सहायक नहीं दिखाई दिया. उसने तत्काल अपने मित्रको अपनी यथार्थ स्थिति पत्रमें लिखी और एक कासिदको उसके पास भेज दिया. वह अतिशय शीघ्रतासे चलकर विवेकचंद्रके स्थानपर पहुँचा और उसको नमन करके पत्र देकर उसने कहा कि 'कृपा करके इस पत्रका उत्तर शीघ्र देना ऐसा उन्होंने कहा है.' विवेकचंद्र पत्र खोलकर पढ़ने लगा. उसमें लिखा था—'हे प्यारे मित्र विवेकचंद्रजी! मैं (अर्थगुप्त आपका मित्र) इस समय बड़ी विपत्तिमें आ फँसा हूं' जो कि, मैंने आजपर्यन्त अपने सेठका काम बड़ी सचाई और निष्कपटतासे किया है तोभी अन्तमें मैं यकायक उनके उलाहनेका पात्र बना हूं. इसका कारण मेरी समझमें नहीं आया. सेठजीने मुझको तुरन्त अपना काम जैसाका तैसा–पूरा अधूराही छोडकर चले आनेको लिख भेजा है; परंतु मैं क्योंकर जा सकता हूं? मैं उनको कुछभी उत्तर नहीं दे सकता. यदि उन्होंने मुझको दो चार महीने पहले सूचित कर दिया होता तो मैं अपना सब कामकाज ठीक कर देता; जिससे अन्तमें मुझको उनके पास जानेमें कुछ कठिनाई नहीं पड़ती. ऐसा नहीं तो न सही, परन्तु जो वे मुझे केवल इस वर्षके अन्ततकभी रहने देते तोभी मैं यहांका सब कामकाज निपटाकर लेखा जोखा ठीक कर देता. परंतु सेठजीने तो लिखा है कि 'तुमको मेरे पास पहुँचनेमें क्षणभर विलंब नहीं करना चाहिये' यह कैसी भारी कठिनता है? यहां तो सब अव्यवस्थितही पडा है. उगाही जैसेकी तैसी बाकी पड़ी है. चाहे जैसा करें तकादा करनेपर भी इस समय नहीं पट सकती. कई एक असामी डूबेहुए जैसे जान पड़ते हैं. बल्कि डूबगये ऐसाही कहना चाहिये. सिलकमें पूरी २ रकम नहीं और कितनेही आढ़-

तियोंकी हुंडियोंकी मुद्दत पकगई, उनका रुपया कैसे भरना इसका कुछ भी उपाय नहीं सूझता. बहुतसा माल अबतक दूकानखाते पड़ा है; परन्तु उसके लेनदार नहीं दिखाई देते, नहीं तो उसे बेचकरही हुंडियोंका भुगतान कर देते, केवल हुंड़ियोंका रुपया लगभग दश हजारके देना लगता है; परन्तु उसके भुगतानकी कोई सूरत नहीं दिखाई देती. इतनेपरभी सेठजीने बुलाया है इसलिये मैं चला जाता; परन्तु भाईजी! दुकानका नाम (बही खाता) भी साफ नहीं है तो मैं जाकर क्या मुंह दिखाऊँ? मैं चारों ओरसे घिरा रहा हूं, अत्यंत घबरा जानेसे मुझको कुछभी नहीं सूझता. इतनी बड़ी चिन्ता लग जानेसे मेरा मस्तक घूम रहा है, चक्कर आते हैं. मैं बहुतेरा सोचता हूं तबभी कोई विचार सीधा नहीं देखता. अन्तमें मेरी प्रतिष्ठा जायगी सो जावेहीगी, इसमें तो कुछ संदेहही नहीं, परन्तु सेठकी प्रतिष्ठा–उसकी दूकानकी प्रतिष्ठा कैसे रहेगी इस चिन्ताके मारे मुझे अन्न नहीं भाता. मुझको सबसे सरल उपाय यही दृष्टि पड़ता है कि ऐसे दुःखमय जीवनकी रस्सीको तुरन्त तोड़ डालना अच्छा है, जिससे सबकी सब चिन्ता एकदम नष्ट होजायँ! परन्तु अपने परम हितेच्छु मित्रको अपनी सब बात सुनाये विना–अपनी दुःखमय स्थितिका समाचार कहे विना–मैं इस जगत्में कैसे अदृश्य होजाऊं? इसलिये प्रियमित्र! अन्तमें इतनाही कहता हूं, कि, मैंने आजतक आपके जो २ अपराध किये हों वे सब मुझे क्षमा करना, और मेरे पीछे मेरे कुटुंबको धीरज बँधाते रहना. मैं अपने अन्तसमयमें आपके दर्शनका बड़ा प्यासा हूं; किन्तु न बन सके तो लाचार आपके पत्रको देखकरही आपके दर्शन हुए समझूंगा, इसलिये कृपा कर उत्तर शीघ्र भेजना."*

"हर हर! यह कैसा अनर्थ! कैसी मूर्खता!" पत्र बांचतेही विवेकचंद्र बोलउठा, 'मैं प्रथमसे उसको कहता था कि भाई अर्थगुप्त! तू आलस्य त्याग दे. यह आलस्य किसी न किसी दिन तुझे बिगाड़ देगा.' सचमुच वही हुआ. यह सब उसके प्रमादीपनका परिणाम है. उसने सेठका बिगाड़ करके अपना भला करना नहीं चाहा अर्थात् उसके कपट अथवा अप्रामाणिकता (बदचलनी) के कारणसे यह अवसर नहीं आया, किन्तु केवल उसकी गफलत–असावधानी (अज्ञान) के कारण

* जो प्राणी परमात्माका स्मरण नहीं करता, उसके अन्तकालकी यही वाणी है, ऐसा समझना.

उसके प्राण और सेठकी प्रतिष्ठा गँवानेका समय आगया. कुछ चिन्ता नहीं. पुरुष सब कुछ कर सकता है. भूल मनुष्यसेही होती है, परन्तु प्राण विसर्जन करके आत्मघातका महापाप अपने शिरपर लेना उचित नहीं. नहीं नहीं, मैं अपने मित्रको नहीं मरने दूंगा; परन्तु इसका क्या उपाय करना चाहिये ?" ऐसा विचार करता २ वह अपनी कोठरीमें गया, और गद्दीपर बैठकर अर्थगुप्तको प्रत्युत्तर लिखने लगा. थोड़ी देरमें उसने अर्थगुप्तको ढाढस (हिम्मत) बढानेवाले समाचार तथा उसको इस समय क्या कर्त्तव्य है सो सब उपाय लिखकर पत्र बंद किया और कासिदको देकर थोड़ी देर ठहरनेको कहा. तदनन्तर अपने हाथ नीचेके–सहायक मुनीमको बुलाकर अपने भंडारमेंसे दश हजार रुपये निकलवाये और उनको आलमचंद्रवाली अर्थगुप्तकी दूकान खाते नाम लिखवाकर थैलियोंपर मोहर चपड़ी लगाकर पक्का बंदोबस्त करके एक अच्छे ऊंटपर लदवाये, और अपना एक विश्वासपात्र गुमाश्ता उसके साथ करके कासिदको विदा किया. मुखजबानीमेंभी उसने कहला दिया कि 'इसके सिवाय औरभी कुछ सहायता अपेक्षित हो तो बेधड़क लिख भेजना तथा धीरज धरकर पत्रमें लिखे अनुसार करना.'

चलते २ वे दोनों आदमी उसी दिन दो घड़ी रात होनेतक अर्थगुप्तके पास जा पहुँचे. कासिदने पत्र दिया तिस पीछे उस गुमाश्तेने विवेकचंद्रके भेजेहुए रुपयोंकी थैलियां गिनवा कर उसके सुपुर्द कीं. यह देखकर अर्थगुप्तका मन कुछ शान्त हुआ और उस आयेहुए गुमाश्तेका भोजनपानादिसे सत्कार करके एकान्तमें जाकर अपने मित्रका पत्र पढने लगा. मोतीके दानेके समान, विवेकचन्द्रके अक्षरोंको पहँचानकर बड़ी प्यारसे उसने उस पत्रको छातीसे लगाया, चुम्बन किया और 'मित्र हों तो ऐसेही हों' ऐसा कहते पत्रको खोलकर पढ़नेलगा. पत्रके आरंभमें दोनों ओरके कुशल समाचार लिखनेके अनन्तर लिखा था कि–" प्रिय मित्र अर्थगुप्त ! तुम्हारे पत्रको साद्यंत पढ़कर मुझे अत्यन्त खेद हुआ. तुमपर जो २ कठिनाइयां आ गिरी हैं उनको मैंने जानलिया है. उनके संबंधमें सबसे पहले तुम्हें मेरा यही कहना है, कि, सुज्ञ पुरुषको चाहे जैसे कठिन दुःखके समयमेंभी धीरज नहीं छोड़ देना चाहिये. अपने देहका तिरस्कार करना अथवा अन्तिम उपाय करना–देह त्याग देना यह काम केवल कायर मनुष्यका है.

तुमने लिखा कि 'यहांपर सब अव्यवस्थित है; नामा (खाता) चढ़ा हुआ है, उगाही बाकी है और अल्पकालमें इस गड़बड़मेंसे निकल सकनेका कोई उपाय नहीं; परन्तु क्या करूं ? सेठने यकायक बुलाया है. भाई ! इसमें और किसीकी भूल नहीं, किन्तु तुम्हारी खुदकी भूल है. तुम सेठ (प्रभु) के वचनको कैसे भूल गये ? हम दोनोंको नौकरीपर भेजनेसे पहले सेठने कह दिया था कि 'मैं तुमको नौकरी (संसारमें करनेके कर्त्तव्यों) पर भेजता हूं; परन्तु वहां कितने दिनतक रहना होगा इसकी कोई अवधि नहीं कह सकता. जब मेरी इच्छा होगी तब तुमको यकायक तुरंत बुला लेऊंगा.' सेठकी यह सूचना तुम्हारे ध्यानमें न रही. यह कैसा प्रमाद ! प्रथम तो सेठने स्वयमेव यह बात कह दी थी, परंतु जो न भी कही होती तो क्या अपने मनसे उसकी चिन्ता न रखनी चाहिये थी ? सेठ (प्रभु) कब अपनेको बुला लेगा और आपन उस समय क्या उत्तर देंगे इस बातके लिये प्रत्येक मनुष्यको अपने २ काममें प्रतिदिन सावधान रहना चाहिये. कौन जाने कल क्या होगा और क्या कठिनाई आ पड़ेगी इसका ध्यान रखकर नित्यका काम नित्यही पूरा करना चाहिये. प्रत्येक काम कल अर्थात् भविष्यत्पर छोड़ देनेकी तुम्हारी बुरी आदत प्रभुका स्मरण कल करूंगा ऐसा बुरा स्वभाव (टेव) पड़ रही है जिसको मैं बहुत दिनसे देखता आरहा हूं. इस बातमें मैं वारंवार तुमको चिताया करता था और यह बुरा स्वभाव छुड़ा देनेके लिये औरभी अनेक उपाय किये; जिनका आजतक कोई अच्छा फल नहीं हुआ; सब प्रयत्न निष्फल हुए; परन्तु भाई ! इस प्रस्तुत उदाहरणपरसे तुम अपने बुरे स्वभावको सदाके लिये तिलाञ्जलि दे डालो, और असावधानता रूप निद्रामेंसे तत्काल जागृत हो जाओ. अचेत मनुष्य किसी काममें विजयी नहीं हो सकता. तुम अपने आप विचार कर देखो कि, असावधानीसे क्या २ अनर्थ हुए और होते जाते हैं. आलस्य, अविद्या, आजका काम कलपर छोड़नेका कुस्वभाव और अनुचित साहस ये सबही एकही कुटुंबके हैं. इन सबको नष्ट कर देना यह पुरुष (प्रभुभक्त) का कर्त्तव्य है. इसलिये मेरी केवल यही विनती है, कि, आगेको आजका काम कलपर रखनेकी मूर्खता कभी मत करना. कौन जाने किस समय क्या होगा और क्या विपत्ति आ पडेगी, इसपर पूरा २ ध्यान रखना. अपने आप करनेका हो वह काम दूसरे मनुष्योंसे नहीं

करवाना चाहिये. जो समय जाता है वह पीछा नहीं आता. वह अपनी आयुमेंसे निरन्तर घटता जा रहा है. भोजनसे भरीहुई पत्तलपर जीमनेको बैठेहुए मनुष्यके हाथमेंका ग्रास मुखमें नहीं जाने पाता—ग्रासको मुखमें जाने देनेकी सत्ताभी प्राणीके हाथमें नहीं तो फिर 'अमुक कार्य अमुक समयमें कर लेंगे, अभी क्या शीघ्रता है,' इत्यादि विचारोंसे भविष्यत्पर विश्वास रखना कितनी बड़ी भारी मूर्खता है? तुम नित्यप्रति अपना नामा–हिसाब लिखा लिया करते (प्रभुका भजन प्रतिदिन करते रहते) प्रतिदिन उगाही कराते रहते, और देना (दानधर्मादिक) भी रोजका रोज चुकाते जाते तो तुम्हारी यह दशा नहीं होती; परन्तु तुम तो आलसके साथ दृढ़ मित्रता कर बैठे हो. आलसी मनुष्यसे कभी कोई काम सिद्ध नहीं होता. मेरा तुमको यही कहना है कि, अब आलस्य और प्रमादको बिलकुल त्याग देना. मैंने इस पत्रके साथ दश हजार रुपये नकद भेजे हैं सो अपने सेठकी प्रतिष्ठा बनी रखनेके लिये लेनदार मात्रको रातकी रातमें चुका देना, जिससे किसी व्यापारीको तुम्हारी दूकानके विषयमें बुरा संदेह न उपजने पावेगा और जो माल तुम्हारे यहां सिलक पड़ा है उसमेंसे कितनाही माल मेरे यहां और कितनाही और २ देशावरोंको, जहां २ भेजनेके लिये मेरा गुमाश्ता कहे वहां २ तुरत भेज देना; क्योंकि हमारे आढ़तियोंको किस २ मालकी अधिक चाहना रहती है सो हमारा (तुम्हारे पास आनेवाला) गुमाश्ता भलीभांति जानता है. तथा सेठको तुम अपने गुमाश्तोंके हाथसे ऐसा पत्र लिखा देना, कि 'सेठजी! मैं आपकी आज्ञाके आधीन हूं. जैसी आपकी आज्ञा' ऐसे समाचार जानेसे सेठ कदाचित् कुछ धीरज धरेंगे और आज कल करते २ सहजमें दो महीने निकल जायँगे. इतनेमें तुम अपना सब काम ठिकानेपर ले आओगे; किन्तु सँभालना! वारंवार ऐसा नहीं होने पावे! इस समयके उदाहरणको सदा अपने ध्यानमें रखना और निरन्तर सचेत होकर अपना काम करते जाना; जिससे सेठ चाहे जब अचानक बुला ले तबभी तुमको वहां जानेमें कुछ भय नहीं लगेगा. इसप्रकार ऊपरसे अनुचित दिखाई देता हुआ लेख मैंने तुमको लिखा इस बातकी मुझे बड़ी ग्लानि है; परंतु तुम मित्र हो–स्नेही हो, इसकारण मित्रके चाहे जैसे सभ्य असभ्य शब्दोंको सुनकरभी अप्रसन्न न होओगे ऐसी मुझे आशा है. मेरे जैसे मित्रके

सिवाय और किसकी हिम्मत होगी जो तुमको ऐसे क्षुद्र शब्द लिखे? अस्तु, हे मित्र! अन्तमें मेरा इतनाही कहना (लिखना) है, कि, जिसप्रकार सोया हुआ मनुष्य यकायक नींदमेंसे जाग उठता है तैसेही तुम अपने जो २ दुर्गुण आलस प्रमादादि हैं उनका परित्याग करके सजग हो जाओ–सदाके लिये सावधान हो जाओ, जिससे श्रीहरिकृपासे तुम सुख पाओगे.'

अपने मित्रके ऐसे शिक्षाप्रद पत्रसे मनमें बड़ी लगन, ध्यान और धीरज रखकर अर्थगुप्तने उसीके अनुसार किया. अपने मित्रकी सम्मति और सहायतासे उसने अपने ऊपर आई हुई विपत्तिको हटा दिया और विगड़ती बातको सुधार लिया, जिससे उसके सेठके मनमें जो उसपर अविश्वास उत्पन्न होगया था वहभी दूर होगया. तदनन्तर कई दिन पीछे वे दोनों मित्र परस्पर मिले और अपने २ को सावधान और सुखी देखकर बड़े हर्षित हुए. तथा निरंतर इसी ढंगसे वर्तते रहनेके कारण उनके मान–पानमभी बड़ी वृद्धि हुई और अन्तमें आत्मचंद्रसेठका बुलौआ आनेपर दोनोंही वहां गये.

हे यज्ञभू! यह मैंने तुझको सावधान रहनेका एक व्यावहारिक दृष्टान्त सुनाया है. इसपरसे तेरी समझमें आगया होगा, कि, असावधान मनुष्य कितना दुःख उठाता है? विवेकचंद्रने अपनी मित्रकी टेक रखकर अर्थगुप्तकी सहायता न की होती तो सचमुच उसका विनाशकाल आ पहुँचा था. प्रतिष्ठा चली जानेसे उसको आत्मघात करना पड़ता अथवा सेठके सन्मुख जाकर उसको अत्यन्त लज्जित और घृणित होना पड़ता, यह तो मरनेसेभी अधिकतर दुखदाई होजाता. ऐसी दशा होजानेका उसके आलस्य और प्रमादपनके सिवाय दूसरा कुछ कारण नहीं था. इस दृष्टान्तको प्रपंचमेंसे–व्यवहारमेंसे निकालकर परमार्थ दृष्टिसे विचार किया जावे तबभी दोनोंका एकही परिणाम निकलेगा. अस्तु, हे साधु! मनुष्यको चाहिये कि, परमार्थ साधनेमें निरन्तर सजग–सावधान रहे, यही उसका महान श्रेयस्कर नित्यका कर्त्तव्य है.

इस दृष्टान्तको अब परमार्थमें लगावें तो इसभांति लग सकता है. मान लो, कि, समस्त जगतको उत्पन्न करनेवाला परमात्माही एक परम धनाढ्य सेठ है. वह अपने अंशभूत जीवोंको इस नरदेहरूपी दूकानोंपर कारबार चलानेके लिये भेजता है. इस परमसेठके विचार, सांसारिक सेठसे बहुत

बढ़कर गूढ और अनेक चमत्कारपूर्ण हैं. वह संसारी सेठ तो गुमाश्तोंको नौकरीपर भेजते समय वेतन आदिक सब बातें कह देता था और केवल बुलानेकी अवधि गुप्त रखता था; परन्तु यह अद्भुत सेठ तो सब बातें * गुप्त रखता है. तिसपरभी उसके बहुतसे कार्यभारी (जीव) दूकानों (नरदेहरूपी कोठियों) पर जाकर प्रमादी बनजाते हैं; वे समझते-कहते हैं, कि, परमात्माने मुझे अभी तो भेजा है, क्या इतनेहीमें मुझे पीछा बुला लेगा ? अर्थात् मैं बालक हूं. अभी जन्म लिया है सो मुझे अभी तुरन्तही मरना नहीं है. मुझे तो अभी खाने खेलने और आनन्दमें रहना चाहिये. अभीसेही प्रभुभक्ति कैसी ? मैं बड़ा होऊंगा तब सत्संग करूंगा और साधु महात्माके शरण जाऊंगा. अभी तो बहुत दिनतक जीना है. आजहीसे प्रभुभक्ति करने लगें तो संसारका आनन्द कैसे मिले ? ऐसे २ विचार करके समस्त प्राणीमात्र बेधड़क संसारमें विहार कर रहे हैं. वे ईश्वरप्राप्तिके किसी उपायकी योजना नहीं करते. यद्यपि जीव अपनेसे कम उमरके अनेक बालकोंको मरतेहुए अपनी आखोंसे देखता है तथापि चेत नहीं करता; तब इससे बढ़कर असावधानी क्या होगी ? इस मनुष्यदेहका क्षण-भरका ही भरोसा नहीं अर्थात् इस स्थूलदेहका कब अन्त होजावेगा और किस घडीपर यह देह गिर पडेगा इस बातको वह नहीं जानता. तबभी मैं अमुक २ कार्य कर चुकूंगा तब भगवत्संबंधी कुछ करूंगा. होजायगा, भजन स्मरण भी होगा और ज्ञानभी प्राप्त हो जायगा. प्रभुकी प्राप्तिके लिये बुढ़ापा आताही है, ऐसे विचार रखनेवालेसे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा ? परन्तु अरे ! कौन जाने कब मुझे काल आ घेरेगा ? कौन कह सकता है कि, किस घड़ीपर यह अमूल्य नरदेहरूप रत्न मेरे हाथमेंसे जाता रहेगा ? इस लिये, मैं झटपट जितना बने उतना इस देहका सदुपयोग कर लूं. मैं सन्मार्ग-सत्यपथ पर कब आरूढ होऊंगा ? मुझको उन परम कृपालु परमात्मा संबंधी ज्ञानामृत पान करानेवाला सद्गुरु कब मिलेगा ? और उसकी प्राप्तिके लिये मुझे क्या यत्न करना चाहिये ? इत्यादि विचारोंमेंही रात दिन मग्न रहनेवाले पुरुषको जागृत अथवा सावधान कहते हैं. देव, ऋषि, पितृ और मनुष्य इतनेमेंसे किसीकाभी ऋण जिसके शिरपर नहीं अथवा जो

*वेतनादिक. प्राणी मात्रका वेतन प्रारब्ध है. वह गुप्त रहता है. परन्तु संचितके अनुसार जीवको अपने आप फल मिलता चला आता है.

किसीके ऋणके नीचे नहीं आता उसको सावधान–सचेत कहते हैं. अथवा जो किसीके ऋण नीचे आनेका प्रसंग आजाता है तो तत्काल उससे मुक्त होजानेका प्रयत्न करता है, वही मनुष्य जागृत कहा जाता है. जो किसीके अपराधमें अथवा उपकारमें नहीं आता; और कदाचित् दैवयोगसे ऐसा बन जावे तो अपराधके लिये अनुग्रह प्राप्त करके और उपकारके बदले प्रत्यु-पकार करके उस बोझेसे शीघ्र छूट जानेका यत्न करता है; जो अपने कर-नेके कार्य कभी उधार नहीं रखता–नित्यका कार्य करनेसे हरघड़ी, क्षण, पल, सावधानही रहता है उसका अन्तकाल सुखमय होता है. अर्थात् चाहे जब अचानक मृत्यु आ पहुँचे तो यह हरएक समय सचेत प्राणी परमात्मामें मिलनेको तत्परही रहता है. उस समय उसको कुछभी चिन्ता नहीं होती, कि, उसके पीछे क्या होगा ? अथवा ईश्वरके अपराध वा उपकारके बोझसे वह क्योंकर छूटेगा ऐसा भय उस जागृत–चेतकर रहेनेवाले जीवको कदापि नहीं होसकता; क्योंकि, उसने यथासमय अपराधके लिये पश्चात्ताप और उपकारके लिये परमात्माके गुणानुवादके द्वारा अपना बोझा उतार दिया है. ऐसा जीव प्रपंचशुद्ध कहलाता है और ऐसेही जीवसे परमार्थ सध सकता है. उसका संसारभी परमार्थरूपही है. सब बातोंसे सावधान रहनेका दृढ़तर स्वभावही प्रपंचमेंसे परमार्थमें जानेका मुख्य साधन है. मनुष्यप्राणीको ईश्वरसंबंधी कार्योंमें निरन्तर सचेत रहना आवश्यक है. प्रभुकी प्राप्तिके लिये आलस्य–प्रमाद कदापि नहीं करना चाहिये, यही उपरोक्त दृष्टान्तका सार है. इसभांति सब बातोंसे सावधान रहनेवाला मनुष्यही भवबंधनमेंसे मुक्त होकर, परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये अपने अन्य कर्त्तव्योंको साध सकता है. पहलेहीसे मनुष्यको जागृत रहना उचित है. अर्थात् अपने सर्व कर्त-व्योंको यथा समय–अपने २ अवसरपर तत्काल पालन करना चाहिये. हे निर्विकारी मुमुक्षु ! मैं उन कर्तव्योंमेंसे कुछेक मुख्य २ का यहांपर वर्णन करता हूं.

पहला कर्तव्य यह है कि, मनुष्य सद्गुरुकी शरणमें जावे और उनकी कृपा संपादन करनेके लिये शुद्ध चित्तसे उनकी सेवा करे; दूसरा कर्त्तव्य यह है कि, उन सद्गुरुके वचनोंपर दृढ़ विश्वास रक्खे; तीसरा, एकही मत-मार्गका अनुसरण करना; चौथा, साधु–सज्जनका सत्संग करना; पांचवां, विषयोंके आधीन न होना; छठा, शत्रुओंको मित्र बनाना; सातवां, उपाधि नहीं

बढ़ाना; आठवां निरन्तर सारासारका विचार करते रहना. नववाँ भूतमात्र पर दया रखना; दशवां, परमात्माका अहर्निश ध्यान धर कर उसपर दृढ़ आस्था रखना अर्थात् मैं जीव नहीं किन्तु आत्मा हूं, मेरा इस संसारके साथ कुछ लेन देनसंवंध नहीं, मेरे इस लोकके कर्मोंके लिये मुझको पूछनेवाला एक परम पुरुष है, ऐसा जानकर, अविद्याको त्याग दे और विद्याका सेवन करे. इनके सिवायभी अनेक कर्त्तव्य कर्म हैं, परन्तु यदि इन सबका सार–सबमंसे एकका ही सार यथार्थ समझ लिया जाय तो बाकीके सब उसीमें आ जाते हैं.

यज्ञभू कहता है, इतना कहकर उन महात्माने क्षणभर विश्रान्ति ले ली. तत्क्षण मेरे मनमें यह आया कि, क्या अब ये महात्मा उपदेश देना बंद करेंगे ? मैंने उनके वाक्योंका सविस्तर अर्थ जाननेकी इच्छासे उनको प्रश्न करनेका विचार किया. इतनेमें वे दयालु पुरुष मेरी ओर अमृतदृष्टिसे देखकर कहने लगे–धीरज रख और मेरे वचनोंका मर्म समझ. जीवको, मनोनिग्रह करके, विषयोंको वृथा समझके, जगत्को जीतकर प्रभुके साथ प्रीति करके संत पुरुषों (सद्गुरू) के शरणमें जाना और संसारसागर तरनेके लिये उनकी सेवा करके, परमात्माके स्वरूपको जाननेके लिये उपदेश ग्रहण करना चाहिये. गुरुसेवासे कैसा लाभ होता है और वह न करनेवाले लोग अलभ्य गुरुकृपासे वंचित होकर कैसे मंदभागी रह जाते हैं इस विषयमें मैं तुझको पहलेही एक दृष्टान्त सुना चुका हूं. अब सद्गुरुके वचनपर विश्वास रखनेके संवंधमें एक कथा कहता हूं, सो सुन.

श्रद्धा.

आत्मसत्तामय होना जीवका प्रथम सर्वोत्तम कर्त्तव्य है. इस कर्त्तव्यके पूर्ण होनेके लिये परम श्रेष्ठ विशुद्ध श्रद्धा होनी चाहिये. सत्य पदार्थपर श्रद्धा, यही शुभ फलदाता है. प्रापंचिक–सांसारिक कार्योंमेंभी विशेषतर श्रद्धापर आधार रखना पड़ता है; तब भक्ति, ज्ञान इत्यादि पारमार्थिक कार्योंमें श्रद्धा रखनी पड़े इसमें आश्चर्यही क्या ? सद्गुरुने कहा है, कि, तू अमुक मंत्रका सदा जप किया कर. इससे तुझको प्रभुका साक्षात्कार होगा–तुझे प्रभुके प्रत्यक्ष दर्शन होंगे. इस वचनपर श्रद्धा रखना, कि, मुझको इस मंत्रसे निश्चय करके भगवान् अन्तर्यामी परमात्माके दर्शन होंगे, इस लिये मुझको अब इसे छोड़कर दूसरा यत्न करना उचित नहीं. ऐसा दृढ

निश्चय-परमश्रद्धा रखकर वह उसका जप करेगा तो (उस मंत्रके प्रभावसे) निःसंदेह उसको परमात्माके दर्शन होंगे; परन्तु इसके विरुद्ध कर्त्तव्य करनेसे अर्थात् गुरूपदेशपर अश्रद्धावान् होनेसे परास्त होकर निराश होना पड़ेगा. गुरुने कहा सो क्या सच होगा? क्या परमात्मा मुझको दर्शन देंगे? अरे! परमात्माने किस २ को दर्शन दिये हैं जो मुझे देंगे? कौन जाने परमात्मा कहां हैं? उसको सब लोग निराकार कहते हैं तब वह साकार (रूपवाला) होकर कैसे दर्शन देगा? कौन जाने यह गोलमाल क्या है? ऐसे गुरुमंत्रसेही प्रभुके दर्शन होनेवाले होते तो सबकोही हो जाते. तोभी देखना चाहिये, कि, इस मंत्रका कुछ प्रभाव होता है वा नहीं? इस भांति अश्रद्धा रखकर चाहे जितना मंत्र जपे तोभी उससे कुछ लाभ नहीं होगा. अश्रद्धा सर्वत्र बाधक है. द्वापरयुगके अन्तमें श्रीकृष्णावतारमें अर्जुनको आत्मज्ञानोपदेश करते समय श्रीहरिने "संशयात्मा विनश्यति" यह वचन इसीलिये कहा है. तात्पर्य यह कि, 'ऐसा होगा वा नहीं? यह बात सच है वा झूठ?' ऐसेही संशय बारंबार करनेवाला किसी एक निश्चयपर नहीं ठहर सकता और उससे कोईभी सत्साधन नहीं बन सकता. प्रत्युत उसका विनाशही होता है. इससे गुरुवाक्यपर तथा और काममेंभी अश्रद्धा नहीं रखना. आत्मज्ञान संपादन करनेकी इच्छावाले जीवको स्थूलका पराजय करना चाहिये; क्योंकि इसके विना ज्ञान अथवा शास्त्र कुछ कार्य नहीं कर सकते. मेरा यह वचन किसी अन्य कार्यके अवलंबनसे नहीं, किन्तु मात्र सद्गुरुके वचन (सच्छास्त्रके वचन) पर श्रद्धा रखनेके लियेही है. अश्रद्धालु चाहे जितना यत्न करनेपरभी कृतकार्य नहीं होता. इस विषयमें महादेवी पार्वतीजीने देवेश्वर शिवजीसे प्रश्न किया था कि "हे देवाधिदेव! इस जगत्में आपका भजन पूजन करनेवाले अनेक जीव हैं, परन्तु आपको प्राप्त होतेहुए तो मैं विरलेही देखती हूं, इसका क्या कारण है? जो आपका भजन स्मरण करेंगे वे आपको प्राप्त होवेंहीगे इसमें संदेह नहीं है." यह सुनकर शंकरजीने कहा-"हे सती! तुमने जो कहा सो ठीक है, परन्तु मेरा भजन करनेवाले भक्तजनोंमें बड़ा भेद है. उन सबमेंसे जो दृढतम श्रद्धावाले हैं, वेही मुझको पाते हैं. अन्य नहीं." तब उमाने कहा-"हे स्वामिन्! आपके दृढ श्रद्धावान् भक्त कैसे होंगे, उन्हें देखनेकी मेरी इच्छा है, सो आप कृपा करके मुझको दिखाइये." यह सुनकर महादेवजीने हँसते २ कहा-

"जो तुम्हारी यही इच्छा है तो ठीक, किसी समय ऐसाही होगा, परन्तु भक्तका पार लेनेमें सार नहीं."

इस बातको कितनेही दिन बीत गये तब वसंतऋतुमें महाशिवरात्रिका दिन आया. उस दिन शंकरका महोत्सव होता है, इस कारण शिवरात्रिके दिन सृष्टिलीला कुछ अद्भुतही दर्शन दे रही थी. प्रत्येक स्थलके शिवालय खूब सुसज्जित किये गये थे. उनपर नानाप्रकारकी ध्वजा पताका फहरा रही थीं. मुख्य मंदिरोंमें चारों ओरके द्वारोंपर यत्र तत्र दूर्वा, अशोकपल्लव, कनकपुष्प, आम्रपत्र इत्यादिकी वंदनवारें बँधीहुई थीं तथा शिवजीके गण-भैरव, गणपति, मारुति इत्यादिक देवताओंके मंदिरभी, जो शिवालयोंके निकट थे, वेभी, ध्वजा, पताका, तोरण वंदनवारोंसे भलीभांति सजाये गये थे. गांव २ और घर २ के लोग—बालक, वृद्ध, तरुण, स्त्री पुरुष त्रिपुंड्र भस्म इत्यादिक वाह्य चिह्न धारण करनेसे अपने आपको शैव प्रदर्शित कर रहे थे. उन्होंने उत्तमोत्तम वस्त्रालंकार धारण कर रक्खे थे, और उनके झुंडके झुंड उत्सवदर्शनार्थ इधरसे उधर जाते आते थे, इससे जहां तहां बड़ी शोभा हो रही थी. शिवालयोंमें पूजन करनेवाले ब्राह्मणगण तथा पूजन करनेको आनेवाले लोग "हर हर शंभो! पार्वतीपते! कैलासपते! हर! हर!" की महाध्वनि कर रहे थे. वारंवार मंडपमें लटकते हुए बड़े २ घंट घनन २ कर रहे थे. अभिषेकके निमित्त बैठेहुए ब्राह्मण वारंवार रुद्रीकी आवृत्तियां कर रहे थे; कोई २ रुद्रसूक्तसे शंकरका षोडशोपचार पूजन करते थे, शिवलिंगपर अभिषेक—जलकी अखंड धारा गिर रही थी. कोई नाना प्रकारके सुवासिक चंदन चढ़ा रहे थे, कोई बिल्वपत्र चढ़ा रहे थे, कोई पुष्प अर्पण कर रहे थे, कोई धूप, दीप करते थे, कोई नैवेद्य लगा रहे थे, कोई कर्पूरकी आरति उतारकर मंत्रपुष्पांजली दे रहे थे, कोई २ भक्तिनिष्ठ भक्त केवल नमस्कार करकेही शिवजीको प्रसन्न करते थे. कोई बं बं २ का नाद कर रहे थे, कोई नाच रहे थे, कोई गाल बजा रहे थे, कोई ताली बजा रहे थे. ऐसीही लीला सर्वत्र देखनेमें आती थी. साक्षात् शिवपुरी वाराणसी कि, जो श्रीशंकरका मुख्य निवासस्थान है, जिसके पार्श्वमें त्रैलोक्य-तारिणी भगवती भागीरथी बह रही है, वहांकी उस दिनकी परम शोभाका कहांतक वर्णन किया जाय? देशदेशान्तरके असंख्य यात्रियों और काशी-पुरीनिवासियोंकी बड़ी भारी भीडके कारण काशीपति विश्वनाथके दर्शन

दुर्लभ हो रहे थे. नगरकी गली २ और मार्ग २ शिवदर्शनाभिलाषियोंसे परिपूर्ण थे. बालक अथवा कोई बूढ़ा ठाढ़ा तो वहां जातेही भीड़में दबकर कुचल जाय इसमें संदेह नहीं. दर्शनार्थ आनेवाले सब लोग प्रथम भागीरथीमें स्नान करके (गंगास्नान करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है इससे निष्पाप होकर शिवजीका दर्शन पूजन करना इस कारण) पीछे विश्वनाथजीके मंदिरमें जाते थे. गंगातटसे शिवमंदिरतक अगणित मनुष्य इकट्ठे हो रहे थे. हजारों लाखों मनुष्य गंगास्नान करके इस एक मार्गसे जा रहे थे, जिससे ऐसी भीड़ होरही थी, कि, चाहे जैसे बलवान् पुरुषकोभी उसमेंसे पार निकल जाना बड़ा कठिन होता था.

ऐसा अवसर देखकर उस दिन प्रातःकालमें शिवजीने पार्वतीजीसे कहा कि–".हे शैलराजकुमारि ! वह उस दिनकी इच्छा पूरी करनी हो तो आज मेरे साथ चलो. मैं बड़े चमत्कारके साथ अपने भक्तोंका तुम्हें दर्शन कराऊं." तुरन्तही पार्वतीजी नंदीपर आरूढ होकर,शंकरजीके साथ काशीपुरीको विदा हुई, जब वाराणसीके निकट आपहुँचे तब शंकरजीने एक परम अशक्त, वृद्ध, जर्जर पुरुषका रूप धारण किया और पार्वती तथा नंदीको भी प्राकृत शरीर धारण करनेकी आज्ञा दी. पार्वतीजी षोड़शवर्षा सुकुमार स्त्री बनीं और नंदी बड़ा वृद्ध–अभी गिरे, अभी पड़े, अभी मरे ऐसा महादुर्बल बैल बना. ये तीनों जने मणिकर्णिकाके घाटपर, जहां स्नान करके सब मनुष्य नगरमें जाते थे, वहां आये और इन्होंनेभी स्नान किया तथा जलके घट भर कर शंकरके दर्शनार्थ शिवालयकी ओर जाने लगे. मार्गमें जातेहुए सब मनुष्योंके मुखसे " शिवाय नमः, हरये नमः, शंभवे नमः " इत्यादि मंत्रोच्चार तथा " हर हर, शिव शिव, काशीविश्वनाथ, गंगाधर, उमापति, गिरिजेश " की गर्जना होरही है, सब लोग बहुत शीघ्रतासे–मानों शंकरके दर्शन अविलंबसे तत्क्षण होजाँय ऐसी उत्कंठासे चले जा रहे हैं. यह दृश्य देखकर पार्वतीजी बहुत प्रसन्न हुई और अपने मनमें कहने लगीं कि " अहो ! श्रीशंकरजीने कहा तबसे मैं तो यही समझती थी कि जगत्में उनके दृढ श्रद्धावान् भक्त बहुतही थोड़े होंगे, परन्तु यहां ये सब लोग परम भक्त दिखाई देते हैं; क्या ये सब प्रभु (शंकर) को प्राप्त होंगे ? " महादेवजीने अंतर्यामित्वसे पार्वतीजीके मनका भाव जानकर कहा–" देवी ! धीरज रक्खो और इस भीड़में धक्के मुक्की खाते २ मेरे पीछे २ चली आओ. अब

शीघ्रही अपने भक्तकी परीक्षा करेंगे." जहां अकेले मनुष्यकोभी अपना प्राण सँभालना महाकठिन होरहा था ऐसी भीड़में ये तीनों जनें और तिसपरभी इनकी विलक्षण स्थिति ! ये इस महाभीड़मेंसे कैसे पार निकलसकें ? तबभी जैसे तैसे चलने लगे. महान् वृद्ध बने हुए भोलानाथ, हाड़पिंजरमय तीन पांवसे चलनेवाले बैलपर बैठे हैं और त्रिलोकसुंदरी गौरी बैलकी डोरी हाथमें पकड़े भीड़में आगे २ चल रही है, बैल बड़े कष्टसे धीरे २ पांव उठाता जाता है. चारों ओर दौड़तेहुए आनेजानेवाले लोगोंकी धक्कामुक्कीका प्रहार हो रहा है जिससे वह बैल कभी इधर झुकता है, कभी उधर गिरते २ बच जाता है. कितनेही लोग उस बैलको देखकर हँसने लगते हैं, कि, अभी गिर पड़ेगा तो हमको दाब देगा. कईएक लोगोंको दया आनेसे वे इस सुंदरीको कहते हैं कि "बहन ! तुम इस भीड़मेंसे बाहर निकल जाओ और किनारे २ चलो." इसभांति चलते २ कीचड़से भराहुआ एक खड्डा आया देखकर शंकरजीने इशारा किया कि, "नंदीको इस तरफ ले चलो." इसपरसे पार्वतीजी नन्दीको भीड़मेंसे उस खड्डेकी ओर ले गईं. बैल डगमग डगमग करता हुआ उनके पीछे २ चला जाता था, इतनेमें उसका पांव गढ़ेके किनारेपरसे फिसला कि तत्काल बैल और उसपरका बूढ़ा (शंकर) धड़ड़धम करतेहुए उस गढेमें गिर पड़े. यह दशा देखकर कई लोग खिलखिलाकर हँस पड़े और कितनोंहीको दया आनेसे वे उस बुड्ढेको और बैलको खड्डेमेंसे निकालनेको उधर गये. सुन्दरी (पार्वती) उस गढ़ेके किनारेपर बैठी २ विलाप करने और मार्गपरके लोगोंको पुकारने लगीं—" अरे रे ! मेरे पतिको कोई निकालो ! रे निकालो !" दैवयोगसे उस गढ़ेमें बड़ीभारी दलदल थी. जिससे बैल तथा बूढ़ा ज्यों २ निकलनेका यत्न करते थे त्यों २ और कीचड़में फँसते चले जाते थे. बैलके चारों पाँव और बूढ़ा कमरतक कीचड़में अदृश्य हो रहे थे और दोनों अशक्त थे, इसलिये अपने आप उसमेंसे निकल नहीं सकते थे. दलदलका काम ऐसा कठिन है कि, चाहे जैसा बलवान् पुरुष होनेपरभी, एकबार उसमें फँस जाय तो फिर दूसरेकी सहायता विना कदापि नहीं निकल सकता; क्योंकि जैसे २ वह निकलनेका प्रयत्न करता है तैसे २ वह भीतर पैठता जाता है. पार्वतीके पुकारने परसे जो लोग शंकरको बाहर निकालनेके लिये आये, उनको दूरसेही वेशधारी शिवजी बूढ़ेने कहा—" भाइयो ! तुम मुझे निकाल-

नेको आये हो सो बड़ी अच्छी बात है पर पहले मेरी एक बात सुन लो; क्योंकि मुझको निकालनेमें तुम्हारी प्राणहानि होना ठीक नहीं. मेरा केवल इतनाही कहना है कि, जो मनुष्य एक मात्र शंकरहीपर श्रद्धा रखता हो और उसीका अनन्य भक्त हो वह मुझे निकालनेको आवे. जिस मनुष्यके मनमें किंचिन्मात्रभी संकल्प विकल्प होगा वह मुझे स्पर्श करतेही भस्म होजायगा, इसमें संदेह नहीं." बूढ़ेके ऐसे बचनोंको सुनकर उसको निकालनेको आयेहुए लोग पीछे हटे और अपने २ रास्ते गये. वे परस्पर बातें करने लगे कि—"यह बड़े आश्चर्यकी बात है. भला देखो तो सही! परमार्थका काम समझकर दया करके उसको निकालनेको जावें तो स्वयं जलकर भस्म हो जावे. धर्म करते कर्म फूटे. यह बात तो अच्छी कही. कदाचित् कैसेभी समझकर बाहर निकालने जावें तो अपने मनकाभी तो भरोसा नहीं. कौन जाने कदाचित् कोई संकल्प विकल्प उठ खड़ा हो; क्योंकि, चाहे जैसी श्रद्धा रक्खे तोभी संसारमें रहे न! अस्तु, पूर्ण श्रद्धावान् हम कैसे हो सकते हैं? शंकरने कभी हमारा कार्य सिद्ध न किया होगा तो उसको भला बुरा भी कहा होगा. पाप तो मनुष्यके साथ लगा है. फिरभी हम कहांके बड़े सत्कर्म करनेवाले हैं जो पापरहित होजावें! इसलिये आपन तो इसको नहीं निकाल सकते. इस बूढ़ेको बाहर खेंचनेको पापरहित पुरुष चाहिये, ऐसा इसको कौन मिलेगा? अपनी बुढापेकी जिद्–हठके कारण कीचड़में पड़ा २ सड़ जावेगा और उस विचारी नवयौवनाकी दुर्दशा होगी. देखो, तो सही इतना बुड्ढा है, मरनेकी तयारी है, तिसपर इस विचारी सुन्दरीका भरतार बन बैठा है. क्या कम आशा है? अब इस गढ़ेमेंसे निकलकर घरबार चलावेगा! ठीक है! यह तो केवल वेषही वेष है!" यह सुनकर दूसरेने कहा—"चाहे जो हो. यह तो धर्मका काम है, यदि बन सके तो करो नहीं तो चुपचाप अपना २ मार्ग पकड़ो, वृथा किसीकी निंदा करनेमें क्या लाभ?"

इस समय शंकरने अपनी देववाणीमें पार्वतीसे कहा—"देवी! देखा, ये मेरे भक्त हैं. जो साक्षात् तरण–तारिणी गंगामें भावपूर्वक स्नान करके आते हैं और मुखसे शिव २ रटते हुए मेरे ज्योतिर्लिंगके दर्शन करनेको जाते हैं. इन्होंने सारे शरीरपर भस्म लगाया है, गलेमें रुद्राक्षके बड़े २ कंठे पहने हैं, कइयोंने बाहु; कर्ण, पहुँचा इत्यादि कटिसे ऊपर सारे

अंगमें रुद्राक्षके भूषण रक्खे हैं. अनेक जनोंने शिरपर एकादश, शत वा सहस्र रुद्राक्षके मुकुट धारण कर रक्खे हैं. अनेक लोगोंकी अंगुलियोंमें रुद्राक्षके घट्टे पड़गये हैं. कई एक निरन्तर मेरा भजन कर रहे हैं. कितनोंहीने सदा सर्वदाके लिये अपने हाथमें शिवलिंग धारण कर रक्खा है. और उस लिंगको किसीभी निंद्यपदार्थ वा पुरुषका स्पर्श न होने पावे इसकारण हाथके ऊपरके ऊपरही रख छोड़ा है. इस हाथको किसी अन्यकार्यमें नहीं लेने और निरन्तर ऊंचा रखनेके कारण रुधिरप्रवाह नहीं पहुँच सकता जिससे हाथ सूखकर लकड़ी होगया है. औरभी, अनेकोंने संसारका त्याग करके मूंड मुंडवाकर भगवा वस्त्र धारण किये हैं. कितनों-हीने सर्वांग मुंडन करवाया है. कइयोंने पंचकेशी बढ़ाकर शिरपर जटाजूट बाँध रक्खे हैं. कइयोंने केवल कौपीन धारणकर अन्य सब वस्त्रोंका परि-त्याग कर दिया है. किसी २ ने उपानह छोड़ दिये हैं, किसीने मौन धारण कर रक्खा है, कितनेही शिव शिवके शिवाय और कोई शब्द मुखसे उच्चारण नहीं करते, कितनोंहीने अन्न छोड़दिया है, कईएक दुग्धाहारी, व फलाहारी हैं. इस भांति मेरी भक्तिके उद्देशसे (चाहे सचमुच हो वा केवल लोगोंको दिखानेके लिये दांभिकपनसे हो) ऐसे अनेक व्रत और निय-मोंको धारण करके मेरा वाना (भेष) धारण करके वे मेरे भक्त कहलाते हैं. क्या मैं इससे उनपर प्रसन्न हो सकता हूं ? क्या ऐसा आडंवर करके वे मुझको पासकते हैं ? क्या मैं ऊपरी दिखावसे लुभा जानेवाला हूं ? मुझको खड्डेमेंसे वाहर निकालनेके धर्म-कार्यके लिये उनके मनमें उत्पन्न हुई ऊपरी दया, और उनको कसोटीपर कसनेके लिये वीचमें डालीहुई विशुद्ध भावना-अनन्यभक्त होनेकी कठिनाईसे सबका शान्त होजाना, इत्यादि देखकर तूने समझ लिया होगा कि, उनके मन शुद्ध नहीं और विशुद्धि विना मेरी प्राप्ति नहीं, परन्तु धीरज रख, विशुद्ध श्रद्धावान् भक्तभी निकल आवेगा और मैं तुझको दिखाऊंगा. ”

लोग पहलेकी भांति अबभी आते और चले जाते हैं. वे सुन सकें इस-प्रकार, पार्वतीजी खड्डेके किनारे वैठे २ करुणोत्पादक वाणीसे कहती जाती हैं-“ अरे पुण्यवान् लोगो ! हे शिवभक्तो! तुम सब लोग, स्नानमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाली भागीरथीमें स्नान कर २ के चले आते हो, और आज महाशिवरात्रिका बहुत बड़ा पर्वका दिन है. मुझ अबलापर दया करो.

कीचड़में फँसेहुए मेरे वृद्ध पतिको बाहर निकालकर पुण्यभागी बनो. अरे! मैं दया मात्र चाहती हूं. मैं तुमसे धन दौलत कुछ नहीं मांगती हूं." ऐसे करुणाजनक वचन सुनकर बहुत लोगोंके मनमें दयाका संचार हुआ और पहलेवालोंकी भांति जब वे बूढ़ेको बाहर निकालने लगे त्योंही उसने फिर वही बात कही कि 'जो कोई पूर्ण शिवभक्त और निष्पाप हो वही मुझे निकालनेको आवे, नहीं तो मुझको स्पर्श करतेही वह भस्मीभूत हो जायगा.' ऐसे वचन सुनकर सब लोग अपना २ मार्ग लेते हैं. ऐसा करते २ बहुत देर होगई. प्रातःकालसे लेकर तीसरे पहरतक पार्वतीजी चिल्लाती रहीं, परन्तु कोईभी निष्पाप शिवभक्त शंकरको कीचडमेंसे निकालनेको तत्पर नहीं हुआ.

हे यज्ञभू! इस बातका अर्थ तेरी समझमें आया? यह दृष्टान्त पूरा होतेही सब तात्पर्य समझमें आजायगा. होते २ सांझ होने लगी. सायंकालीन अभिषेकका समय आया. शिवजी बारंबार हिलनेसे छातीपर्यन्त कीचड़में डूब गये; बैलको दिनभर चारा पानी न मिलने और कीचड़में विना हिले चले अचल खड़े रहनेसे उसकी आंखें बाहर निकल आईं; मुंहमें झाग आने लगी, रोते २ सुन्दरीके नेत्र लाल सूखे हो गये, चिल्लाते २ कंठ बैठ गया, गला सूख गया, तब दुःखी होकर शंकरकी स्तुति की-" हे प्रभो! अब तो कृपा करो और पीछे कैलासको चलो. ऐसे निर्दय और अश्रद्धालु लोगोंमें अब क्षणभरभी ठहरना नहीं चाहती." इतनेमें यह सब कौतुक अचानक समाप्त होगया. पार्वतीजीकी चिल्लाहट जैसीकी तैसी जारी थी. बूढ़े शंकर कीचड़में हांफ रहे थे, इतनेमें किसी सौ डेढ़सौ मनुष्योंका एक झुंड गंगामें सचैल* स्नान करके विश्वनाथजीके दर्शनके लिये उस भीड़में होकर जा रहा था. वह जनसमूह नवयौवना सुन्दरीका हृदयद्रावक आक्रन्दन सुन कर भीड़मेंसे निकल उसी ओर मुड़ा, बूढ़ेने अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई-" भाइयो! धीर धरो. ऐसा साहस मत करो. पापरहित होओ तो मुझे स्पर्श करना, नहीं तो प्राण गँवाओगे." यह सुनकर सब चौंककर, पीछे हटे. इन सौ मनुष्योंको इकट्ठे खड़े देखकर और लोगोंको अचरज हुआ जिससे वेभी कौतुक देखनेको खड़े होगये. मार्गमें भीड़ थी. लोग बीचमें खड़े होगये थे तब तमाशगीरोंका क्या पूछना? उस झुंडमेंका एक हृष्ट पुष्ट और निःस्पृह (वेपरवाह) जान पड़ता हुआ मनुष्य जिसको

* अपने पहने हुए सब वस्त्रोंसहित तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करनेको सचैल स्नान कहते हैं.

उस झुंडके सारे गांवके लोग पागल, भ्रान्त, उन्मत्त कहा करते थे, उस झुंडमेंसे आगे बढ़कर किनारेपर खड़ा हुआ और बूढ़ेको अपना हाथ बढ़ाकर लंबा करनेको कहा और अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया. बूढेने कहा—"भाई! मेरे बोलनेका अभिप्राय तूने समझ लिया है वा नहीं? मुझको गढ़ेमेंसे बाहर निकालना साधारण पुरुषका काम नहीं है. केवल निष्पाप, पवित्र और पूर्ण शिवभक्त होगा वही पुरुप मुझको बाहर निकाल सकेगा. यहां कठिन परीक्षा होनेसे लाज और जीव दोनों गँवाने पड़ेंगे, सो तू चुपचाप पीछा लौट जा." यह सुनकर उस पुरुषने कहा–"महाराज! (कंधेपर यज्ञोपवीतादिक चिन्होंसे ब्राह्मण समझकर) आप वृद्ध होनेपरभी ऐसी मिथ्या शंका करके मुझे क्यों भ्रमाते हो? ये लोग तो सब मूर्ख हैं जिससे अज्ञानवश इन्हें कुछ नहीं सूझता; परन्तु आप वृद्ध होकर मुझको ऐसा उलटा उपदेश कैसे करते हो? क्या इन सबके समान मेरा हृदयभी शून्य है, ऐसा आप समझते हैं? हे ब्रह्मदेव! सर्ववेदोंका अर्थ प्रदर्शित करनेवाले, तथा जगतको अपने पवित्र नियमोंमें बांध रखनेवाले धर्मशास्त्रों और उनकी सुदृढ आज्ञाओंकी अवहेलना हमसे हो सकेगी? कदापि नहीं. क्या हम उन आज्ञाओंको भूल जाते वा मिथ्या मानते हैं, ऐसा आपके ध्यानमें है? जो ऐसा हो तो वह सब झूठा है. शास्त्रोंकी आज्ञा अति अमोघ* और किसीसे उल्लंघन न होसकनेवाली है. शास्त्रोंमें श्रीमती गंगाको त्रैलोक्यपावनी कहते हैं और सर्व पापोंका नाश करनेके लिये मनुष्यको उसमें स्नान करनेकी आज्ञा देते हैं. भगवती भागीरथीने इस भूलोकमें अवतरतेही साठ हजार सगरपुत्रोंका एकही साथ उद्धार कर दिया और तबसे आजतक लाखों वर्षोंसे असंख्य महापातकी जीवोंका (स्नानमात्रसेही) उद्धार करती चली आई है. तब मैं जो आज शिवरात्रि जैसे महापर्वके दिन उस त्रिभुवनतारिणीके मंगल उदकमें अभी स्नान करके चला आ रहा हूं, इस मेरे शरीरमें पापका लेशमात्र रहनेकी शंका आपको कैसे हुई? हर २ कैसी अचंभेकी बात है. कितना अविश्वास! विपापा† महादेवी भागीरथीपर कितना बड़ा आक्षेप? हे देव! ऐसा अनुचित मुझसे नहीं देखा जाता. फिर, मैं शिवपर पूर्ण आस्थावान् नहीं, ऐसा कहनेमें आपका क्या प्रयोजन है? अस्तु,

* कभी झूठ न होनेवाली. † पापरहित-निर्मल.

मुझको तो उन्हींका भरोसा है और वेही मेरी पत-प्रतिज्ञा रक्खेंगे. मैं शुद्ध चित्तसे कहता हूं, कि, मैंने एक विश्वनाथजीके सिवाय और किसींपर श्रद्धा रक्खीही नहीं तो मुझको क्या भय है ? ठीक, जिसकी करणी (कर्त्तव्य) उसके साथ है. महाराज! चलो, फुर्ती करो, विश्वनाथजीके दर्शनका समय होने आया है और मुझको इस भीड़में होकर ठेठ मंदिरतक पहुँचना है, इसलिये कृपा कर झटपट अपना हाथ मुझे थमाओ (पकड़ाओ) जिससे मैं आपको बाहर निकालकर अपना रस्ता लूं. आपके शरीरका स्पर्श करनेमें मुझको कुछभी भय नहीं है; क्योंकि मैं सचमुच निष्पाप हूं. गंगाके जलका स्पर्श होनेपरभी 'मेरे शरीरमें पाप होगा' ऐसी शंका करनेवालेके समान महापापी और कोई नहीं और उसके पवित्र-पापरहित होनेकाभी अन्य कोई द्वार वा मार्ग नहीं. " उसका यह भाषण सुनकर वहां जितने लोग खड़े थे सबके सब ज्योंके त्यों स्तब्ध होगये. और उस दलदलमें फँसेहुए वृद्ध पुरुषने-" धन्य है, धन्य है ! पूर्ण श्रद्धालु भक्त तुझे धन्य है. तूही सचमुच निष्पाप है, तूही पूर्ण शिवभक्त है, और तूही सच्चा गंगाका 'सर्वपापनाशिनी' नाम सार्थक करनेवाला है. शास्त्राज्ञापर विश्वास रखकर तदनुसार प्रत्येक कार्य करनेवाला उनके यथार्थ फलका भोक्ता तूही होता है. ये सब लोग अपने पापोंका नाश करनेके लियेही घंटा बजाकर गंगामें स्नान करते हैं तथा शंकरके दर्शनपूजन करते हैं, परन्तु जो ऐसे करनेपरभी उनको यही शंका बनी रहे कि, उनके पाप नष्ट होते हैं वा नहीं तो फिर वैसी (स्नानपूजनादि) करनेकी क्या आवश्यकता है ? उनकी वह सब क्रिया व्यर्थही है और लाभमें उनको वृथा श्रमही मिलता है. अस्तु, हे निष्पाप ! तू परम भक्त है. तेरी महिमा अतुल है. ये अविश्वासी अज्ञानी लोग तेरे प्रभावको और तेरे कार्यको नहीं जान सकते. परन्तु कुछ चिन्ता नहीं. तू सबसे निःस्पृह हो. तेरा कल्याण हो और तू योगियोंकोभी दुर्लभ जो परम धाम है उसको प्राप्त हो. "

इतना कहकर उस वृद्ध पुरुषने खड्डेमेंसे अपना हाथ लंबा किया और ज्योंही वह निष्पाप यात्री किनारेपर झुककर उनके हाथको स्पर्श करना चाहता था कि, तत्क्षण वह वृद्ध, बैल और सुन्दरी सबके सब लोग अदृश्य होगये. ऐसा महान् आश्चर्य देखकर वहां खड़े हुए सब अत्यन्त विस्मित हुए और उस निष्पाप पुरुषको बारंबार वंदन करने लगे. सबने मिलकर एक-

ही साथ श्रीविश्वेश्वरका जयघोष किया. 'वह कुटुंबी वृद्धपुरुष कौन था? वह कोई प्राकृत पुरुष नहीं, वरंच साक्षात् परम पुरुष (परमात्मा) ही होगा, इसमें संदेह नहीं.' इसभांति वे लोग तर्क वितर्क करने लगे. बहुतसे भावुक जन प्रेमरंग चढ़नेसे-"अरे! उन परम प्रभुको हमने नहीं पहँचाना. अरे! इस भक्तजनके प्रसादसे हमको उनके रूपांतरसे दर्शन होनेपरभी हमने नहीं पहँचाना. धिक् धिक्" ऐसा कहते हुए उस गढ़ेके कीचड़को बड़े प्रेम और हर्षसे लेकर अपने मस्तकपर तथा शरीरपर लगाने लगे, परन्तु अब पीछेसे क्या होना था? समय बीतनेपर सब वृथा है. 'अब पछताये क्या हुआ, जब चिड़ियां चुग गईं खेत.'

वहांसे कैलासको जातेहुए मार्गमें शंकर पार्वतीजीसे कहने लगे—"देवी तूने मेरे दृढ़ विश्वासी भक्तके दर्शन किये? वह कैसे निश्चल स्वभावका था सो देखा? आज लाखों मनुष्योंको गंगास्नान करके विश्वनाथके दर्शनको जातेहुए हमने देखा, परन्तु क्या उनमेंसे किसीकीभी प्रज्ञा उस भक्तके समान दृढ़ थी? जो मेरा स्मरण रटन करनेवाले, बाह्योपचारसे मेरी भक्तिके पूर्ण आडंबरवाले और अन्तरमें बहुत भक्ति होनेपरभी केवल एक श्रद्धासे रहित हैं वे मुझको नहीं पाते और स्वप्नमें भी मैं उनको कदापि दर्शन नहीं देता. जो ऐसेही (अविश्वासी) मेरे भक्त हों और जो सबही मुझको पाते हों तो फिर संसारमें प्रापंचिक कार्य करनेवाला कोई रहेही नहीं." इन वचनोंसे तथा आजके प्रत्यक्ष देखेहुए दृष्टान्तपरसे पार्वतीजी बहुत विस्मित हुईं और उनके मनका पूरा २ समाधान होगया.

हे यज्ञभू! शास्त्र और गुरुके वचनपर श्रद्धा रखना यही मोक्षका द्वार है परम विशुद्ध श्रद्धाका होनाही मोक्षका साधन है. कहाभी है कि-'अविश्वासो न कर्त्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः' अर्थात् कभी अविश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह सब प्रकारसे बाधक है. इसकारण गुरुके उपदेश पर विश्वास रखकर वर्त्तनेसे मनुष्य निश्चय मोक्षको प्राप्त होता है. मुक्तिकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको सुखमें वा दुःखमें गुरुके सद्वचनपर निरन्तर एकसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये.

एक मत मानना.

मनुष्यको चाहिये कि, एकही मतका अनुसरण करे. जगत्में अनेक शास्त्र हैं और उन्होंने भिन्न २ तत्त्वोंका प्रतिपादन किया है. शास्त्रही क्या

किन्तु वेदकी श्रुतियांभी किसी स्थलपर कुछ और किसी स्थलपर कुछ और प्रतिपादन करती हैं. ऐसे स्मृतियों और पुराणोंकेभी कईएक भिन्न २ सिद्धान्त हैं. ऊपर २ से देखनेपरसे ऐसाही दिखाई देता है; परन्तु उनको यथार्थ रीतिसे जाननेवाला पुरुष जब सूक्ष्म दृष्टिसे देखता है तबही उसको समझ पड़ता है कि, श्रुति, स्मृति, शास्त्र और पुराण इन सबकी दृष्टि (जैसे चकोरके चक्षु चंद्रप्रति लगे रहे हैं तैसेही,) एकही मुख्य वस्तुपर लगी हुई है और वे पृथक् २ मार्गोंसे उसीका अवलोकन करते हैं. यथा काशीपुरी सबके लिये दर्शनीय है, और सब लोग यात्रार्थ वहां जाते हैं; परन्तु वे यात्रीगण भिन्न २ स्थानोंमें रहनेवाले होनेसे उनके काशीपुरीको जानेके मार्गभी भिन्न २ निर्माण हुए हैं इसी भांति श्रुति–स्मृति–शास्त्र–पुराणादिका यत्न मात्र ईश्वरप्राप्तिके निमित्तही है और अधिकारी परत्वसे भिन्न २ मार्ग प्रदर्शित किये गये हैं. यहां कदाचित् तुझको शंका होगी कि, वेदादि शास्त्रोंमें कहीं कर्मका प्रतिपादन किया गया है, कहीं उपासनाका और कहीं ज्ञानका प्रतिपादन किया गया है; और कोई २ तो इन सबसे भिन्न होकर शून्यवाद (निरीश्वर) को प्रतिपादन करते हैं. ऐसी भिन्नताका क्या कारण ? ये सब जो कि देखनेमें भिन्न २ वस्तुका प्रतिपादन करते हैं और उसीका निश्चय करतेहुए दिखाई पड़ते हैं; तथापि इन सबका लक्ष्य एकही है. कोई दूधको मुख्य गिनते हैं, कोई दहीको श्रेष्ठ मानते हैं, कोई मक्खनको तत्त्व समझते हैं, और कोई घृतको साररूप समझते हैं; परन्तु असलमें देखो तो सब एकही है. तब कोई ऐसाभी कहता है कि, ' वही दूध, दही, घृतआदिक मनुष्यके उपयोगमें आकर नष्टप्राय–होने न होने जैसे हो जाते हैं! इसलिये वे कोई पदार्थ नहीं.' परन्तु ऐसा नहीं होसकता. दूध, दही अथवा घृत जब किसी प्राणी–मनुष्यादिके खानेमें आया तब वह अदृष्ट होगया; परन्तु उसका नाश नहीं हुआ; क्योंकि खानेवाले प्राणीके शरीरमें उसके परमाणुओंने निवास किया, इसलिये उसका शरीर वृद्धिको प्राप्त हुआ और जब वह शरीरभी गिरता है तब कीट, विष्ठा अथवा भस्मरूपसे उस वस्तुके परमाणु बने रहते हैं और वे पृथ्वीमें मिलकर पृथ्वीरूप हो जाते हैं. फिर पृथ्वीपर पर्जन्य पड़नेसे कालान्तरमें वे परमाणु (दूध, घृत इत्यादिक रूपान्तरको प्राप्त होतेहुए परमाणु) तृणांकुररूपसे उद्भवते हैं. उनको फिर गाय, भैंस आदि पशु चरते हैं और उनसे फिर दूध, दही बन

जाता है. इस रीतिसे बहुत कालतक रूपान्तरको प्राप्त होता हुआ परमाणु-रूपसे स्थित रहाहुआ दूध, घृत आदि पुनर्वार निजस्वरूपकोही प्राप्त होता है परन्तु इससे उसका नाश होगया ऐसा नहीं समझा जा सकता. इसी भांति वेदादिमें प्रारंभहीमें कहेहुए कर्मोंका जो प्रतिपादन किया है वहभी ईश्वरके लियेही है. उपासनाभी ईश्वरार्थेही है; और ज्ञानभी ईश्वरकी प्राप्तिके लिये है. वेद, स्मृति, दर्शन (षट्शास्त्र) तथा पुराण, तथा पूर्वकालमें भये हुए महान् पुरुष, इन सबका उद्देश केवल ईश्वरके गुण गानेकाही है. फिर वह चाहे स्तुत्यात्मक हो, चाहे निन्दात्मक. जैसे विवाहके समय, विवाहनेवाले पुरुषके दोनों पक्षकी (वरपक्ष और कन्यापक्षवाली) स्त्रियां गीत–गाली गाती हैं, उनमें वरपक्षवाली तो वरको नाना प्रकारके (वाणीके) अलंकार–आभूषणसे भूषित करके उसको राजाके समान बतलाती हैं और कन्यापक्षवाली उसको कुरूप, निर्बुद्धि, निर्धन, कुलहीन, कलंकी अथवा जारज आदि कह कर उसका मान घटाती हैं; परन्तु वे गीत ब्याहनेवाले वरके विषयकेही हैं. कन्यापक्षवाली स्त्रियां जो वरकी निन्दा करतीं हैं वह केवल विनोदार्थ है. इससे यद्यपि वे वरको निंदती हैं तथापि उनकी निंदा परिणाममें प्रशंसाही होती है; क्योंकि यह विनोदकी निंदा उसकी प्रशंसाके लियेही है. इसी प्रकार ईश्वरको सिद्ध वा असिद्ध, साकार वा निराकार मानकरभी जो जैसा माननेवाले हैं वे उसको वैसाही सिद्ध कर बताते हैं और उससे ईश्वरके अप्रतिम और अपार गुणोंका सौन्दर्य अपने ध्यानमें आता है. तथा अपना निश्चय होता है, कि, अहो ! जिसका अनेक रीतिसे वर्णन करनेपरभी कोई पार नहीं पा सका, महात्मा और सच्छास्त्र जिसको 'नेति नेति' कहकर वर्णन करते हैं ऐसा गूढ़ वह परब्रह्म है. धन्य है ! धन्य है !"

यह तो निश्चयात्मक है; कि, सबकी दृष्टि ईश्वरपर है तब यह प्रश्न उठता है कि; वे किस रीतिसे ईश्वरका वर्णन करते हैं ? वेदोंने प्रत्येक (धातुकी) खानोंको खुली कर दिया है, और शास्त्रोंने अपने २ उद्देशके अनुसार उनकी भिन्न २ पहचान कराई है. इन धातुओंको बाहर निकालकर स्मृतियोंने गलाकर शुद्ध करके एक किया है. और पुराणसे उन तयार की हुई धातुओंके नानाप्रकारके अलंकार बनाकर विलासी (सूक्ष्मपर दृष्टि देनेमें असमर्थ) पुरुषोंको पहनने तथा वर्त्तनेको देते हैं. अर्थात् वेदोंने प्रत्येक वस्तूके मूलतत्त्व कथन किये हैं, शास्त्रोंने उन मूलतत्त्वोंके विभाग करके उनपर विवेचन

किया है और स्मृतियोंने अर्थात् धर्मशास्त्रोंमें वेदोंमें दिखाई देते–चमकते हुए धर्मतत्त्वके सिद्धान्तोंको चुनकर एकत्रित किया है, तथा पुराणोंमें उन धर्मतत्त्वके सिद्धान्तोंको कहो अथवा विधिवाक्योंको कहो, नानाप्रकारके इतिहासों तथा ईश्वरावतारके अद्भुत कर्मों–चरित्रोंके साथ संमेलन कर विशेष मधुर और सरल बना दिया. जिनका श्रवण करनेसे स्थूल मनवाला जीव मूलतत्त्वको विना परिश्रमके समझ सके. विना श्रमके तयार किया हुआ भूषण पहननेसे जितनी प्रसन्नता होती है, जैसा वह प्रिय लगता है, उतनाही पुराणोंके (वेदादिको मथन करके) दर्शायेहुए इतिहासको हृदयमें धारण करना प्रिय लगता है.

वेदादिक सर्व शास्त्रोंके मत देखनेमें भिन्न २ हैं, परन्तु मूलमें–असलमें वे एकही हैं, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेवालेको ऐसा यथार्थ भासमान होता है, परन्तु धर्मतत्त्व (आत्मतत्त्व आदि) जाननेका प्रारंभ करनेवालेको ऐसा नहीं भासता. इसीलिये मैंने तुझको यह कर्त्तव्य कर्म बताया है कि–' मनुष्य केवल एकही मतका अनुसरण करे. एकही मतका अनुसरण करनेसे वह भलीभांति दृढ होता है और अन्ततक पार लगा देता है. ' यह अच्छा वा वह अच्छा ' ऐसे अस्थिर मनके कारणसे, किसीपर स्थिरता अथवा प्रीति नहीं होती, जिससे कोईभी तत्त्ववस्तुका ग्रहण नहीं हो सकता. इसी अभिप्रायसे, पूर्वकालमें योगेश्वर याज्ञवल्क्यने राजा जनकको उपदेश देते समय कहा था कि–' हे जनक ! मैं तुझको तत्त्वोपदेश पीछे करूंगा; परन्तु पहले मेरी एक बात सुन. तुझको केवल मेरेही वचनोंको मान्य समझना चाहिये और उनकोही अपने लिये हितकारक तथा श्रेष्ठ जानना. उनके सिवाय, और दूसरा कुछ तुझको चाहे जितना प्रिय लगे, चाहे जैसा श्रेष्ठ दिखाई दे तबभी उसपर तू कभी विश्वास न रखना. ऐसा करनेसे तेरा मन चंचल न होकर तुझको तत्त्वकी प्राप्ति होगी. तेरे विचार अनेक शाखा प्रशाखावाले न होकर, स्थिर होवेंगे. तेरे संशय मिट जायँगे और अंतमें तेरी मुक्ति होगी. तू केवल मेरे वाक्योंकाही अनुकरण करना; जिससे तू निरन्तर कल्याणभोक्ता होगा. ' इसीभांति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सखा भक्त अर्जुनकोभी कहा है कि–" हे पार्थ ! इन सर्व धर्मों (अनेक शास्त्रोंके प्रतिपादित किये हुए) से तेरा समाधान न होता हो वा तेरी समझमें न आते हों तो सबका परित्याग करके तू मेरी शरणमें आ अर्थात् मेरे वच

नोंकाही अनुसरण कर. अन्यत्र चित्तवृत्तिको मत दौड़ जिससे तू एक सिद्धान्तपर आकर स्थिर होवेगा.*" .

अस्तु, हे यज्ञभू ! मनुष्य किसी, शास्त्रोक्त एक मतका अपने लिये निश्चय करे; परन्तु वह अपने मनहीसे नहीं, किन्तु सद्गुरुके बताये हुए वा उपदेश किये हुए मतपरही निश्चय रक्खे, इसीलिये 'सद्गुरुके वचनपर विश्वास रखना' इसकोभी मैंने कर्त्तव्यरूपसे तुझे कह सुनाया. अब 'एक मार्गका अनुकरण करना' इस बातकी पुष्टिके लिये मैं एक इतिहास कहता हूं. जिसके सुननेसे, अनेक मार्गोंपर दृष्टि रखनेवाला कैसा निष्फल–च्युत (भ्रष्ट) होता है और स्थिर चित्तसे एक मार्गपर चलनेवालेको किस प्रकार इच्छित वस्तुकी प्राप्ति (तत्त्वप्राप्ति) होती है, सो तुझको ज्ञात हो जावेगा.

दो ब्राह्मणपुत्रोंकी कथा.

पतितपावनी भगवती भागीरथीके पवित्र तटपरके एक ग्राममें एक ब्राह्मण रहता था. उसके पिताके किसी गुणपर प्रसन्न होकर वहांके राजाने उसे बहुतसी उपजाऊ भूमि प्रदान कर दी थी. वह ब्राह्मण अपने पिताके समयसे चली आती हुई भूमिमें खेती करके अपना निर्वाह करता था. उसकी स्त्री बड़ी सुशीला थी; और वह स्वयं अच्छा विद्वान् होनेसे, वे इस छोटेसे ग्राममें बड़े आनन्दसे काल व्यतीत करते थे. खेतीद्वारा उनको अपेक्षित अन्न प्राप्त होजाया करता था, जिससे उनको अपने निर्वाहके लिये कुछ और उपाय करनेकी आवश्यकता वा चिन्ता न थी. बहुत वर्षोंतक उनके कोई सन्तान नहीं हुआ था. परन्तु वृद्धावस्थामें दो २ वर्षके अन्तरसे दो पुत्र हुएथे. बड़े पुत्रकी अवस्था जब आठ वर्षकी हुई तब उस ब्राह्मणने उसका यज्ञोपवीत संस्कार करनेका विचार किया. संस्कारके लिये जो २ साहित्य चाहिये था सो सब इकट्ठा किया. कुटुंबी, सगे सम्बंधी और संस्कार करानेमें कुशल ब्राह्मणोंको निमंत्रण दिया. संस्कारके लिये निश्चित किया हुआ मुहूर्तका शुभदिनभी आ पहुँचा. इतनेमें दैवयोगसे उस ब्राह्मणको ज्वरने आ घेरा. ब्राह्मणका शरीर वृद्ध और अशक्त तो पहलेही था, फिर ज्वर आगया सोभी बड़ा प्रबल, इस कारण उसने सोचा कि, अब इस मांदगीमेंसे मैं उठकर खड़ा नहीं होऊंगा. पतिकी ऐसी दशा देखकर पवित्र साध्वी स्त्रीनेभी यह निश्चय किया कि, अब वृद्धपति थोड़े दिनके पाहुने (महमान) हैं.

* 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' इस वचनपरसे.

इसपरसे उसने विनती की कि, "हे स्वामिन्! आप सुज्ञ हैं, बुद्धिमान् हैं, जिससे मैं आपको क्या कह सकूं? परन्तु एक बात मेरे मनमें आई है: सो निवेदन करती हूं. हम दोनोंके शरीर पूर्ण वृद्धावस्थाको पहुँच चुके हैं, तिसपर आपको यह दुष्ट ज्वर सता रहा है; शरीरका भरोसा नहीं कि कब गिर पड़ेगा; परन्तु गिरेगा अवश्य. आप जानते हैं कि अपने दोनों पुत्र अभी बालक हैं, और आपने बड़ेको यज्ञोपवीत देनेका विचार किया है तो उसके साथ २ छोटेकोभी दिला देवें. कलकी कौन जाने? पीछेसे इसको जनेऊ दिलानेवाला कोई नहीं है. इसलिये यह बालक जो असंस्कृत रह जायगा अथवा संस्कारयोग्य वय बीत जायगा तो व्रात्यताको प्राप्त होनेसे इसके पितृस्वरूप हम महादूषित ठहरेंगे; तथा उसके हाथसे जलदान लेनेका भी हमें अधिकार नहीं रहेगा. अभी इसको छठा वर्ष उतरकर सातवां चल रहा है, और शास्त्रमेंभी ब्राह्मणके बालकको सातवें वर्षमें उपवीतसंस्कार कर देनेकी आज्ञा है ऐसा मैंने सुना है. यदि आपके ध्यानमें मेरी बात उचित जँचे तो अच्छी बात है. इसकी बुद्धि अभीसे तीव्र और निर्मल दिखाई पड़ती है; इस परसे मैं ऐसा जानती हूं कि यदि एक वर्ष पहले इसका संस्कार कर दिया जाय तोभी यह अपने बड़े भाईके साथ २ शास्त्रोक्त नियमानुसार चल सकेगा." यह सुनकर उस वृद्ध ज्वरग्रसित ब्राह्मणने कहा– "तो ठीक है. तेरा विचार बहुत अच्छा है. मेरे मनमेंभी ऐसाही आया था कि, ऐसा हो जाय तो अच्छा; परन्तु मैंने निश्चय विचार नहीं किया था कि ऐसा करही देना. अब तेरी सम्मतिसे मैंनेभी निश्चय कर लिया कि दोनोंको साथही जनेऊ दिला देना."

मुहूर्तका दिन आ पहुँचा, ब्राह्मणादिक सर्व निमंत्रित मनुष्यभी आगये. गर्भाधानसे आजदिनपर्यन्त कदाचित् कोई संस्कार रह गया हो अथवा यथाविधि न हुआ हो तो उन सबके प्रायश्चित्तसे लेकर यज्ञोपवीत धारण करानेतककी सब क्रियाएं, ऋत्विजोंने शास्त्रमें कहे अनुसार मंत्र तथा विधिपूर्वक कराई. तदनन्तर यज्ञोपवीत धारण करनेपर वेदमंत्रोपदेशके अधिकारी हो जानेसे दोनों बालकोंको गायत्रीमंत्रका उपदेश देनेका समय आया. गायत्री सर्वोत्कृष्ट मंत्र और वेदमाता समझी जाती है. यह मंत्र साक्षात् परब्रह्मका स्वरूप प्रतिपादन करनेवाला है, इतनाही नहीं वरंच यह साक्षात् ब्रह्मस्वरूपही है. कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनोंका इसमें समावेश हो

जाता है. शुद्धमनसे इसका जप करनेवाला मनुष्य कैवल्य ब्रह्मको प्राप्त होता है. इसलिये संस्कृत हुए बालकको किसी सत्यशील ब्राह्मणद्वारा इसका उपदेश दिया जाना चाहिये अथवा उसके पिताद्वारा दिया जाना चाहिये. इन बालकोंका पिताभी अच्छा विद्वान् और उत्तम प्रकृतिवाला था. इस कारण उसकोही ऋत्विजोंने इनको गायत्रीमंत्रका उपदेश देनेको कहा. पासमें बैठा हुआ कोईभी नहीं सुन सके ऐसी रीतिसे उस ब्राह्मणने तीन २ बार दक्षिणकर्णद्वारा दोनों पुत्रोंको गायत्रीमंत्रका उपदेश दिया. ऋत्विजोंने उनको इस मंत्रका त्रिकाल जप करनेकी आज्ञा दी और सूत्रानुसार उनको समझाया कि-" हे ब्रह्मचारियो ! अब तुम समस्त वैदिक कर्मोंको करनेके अधिकारी हुए. आजसे तुम नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करो. " इस समय कटिमें मौंजी तथा कौपीन धारण किये हुए, हाथमें दंड तथा बगलमें मृगचर्म दबाये हुए, और कंधोंपर यज्ञोपवीत तथा वस्त्रादिकसे अलंकृत हुए उन दोनों बटुकोंको चंदनपुष्पादिसे सुभूषित कर उनकी माताने जब भिक्षा दी तब ऋत्विजों और पिताने उन्हें आशीर्वाद देकर सर्व कार्यकी पूर्णाहुति की.

निमंत्रित सगे संबंधियों और कुटुंबियोंको थोड़े दिन रखकर यथोचित सन्मानसे संतुष्ट करके विदा किया. अनन्तर उस ब्राह्मणने अपने दोनों पुत्रोंको सन्ध्यादिक आह्निक कर्म सिखाना प्रारंभ किया, परंतु उसके शरीरमें घुसा हुआ ज्वर प्रतिदिन बढ़ताही गया, जिससे वह बहुत अशक्त हो गया और थोडे दिनमें उसका काल आ पहुँचा. अन्तसमय उसने अपनी स्त्री तथा दोनों पुत्रोंको पास बिठाकर कहा-" हे पुत्रो ! इस समय तुम गंभीर विचारवाले सिखापन देनेके योग्य नहीं हुए हो, इसलिये मैं तुमको यही कहता हूं कि, तुम अपनी माताकी आज्ञामें चलना. तुम्हारे निर्वाहके लिये कुछ चिन्ता नहीं है; क्योंकि तुम्हारा भली प्रकार पोषण होसके इतना अन्न, मेरे पिताकी उपार्जित भूमिमें प्रतिवर्ष उत्पन्न होजाता है और धर्मके विषयमेंभी मैं तुमको कुछ उपदेश नहीं दे सका, किन्तु कुछ चिन्ता नहीं; मैंने जो गायत्रीमंत्रका उपदेश तुमको दे दिया है वही बहुत है, इसीमें सब आजाता है, इसका निरन्तर जप करनेसे ब्रह्मतेजकी वृद्धि होकर परब्रह्मके स्वरूपकी प्राप्ति होती है; अतएव प्रतिदिन संध्यावंदन करके गायत्रीमंत्रका जप करना, तिस पीछे अपनी माताके खेतमें काम करनेके

लिये जाना." इतना कहकर ब्राह्मण बोलता हुआ बंद हुआ और मनसे तथा वाचासे हरिस्मरण करता हुआ क्षणभरमें परलोकको विदा होगया.

अग्निसंस्कारसे लगाकर सांवत्सरी श्राद्धपर्यन्तकी सब क्रियायें उसके बड़े लड़केने कीं और धीरे २ उसको पिताकी विस्मृति होती गई. बड़े पुत्रका वय लगभग बारह वर्षका हुआ और वह खेतीके कामकाजमें होशियार होने लगा, इतनेमें उनकी माताभी चल पड़ी. दोनों बालक अनाथ होगये; तथापि उनमें बड़ा भाई सब कामकाज करनेमें दक्ष था, तथा उनके घरमें बहुत दिनोंसे रहनेवाला एक शूद्र बहुत भला आदमी होनेके कारण उनका खेतीका काम जैसाका तैसा चलता रहा. बड़ा भाई नित्य नियमपूर्वक गायत्रीका जप करता और उसकोही अपना इष्ट देव तथा अपनी परमगति समझकर, उसीमें परायण रहता था. छोटा भाईभी उसके समानही चलता था, परन्तु उसको कुछ विशेष काम नहीं रहनेसे वह दूसरे २ ब्राह्मणपुत्रोंके साथ २ सभा, यज्ञ इत्यादि देखनेको जाया करता. और वहां विद्वानोंको तथा विद्याके कारण होतीहुई उनकी भेंट पूजाको देखनेसे उसकोभी विद्याभ्यास करके शास्त्रज्ञ होने और सभाओंमें मान प्राप्त करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई. वह अपने बड़े भाईकी आज्ञा लेकर काशीपुरीको गया और वहां मन लगाकर विद्याभ्यास करने लगा. तीक्ष्णबुद्धि होनेके कारण, थोड़ेही दिनोंमें उसने व्याकरण, न्याय, मीमांसा आदिक शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान संपादन कर लिया. प्रथमसेही उसके मनमें विद्वान् होकर सभाओंमें मान प्राप्त करनेकी इच्छा लगी रहनेसे उसने शास्त्रोंका भलीभांति अभ्यास किया. वह जिस २ शास्त्रको पूरा कर लेता उस २ शास्त्रके सिद्धांतोंसे अपने सहपाठियोंके साथ वादविवाद करता, उसमें जब उसकी कोटि प्रबल रहती तब बड़ा आनंदित होता. एवं करते २ उसने चार शास्त्रोंका उत्तमतापूर्वक अध्ययन कर लिया. इसके सिवाय औरभी थोड़ा बहुत अभ्यास उसने किया; परंतु उसकी सभा जीतनेकी अभिलाषाने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया. नगरकी छोटी बड़ी प्रत्येक सभाओंमें वह जाने लगा और अपने अध्ययन कियेहुए विषयके वादमें प्रत्येक स्थलपर अग्रगामी होकर अपना चमत्कार दिखलाता. इसपरसे जहां तहां उसका आदर सत्कार होने लगा और वह विद्वानोंमें गिना जाने लगा; जिससे उसको अभ्यासमें अभाव होने लगा. उसको अभिमान होगया कि 'अब काशीपुरी

जैसे नगरमें मैंने बहुतसे विद्वानोंको सभामें जीतलिया है तब अन्यत्र मेरे सन्मुख होकर वाद–विवाद करनेवाला कौन मिलेगा ? परन्तु वह यह बात नहीं जानता था कि, उसको अभी बहुत कुछ जानना पढ़ना शेष है, वह अपनी अपूर्णताको नहीं समझ सका. इतनेपरसेही वह शास्त्रवेत्ता नहीं कहला सकता, इसका विचार उसके मनमें नहीं आया उसने समझ लिया कि, अब अधिक श्रम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, वेदांतादि विषयोंको तो मैं ऊपर २ से देख लूंगा तो वस है; कि जिससे किसी दिन वेभी काम आवें.

ऐसेही वहुत दिन बीत गये. एक वार काशीपुरीमें ऐसी चर्चा फैली कि यहांका राजा इस वर्षकी समाप्तिमें एक ऐसी सभा करनेवाला है कि, जिसमें सकल शास्त्रवेत्ता ऐसे विद्वान् आवें कि जो प्रतिज्ञापूर्वक परमपुरुष परमात्माका अस्तित्व सिद्धकरके निरीश्वरवादी पंडितोंको विवादमें जीत सकें. यदि ऐसा न होगा अर्थात् निरीश्वरवादियोंको नहीं जीत सकेंगे तो राजा सर्वत्र निरीश्वर मत स्थापन करेगा और हारेहुए सब पंडितोंको देशमेंसे निकाल देनेका दंड देगा. इस पंडित बनेहुए ब्राह्मणपुत्रने जब ये समाचार सुने तो मानों निद्रामेंसे जागृत हुआ है इसभांति अचानक चौंक पड़ा; और सोच विचार करने तथा पछताने लगा कि–' यह कैसा विवाद कि जिसमें हारनेवालेको देशनिकाला हो ! जब मैं इस सभामें वादविवादके लिये जाऊं तब मुझे कौनसा सिद्धांत ग्रहण करना चाहिये ? क्या मैं न्यायकी कोटिसे सिद्ध कर सकूंगा कि, ईश्वर है ? अरे ! वह तो परमाणुवादी है, और उसने परमाणुओंको अविनाशी माना है. तब क्या मीमांसा ? वह तो कर्मको प्रधान मानती है. तो फिर सांख्य ? नहीं, यह तो प्रकृति–पुरुषको सिद्ध करता है, और निरीश्वर सांख्य तात्त्विक सृष्टिको मानता है, तब कदाचित् वेदान्त–शास्त्रमें यह विषय सविस्तर वर्णन किया गया होगा, परन्तु उसको मैं पूरा २ जानताही नहीं. ' इसी भांति तर्क वितर्क करता २ अपने पढ़ेहुए शास्त्रोंमेंसे ईश्वरको सिद्ध करनेवाले प्रमाणोंको ढूंढ़ २ कर निकलाता और उनका अपने आपही खंडन करता, परन्तु ऐसा करनेसे उसको किसी एक बात पर दृढ़निश्चय नहीं हो सका. जैसे २ वह गंभीर विचार करता गया, तैसे २ उसको भ्रमभी अधिक अधिक होता गया. यह स्वाभाविक बात है कि एकवार किसी विषयमें भ्रम वा शंका होगई तो यकायक शीघ्रही चित्त

स्थिर नहीं होता. इस ब्राह्मणको अपने पठित शास्त्रोंका बड़ा अभिमान था; तिसपरभी अपने आपही शंका समाधान करनेसे उसका मन चक्रमें पड़ गया. वह भ्रमसागरमें गोते खाने लगा. स्वयं विद्वान् होकर प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था; इस कारण उसको जो संशय उत्पन्न हुआ उसका वृत्तान्त किसीको कह नहीं सकता था; क्योंकि ऐसा करनेसे पंडितजीकी कलई खुल जाती. अस्तु, वह अपने आपही इस विषयका कई दिनतक लगातार विचार करता; परन्तु फिरभी कुछ निश्चित नहीं कर सका; तब बहुत घबराया, राजाकी सभामें जानेके लिये क्या करना सो उसको कुछ नहीं सूझ पडा. निदान उसने विचार किया कि, इस वाद-विवादमें जो पराजित होगा उसको तो राजा अवश्य देशनिकाला देवेहीगा. तब हारनेपर मानभंग होकर यहांसे जानेसे पहलेही अपने आप चुपचाप पलायन कर जाना अच्छा है. यह विचार करके वह ब्राह्मणपुत्र अपने पोथे थोथे लेकर रातही रात भागा, और थोडे दिन पीछे अपने घर आ पहुँचा. उसका बड़ा भाई नियमानुसार कृषिकर्म किया करता था और अपने पिता-कृत उपदेशके आधारसेही अपने कर्त्तव्यको करता हुआ और किसी चक्रमें नहीं फँसा था. छोटे भाईको देशान्तरमें विद्याभ्यास करके कई वर्षोंके उपरान्त पीछे घर आया देखकर वह बड़ा हर्षित हुआ और उसका भली भांति आगत स्वागत किया. अनन्तर रातको दोनों भाई वार्तालाप करने लगे. वड़े भाईने अपने छोटे भाईको उसके देशाटन तथा विद्याभ्यासके समाचार जाननेके लिये प्रश्न पूछना आरंभ किया. छोटेने अपना सब वृत्तान्त सविस्तर कहकर अन्तमें काशीपुरीमें होनेवाली सभाके विषयमें कहते२ कहा कि, 'बड़े भाई! यकायक मेरे यहां चले आनेका यही कारण है और अभीतक ईश्वरके अस्तित्वविषयमें मेरा समाधान नहीं होता. आजतक मैंने जितनी विद्या पढी वह सब निष्फल हुई और मैं भ्रममें पड़गया, प्रतिष्ठाभंग होनेके भयसे यहां भाग आया. इतने अधिक पठनके श्रम न करके जो मैं अपने घरही रहकर आपकी सेवा करता तोभी कृतार्थ हो जाता.'

यह सुनकर बड़े भाईने कहा-'भले मनुष्य, अभीतक तुझको ईश्वरके विषयमें शंका होती है और उससे त अपनी विद्याको दूषण देता है. क्या तू अपने पिताजीके हितवचनको भूल गया? कैसे आश्चर्यकी बात है? उन्होंने अपने अन्तसमयमें बुलाकर हमको क्या कहा था? सो याद कर. क्या

पिताजीने यह नहीं कहा था कि—" तुमको यज्ञोपवीत—संस्कारके समय उपदेश किया हुआ गायत्रीमंत्रही परमात्माके स्वरूपका यथार्थ दर्शन करानेवाला है. उसीका निरन्तर जप करनेसे मनुष्यको ईश्वरका सिद्ध करना तो क्या, परन्तु ईश्वरका सात्क्षाकार होना भी दुर्लभ नहीं है. यह बात तू कैसे भूल गया ? किन्तु ठीक है, जब केवल उसी एकपर लक्ष्य रहे तब तो यथार्थ फलकी प्राप्ति हो. अनेक विचारोंके चक्करमें पड़ेहुए मनुष्यको वह सिद्धि नहीं मिलती.

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः ।
उभौ तौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥

" लोक अर्थात् संसारमें जो मनुष्य महामूढ होते हैं अथवा जो महाविद्वान् हैं वे दोनों परम सुखको भोगते हैं, परन्तु अर्द्धदग्ध अर्थात् जो न तो मूर्खही और न विद्वानही है, केवल बीचहीमें लटक रहे हैं वे क्लेश उठाते हैं. " एक गांवसे दूसरे गांवको जातेहुए बीचमें किसी जगहसे भिन्न २ कई मार्ग जाते हों तो अनजान मनुष्य किसी जानकारको सीधा मार्ग पूछ लेनेके लिये वहां ठहर जावे यही उचित है. किसी क्षुधित मनुष्यके सम्मुख सुन्दर स्वादिष्ट पक्वान्नोंसे भरेहुए बहुतसे पात्र धरकर कह दिया जावे कि जो रुचे सो खाओ, तब यदि वह विचार करने बैठे कि 'इतनेमेंसे कौनसा अच्छा है—यह अच्छा है, वा वह अच्छा है; ऐसाही सोचता रहे तो वह भूखाही रह जाय. किन्तु जिसमें उन सबको पचा जानेकी शक्ति हो वह सबको खा लेवे. अथवा जो यह समझे कि चाहे कौनसाभी एक पदार्थ खा लेनेसे भूख मिट जायगी ऐसे सादे सरल स्वभाववाला कोईभी एक पात्र लेकर खाने लगे वह तृप्त होजाय, तो तूने समस्त शास्त्रोंका अभ्यास नहीं किया इसीसे न इधरका रहा न उधरका. यही कारण है जिससे तुझको अनेक शंकायें उत्पन्न हुईं; परन्तु या तो तू प्रथमसेही इस बाद विवादमें नहीं पड़ता अथवा सर्व विषयोंका पूर्णतया अवलोकन करनेपर उसमें पड़ता तो तेरी मति ऐसी विभ्रम और संशयात्मक नहीं होती. अस्तु, अब तू इन सब बातोंको एक ओर रखकर, केवल अपने पिताजीके अन्तकालके वचनपर दृढ़ निश्चय—पूर्ण निष्ठा रखकर अनुवर्त्तन कर; जिससे तेरे सब संशय मिटजावेंगे और तेरा कल्याण होगा." यह सुनकर उसने गायत्री मंत्रसे परमात्माकी उपासना करना आरंभ किया, कि जिससे अल्पकालहीमें

उसके सर्व पापोंका नाश होगया, और उसका अन्तःकरण निर्मल होगया. वह बिलकुल निरभिमानी और शांत हो गया. इससे उसको सबमें एकता दिखाई पड़ने लगी. उसने जान लिया कि 'यह सारा जगत् जिस परम पुरुष परमात्माका स्वरूप है, वह मैं स्वयंही हूं.' ऐसा शुद्ध अद्वैत भाव उत्पन्न होकर अन्तमें वह जीवन्मुक्त होगया.

संगति.

प्रत्येक मनुष्यको साधु-पुरुषोंका संग करना चाहिये. संग यह सबसे अधिक बलवान् है. यही सर्वपदार्थोंका उत्पत्तिस्थान है. तू सूक्ष्मदृष्टिसे विचार कर, देख कि, संगके विना कोईभी वस्तु बनती है क्या ? सर्वत्र संगही संग व्याप्त है. संग, संगति, ऐक्य और मिलाप इन सबका एकही अर्थ है. एक पदार्थका दूसरेके साथ मिलापही संग कहलाता है. वस्तुमात्र जो अपने देखनेमें आती हैं वह संगतिसे बनी हैं. तू स्वयम् और यह सारा संसार संगसेही उत्पन्न हुआ है, होता है, और होता रहेगा. पृथ्वीके भीतर पड़ेहुए बीजोंको पानीका संग होनेसे उनमेंसे अंकुर फूटते हैं, जिनसे कालान्तरमें बड़े २ वृक्ष हो जाते हैं. स्त्री पुरुषोंके संगसे बालक उत्पन्न होता है. एक २ ईंटके परस्पर संग होनेसे बड़ा भारी मंदिर बनता है, जलका संग होनेसे प्रत्येक वस्तु भीग जाती है और पारसमणिके संगसे लोहा सुवर्ण हो जाता है, संगसे मूर्ख पंडित होता है, और कुलटा सती हो जाती है. संक्षेपमें कहा जाय तो यह सब जगत्‌ही परमाणुओंके संगसे बना हुआ है. संगसे अच्छा और बुरा दोनों प्रकारका फल होता है. विषके संगसे-विषपानसे मनुष्यकी मृत्यु होती है और अमृतके संगसे वह अमर होता है. ऐसेही मुमुक्षुको साधु (सज्जन-ज्ञानी) पुरुषका संग करना उचित है कि जिससे वहभी साधु बन जाय. ज्ञानी होनेका सच्चा मार्ग ज्ञानी पुरुषकी संगति करनाही है. इसके समान उत्तम और कोई नहीं है, ज्ञानीजनके संगसे ज्ञान होता है और उससे संशयकी निवृत्ति होती है. साधुके संगको सत्संग कहते हैं. इस सत्संगकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनीही थोड़ी है. इसकी महिमा अपार और जगद्विख्यात है. इस सत्संगसे ऐसा परमपद मिलता है कि जैसा भजन, पूजन, अर्चन, वंदन, शास्त्रार्थ वा दान पुण्यादि किसीसेभी नहीं मिल सकता; किन्तु साधुसमागमसे उद्भव हुए विचारोंसे विशुद्ध हुए हृदयसेही प्राप्त होता है.

इसके लिये किसी दृष्टान्तकी आवश्यकता नहीं है. अस्तु, प्रत्येक मनुष्यको निरन्तर सत्संग करना चाहिये.

विषय-त्याग.

मनुष्यको विषयाधीन नहीं होना चाहिये. जगतमें पांच विषय हैं और उनको भोगनेवाली इंद्रियां भी पांचही हैं. सारा संसार इन विषयोंसे बँधा हुआ है और वह उनके आधीन होकर रहता है. अब पांच विषय कौन २ से हैं, सो कहता हूं.

यथा-१ शब्द, २ स्पर्श, ३ रूप, ४ रस और ५ गंध, ये पांचों पंचमहाभूतोंसे उत्पन्न हुए हैं. शब्द आकाशसे, स्पर्श वायुसे, रूप तेजसे, रस जलसे और गंध पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ है. इन पांचोंको ग्रहण करनेवाली पांच इंद्रियां ऊपर कह आया हूं, वे इस भांति हैं. श्रोत्र (कान), त्वचा (चर्म), चक्षु (आंख), जिह्वा (जीभ) और नासिका (नाक) ये पांच ज्ञानेन्द्रियां अनुक्रमसे ऊपर बताये हुए पांचों विषयोंको भोगती हैं. प्रत्येक विषय अपने आधीन होनेवालेका नाश कर देती है. जैसे एक श्रोत्रेन्द्रियके अधीन अर्थात् उसमें विशेष ज्ञान अथवा प्रीतिवाला मृग (हरिण) पशु कान इन्द्रियके विषयशब्दसे लुब्ध होकर मृत्युको प्राप्त होता है. मृगको नाद (शब्द) विशेषतः वीणाका बाजा, अतिशय प्रिय लगता है, इससे पारधी (वधिक) लोग कस्तूरीके लिये नानाप्रकारके वेणु वीणा इत्यादि बाजे बजाकर मृगोंको मोहित करते हैं. जब वे आनन्दमें मग्न हो जाते हैं तब पीछेसे अचानक शस्त्र वा अस्त्र द्वारा उनके प्राण हरण करते हैं. इसीभांति स्पर्शेन्द्रियके आधीन होनेसे मातंग अर्थात् हाथी वशमें कर लिया जाता है. हाथीको हथिनीका स्पर्श (भोग-विलास) करनेकी बड़ी आतुरता लगी रहती है; इसी कारण उसको पकड़नेके लिये ऐसी युक्ति की जाती है कि, जिस अरण्यमें हाथी होते हैं वहां कागज आदि किसी वस्तुकी हथिनी बनाकर खड़ी कर देते हैं और जिसमार्गसे हाथी आनेका अनुमान कर लिया जाता है उधर एक गहरा खड्डा खोदकर उसपर बांस, पतरे, लकड़ियां वगैरः बिछाकर ऊपर मिट्टी ढांक देते हैं और भूमिके समान भूमि कर देते हैं. पीछे हथिनीको खुली रखकर सब लोग इधर-उधर वृक्षोंमें छिप जाते हैं. फिर जंगलमें भटकता २ कोई हाथी उधर आ निकलता है तो उस कृत्रिम हथिनीको देखकर विषयांध होकर उसका स्पर्श करनेके लिये उधर बड़े

वेगसे दौड़ता है; परन्तु ज्योंही वह उस ढँकेहुए गढ़ेके ऊपर आता है त्योंही उसमें गिर पड़ता है और फिर उसमेंसे निकल नहीं सकता. जब कई दिनोंतक भूख प्यास सहकर गढ़ेमें पड़ा २ अशक्त हो जाता है तब पकड़नेवाले लोग उसको अंकुशोंके प्रहार और लोहशृंखलाओंके बंधनसे नम्र-वशीभूत करके अपने घर लाते हैं. रूपविषयमें अतिलोभ रखनेके कारणसे पतंग अपने प्राण विसर्जन करता है. पतंगको तेजपर अत्यन्त प्रीति होती है. रात्रिके समय बहुधा देखनेमें आता है कि, दीपकको जलता हुआ देखकर उसकी प्रज्वलित शिखा (बत्ती) को अपूर्व सत्य तेजोमय मानकर बारंबार उसपर गिरता है और जब उसकी आंच लगती है तो फिर पीछे हट जाता है; किन्तु उसका मोह न छूट सकनेके कारण अन्तमें उसपर गिरकर प्राण खोता है. रसना (जीभ) स्वादको जाननेवाली इंद्रिय है, इसके आधीन होनेसे मीन (मछली) के प्राण जाते हैं. मछलियोंकी स्वादिंद्रिय बड़ी प्रबल होती है, इस कारण उनको पानीमेंसे पकड़नेवाले धीमर माछुए आदि लोहके तीखे २ कांटोंपर शर्करामिश्रित गेहूंके आटेकी गोलियां खोंसकर उनको पानीमें छोड़ देते हैं, उन कांटोंके पीछे लंबी २ डोरियां बांधकर हाथमें पकड़े रहते हैं. स्वादके लालचसे मछली ज्योंही उस गोलीको मुंहमें लेती है कि तत्क्षण लोहेका कांटा उसके तालुमें घुस जाता है; जिसके दुःखसे तड़पकर प्राण गँवाती है. घ्राणेंद्रियका विषय गंध है. यह गंध विषयभी इसके आधीन होनेवालेका नाश करता है. इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भ्रमर है. सुगंधका अत्यंत लालची भ्रमर (मधुकर) नाना प्रकारके पुष्पोंपर निरंतर भटका करता है. छोटे मोटे विविध पुष्पोंके सौरभसे तृप्त न होकर अत्यंत प्यारे प्रफुल्लित कमल-पुष्पपर जाकर बैठता है. उसकी सुगंधमें वह इतना मग्न हो जाता है कि जब संध्यासमय सूर्यका प्रकाश न रहनेसे कमलपुष्प बंद होने लगते हैं तबभी पंखुरियोंके आहट वा चोटसे विचलित न होकर जैसेका तैसा बैठा रहता है. वह यही सोचता है कि अब उठता हूं, अब उठता हूं, अब उठता हूं, इतनेमें तो कमलकी सब पंखुरियां सिमटकर खासी कली बनजाती है और भ्रमरराज उसीके भीतर कैद होजाते हैं. तू जानता है कि भ्रमर बड़ा शक्तिशाली होता है. चाहे जैसे कठिन काष्ठमेंभी वह छेद कर देता है तो फिर उसके लिये कमलकी कोमल पंखुरियोंको काट डालना क्या कुछ कठिण बात है ? परंतु सुगंधका

स्वादी (स्वादप्रिय) भँवरा उस कैदमेंसे छूटनेका प्रयत्न नहीं कर सकता-वह सुगंधके परमानंदको छोड़कर अपने प्यारे कमलको तोड़ फोड़कर बाहर निकलना नहीं चाहता और प्रातःकाल होनेपर कमल खिलनेका समय आवे तबतक तो भीतरका भीतरही घुटकर मर जाता है.

इसभांति प्रत्येक विषय, उसके आधीन हो जानेवालेका प्राण लेता है. हे यज्ञभू ! तू विचार करके देख कि केवल एकही इंद्रियके ज्ञानवाले और एकही विषयपर आसक्ति-प्रीति रखनेवाले प्राणियोंका इसभांति नाश होता है तो जिसके पांच इंद्रियां हैं और जिसमें पांचों विषयोंको एक साथ ग्रहण करनेका सामर्थ्य है, ऐसा मनुष्य (प्राणी) तत्काल नाशको प्राप्त हो जाय इसमें आश्चर्यही क्या ? पुरुषकी पांचों इंद्रियां प्रबल हैं. यदि वह अपनी पांचों इंद्रियोंके विषयोंके आधीन हो जाय-उसमें अत्यंत प्रीति करने लगे तो उसका नाश क्यों न हो ? अवश्य होवे. यहां प्रश्न उठता है, कि, तब क्या विषयोंका बिलकुल परित्याग कर देना और इंद्रियोंको बिलकुल मार डालना ? नहीं, ऐसा करना उचित नहीं. शिष्ट जनोंका कथन है कि-' जो विषयोंका विधियुक्त सेवन किया जावे तो वह विषयत्यागके समानही है. ' इस वाक्यका अनुकरण करके विषयोंको भोगना चाहिये. विषयांध होकर विषय-सुख भोगते आरंभमें तो वह अमृतसमान जान पड़ता है. किंतु परिणाम उसका विषमय हो जाता है; इसलिये इन विषयोंका बिलकुल तिरस्कार करके, इनकी अवज्ञा निंदा करकेभी, आप्त पुरुषोंने इनको विधिवत् सेवन करनेको क्यों कहा ? ऐसी शंकाका समाधान यह है कि-जैसे एक सुघड़ स्त्री अपने पतिके लायेहुए कुधान्यकोभी सुधान्य करके रांधती है, ऐसेही अविद्यासे विमुख सुज्ञ जीवभी विषयोंके विकारको दूर करके इनको भोग सकता है; और जैसे चतुर स्त्री अपने पतिको सुधान्य खिलाकर उसको प्रसन्न करके उसकी कृपाभाजन बनती है तद्वत् ये विषयभी, इनका विधिपूर्वक सेवन करनेवालेको, परम कल्याणमय मार्गसे जानेकी प्रेरणा करते हैं और आत्माको सत्-चित्-आनंदमय मार्गमें खैंच ले जाते हैं तथा परम-पुरुषका अनुग्रह प्राप्त कराते हैं. जिस भांतिसे संखिया, हरताल, इत्यादि विष सचमुच प्राणहरण कर्त्ता होनेसे, अज्ञानवश-भूलचूकसेभी कोई इन्हें खा लेवे तो निःसंदेह वह मृत्युको प्राप्त होता है, परंतु जब वेही विष किसी निपुण वैद्यके हाथसे सम्यक् शोधन-मारणादि

क्रियाद्वारा उत्तम रसायन बन जाते हैं तब उनके सेवनसे असाध्य रोगी–जो अपने जीनेकी आशा छोड़ बैठते हैं, ऐसे मरनेकी तयारी-वाले मनुष्यभी आरोग्यको प्राप्त होते हैं. अर्थात् जो विष प्राणसंहारक है वही भलीभांति–विधिपूर्वक सेवन करनेसे प्राणदाता–मृत्युकों हटानेवाला हो जाता है. जैसे अग्नि प्रत्यक्ष दाहक पदार्थ है और वह उससे मिलने-वाली प्रत्येक वस्तुको जलाकर भस्म कर देता है तोभी विधिवत् सेवन करनेसे वही आनन्ददायक हो जाता है–शीत मिटाता है, अंधकारको दूर करके प्रकाश करता है, और अन्नादिक पदार्थोंको पक्व करके शरीरके पोषण-योग्य तथा स्वादिष्ठ बना देता है. इसीप्रकार जल, पृथ्वी, वायु, आका-शादि महाभूत तथा अन्यान्य समस्त दृश्य पदार्थ उचित रीतिसे सेवन किये जायँ तो बड़े गुणकारी हो जाते हैं. इसी रीतिसे जो पुरुष इन पांचों विषयोंको, योग्यायोग्यके विचारपूर्वक आवश्यकतानुसार, देश, काल देख-कर भोगता है, इनको सन्मार्गमें चलने देता है, वह उनके सेवनके प्रारंभमें अथवा अंतमें किसी समय दुःखी नहीं होता. किन्तु सत्–चित्–आनन्दमें मग्न–मस्त होकर परम फलको प्राप्त करता है. और जो पुरुष अवि-द्यासे घिरा रहता है वह उस श्रेष्ठ फलको नहीं प्राप्त कर सकता. इसी स्थलपर ज्ञाताकी आवश्यकता होती है. यहांही ज्ञानीकी परीक्षा होती है अयोग्यको योग्य बनाकर अपने उपयोगमें लानेसेही चतुर पुरुषका चातुर्य दिखाई देता है. ये इंद्रियजन्य विषय योग्यताके प्रमाणसे सेवन करनेके योग्य हैं. शब्दग्राहक श्रोत्रेन्द्रियद्वारा अनेक प्रकारके कुवाच्य–कुत्सित भाषण, परनिन्दा तथा ऐसीही और २ बातें, जिनके सुननेसे उन्माद उत्पन्न हो, उन्हें नहीं सुनना चाहिये; परन्तु जिस वाणीको श्रवण करनेसे अन्तःकरण पवित्र हो जाय तथा पापका नाश हो जाय ऐसे हरिकीर्तन सच्चिदानन्दकी कीर्ति, भगवत्कथा, तथा सन्त-जनोंके मुखकी हरिगुणानुवादरूप सरस वाणीआदिकका श्रवण करना चाहिये; जिससे परम कल्याणकी प्राप्ति हो. आलिंगन, संग आदिक अपनीही स्त्रीके साथके व्यवहार स्पर्शेन्द्रियसे होते हैं और जब इस स्पर्शे-न्द्रियके विषयमें मग्न (मस्त) हो जानेवाले मनुष्यकाभी शीघ्रही नाश हो जाता है, तब परस्त्रीका संग करनेवाला तथा उसमें लुब्ध हो जानेवाला जीव कैसी दुर्दशा और कैसी अधोगतिको प्राप्त होता है सो अवर्णनीय है;

और जिसका नाम परस्त्रीसंग करना है सोही स्पर्शेन्द्रियका दुरुपयोग कहलाता है. किसी कविने कहा है–" परनारी पैनी छुरी, ताहि न लावहु अंग ! रावनके दश शिर गये, परनारीके संग " इस लियेही ज्ञानी पुरुष कह गये हैं कि, स्पर्शविषय बड़ा भारी प्रवल और अजेय है और वह तुझसे नहीं छोड़ा जा सकेगा. अस्तु, तू विवाहयोग्य वय होनेपर, अपने योग्य, रूपवती, गुणवती, कुलवती तथा सुशील सुन्दर कन्याके साथ, वेद अर्थात् सूर्य, अग्नि, ऋषि, ब्राह्मण, पुरोहित, ऋत्विज तथा अपने कुटुंबी स्वजातीय सभ्य श्रेष्ठ पुरुषोंकी साक्षीसे, मेरी आज्ञाके अनुसार, विजातीय विधिपूर्वक पाणिग्रहण करना, और स्वकीया स्त्रीके साथभी विधिपूर्वकही वर्त्तन करना. विधिपूर्वकका अर्थ है शास्त्रानुकूल; इस आज्ञाका उल्लंघन करके स्वस्त्रीका भी सेवन करनेवाला परमतत्त्वके लाभसे विमुख रहेगा. ज्ञानवान् पुरुषोंने शास्त्रानुकूल स्वपत्नी–सेवनकी आज्ञा दी है सो अत्यन्त योग्य और मनुष्यके लिये परम हितकारक है. व्यवहारमें–संसारमें रहकर इस प्रकार वर्त्तनसे, स्त्री पुरुष दोनों सदा सुखी रहते हैं. उनमें परस्पर, मनसा, वाचा, कर्मणा–किसी प्रकारभी व्यभिचारी भाव उत्पन्न नहीं होता; वरंच दोनों अद्वैतरूपसे रहते हैं और उनकी संततिभी धर्मशील, बुद्धिमान् और हृष्टपुष्ट शरीरवाली होती है. परस्त्रीको त्याग कर, यदि स्वस्त्रीकाभी नियमविरुद्ध अतिशय सेवन किया जाय तो वहभी विषय–सेवनही कहा जायगा; परंतु इसपरसे यह नहीं समझ वैठना कि अपनी स्त्रीके साथ प्रीति नहीं रखना; किंतु उसके आधीन–वशवर्ती होजाना और जैसे मदारी वंदरको नचाता है तदनुसार स्त्रीके आगे विषयांधतासे नाचना, निषेध किये हुए दिनोंमें उसका सेवन करना, और उसकीही चर्चा चिन्ता करते रहना, ये सब भ्रष्टताके चिह्न हैं. इसीभांति जो पुरुष स्वयं स्त्रीके वशमें नहीं रहता, परन्तु उसको अपने वशवर्तिनी वना रखता है, उसकोभी सचमुच स्त्रैण (स्त्रीके वशमें हुआ, स्त्रीको अन्य सर्व वस्तुओंसे वढ़कर अतिप्रिय जानने–माननेवाला) जीव समझना चाहिये वेदाज्ञा–शास्त्राज्ञाको नहीं माननेवाले स्त्रैण जीव ऐसे अधम होते हैं कि, सज्जनोंको उनका मुख देखनाभी उचित नहीं है. यह महात्मा पुरुषकी आज्ञा है. वे लोग कौनसा पाप नहीं करते हैं वा न करेंगे सो नहीं कहा जा सकता. अस्तु, हे यज्ञभू! स्पर्शविषयभी विधिपूर्वकही सेवन करना

चाहिये. सन्तपुरुषोंके मंगल चरणारविन्दोंका आलिंगन करना, उनकाही स्पर्श करना, उनमेंही प्रीति तथा प्रतीति रखना, तथा मनोमय भगवन्मूर्ति-परमात्माकी (अपने इष्टदेव- यथा श्रीकृष्ण, रामचंद्र, शंकर, विष्णु, नारायणादिककी मानसिक) सेवामें अत्यंत प्रेमभाव रखना, यही स्पर्शेन्द्रियंका सर्वोत्तम व्यवहार है.

इस रीतिसेही रूपविषयकाभी सदुपयोग करना चाहिये. जैसे तेजमं (तेजके रूपमें) लोभायमान होकर पतंग जल मरता है तैसेही मनुष्यभी स्त्रीआदिकके रूप-लावण्यमें मोहित होकर नाशको प्राप्त होता है. सदा सर्वदा स्त्री तो पुरुषके रूपपर, और पुरुष स्त्रीके रूपपर मोहित होता है. इस कारण रूपविषयकी ग्राहक नेत्रेन्द्रियको सन्मार्गमें लगानेका यत्न करनाही उत्तम पुरुषका काम है. प्रत्येक वस्तुपरसे प्रीति हटा देनेके लिये उसके अवगुणोंपर ध्यान देना चाहिये, जिससे मनोवृत्ति उधर न झुकने पावे. जिस स्त्रीका रूप देखकर मन भटका करता है वही स्त्री, ऊपरसे चाहे जैसी सुन्दर स्वरूपवाली दिखाई देती है, तोभी, भीतरसे वह बड़ी मलिन और घृणित वस्तुओंसे भरीहुई है. इस स्त्रीको, रक्त मांस मज्जा पीब इत्यादिसे भरेहुए जिस घड़ेको ऊपरसे मांज साफ कर चमकता हुआ कर दिया हो उसकी उपमा दी जा सकती है. जिस प्रकार पुरुषके लिये स्त्री मलमूत्रसे भरेहुए घटवत् है, उसीभांति स्त्रीके लिये पुरुषभी हाड़मांसका पुतला-मलिन वस्तुओंसे भरेहुए, किन्तु ऊपरसे चमकतेहुए साफ सुथरे घड़ेके समान है. इस बातका सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करनेमें असमर्थ पुरुषको उचित है कि, प्रातःकाल जब स्त्री सोकर उठे तब उसका अवलोकन कर ले तो उस स्त्रीका वास्तविक स्वरूप क्या है सो वह भलीभांति जान लेगा; उसको तत्क्षण विदित हो जायगा कि चाहे जितना रूप-यौवन-सम्पन्न सुन्दर दिखाई देता हुआ शरीरभी सचमुच मलमूत्रसे भराहुआ घडाही है. रात्रिके समय जिस स्त्रीकी सुन्दरतापर मनुष्य मोहित होकर अंधकूपमें गिरता है, उसी स्त्रीको प्रातःकाल देखनेसे उसको घृणा उत्पन्न हुए विना नहीं रहेगी. उसके मनमें यह बात ठस जायगी कि, स्त्री नरककुंडवत् है; उसके रूपपर मोहित होना महामूर्खता है. इस प्रकार झूठे स्वरूप परसे हटीहुई प्रीतिको मनुष्य भगवत्स्वरूपमें लगावे और सुदृढ़ करे. ध्यान करनेके समय अपने हृदयकमलमें विराजमान अविनाशी कोटि कामदेवसेभी अधिक सुन्दर प्रभु-परमात्माके

महामंगलमय मुखारविन्दपर प्रेम करे और वारंवार नित्य नित्य यही कामना करता रहे कि ' अहो उस श्रीमुखके मुझे पुनर्वार कब दर्शन होंगे ? वह प्रभु मुझपर कृपा करके कब मुझे इस भवजालमेंसे मुक्त करेंगे तथा साक्षात् प्रत्यक्ष दर्शन देंगे. ' इत्यादि कामना निरंतर करते रहना चाहिये तथा जिनके दर्शन-मात्रसेही सद्बुद्धि उद्भवती है ऐसे सन्त, महात्मा, सत्पुरुष, ज्ञानीजन, भक्तजन इत्यादिकके दर्शन करनेमें प्रीति रखना यह रूपविषयके सेवनकी सफलता–सार्थकता है.

रसविषयके कारणसे जिह्वा मनुष्यको फांसीमें डालती है. नानाप्रकारके रस, यथा गोरस, मधुर रस, इक्षुरस, खट्टा, खारा, तीखा इत्यादिक रसोंके आस्वादका लालच बना रहनेसे अन्तमें प्राणहानिका समय आजाता है. ऐसे अनेक रसोंका सेवन करनेसे इंद्रियां प्रबल होकर मर्यादामें नहीं रहतीं और नानाप्रकारके उपद्रव करती हैं तथा शरीरको अपकृत्यमें फँसाती हैं. जब ऐसी बात है तब क्या मनुष्यको रसोंका उपभोग नहीं करना चाहिये ? नहीं, उपभोग तो करनाही चाहिये; क्योंकि सब पदार्थ उपभोगके लियेही सृजे गये हैं, परन्तु नियमपूर्वक उपभोगही श्रेयस्कर हो सकता है; न कि नियम-विरुद्ध. सब लोग भलीभांति जानते बूझते, और निरन्तर देखते हैं कि, शरीर अन्नसे पुष्ट होता है, स्थिर रहता है और विना अन्नके अशक्त हो जाता है. वही अन्न एक सन्निपातसे ग्रसित रोगीको तत्काल यमद्वार पहुँचा देता है. जो पोषक है वही शोषक हो जाता है. जो प्रिय–हितकर होता है वही अप्रिय–अहितकर हो जाता है. इसका कारण केवल नियमविरुद्ध सेवनही है. रूपविषयमें अच्छे २ अलंकार, बढ़िया २ वस्त्र तथा अन्यान्य पदार्थ जो शरीरको नाजुक, सुकुमार तथा सुशोभित प्रदर्शित करनेवाले हैं वे न प्राप्त हो सकें तो उनके विना शरीरका नाश नहीं हो सकता. यदि उनके बदले, शरीरका सदा रक्षण करनेवाले तथा नाजुक-पनेसे बढ़कर लज्जा बनी रखनेवाले वस्त्र आदि पदार्थोंका सेवन किया जाय तो उनसे शरीरको कुछभी क्षति नहीं पहुँच सकेगी; किन्तु वे विशेष लाभ-दायक सिद्ध होंगे. इसीभांति इस रसविषयकोभी जानना. जो अमुक प्रकारका मिष्टान्न हो तो भोजन किया जाय और जो वह न मिला तो प्राण निकल गये, ऐसा कभी हुआ है ? जब पांच प्रकारके पकान्नोंसे इस पांच-भौतिक शरीरका जैसा पोषण होता है, वैसाही चाहे जैसे कुधान्य–बाजरा,

ज्वार, कोदों आदिकके भक्षणसेभी होता है; तब रसना (जीभ) को पकाऩ्नके स्वादमें लालायित रखनेमें कौनसा लाभ है? इसी रसनाद्वारा एक और बड़ा भारी कार्य किया जाता है; बोलना—भाषण करना यहभी जिह्वाका काम है. इस कारण उसके द्वारा नानाप्रकारके कुवाच्य, कठोर शब्द जो कानोंकोभी अप्रिय लगें उनका उच्चारण करना, बीभत्स गीत गाना, परायेकी निन्दा करना, मिथ्यास्तुति करना, मिथ्या भाषण करना इत्यादिक कार्य न करके उसको ऐसे दुष्ट कार्योंसे रोकना तथा उसे उत्तम कार्योंमें लगाना उचित है. निर्दोष तथा मधुर—सबको प्रिय लगें ऐसे मनोहर शब्द कहना, परनिंदा और मिथ्या स्तुतिसे बचकर, सर्वेश्वर प्रभुके गुणानुवाद गाना, उसीकी स्तुति करके जिह्वाको पवित्र और सार्थक करनाही उसका सदुपयोग कहलाता है. यही रसनाका परम धर्म है. मुखसे सदा सत्य बोलना; क्योंकि 'नहि सत्यात्परो धर्मः' सत्यही परम श्रेष्ठ धर्म है. जिस वाणीसे दूसरे किसीका कार्य सुधरे अथवा किसीकाभी कल्याण हो ऐसे शब्द बोलनेमेंही रसनाका उपयोग करना. रसमात्र झूठे हैं. इस लोकके अनेक रस उत्तम हैं, परन्तु वे दुःखप्रद हैं. उनमें सर्वोत्तम एक रस है कि, जिसका ज्यों २ अधिक सेवन किया जाता है त्यों २ वह अधिकतर गुणप्रद होता जाता है, उस रसको सुधारस कहते हैं. नामसुधारस ऐसा उत्तम, ऐसा मधुर, ऐसा हितकर और ऐसा रुचिकर है कि उसका निरन्तर पान करनेवाले प्राणी निष्पाप होकर प्रभुके अत्यन्त प्यारे हो जाते हैं. नामसुधारस यही है कि, जिह्वाद्वारा सदा सर्वदा परमात्माके पवित्र नामका रटन स्मरण—कीर्त्तन करना. इसलिये, हे साधु! रस ग्रहण करनेमें अतिशय लालची जिह्वाको इस नामसुधारस (भगवन्नामस्मरणरूप अमृतरसे) की मिठाई चखा कि जिसको चख लेनेपर वह दूसरे मिथ्या दुःखप्रद रसोंकी कभी आकांक्षा न करेगी. तथा इसके द्वारा, अन्यान्य साधनोंके विनाही, आत्मा निजस्वरूपको प्राप्त कर सकेगा. इसीको महात्मागण अमृत कहते हैं.

गंधविषयभी इन्द्रियोंको उन्मत्त करनेवाला है. भांति २ के सुगंधित पदार्थोंका सेवन करनेसे इन्द्रियां विलासिनी बन जाती हैं; जिससे कामवासनाकी वृद्धि होती है, इसकारण जिनके विना काम न चल सकता हो केवल उन्हीं सौगंधिक द्रव्योंका सेवन करना अथवा यथाप्राप्त सेवन करना;

किन्तु उनके आधीन होजाना उचित नहीं. गंधविषयका सच्चा सेवन तो यही है, कि, मनुष्य सन्त–पुरुषोंके चरणरूपी कमलोंका गंध सूंघे; अर्थात् जिस भांति उनके चरणकमलकी रज नासिकाको लग सके उसी रीतिसे उतना नीचे झुककर–उनके चरणोंमें मस्तक रखकर उनको नमस्कार–प्रणाम करना, पूजन करना, सदा उनकी वाणीका गंध ग्रहण करना और उनकी शरण लेना कि, जिससे उनकी कृपाद्वारा ज्ञानकी प्राप्ति होकर मुक्ति हो जावे.

निरीक्षा.

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, और गंध इन पांचों विषयोंके आधीन होजानेवालेका ये नाश कर डालते हैं, परन्तु जो कोई इन पांचोंको अपने आधीन कर लेता है उसको ये परम सुख देते हैं, इस विषयमें एक शिष्यने किसी महात्माको प्रश्न किया था कि—" हे गुरुदेव ! आपने कहा कि, इन विषयोंके आधीन हो जानेवालेको ये परम दुःखी कर छोडते हैं, वैसेही इनको अपने आधीन बना लेनेवालेको अनुचरोंके समान सेवा करके उसे अपार सुख देते हैं, सो यह किस प्रकार ?"

गुरुने कहा– हे शिष्य ! वाणीद्वारा समझानेसे तेरा इस विषयमें पूरा २ समाधान नहीं होगा, इस कारण तू कल प्रहर दिन चढ़े पीछे निकटके ग्रामके राजद्वारके समीप जाकर खड़ा रहना, वहां तुझको इस विषयका यथार्थ ज्ञान होजायगा. " तदनन्तर, दूसरे दिन वह शिष्य गुरुसेवासे निवृत्त होकर, पहले दिनकी सद्गुरुकी कीहुई आज्ञाके अनुसार राजसभाके द्वारपर जाकर खड़ा हुआ. पहला प्रहर था, राजद्वारपर चौघड़िये नगारे वज रहे थे तथा साथमें मनको हर्षित करनेवाले ऊंचे और मीठे स्वरसे सहनाइयां कल्याणकी छाया लियेहुए भैरवी राग गा रही थीं. राजाकी दीर्घायु–कुशल चाहनेके नित्य नियमानुसार, उसको नमन (सलामी) करनेके लिये गई हुई सेनाकी टुकड़ियां (कंपनियां) अपने सैनिक पोशाक तथा आयुधोंसे सजीहुई और युद्धवाद्योंका घोष करतीहुई एक २ करके अपने २ स्थानको जा रही थीं. स्नान संध्यादि नित्य कार्यसे निपट कर (दानकृत्य करनेके लिये बैठेहुए) महाराजाके दियेहुए, अपनी २ योग्यतानुसार अनेक प्रकारके दान लेकर अनेक ब्राह्मण, निराश्रित, तथा भाट चारण आदि आनंदसे जय२ पुकारते हुए और राजाके गुणगान करते हुए गढ़ेमेंसे वाहर निकल

रहे थे. कचहरियोंके खुलनेका समय हो चुका था, इसकारण साधारण कक्षाके राजकर्मचारी–कारिंदा, मेहता, कारवारी मुत्सद्दी इत्यादि अपनी २ नौकरी-पर हाजिर होनेको भीतर चले जा रहे थे. कोई २ देवस्थानोंमें देवदर्शनके लिये जाते थे. कोई २ वाग वगीचोंमेंके जलाशयोंमें स्नानादिक करनेको जातेहुए देख पडते थे. राजपुत्र तथा राजकुटुम्बी जन पालकी, म्याने, पीनस, तामजाम वगैरहमें बैठ २ कर महलमेंसे वाहर आ रहे थे. कोई घोडेसवार तथा कोई सजीहुई सांड़िनियोंपर सवार तथा कितनेही पैदल लोग दूर २ तथा निकटके ग्राम २ से राजकीय समाचार लेकर दौड़े चले आते थे. जैसे २ दिन चढ़ता गया तैसे बड़े २ अमलदार, न्यायाधीश, मन्त्री, प्रधान, सूबेदार, न्यायशास्त्रीगण अपनी २ सवारी, सुखपाल, म्याना, घोड़ा, गाड़ी रथादिकमें बैठकर आगे पीछे लगी झंडीवाले घोड़सवारोंके साथ आकर राजदरबारमें प्रवेश करते थे.

अमलदार (हुकाम) लोग अपने २ राज्यकार्यासनोंपर जाकर बैठे, राजसभा भरी, नगरमेंसे वादी प्रतिवादियोंके झुण्डके झुण्ड आने लगे और उनके दावे फिर्यादीमें जो २ जानकार साक्षी थे उनको तथा अन्यान्य अप-राधियोंको राजसत्तासे राजाके अनुचर लोग बुला २ कर ले जाते थे. यह सब कौतुक देखनेमें वह शिष्य तल्लीन हो रहा था, एक पीछे एक नई २ बात देखकर उसको आश्चर्य हो रहा था, इतनेहीमें राजमहलको आते हुए एक मार्गपर थोड़ी दूरीसे एक चिल्लाहट सुनाई पड़ी तो उसने चौंककर उधर देखा कि, चार पांच काली वर्दीवाले सिपाही एक अपराधीको पकड़ कर दरबारमें घसीटे लिये आते हैं. उस कैदीके हाथ पांवोंमें लोहेकी वेड़ियां और हथकड़ियां पहनाई हुई थीं, शरीरपरसे एक जांघियेके सिवाय और सब वस्त्र उतरवा लिये गये थे. नंगे बदनपर बेंत और डंडोंकी मार पड़ रही थी इसी कारण वह चिल्ला रहा था. पांवोंमें वेड़ियां पड़ी हुई थीं इसलिये वह शीघ्र २ नहीं चल सकता था. सिपाही उसको बंदूकके कुन्दे और चाबुकसे मारते और गालियां देते हुए शीघ्र २ चलनेको कहते थे. उसकी आखोंमेंसे आंसुओंकी धारा वह रही थी, मारपीटसे शरीर सूझ गया था, और अभी तो इतनी मारपीट कर रहे हैं, परन्तु आगे दरबारमें कौन जाने क्या होगा इस भयके कारण उसके पांव लड़खड़ाते थे; आगे नहीं उठते थे. ऐसी स्थितिमें तीन सिपाही उसके आगे और दो पीछे २

उसको दरबारमें लिये जाते थे. उसे देखकर उस ऋषिपुत्रके मनमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई. वह अपने मनमें कहने लगा कि, इस बेचारे दीनको ये सिपाहीलोग कैसी निर्दयतासे मार रहे हैं! परन्तु क्या किया जाय, इसने अपराध किया है इसीसे इसको राजसत्ताके आधीन होना पडा है और जो कुछ वे (राजदूत) करते हैं उसको चुपचाप सहन करना पडता है.

ऐसे विचार करता हुआ और वहांका सब कौतुक देखता हुआ वह ऋषि-पुत्र एक वृक्षके नीचे खडा हुआ था. थोड़ी देरमें एक घुड़सवार हठो २ करता हुआ दरबारमेंसे बाहर निकला. उसके पीछे कहारलोक एक सुंदर पालकी उठाये हुए आये. इस पालकीके आगे पीछे दो २ सिपाही चलते थे और कोई बड़ा सत्ताधिकारी उसमें बैठा हुआ था. वह दरबारी कामके लिये राजाज्ञासे कहीं जाता था, इससे उसका दफ्तरकामकाजके आवश्यक कागजपत्र, आगे २ चलनेवाले दोनों सिपाही लिये हुए थे; और पीछेवाले सिपाहियोंमेंसे एकके हाथमें उसके जूते और दूसरेके हाथमें छतरी आदिक थीं. यह पालकी थोड़ी दूर आगे गई, वहांसे उसको दाहिनी ओरको जाना था, परंतु उतावलमें सिपाही भूलकर सीधे मार्गसेही जल्दी २ जाने लगे. यह देख पालकीमें बैठेहुए अमलदार हाकिमने क्रोधसे आंखें चढ़ाकर उनसे कहा—" अरे अन्धो! तुमको दश २ बेंतकी सजा होनी चाहिये. क्या तुम्हारा मगज फिर गया है? जो सीधे आगे चले जाते हो? हराम-जादो! पीछे फिरो और उधर चलो." पांचों सिपाही थरथर कांपने लगे और वह मानवंत और क्या २ कहेगा ऐसे भयके मारे उस अमलदारके मुखकी ओर देखते २ दूसरी ओर मुड़े इस समय वह ऋषिपुत्र खड़ा २ यह सब कुछ देखही रहा था. उसने उन पांचों सिपाहियोंको तुरत पहचान लिया और आश्चर्य करके मनही मन कहने लगा कि 'अरे ये सिपाही तो जो अभी उस क़ैदीको दरबारमें लिये जाते थे वेही हैं. ठीक हुआ! उस बेचारे गरीब आदमीको कैसी निर्दयतासे मार रहे थे और अब कैसे कांप रहे हैं! इनकी यही दशा होनी चाहिये. परन्तु यह कैसा? मैंने तो जब २ देखा तब २ सिपाहियोंको और २ लोगोंपर हल्ला करते और त्रास देते देखा है और सुना है कि, जिसका मंदभाग्य हो उसको सिपाही बुलाने आवें. और यहां तो उन्हीं सिपाहियोंको पालकीमें बैठेहुए अमलदारकी

आज्ञामें रहना पड़ता है. यह कैसा तमाशा है ?' ऐसा विचार करता था, इतनेमें मध्यान्हका समय हो जानेसे जब राजद्वारपर मध्यान्हका चौघड़िया बजा, तब मध्यान्हसंध्याका समय हुआ जानकर वह ऋषिपुत्र अपने आश्रमकी ओर विदा हुआ. मार्गमें वह विचार करता जाता था कि जो कुछ मैंने देखा इसका क्या अभिप्राय है सो मेरी समझमें नहीं आता, जब गुरुजीसे पूछूंगा तबही इसका भेद खुलेगा.

तदनन्तर आश्रममें आकर उसने गुरुदेवको साष्टांग नमस्कार किया और राजद्वारपरका सब वृत्तान्त कह सुनाया. गुरुजीने कहा—"तेरे देखेहुए जिन सिपाहियोंकी भीतर जाते समय औरही स्थिति थी और बाहर आते समय कुछ और स्थिति थी इसपरसेही तुझको सारा भेद उन्हींसे समझना है. इन पांचों अनुचरोंको तू पांचों विषयोंके समान समझ और विचार करके देख कि, जो उनके आधीन होगया था उसकी कैसी दुर्दशा हो रही थी और जिसने उनको अपने आधीन कर लिया था उसकी कैसी सत्ता थी? जब पहले पहल तूने उन सिपाहियोंको देखा तब वे एक कैदीको पकडे लिये जाते थे और वह उनके आधीन था इस कारण जिसप्रकार वे चलाते थे वैसेही उसको चलना पड़ता था तथा उनकी मार सहन करनी पड़ती थी. इसी भांति विषयरूपी सिपाहियोंके आधीन हुए पुरुषकी गति होती है. विषयाधीन जीवको, जिधर मन खैंच ले जाता है उधरही झुकना होता है—दौड़ना पड़ता है; जिससे पहले तो देहको किंचित् सुख जान पड़ता है, परन्तु अन्तमें उसको बड़ी मार पीट सहन करनी पड़ती है तथा आत्माको भी बड़ी दुर्गति भोगनी पड़ती है. फिर जब वे सिपाही पीछे बाहर आ रहे थे तब उनकी कैसी दयाजनक स्थिति थी, सोभी तूने देखी उस समय वेही सिपाही पराधीन अर्थात् उस अमलदारकी आज्ञाके आधीन थे. इस कारण वे अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रतासे नहीं चल सकते थे. अमलदारकी आज्ञाके विरुद्ध चलनेसे उनको मार खानेका अथवा नौकरी छूट जानेका भय बना हुआ था; उसी भयके कारण वे अमलदारके ऐसे आधीन होरहे थे कि, उसका सब सामान—जूतेतकभी उठाये हुए दौडे चले जाते थे. इतनेपरभी वह सत्ताधिकारी वारंवार उनको धमकाता था. ऐसीही स्थिति विषयोंको अपने आधीन कर लेनेवालेकी समझना. वह अपनी इच्छानुसारही उन (विषयों) का सेवन करता है, जिससे उनका बल उस-

पर नहीं चलता; तथा जिस उत्तम मार्गमें वह उनको लगा देता है, उधरही प्रवृत्त होकर वे उसको अच्छे फल दिलाते हैं तथा आत्माका कल्याण कराते हैं. जिस प्रकार कैदी और अमलदार दोनोंहीके साथ सिपाही होते हैं, परन्तु उनके अधिकारमें अन्तर होनेसे उनकी स्थितिमेंभी फेरफार रहता है. ऐसेही विषयोंको सेवन करनेवाले सम्बन्धमेंभी जान लेना." इससे उस शिष्यके मनका समाधान होगया और उसने अपने गुरुका; ऐसा प्रत्यक्ष दृष्टान्त देनेकी युक्ति देखकर उनको विशेष नम्रतासे प्रणाम किया तथा सन्ध्यावन्दनके लिये जानेकी आज्ञा ली.

षड् रिपु.

अब शत्रुओंको मित्र बना लेना यह मनुष्यका कर्त्तव्य कहा गया है, सो केवल ज्ञातापुरुषही ऐसा कर सकता है. संसारमें जैसे अपने विरुद्ध चलने-वाले और वैरभाव रखनेवाले शत्रु होते हैं, तैसेही परमार्थमेंभी छः शत्रु हैं. ये मनुष्यके वैरी होकर नहीं उत्पन्न हुए हैं, किन्तु अभी मैंने तुझको कहा, तदनुसार येभी पांचों विषयोंके समान अच्छे, बुरे दोनों मार्गोंसे चल सकते हैं. अज्ञानी मनुष्य उनकी मित्रता करने जाते हैं अर्थात् सब मनुष्य काम क्रोध लोभ मोहादिकका सेवन करते हैं. वे कुछ उनको शत्रु समझकर उनका सेवन नहीं करते; परन्तु उनको उनकी मित्रताके अनुसार वर्त्तना नहीं आता; जिससे वे स्वतः (अपने आपही) वे शत्रु बन जाते हैं. वे सब मिलकर छः हैं;—१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद और ६ मत्सर. अपनेको प्रिय लगनेवाली वस्तु (स्त्रीपुत्रादि) को प्राप्त करनेकी इच्छाको काम कहते हैं. अपने मनके विपरीत करने अथवा अपनेको न सुहाता हुआ कार्य होता देखनेसे जो मनकी उछलकूद होती है—मन तप्त हो जाता है, इनका नाम क्रोध है. अमुक वस्तु (धनादि) अपने पास नहीं, अथवा जो है तो थोड़ी है, वह अधिक हो जाय तथा उसमेंसे घटनेका प्रसंग न आवे ऐसी तृष्णाको लोभ कहते हैं. मोह अर्थात् किसी वस्तु (स्त्री पुत्र धन आदि) पर आसक्त होकर उसपर अत्यन्त प्रीति बढ़ाना और दूसरी २ वस्तुओंको भूल जाना, इसका नाम मोह है. मद अर्थात् अभिमान–अहंकार "मैं बड़ा बली अथवा वीर कहलाता हूं, मेरे गुणोंकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, मैं ऐसे बड़े उच्च कुल (खानदान) का हूं, अथवा मेरी ऐसी प्रबल सत्ता है, मेरी बराबर धन

किसके पास है ? मेरे बल, विद्या, मान, प्रतिष्ठा और धनके आगे कौन मेरी अवज्ञा कर सकता है ? वाह ! क्या मैं अमुक मनुष्यसे भाषण करूं ? मैं उसको कदापि नहीं बुलाऊंगा. क्या मैं उसके घर जाऊं ? कभी नहीं. उसकी मेरी क्या समानता है ? इत्यादिक विचारोंका मनमें आना वा रखना इसका नाम मद अथवा गर्व है. दूसरेका भला होता देखकर अपने मनमें बुरा लगाना इसको मत्सर कहते हैं. ये छहों मनुष्यके गुण हैं, तथापि जो इनका यथार्थ उपयोग न किया जाय तो ये दुर्गुण (अवगुण) रूप हो जाते हैं. जैसे अग्नि बड़ा देवता है, पंच महातत्त्वोंमेंका एक तत्त्व है, तथा उसके गुण अपार हैं, परन्तु जो उसका उपयोग करना ज्ञात न हो तो वह केवल दाहक (भस्म कर देनेवाला) पदार्थ हो जाता है. और जो समझ बूझकर उपयोग किया जाय तो उसी अग्निसे बड़े २ यज्ञ सिद्ध होते हैं, सुंदर स्वादिष्ठ पकान्न बनाये जा सकते हैं, तथा औरभी अनेकानेक महान् कार्य सधते हैं.

काम, जो स्त्री, पुत्र, धन आदिमें रक्खा जाता है उसको जो वहां अन्तःकरणपूर्वक न रखकर, प्रभुके ज्ञानमय स्वरूपमें रक्खा जाय, और भगवान्केही साक्षात्कारकी इच्छा रक्खी जाय तो काम सफल होकर मित्र बन जायगा तथा हित करेगा. दूसरेपर क्रोध करनेका क्या प्रयोजन ? अपनीही मनोवृत्तियोंको नीच कार्योंमें (परस्त्रीसंग, परधनेच्छा, इत्यादिमें) प्रवृत्त होनेसे रोकनेमें क्रोध करना चाहिये, इससे अपने आप मनोनिग्रह होगा और क्रोध सफलीभूत होकर मित्रताका वर्त्ताव करेगा. धनोपार्जनमें जैसा अत्यन्त लोभ किया जाता है उतना न करके अपना संसार-व्यवहार भलीभांति चल सके उतना द्रव्य प्राप्त होनेतक लोभ रखना और फिर परमात्माके नाम स्मरण, रूपचिन्तनादिकमें अतिशय उत्कट लोभ बढाना और अतृप्त रहना—चाहे जितना अधिक भजन स्मरण होता हो परन्तु उसमेंभी संतोष नहीं मानना, और अधिकाधिक भजन कीर्त्तन हो ऐसा लोभ करते रहना, ऐसे करनेसे वह लोभ अद्वितीय मित्रभाव सिद्ध करता है. हरिनामस्मरणकी अगाध महिमा है. नामस्मरणसे नामी (नामवाला परमात्मा) सगुण रूपसे प्रत्यक्ष दर्शन देता है और जब प्रभुके दर्शन हो गये तब और शेष क्या रहा ? सब कुछ मिल गया. ऐसा मित्र बन जानेपर लोभ बुरा नहीं, किन्तु बहुत श्रेष्ठ परम मित्र है. स्त्रीके

मुखमें मोह रखकर संसारके अन्यकार्योंको तथा भगवत्प्राप्ति संबंधी यत्नोंको भूल जानेकी अपेक्षा अन्यान्य स्थलोंमें यथोचित मोह रखकर–यथावश्यक प्रेम रखकर, निःशेष सच्चा मोह श्रीहरिके मुखारविन्दमेंही रखना और उसी त्रिभुवनमोहन मूर्तिपर मोहित (आसक्त) होना सर्वश्रेष्ठ तथा ज्ञानी जीवका कर्म है. ऐसा करनेसे इस जगत्‌के सारे दुःख सुख अपने आपही भुला दिये जाते हैं, यह बात तो निश्चित हो चुकी है कि, जिसपर अत्यासक्ति होगी उसीकी प्राप्ति होगी; अर्थात् जो वस्तु निरन्तर चित्तमें बस जाती है–जिसका स्मरण क्षणमात्रभी नहीं भूलता, जो वस्तु कभी किसी प्रकारभी चित्तसे नहीं हटती, कभी न कभी उसकी प्राप्ति–उसके दर्शन अवश्य होते हैं. तुलसीदासजीने कहा है–" जाकर जापर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु संदेहू, " जो परमात्माके सगुण स्वरूपका अहर्निशि चिन्तन हुआ करे और उसीपर प्रीति दृढ़तर होजाय तो परम दयालु प्रभु अपने आर्त्त भक्तको अवश्य दर्शन देते हैं. कहा है–" जैसी प्रीति हराम (स्त्रीसंग) में, तैसी हरिमें होय. चला जाय वैकुंठमें, पला न पकड़ै कोय. " मद जो अन्य प्राणियोंपर किया जाता है कि अरे ! उसने मुझको ऐसा क्यों कहा ? अरे मैं ऐसी उत्तम वस्तुका भोक्ता होकर ऐसी अकिंचन वस्तुका स्पर्श कैसे करूं ? उसने मुझसे नमन नहीं किया. क्या मैं किसीको मस्तक नमाऊं ? ऐसा मद अतिशय हानिकारक है. इस भांति मदके आधीन हो जानेवालेका कब नाश होजायगा सो नहीं कहा जा सकता, अर्थात् पद २ पर उसका नाश होना संभव है. अपने आपको सबसे बढकर योग्य समझनेवाला सबकी निन्दाका पात्र बनता है. वह अच्छे बुरेकी परीक्षा नहीं कर सकता. वह सबकी अवज्ञा और अवकृपाका पात्र होकर सबको अप्रिय और अमान्य हो जाता है; इसलिये मदका ऐसा उपयोग न करके, अपनेही शरीरपर उसका उपयोग करना. अरे ! मैं मनुष्यप्राणी हूं, और उसमेंभी पुरुष (नरदेहवाला) हूं, मेरी योग्यता क्या है ? क्या पशुपक्षियोंकी योनियोंमें उपजनेवाले प्राणियोंसेभी मेरी योग्यता कम है ? अहो ! उन पशुपक्ष्यादि योनियोंमें उत्पन्न हुए प्राणियोंसे कोईभी तारणोपाय नहीं बन सकता, इसीलिये प्राणीपर दया करके उसको नरदेह दी जाती है. क्या मैं पशु वा पक्षी अथवा और कोई इनसेभी नीच प्राणी हूं ? जो मुझसे तारणोपाय नहीं बन सकता ? नहीं २. मैं उनसे

श्रेष्ठ हूं, मैं सब कुछ कर सकता हूं, मैं मनुष्य हूं इसलिये मुझको अपने मनुष्यत्वकी योग्यताको समझकर अवस्थाके योग्य कृत्य करने चाहिये. क्या बड़ी बात है ? इस देहमें आकरभी क्या मैं ईश्वरको प्राप्त नहीं कर सकता ? इस देहके द्वारा श्रीहरिका भजन स्मरण-कीर्त्तनादि साधनोंसे जो मैं उनके दर्शन न करसकूं तो फिर मैं मनुष्य कैसा ? मैंने मनुष्यजन्म पाया इसका फलही क्या ? जो मैं इस देहद्वारा उत्तम साधन नहीं कर सकूं तो धिकार है मेरे जन्मको. मैंने व्यर्थही अपनी माताको दश मासतक बोझा उठानेका कष्ट दिया ! जब मैं ऐसा अभिज्ञ हुआ तबही कोई मुझको मेरे परमार्थकार्यमें रोकनेमें समर्थ हो सकता है क्या ? मेरी मनोवृत्तियों और इन्द्रियोंका क्या सामर्थ्य है जो मुझको उपाधिमें लीन करके परमार्थ कार्यसे जुदा रख सकें ? हे सावधान मन ! मुझको सचेत रहने दे. अरे माया-रूपी पिशाचो ! हटजाओ यहांसे. मेरे पास मत फटको. मुझे मेरा काम करने दो. मैं मनुष्य हूं. मैंने सद्गुरुका शरण ग्रहण किया है और अन्तर्यामी परमात्मा मेरा सहायक है. मेरा देह अन्यान्य समस्त प्राणि-योंसे श्रेष्ठतर है इतना मैं जानता हूं. मैं जैसे बनेगा तैसे प्रभुकी प्राप्तिका यत्न करूंगा इसभांति मदका उपयोग करना कि, जिससे वह सुदृढ सचे अभिमानसे परम स्वरूपके शुभस्थानमें जा बसे.

मत्सरको कैसे वश करना सोभी सुन. अमुक पुरुषके पास कुछभी नहीं था और अब तो वह बड़ा पैसेवाला हो गया है, अमुक २ मुझसे बढ़कर सुखी अथवा प्रतिष्ठावाला अथवा वसीलेवाला क्यों है ? यह मुझको नहीं सुहाता. वह पीछा कब दुःखी तथा मानहीन होजावे ? इत्यादि विचारद्वारा मत्सरका उपयोग नहीं करना; किन्तु पूर्वकालमें जो महान् पुरुष होगये हैं कि जिन्होंने भक्तिसे परमात्माको वश किया है और ज्ञानसे उसके परम स्वरूपको जाना है तो मैं क्या उनसे कम हूं जो मुझसे ऐसा नहीं हो सकता ? मुझकोभी ऐसाही यत्न करना चाहिये. मुझमें किस वस्तुकी कमी है और कौनसे कारणसे अयोग्य हूं कि, जिससे परमात्मा मुझपर प्रसन्न नहीं हो ? इसभांति मत्सरको अपना मित्र बनाना चाहिये. ऐसे, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर छहों गुण जिनको, विवश होकर शत्रु कहना पड़ता है, उनका योग्य रीतिसे उपयोग किया जाय तो वे मित्रकी-परम सन्मित्रकी गरज साधते हैं, और मनुष्यके

लिये कल्याणकारक होजाते हैं. अस्तु, परलोकसुखेच्छु जनोंको उचित है कि वे इन शत्रुओंको अवश्यमेव अपने मित्र बना लेवें.

उपाधिवर्णन.

मुमुक्षु मनुष्यको उपाधिकी वृद्धि नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह निवृत्तिकार्यमें अन्तर डालनेवाली अर्थात् बाधक होती है. प्रपंचमें—व्यवहारकार्यमें उपयोगी होनेवाली समस्त वस्तुयें (घर तथा गृहसूत्रका सारा साहित्य) उपाधिही हैं. राजाको राज्यही उपाधि है. व्यापारीको व्यापार तथा उसमें प्रयोजनीय मान महत्तादिक सब उपाधि हैं; जैसे गृहस्थको गृहसूत्रका कारबार तथा अपनी कीर्ति, प्रतिष्ठा इत्यादिक उपाधि है, कृषकको कृषिकर्म उपाधि है; और सत्ताधिकारीको सत्ता, पदवीवालेको पदवी और नौकरको नौकरी उपाधि है; ऐसेही ज्ञानीको ज्ञानका गर्व उपाधिरूप है. ये उपाधियां बढ़ानेसे बढ़ती हैं और घटानेसे घटती हैं. जबतक अहंता ममता होती है तबतक उपाधियां अपने आप बढ़ती रहती हैं जैसे २ उपाधियां बढ़ती जाती हैं वैसे २ मनुष्य चारों ओरकी उपाधियोंके जालमें फँसता जाता है और उसको उसके सिवाय और कुछ नहीं सूझ पड़ता. नाना प्रकारके अपाय और संकट शिरपर आ पड़ते हैं और वह दारुण दुःखका भोगी हो जाता है. इसलिये सुज्ञ पुरुषको प्रपंचमें बहुत सावधान रहकर, उपाधिकी वृद्धि न होने पावे इस बातपर पूर्ण लक्ष्य रखना चाहिये. प्रत्येक उपाधिका मूल तो छोटासाही होता है; परन्तु जो वह बढ़ता है तो थोड़े ही समयमें उसका कल्पनातीत बड़ा विस्तार फैल जाता है. यह उपाधि एकके पीछे दूसरी किसप्रकार नये २ रूपमें बढ़ती जाती हैं और ज्ञानवानकोभी वह कैसी कष्टकारक हो जाती है और उससे इस उपाधिका अभिमानी पुरुष कैसी विडंबनामें आ गिरता है, इस विषयमें तू एक विरक्तकी संक्षिप्त कथा श्रवण कर:—

सरस्वती नदीके तटपरके किसी पवित्र क्षेत्रमें एक ब्राह्मण रहता था, वह निरंतर संतसमागम करता था और प्रतिदिन सरस्वतीके तटपरके एक सुन्दर एकान्त आश्रममें एक महात्माके पास स्वरूपानुसंधानके लिये कथा श्रवण करनेको जाया करता था. एक दिन कथामें ऐसा प्रसंग आया कि—"मनुष्य अहंता ममता छोड़ देनेसे सब बातोंसे सुखी होजाता है. इससे मनुष्यको जो मैं और मेरापन नहीं हो तो जो अपने कुटुंबमें तथा अपने आपपर

कोई विपत्ति आ गिरे तो उसपर उस दुःखसंकटका कुछ प्रभाव नहीं होता. जैसे जो किसी वस्तुपर 'वह मेरी है' ऐसा ममत्व न हो तो उसको चाहे जो लेजाय अथवा जो वह बिगड़जाय वा नष्ट होजाय तोभी उसके लिये कुछ दुःख नहीं होता. तैसेही जो सगे सम्बन्धियों, तथा स्त्री पुत्रादि कुटुंबियोंमें और अपने देहमेंभी मेरेपनका अभिमान न हो तो उनकी चाहे जो दशा हो अथवा उनपर चाहे जैसा कठिन संकट आ पड़े तिसपरभी ज्ञानीकी उनपर अन्तःकरणपूर्वक प्रीति न होनेके कारण उसको लेशमात्रभी दुःख नहीं होता. इसीलिये मनुष्य उपाधिको न बढ़ावे, और बढ़ीहुई उपाधिपर आसक्ति-प्रीति न रक्खे; संतका यह वचन सुनकर उस ब्राह्मणने पूछा कि—" महाराज! आपने जो कहा तदनुसार जो किसी मनुष्यकी प्रीति घरबार आदिक उपाधिपरसे उठ गई हो तथापि वह उपाधिही बारंबार उसको खैंच २ कर उसमें ला डालती हो अर्थात् उस उपाधिका सूत्री (चलानेवाला) स्वयं होनेसे वह उसमेंसे बाहर नहीं निकल सकता हो तो उसको क्या उपाय करना चाहिये ? " महात्माने कहा—" शास्त्रमें इस विषयमें स्पष्टतया कह दिया है कि, मनुष्यकी अवस्थाके चार आश्रम हैं; उनमेंसे गृहस्थाश्रम नामके दूसरे आश्रममेंही उसको गृहसूत्र चलाना है. स्त्रीको एकाध पुत्र, अपने पीछेसे उसका रक्षण करनेवाला हो जावे तबही उसको वानप्रस्थ होजाना चाहिये. वह अवस्था पूरी होजानेके पश्चात् स्त्रीकी आज्ञासे संन्यास धारण करना; अर्थात् स्त्री, पुत्र, धन, संपत्ति आदि गृहसूत्रकी सांसारिक उपाधिका सत्ता २ त्याग कर देना. इसपरसे तू अपनी अवस्थाका अपने आप विचार करके उपाधिका त्याग कर. यह सारा संसार उपाधिसे घिरा हुआ है. जीव ईश्वरका भेदभी उपाधिके कारणसेही भासता है. राजा और रंकभी उपाधिके कारणसेही पहचाने जाते हैं. वस्तुतः उपाधि त्यागनेपर वे दोनों एकही पंक्तिमें हैं. परब्रह्म परमात्मा अखंड अविनाशी तो एकही है; परन्तु उपाधिके द्वारा वह जीव, ईश्वर, पशु, पक्षी, देव, मनुष्य इत्यादि अनेक भेदवाला दिखाई देता है. अतएव उपाधिका त्याग करनाही परमात्माके साथ एकता है; परन्तु वह (उपाधि) अहंभाव छूटे विना नहीं छूट सकती. "

गुरुदेवके ऐसे वचन सुनकर उस ब्राह्मणने उसी दिनसे अपने मनमें निश्चय कर लिया कि—" मुझको अवश्यमेव इस गृहसूत्रादि उपाधिका त्याग

करना है. मेरे एक पुत्र है और वह योग्यवयकाभी है. इस कारण वह मेरा सब कामकाज कर लेगा और मैं सुखपूर्वक स्वतंत्र हो जाऊंगा." एक दिन एकान्तमें उसने अपनी स्त्रीको अपने मनकी बात कही कि "अब मैं विरक्त होऊंगा; क्योंकि इसीमें अपना सबका कल्याण है. यह अपना पुत्र है सोभी संसार चलानेके योग्य होगया है. वह तुम्हारा सबका पोषण करेगा. इसलिये, अब तुम सब मुझको संन्यास ग्रहण करनेकी आज्ञा देओ." स्त्रीने कितनेही समयतक तो आनाकानी की; परन्तु यह स्वाभाविक रीति है कि, जो स्त्रीको एकाध पुत्र होगया और वहभी योग्य वयका होकर उसका विवाहादिक होजावे तथा संसार व्यवहार चलानेकी उसमें योग्यता आजावे तो उस (स्त्री) की प्रीति अपने पतिपर पहलेके समान नहीं रहती; क्योंकि वह पुत्रको देखकर बहुत संतोष मानती है; इससे अन्तमें उस स्त्रीने अपने पतिको संन्यस्त होनेकी संमती देदी, उस ब्राह्मणको तो यही चाहिये था. उसने तत्काल एक महात्मा स्वामी (संन्यासी) को गुरु करके शिखा (चुटिया) और सूत्र (यज्ञोपवीत) आदि सर्व उपाधिका परित्याग कर दिया और काषाय वस्त्र धारण कर लिये. एक हाथमें दंड और दूसरेमें कमंडलु केवल इतनीही उपाधि उसको रह गई. उसने जाना कि, अब मैं इस संसारकी सब उपाधिसे मुक्त होगया; परन्तु वह ऐसा नहीं जानता था कि, उपाधि मात्र बाहरसेही नहीं किन्तु अन्तःकरणसे सचमुच छूट जानी चाहिये; और जो ऐसी छूटगई तो फिर नामके संन्यासी (भगवा कपड़े, दंड, कौपीन, कमंडलु इत्यादिक वेषधारी) होनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं.

तदनन्तर वह संन्यासीबाबा उस गांवके एक मठमें रहने लगा, और मध्यान्ह समय एक बारकी भिक्षासे संतोष मानने लगा; परन्तु इतनेहीसे उसकी उपाधि नहीं छूट गई. उसकी स्त्रीपुत्रादिक उसी ग्राममें रहते थे. जब वह भिक्षा करनेको जाता तब कभी २ उसको अपने घरके आगेसेभी जाना आना पड़ता था. ऐसा देखकर उसके पुत्रके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, कि, जो मेरे पिताने संन्यास लिया तो क्या होगया? जब मैं बैठा हूं तब उनको घर २ भटक कर क्यों भिक्षा करने देऊं? अपनेही घरपर उनको नित्य प्रति भिक्षा दिया करूंगा. ऐसा सोच कर वह प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर सबसे पहले मठमें जाकर संन्यासीबाबा (उसके पिता) को न्योता

दे आवे कि, मेरे यहां भिक्षार्थ पधारना. इससे स्वामीकी तो खटपट और घर २ भटकना सब मिट गया; क्योंकि समय होनेपर तत्काल तैयार पत्तलपर बैठनेका बानक बनगया; परन्तु उस अज्ञ पुरुषने इस बातका तनिक विचार नहीं किया कि ऐसी भिक्षा करनेसे मेरे संन्यासमें धूल पड़ेगी. इसप्रकार महीने भरमें केवल थोड़े दिन तो और जगह, बाकी सब दिन अपने पुत्रके यहां वह भिक्षाके लिये जाने लगा. तब नित्यके समागमसे सब छोकरे छोकरी 'दादा, बाबा,' कह २ कर बुलाने लगे और संन्यासी बाबाभी उनको 'आवो बेटा, आ बेटी, कैसी है ? अच्छी है ' ? ऐसे कहकहकर संभाषण करने लगे. स्त्रीजाति बहुत चंचल होती हैं. स्वामीकी पूर्वाश्रमकी स्त्रीभी कुछ अधिक उमरकी नहीं थी. स्वामीके नित्यके दर्शनसे उसका मनभी चंचल होने लगा. स्वामी महाराज तो संसारकी खटपट छोडकर उससे निश्चिन्त बन बैठे थे और उदरपोषणकी भी चिन्ता न रही थी, परन्तु सद्धर्मीजन इस विचारसे कि 'अपने घर संन्यासी जीमने आवे ऐसे भाग्य कहां ?' सो उनको नाना प्रकारके मिष्टान्न बना २ कर जिमाते थे, जिससे उनका शरीरभी पहलेकी अपेक्षा बहुत हृष्टपुष्ट होगया था. हे यज्ञभू ! तू यह निश्चय समझ कि, जब शरीरमें पौष्टिक पदार्थोंके परमाणुओंका विशेष भाग इकट्ठा हो जाता है तब सब इन्द्रियां प्रबल चंचल, तीव्र वासनासे प्रेरित की हुई बन जाती हैं, जिससे उनको अपेक्षित विषयका सेवन किये विना चैन नहीं पड़ता. इन स्वामी महाराजकी भी यही दशा थी. अच्छे २ मिष्टान्नसे लाल बंब (बिंब) बनेहुए स्वामीजीका मनभी, स्थिर नहीं रह सका; और विषयोंसे चंचल होगया. संयोगभी घृत और अग्निवत् बन गया था. जो कि वे स्वामीके वेषमें थे तोभी आगेसे विशेष बलवान् और हृष्ट-पुष्ट बने हुए अपने स्वामी (पति) को देखकर स्त्री तो विह्वल होगई और एकान्तमें पतिके मिलनेका मार्ग और अवसर देखने लगी. एक दिन उसने ढोंग फैलाया. उसके लड़केकी बहू तो कई दिनोंसे अपने पीहर (पिताके घर) चली गई थी और लड़का अकेला था सो किसी कामका बहाना करके उसकोभी उसने किसी गांवको भेज दिया. अब घरमें उसके सिवाय और कोई नहीं रहा. नित्यका न्योता दिया हुआ थाही, इसलिये स्वामीजी तो भिक्षा करनेके अर्थ आनेहीवाले थे. आज उसनेभी उनके लिये नानाप्रकारके सुंदर स्वादिष्ट पकान्न तथा तरह २ के रसीले चटपटे शाक, चटनी, पेय इत्यादि बड़े प्रेमसे बनाकर

तयार किये. मध्याह्न होतेही स्वामीजी पधारे. स्त्रीने उनके चरण प्रक्षालन करके [इसी मिषसे उनका स्पर्श करके] चरणोदक लिया. अनन्तर सुन्दर आसनपर बिठाकर भोजन परोसा और आप पंखा लेकर हवा करने लगी. जब स्वामीजी जिम रहे थे उस समय वह स्त्री अपने जाति-स्वभावके अनुसार विविध प्रकारकी शारीरिक चेष्टा (हावभावादि) करने लगी. स्त्रीके साथ एकान्त हो तो मन चंचलहुए विना नहीं रह सकता. इसलिये उसका लाभ लेकर स्वामीजी जीमकर उठें तबतक उसने उनका सब होश भुला दिया. चाहे जैसे ज्ञानी पुरुषकोभी, उन (इंद्रियों) का पोषण करनेमें आया हो तो, इंद्रियां विषयपाशमें फँसा देती हैं, तो फिर उपाधिसे वेष्टित यह स्वामीजी कौन ? स्वामी भोजनोत्तर शुद्धाचमनादि करके जब मठमें जानेकी तैयारी करने लगे, तब तुरन्त स्त्रीने उनके दंड कमंडलु छीन लिये और हाथ पकड़कर घरके भीतर ले जाकर एक सुन्दर आसनपर बैठनेकी विनती की. यह नई बात देखकर स्वामीने कहा—" तू मुझ संन्यासीको कैसे स्पर्श करती है ? अरे ! तूने मेरे व्रतका भंग करडाला ! शिव ! शिव ! तू यह क्या अधर्म करती है ?" यह सुनकर स्त्रीने कहा—" हे स्वामिन् ! स्त्रीके स्पर्शसे व्रतका भंग होगया तो रसोई तो मैंनेही बनाई थी, मैंनेही अपने हाथसे आपके चरण प्रक्षालन कर पादोदक लिया था, आसनपर बैठाकर आपका पूजन किया था, और अपने हाथसे परोसा था, उससे आपका व्रतभंग नहीं हुआ ? ऐसी झूठी बात रहने दो और कृपा करो. भले भाग (भाग्य) से आज घरमें कोईभी नहीं है इसीलिये मैंनेभी यही मेल मिलाया है. हे नाथ! इस बहुत दिनोंसे संतप्त और जिसके संसारसुखका आपने सत्यानाश किया है, ऐसी अबलाका अन्तिम बारका मनोरथ पूर्ण करो, नहीं तो मैं विह्वलताके कारण अपना प्राण देदूंगी." स्वामीने कहा—" यह बड़ा निंदित कर्म है. हे साध्वी ! ऐसा होनेसे मैं, तू और अपना सारा कुल घोर नरकमें जायगा इसमें संदेह नहीं. और भाग्यवशात् मेरे संयोगसे तुझको गर्भ रह जायगा तो उससे तेरी और मेरी इस जगत्में बड़ी अपकीर्ति होगी और तेरे पुत्रको यह प्रसंग ज्ञात होनेपर उसको अत्यन्त खेद होगा तब वह कीर्तिनाश होनेके कारण कदाचित् आत्मघात कर बैठेगा. अस्तु शान्ति रखनेमेंही सबका कल्याण है. और तू मुझको यहांसे झटपट चला जाने दे. क्योंकि संन्यासीको गृहस्थके घरमें क्षणभरभी ठहरना उचित नहीं."

इतना समझानेपरभी वह समझी नहीं और उसने स्वामीजीका हाथ पकड़कर आसनपर बिठाया और कहा–"हे नाथ ! हे वल्लभ ! चाहे जैसा हो मेरी विरहव्यथा शान्त न करनेसेभी आपको नरककी प्राप्ति तो होवेहीगी ! और आपको जो औरोंका भय है सो अपने मनमें बिलकुल मत रखना; क्योंकि मुझको ऋतु प्राप्त हुए कई दिन बीत गये हैं (सोलहके ऊपर हैं,) और आगामी रजोधर्म प्राप्त होनेके लिये अभी बहुत दिन बाकी पड़े हैं, इसकारण गर्भ रहनेका आप भय न करें. इसलिये चाहे कल्याण हो चाहे अकल्याण हो, मैं तो आपको यहांसे जाने नहीं दूंगी. आप न मानेंगे तो मैं अभी आपके समक्षही अपना प्राणत्याग करूंगी; जीभ चबाकर–काटकर मरजाऊंगी, इस बातसेभी आपकी सर्वत्र अपकीर्त्तिही होगी. अब आप मेरा कहा मानें और आपको लगनेवाले सब पाप–दोष भलेही मुझको लगें, परन्तु मेरी व्यथा शांत करो." इतना कहकर वह तो स्वामीके गलेका हार बनगई और स्वामीका कुछभी वश नहीं चला. जिससे उसके विचारके आधीन होना पड़ा. विना सोचे समझे उपाधि छोड़नेसेभी कैसी दुगुनी बल्कि हजार गुनी उपाधि आ घेरती है, सो हे यज्ञभू, तू देखता जा.

पापकर्मको किसीनेभी नहीं देखा और न जाना तो भी वह करनेवालेके मनमें सहजही बहुत दंश करता है; जिससे वह अपने मनही मन डरा करता है. उपाधिधारी स्वामीजी विचार करनेलगे कि "कदाचित् किसीने मेरा यह कर्म देख लिया हो ! क्या यह बात किसीने जानी होगी ! क्या किसीको यह भेद खुलगया होगा !" यद्यपि स्वामीकी प्रथमसेही स्त्रीपर दुष्ट बुद्धि नहीं थी और संकटमें आ पड़नेसेही उनको उसके आधीन होना पड़ा था, तथापि उस भगवामें धूलही थी. "मैंने अपने कुटुम्बियोंपर किंचित् प्रीति रक्खी थी उसका यह परिणाम हुआ. इस दोषका मूल मैंही हूं जो कि इस कृत्यको किसीने कभी देखा न होगा तोभी मुझको घरमें आये बहुत समय होगया इसपरसे लोग अवश्य शंका करेंगे. अस्तु, अवभी कोई न देख सके तो बड़ा अच्छा हो." ऐसेही तर्क–वितर्क करता हुआ खिन्न मनसे अधोमुख करके लोगोंकी दृष्टि बचाता हुआ और शिव २ करता हुआ स्वामी शीघ्र गतिसे मठमें जा घुसा. चाहे जैसा विषयी पुरुष हो तबभी उसको स्त्रीसंगके पश्चात् पश्चात्ताप होता है और वैराग्य आता है कि "अरे ! जो मैं यह काम नहीं करता तो अच्छा था." तैसेही यह स्वामीभी एकान्त

समय ऐसाही पश्चात्ताप करने लगा. उस समय उसकी मनोवृत्तियोंने उसको खेदके बड़े गहरे गढ़ेमें ढकेल दिया. वह विचार करने लगा— "अरेरे! मैंने यह क्या कर डाला? क्या मैं अपने व्रतपर पानी फेर दिया. जिसके त्राससे, जिसके संगसे छूटकर मैं केवल शान्त और निवृत्त होनेकी आशासे संन्यासी हुआ था, उसीकी मायापाशमें फिर फँसगया. धिक्कार है! मुझे शतशः धिक्कार हैं! मैंने कितना बड़ा अधर्म किया है? अपने सद्विचारों तथा विरक्त वृत्तिको मैंने कैसी भारी कालिख लगादी है! शास्त्रोंमेंभी मेरे जैसे कृत्य करनेवालेको बड़ा कड़ा दंड लिखा है. विरक्त होजानेके पीछे भी जो संसारकी ओर दृष्टिपात करते हैं (उसको भोगनेकी इच्छामात्र जिनको होती है) परमात्मा उनका रौरवनरकमेंसे कभी उद्धार नहीं करता. हाय! हाय!! अब मैं कौनसा प्रायश्चित्त करूं! मैं क्या उपाय करूं? जिससे इस पापसे मेरा छुटकारा हो! इसका और दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है. जिसकी प्राप्ति होनेके लिये विरक्तता धारण की है वही ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) इससे मुक्त होनेका एक मात्र उपाय है, क्योंकि ज्ञानाग्निमें सब अच्छे और बुरे कर्म जलकर भस्म हो जाते हैं. अब मुझको उसीकी प्राप्तिकाही यत्न करना चाहिये." ऐसा तर्क–वितर्क करता २ वह फिर अपने मनमें कहने लगा–" यह सब सच. किन्तु क्या यहां रहकर मुझसे वह साधन हो सकेगा? कभी नहीं. यहां रहनेसेही मेरे व्रतको कलंक लगा. और अबभी यहां रहूंगा तो फिर भवकूपमें गिरूंगा. अस्तु, अब क्षणभरभी यहां रहना उचित नहीं." यह विचार करके वह तत्काल वहांसे उठ खड़ा हुआ और वनमें चला गया. सरस्वतीके किनारे २ ठीक सन्ध्या होनेतक चलता रहा. इतनेमें एक रमणीय स्थान दिखाई दिया. चहुंओर सुन्दर वृक्षावली शोभा दे रही थी. सरस्वतीका उत्तर किनारा निकटमेंही था. ग्रामादिक उपाधि आसपास कहींपर दिखाई नहीं देती थी. ऐसा सुभीता देखकर उसने वहीं अपना आश्रम बना लेनेका संकल्प किया. रातकी रात तो किसी वृक्षके नीचे पड़ा रहा. जब प्रभात हुआ तो उठकर शौचस्नानादि करके उस एकांतस्थलमें पर्णकुटी बनानेका यत्न करने लगा. वृक्षोंकी डालियां पत्ते और पान्य* इत्यादि साहित्य इकट्ठा करके एक टेकरीकी तलहटीमें उसने अपनी पर्णशाला तयार की. नित्यका भिक्षाका

---

* नदीके किनारेपर उगनेवाला चिकना, लंबा और मोटा घास.

समय हुआ तब क्षुधा व्याप्त हुई; परन्तु आज उसको हलुआ; पूरी अथवा मालपुआ, जलेबी इत्यादिक मिलनेका कोई योग नहीं था. आज तो उसको गृहस्थाश्रमियोंके बदले वनवासी वृक्षोंके पास भिक्षा मांगनी थी. अबही स्वामीजीकी बुद्धि ठिकाने आनेवाली थी. उसने कपड़ेकी एक झोली बनाकर हाथमें लटकाली और सामने दिखाई देनेवाले वृक्षसमूहकी ओर वनफल लेनेको गया. पेट भरे जितने फल मिलगये; तब लेकर पीछा पर्णकुटीपर आया और निश्चिन्त बैठकर उनका आहार किया. सरस्वतीका निर्मल शीतल जल पीकर शान्त हुआ तब उसके आत्माको स्थिरता आई. तदनन्तर वह अपने आप कहने लगा कि 'बस, ऐसेहि चाहिये. यहां किसी बातकी न चिन्ता है, न किसीका संसर्गही है. किसीके यहां भिक्षा करनेको जानाही नहीं और न्योतेका मार्ग देख बैठनाभी नहीं. यही संसारत्याग. अब निःसंदेह मेरी उपाधिका सचमुच परित्याग हुआ है.'

हे यज्ञभू! उस समय वह विरक्त ऐसा विचार कर रहा था, परन्तु इसमें उसकी बड़ी भारी भूल थी. उसको इस बातकी बिलकुल खबर नहीं थी, कि सचमुच उपाधि कैसी छूटती है और विरक्त किसको कहते हैं! यहांभी उपाधि तो उसके पीछेही लगी हुई थी और वह वृद्धिंगत होती जाती थी. फिरभी उसके भगवेमें उपाधिने धूल डाली. मेरे इस वचनपरसे तुझको शंका होगी कि, उसने घर छोड़ा, स्त्री, पुत्र तथा पात्रभी छोड़ दिये, ब्राह्मणत्व त्याग दिया और अन्तमें गांवभी छोड़ दिया, तथा अच्छा २ तो कहां रहा? परन्तु साधारण अन्नका आहारभी उसने परित्याग कर दिया. केवल वनफलोंपर निर्वाह करने लगा और मठके बदले पत्तोंकी झोंपड़ी बनाकर रहा, इतनेपरभी उसको कौनसी उपाधि रहगई? परन्तु ऐसे बाह्य कर्मोंके त्यागसे उपाधि नहीं छूटा करती है. उपाधि तो अंतरकी शुद्धिसे छूटती है. अबभी इस स्वामीके पास उपाधिवाली बहुतसी चीजें थीं और जबतक वे उससे नहीं छूट जायँ तबतक उसने उपाधि छोड़दी ऐसा नहीं कहा जा सकता. इन सब उपाधियोंका मूल जो एक देहाभिमान है इसने उसके अन्तःकरणमें दृढ़तर निवास कर रक्खा था और बिना भारी चाबुक (कोड़ा) लगे, तथा देह कभी आत्मा नहीं किन्तु उससे भिन्न है ऐसा पूरा २ निश्चय हुए बिना वह (देहाभिमान) मिटनेवाला नहीं था. और उसमें 'मैं' तथा 'मेरा' ये दोनों देहाभिमानकी शाखायेंभी लिपट रहीं थीं.

इसप्रकार वनफलोंका आहार करके शान्तिपूर्वक एकान्त निर्जन स्थानमें रहते २ कितनेही महीने बीत गये. अब शीतकाल आया. एक तो नदी-किनारा, दूसरा पहाड़ी वन, तीसरा चारों ओरसे झपाटेवंद हवा आवे ऐसी पत्तोंकी झोपड़ीमें निवास, और चौथा अधूरेमें पूरा, विन्ध्याचल पर्वतका निकटवर्ती प्रदेश, जहां वसनेवालेको शीतज्वरके उपद्रवके लिये तो पूछनाही नहीं. दिन प्रतिदिन सूर्यनारायण दक्षिणायनकी अन्तिमरेखामें प्रवृत्त होने लगे और दिनभी बहुत छोटा होने लगा. उस पर्णकुटीमें निवास करनेवाले स्वामीको अब सचमुच तपश्चर्या साधनेका योग आया. ठंडसे देहका रक्षण करनेके लिये उसके पास केवल दो काषायांवर तथा एक मृगचर्म था परन्तु इतनेसे वह शीत मिटनेवाला नहीं था. उसने दूसरे थोड़े बहुत वल्कल* उस वनमेंसे प्राप्त किये, परन्तु उसमेंभी उसके शत्रु बाधक होने लगे. एक तो पहाड़, तिसपर झाड़ी और उसमेंभी पर्णकुटीकी आड़ मिलजानेसे जंगली चूहोंने वहां वड़े २ बिल बनाकर जमीन पोली कर डाली. रातको जब स्वामी सो जावे अथवा दिनमें वह वनफलादिके लिये बाहर जावे तब उन चूहोंने पर्णकुटीमें धरेहुए उसके वस्त्रोंको कुतर २ कर उनमें बड़े २ छेद कर डाले. स्वामी प्रतिदिन संभाल २ कर वस्त्रोंको धरै तोभी चूहे अपनी चालाकीमें नहीं चूकें. अपने वस्त्रोंकी दुर्दशा देख २ कर स्वामीको बड़ा दुःख होता था, परन्तु क्या करे ? ऐसे करते २ थोड़ेही दिनोंमें स्वामीका एकभी वस्त्र पहनने ओढ़ने जैसा नहीं रहने पाया. तब तो स्वामीको बड़ा क्रोध आया, और उन चूहोंका नाश करनेका उपाय ढूंढ़ने लगा. एक दिन वनमें फिरते २ उसको एक बिल्ली दिखाई पड़ी, और सोचा कि चूहोंको नष्ट करनेका यह सबसे सरल उपाय है. चलो, इस बिल्लीको अपने आश्रममें ले चलें ? तुरन्त वह उस जंगली बिल्लीको पकड़कर अपनी पर्णकुटीमें लेगया और जहां चूहे आते जाते थे वहीं एक दर्भोंकी रस्सीसे उस बिल्लीको बांध रक्खा. रातमें उसका शब्द सुनकर चूहोंने बिलकुल आना जाना अथवा चूं चां और खड़बड़ २ नहीं की. और स्वामीकोभी उसके कुछ उपद्रव नहीं हुआ. रातभर पर्णकुटीमें एकभी चूहा नहीं आया. यह देखकर स्वामीको बड़ा आनन्द हुआ उसने सोचा कि–'अपनेको यह ठीक उपाय मिल गया; अब साले चूहोंकी कुछ नहीं चल

---

* वृक्षके पत्ते अथवा छालका वस्त्र; जो पहनने ओढनेके योग्य होते हैं.

सकेगी.' परंतु जब उसने बिल्लीकी ओर देखा तो उसको एक नई चिंता उत्पन्न हुई, पिछले सारे दिन और सारी रात उस अवाचक प्राणीको कुछभी भक्ष्य नहीं मिला था, इससे भूख प्यासके कारण वह बिल्ली मरणतुल्य होगई थी. यह देखकर स्वामीको दया और चिंताने आ घेरा. 'अरे! मैंने इस निर्दोष प्राणीको कितना दुःख दिया! हर! हर! मैं कैसा निर्दय हूं! तब क्या मैं इसको पीछा छोड़ दूं? क्या ऐसा करनेसे चूहे फिर सताने लोंगे? तो फिर मैं इसे रखकरभी क्या खिलाऊंगा? वनफल तो यह खा सकेगी नहीं. और जो मैं भिक्षा करनेको जाता तो थोड़ा अन्न इसके लियेभी ले आता सोभी नहीं. अच्छा देखा जायगा. कुछ न कुछ होवेहीगा, परंतु इस बिल्लीको छोड़कर चूहोंकी पीड़ा भोगना तो ठीक नहीं.'

ऐसी कल्पना करता २ वह सरस्वतीके तटपर स्नानादि क्रिया करनेको गया. जब वह लौटकर पीछा आ रहा था तो एक ग्वालका वनमें चरनेको आया हुआ गौओंका झुंड दूरसे उसे दिखाई दिया. स्वामीजीने अपने मनमें विचार किया कि 'यह अच्छा अवसर हाथ लगा; क्योंकि यदि इनमेंसे एकाध दूधवाली गौ मिल जाय तो उस विचारी बिल्लीका उससे प्राण रक्षण हो जाय.' यह ठानकर वह उस ग्वालके पास जाकर खड़ा हुआ. हाथमें दंड कमंडलु और शरीरपर भगवा वस्त्र तथा भस्म धारण कीहुई भव्य मूर्तिको देखकर उस ग्वालने बड़े भक्तिभावसे लंबा होकर दंडवत् नमस्कार किया, और हाथ जोडकर बोला—"महाराज! मेरे अहो भाग्य, जो आज मुझे आपके इस वनखंडमें दर्शन हुए. मैं कृतार्थ हुआ. आपकी क्या इच्छा है तो कहिये." स्वामीकोभी यही चाहिये था. इसीसे उन्होंने कहा—"तेरा कल्याण हो. हे ग्वाल! मुझको और कुछ इच्छा नहीं है, केवल एक दूधवाली गौ परमार्थके लिये अपेक्षित है." तत्काल वह ग्वाल अच्छीसे अच्छी एक दूधवाली सवत्सा गौ स्वामीके आगे ले आया और सब गौओंको अपने आदमीको सौंपकर वह स्वामीके साथ २ उस गौको पहुँचा देनेके लिये पर्णकुटीतक आया. वहां जाकर गौको एक वृक्षसे बांध दिया और पत्तोंका दोना (द्रोण) बनाकर उसमें गौको दुहकर बिल्लीको दूध पिलाया. दूध पीकर बिल्ली सचेत हुई और उसके शरीरमें प्राण आया कि, स्वामी निश्चिन्त होकर मनमें हर्षित होने लगे; परन्तु यह नहीं जानते थे कि जैसे २ मैं चिन्ता घटानेका प्रयत्न करता जाता हूं तैसे २ वह चौगुनी बढ़ती जाती है,

रात हुई और ठंढ पड़ने लगी जिससे विचारे बछड़ेकी बड़ी दुर्दशा हुई. सवेरे उठकर स्वामीने देखा तो गौ मारे ठंढके कुबड़ी होगई थी; उसके रोवें काले पड़गये थे और बेचारे बछड़ेका तो पूछनाही क्या ? स्वामीने सोचा—' यह तो बड़ा अनर्थ हुआ. इस विचारी गौके लिये एक अच्छी झोपड़ी बांधनी चाहिये, नहीं तो यह ठंढसे मरजायगी और मुझको गोहत्या लगेगी. ' तब स्नानादिक कृत्य करके लौट आनेपर स्वामी गौको दुहने लगे परन्तु ठंढसे पाला हुई गौ, कलके बराबर दूध न देसकी. यह देखकर स्वामी बड़े चौंके और झटपट बिलैयाको दूध पिलाकर गौके लिये आस-पाससे थोड़ा घास ले आये और उसके लिये झोपड़ी बांधनेका यत्न करने लगे. कुछ देरमें बहुतसे डारपात इकट्ठे किये और अपनी झोपड़ीके पड़ोसमें दो वृक्षोंके बीचमें एक दृढ झोपड़ी बनाकर उसमें गौ तथा बछड़ेको बांधा; जिससे उनको कुछेक सुख हुआ. स्वामी नित्यप्रति हाथसे नोंच २ कर थोड़ा बहुत घास लाकर गौको खिलाते थे. ऐसेही कितनेक दिन करते रहे, परन्तु उतने घाससे गौ—बछड़ेका पेट नहीं भरता था इससे वह फिर सूखने लगी. स्वामीने विचार किया कि ' यह तो ठीक नहीं, मेरे पास कुछ दरांती वा खुरपी न होनेसे मैं पूरा २ घास नहीं ला सकता जिससे गौ भूखी रह जाती है. तब इसको चरनेके वास्ते छोड़ देना चाहिये, अथवा मैं जाकर चरा लाऊंगा. दूसरे दिन सवेरे गौ तथा बछड़ेको लेकर स्वामी पर्वतकी तराईमें चरानेको गये. उस समय बहुत दूरसे उस गौने अपने झुंडकी गौओंका रांभना सुना कि, तुरन्त चमकगई और ऊंचा शिर करके इधर उधर देखने लगी. जब एक गौ उसकी दृष्टिगोचर हुई तो तत्काल वह पीठपर पुच्छ रखकर चारों पावोंसे सपाटेके साथ दौड़ गई, पीछे २ बछड़ाभी दौड़ता हुआ चलागया. स्वामी भी पीछे२ दौड़े झपटे, परन्तु सब व्यर्थ हुआ; गौ और बछड़ा दोनों अदृश्य होगये. स्वामी निराश होकर पीछे पर्णकुटीको आये और खड़े २ सोचने लगे कि " गायभी गई और बछड़ाभी गया ! राम २ वह गाय कहां गई होगी ? अब वह कैसे पीछे आवेगी ? यह तो बड़ा दुःख आ पड़ा. बिचारे ग्वालने बड़े भावपूर्वक गौ दी थी उसको मैं खो बैठा. अब मैं क्या करूं ? और कौन ढूंढने जावे ?"

. . . .

गौ अपने झुंडमें आ मिली तब उस ग्वालने अपनी दान की हुई गौ

तथा उस बछड़ेको पीछा आया देखकर जान लिया कि–" यह गौ वहांसे जरूर भाग आई है, इसलिये इसको पीछी वहीं छोड़ आऊं." यह विचार कर गौ तथा बछड़ेको लेकर वह फिर स्वामीजीके पास आया और स्वामीको सब बात कहकर गौ खूंटेसे बांध दी. स्वामीने उसको आशीर्वाद देकर कहा– "भाई ग्वाल ! तेरा कल्याण हो. तूने मेरे लिये बड़ा श्रम उठाया. अब तू मेरी एक बात सुन. मैं यहाँ अकेला हूं, इस कारण मुझसे इस गौकी सेवाशुश्रूषा न होगी और यह वारंवार भाग जावेगी तो मैं उसके पीछे २ भी नहीं दौड़ सकूंगा इसलिये तेरे यहां अथवा तेरे गाममें जो कोई भाविक–श्रद्धालु मनुष्य हो तो उसको यहां ले आ कि जो यहां निरंतर रहकर गौ बछड़ेकी सेवा सँभाल किया करे." यह सुनकर ग्वालने कहा–' अच्छा महाराज ! मेरा एक छोटा भाई है वह प्रतिदिन खा पीकर यहां आजाया करेगा और सांझको पीछा घर चला जावेगा. यदि आपकी इच्छा होगी तो यहीं रहेगा. ऐसा कहकर ग्वाल दंडवत् करके चला गया. स्वामी अब तो बड़े प्रसन्न होने लगे–" लो, ठीक हुआ. बाहरही बाहर पीड़ा टली. वेचारा दिनभर गौकी टहल चाकरी करके रातको अपने घर चला जायगा. और जो यहांभी रहेगा तो क्या हानि ? गौ बहुतसा दूध देती है, इससे उसकाभी भलीभांति निर्वाह होसकेगा; फिर मनुष्यका भाग्य उसके साथ ही है. दिनभर वह क्या करेगा ? उसको किसी न किसी काममें लगा दूंगा तो उसकी खुराक उसकी मेहनतमेंसे निकल आवेगी. !"

दूसरे दिन ग्वाल अपने भाईको वहां छोड़ गया. स्वामीने उसको गौकी सोंपदी, उसके चरनेकी पर्वतकी तराईमेंकी खुली जगह, और उसको पानी पिलानेका सरस्वतीका नाला इत्यादिक सब बातोंसे जानकार करादिया. वह सेवक तो जातकाही ग्वाल अर्थात् गौओंको पानेवाला था, और खास उसी कामपर रहा था इससे गौकी खूब सँभाल करने लगा. सांझको वह सदा अपने घर चला जाता था. एक दिन घरसे आते समय दरांती, कुदाली, फावड़ा, खुरपी वगैरा आवश्यक २ औजार अपने साथ लेता आया. इसकारण उसको किसी बातकी अड़चन (कठिनाई) न रही. वह जितना चाहिये उतना हरा २ घास जंगलमेंसे काट लाता और गौका वहां चाराभी लाता; जिससे गाय बछड़ा खूब हृष्टपुष्ट होगये और दो मनुष्योंका पोषण होजाय इतना दूध गाय देने लगी. दूधको बढ़ा हुआ देखकर सेवकने

एक दिन स्वामीसे कहा—" महाराज! दूध व्यर्थ जाता है. मैं पेटभर पी लेता हूं, बचता है सो बछड़ेको पिलादेता हूं. आपभी थोड़ा २ लिया करें तो अच्छा. स्वामी बोले—" नहीं भाई! नहीं. मुझको ऐसा स्वाद नहीं चाहिये. मेरे लिये तो कच्चे पके वनफलही अच्छे. मुझ विरक्तको दूधसे क्या प्रयोजन? इस उपाधिमें फिर कौन पड़े?" हे यज्ञभू! देखा कि यह संन्यासी प्रतिदिन उपाधिमें फँसता जाता था फिरभी अपनेको उपाधिरहित समझता था.

वह ग्वाल सदा नियमित समयपर आता था और गौकी सेवा भलीभांति होती थी. ऐसे कई महीने व्यतीत होगये. स्वामीने अपनेको उपाधिसे छूटा हुआ मान लिया; परंतु गुप्त रीतिसे वह उपाधिके बंधनमें खूब जकड़ा गया था, यह बात उसकी अज्ञानतासे उसको नहीं जान पड़ी. कर्मही बंधनका कारण है, और जैसे २ कर्म बढ़ता जाता है वैसे २ जीव अधिकतर फँसता है. किंतु जब सत् ज्ञान होता है तब जीव मुक्त होजाता है और उसके कर्मपाश छूट जाते हैं, उसकी उपाधि भस्मीभूत होजाती है, और तब वह निरंजन निर्लेप बन जाता है. स्वामीमें सत् ज्ञानका प्रवेश नहीं था. इससे ज्यों २ वह छूटनेका प्रयत्न करता था त्यों २ अधिकाधिक बँधता जाता था. शनैः २ वह सेवक गांवमेंसे देर करके आने लगा जिससे गायके चारा पानी तथा दूहनेकी वेला टलजाने लगी. स्वामीने विचार किया कि, अब उसको गांवमें नहीं जाने देना चाहिये. जो उसके रहनेके लिये यहांही कुछ प्रबंध होजाय तो वह निश्चिंततासे अपना काम किया करेगा. चातुर्मास निकट आ पहुँचा है, और यह सामनेके मैदानमें जमीनका टुकड़ाभी अच्छा सपाट और उपजाऊ दिखाई पड़ता है. बस इस सेवकसे थोड़ा २ खुदवा कर पीछेसे बोनी करा देंगे, इस आशामें यहभी यहांका यहीं पड़ा रहेगा. ग्वालने कुदाली फावड़ा आदि तो पहलेही गाममेंसे ला रक्खे थे. इस कारण एक दिन स्वामीने सेवकसे कहा—" तू एक काम कर जिससे तेरी सदा घर जानेकी चिंता मिट जाय. सामने जो जमीन दिखाई देती है वह अच्छी उपजाऊ जान पड़ती है. तू थोड़ा २ प्रतिदिन उसे खोदता जा तो बरसात आनेपर उसमें कुछ अन्न बो दिया जाय जिससे तेरा और गौका पोषण हो सकेगा और तुझको बारह महीने तक खाने भरका अनाज अपना मिल

जायगा. पानीभी अच्छा बरसा और भूमिभी उपजाऊ थी इससे एक आदमीके श्रमसेभी बहुतसा अन्न पका. उस ग्वालनेभी वहां एक अच्छी झोपड़ी बांधली और खेतके उत्पन्नमेंसे भलीभांति खाता पीता, और स्वामीकी तथा गायबछड़ेकी सेवा करताहुआ वहीं आनंदसे रहने लगा. उसको खेतीका काम करना अच्छा जान पड़ा, इससे उसने पासकी जमीनके झाड़ काट छाटकर साफ करके एक खेतके दो खेत बना दिये. अब एक-दिन उस देशके राजाके सवार जमीनकी जाँच परताल करनेको उधर होकर निकले. बीचमें वे दोनों खेत देख पड़े और उनमें अनाज बोया हुआ देखा तो उन्होंने पूछताछ की. ग्वालियेने कहा कि–" ये खेत विरक्तानंद स्वामीजीके हैं, मैं उनका नोकर हूं और यहां कामकाज करता हूं. " उन सवारोंने जमीनकी जात निश्चित करके स्वामीका नाम लिख लिया और दरबारमें जाकर उन खेतोंको सरकारी दफ्तरमें स्वामीके (खाते) लिखवा दिया. इससे स्वामीकी उपाधिमें और भी उपाधि बढ़ी. फसल तैयार होतेही सरकारी सिपाहियोंने स्वामीके पास आकर उपजमेंसे राजाका छठा भाग मांगा. यहां कुछ स्वामीका चलनेवाला नहीं था, और न कुछ चिंताही थी; क्योंकि जमीन नई जोती बोई गई थी जिससे अन्नभी बहुत पैदा होताथा; इसकारण उन्होंने तत्काल उपजेहुए अन्नमेंसे छठा भाग अलग करके उनको देदिया; परंतु यहीं इसकी समाप्ति नहीं हुई. एक दो बरस तो ठीक २ चला. तिस पीछे दिन २ स्वामी चक्करमें पड़ने लगे. एक वर्ष देशभरमें कहीं २ पानी नहीं बरसा और अकाल (सूखा) पड़ा, जिससे मनुष्य अन्नके विना और पशु चारे विना तड़पने लगे. स्वामीजीके खेतोंमें थोड़ा बहुत पानी गिरा था जिससे कुछ अन्न होजाता, परंतु उस सेवकके प्रमादके कारण समयपर बोनी नहीं हुई. कुसमयकी बोनीके कारण बोया हुआ बीजभी निरर्थक गया. पिछले वर्षका थोड़ा अन्न बच रहा था उससे अपना निर्वाह करते थे; परंतु राजाका कर कैसे भरना इस बातका स्वामीजीके मनमें बड़ा भय बना हुआ था. कर भरनेके दिनभी निकट आ पहुँचे थे. राजाके सिपाहियोंने स्वामीजीके पास आके करका तकादा किया. तब उन्होंने कहा कि–"इस साल कुछभी अनाज नहीं उपजा; इसकारण हम कर नहीं भर सकते. " परन्तु ऐसा कह देनेसे कुछ नहीं चल सकता था. राजाकी कड़ी आज्ञा थी कि, 'जो कोई जमीनदार कर भरनेमें आनाकानी

करे उसको, मुझे फिर पूछनेकी राह न देखकर, तत्काल बांध लाना.' सिपाहियोंने स्वामीजीको स्पष्ट जतादिया कि—" महाराज ! आप हमारे पूज्य हो; परन्तु राजाकी आज्ञा है सो या तो आप हरेक उपाय करके कर भरो अथवा हमारे साथ दरबारमें चलो." बिचारे स्वामी तो तुरंत सिपाहियोंके साथ हो लिये. स्वामीजी पहले तो कभी भिक्षाके लियेभी गांवमें नहीं जाते थे; क्योंकि उन्होंने उपाधिका त्याग किया था (!) परंतु आज तो ठेठ कचहरीमें जहां कर नहीं भरनेवाले दीन किसानोंको रक्खा जाता है वहांतक जाना पड़ा और सबके साथ वेभी कैद कर दिये गये. इससमय उन्होंने अपने यति (संन्यासी) वेषको सच्चा कर बताया. राजानेभी जाना कि, अमुक संन्यासी बाबा अपने कारागारको पवित्र करने पधारे हैं. कदापि काल नहीं होने जैसी असंभव बात थी. संन्यासी बाबाको कैदमें देखकर उस नगरके लोगोंको तथा कचहरीके सब कर्मचारी मुत्सद्दियोंको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ. झुंडके झुंड लोग उनको देखनेको आये. उनको देख२ कर संन्यासी बाबा मनही मन अतिशय संकोच और लज्जा करने लगे. पर करे क्या ? आज उसकी स्थितिमें कितना अन्तर पड़ गया है ? कहां तो संन्यास ग्रहण करनेवाले पुरुषको सबसे श्रेष्ठ स्वतंत्रता और कहां आज इस स्वामीका राजाके सिपाहियोंके आधीन होकर कैदमें गिरना ? कहां तो संन्यासीकी विरक्तता और कहां इस बाबाकी जमीदारी ? कहां संन्यासीका गंगास्नान तथा सत्पुरुषों (ज्ञानियों, परमहंसो, महात्माओं, विरक्तों) का समागम और कहां इन स्वामीका अयोग्य स्थल—कैदखानेमें बंदी होकर नीच ऊँच सब जातिके मनुष्योंके साथ स्पर्श करना ? कहां संन्यासियोंका अहर्निश प्रणवका जप, और कहां इन स्वामीका ' अरे रे !!! कौन जाने करके लिये राजा क्या दंड देगा ? हाय ! मेरे शिरपर यह कैसी नई उपाधि आ पड़ी ?' इत्यादि विचारोंका आतुरतासे चिन्तन ? ऐसी विलक्षण अवस्थामें वह स्वामी विरक्तानन्द महाराज आ पडे. संन्यासी कौन और उसको राजदरबार कैसा ! ' संन्यासी ' नामकोही प्रपंचकी कोई उपाधि (चाहे वह अच्छी हो वा बुरी) कैसी शोभा दे ? क्योंकि सम्यक् प्रकारसे—भली भांतिसे किया है न्यास अर्थात् त्याग जिसने, उसको संन्यासी कहते हैं; परन्तु यहां तो सब इससे भिन्न—उलटा देखा गया.

राजा जब कचहरीके सब कामकाजसे निवृत्त हुआ तब उसने नादारोंको कैदमेंसे अपने सन्मुख बुलाया उनमें ये स्वामीभी नीचा मुंह करके सबके साथ राजाके आगे जा खड़े हुए. राजा भिन्न २ एक २ से उसकी स्थितिका सब वृत्तान्त पूछकर जैसा उचित समझता वैसा दंड देता जाता था. बहुतसे जमीनदार किसानोंका न्याय होचुकनेपर अब स्वामीजीकी बारी (पारी) आई. राजाने पूछा-' विरक्तानन्द स्वामी किसका नाम ? ' स्वामीने अधोमुखसे उत्तर दिया-'मेरा नाम. ' राजा-' तेरे पास कितने खेत हैं ?' स्वामी-' दो. ' राजा-' त्यागीके खेत कैसे ? ' स्वामी-' मेरे लिये नहीं. किन्तु एक गौके निर्वाहके लिये हैं. ' राजा-' दोनों खेतोंका कर अबतक क्यों नहीं भरा ? ' स्वामी-' इस साल कुछ उपज नहीं हुई इसकारणसे. ' राजा-' तेरी तरफके सब गांवोंके किसानोंका कर आ चुका है; क्योंकि वहां बरसात हुई थी, और तेरे अकेलेके यहां पानी नहीं पड़ा यह कैसे हो सकता है ? इस प्रान्तके सब गांवोंका कर बरसात हुए विना कैसे आगया ? तेरे यहां पानी गिरनेपरभी तू राज्यका कर कैसे डुबाना चाहता है ? इस सालका कर नहीं भरा इसलिये तुझको उचित दंड मिलना चाहिये. राजाके इस वचनका स्वामीने कुछभी उत्तर नहीं दिया; क्योंकि इस विलक्षण वर्त्तमानको देखकर उसकी मति ठिकाने न रही थी. तदनन्तर राजाकी आज्ञासे सिपाहियोंने स्वामीके हाथ पकड़कर बाहर निकाला और देशरिवाजके अनुसार और सब कर नहीं भरसकनेवाले किसानोंके साथ २ उसकोभी दंड दिया गया. वहां ऐसे लोगोंको दंड देनेकी यह प्रथा(रवाज) थी कि अपराधीको धूपमें वस्त्रहीन (लंगोटी मात्र रखकर) खड़ा करके, उसके दोनों हाथ बांधकर ऊपर उठाकर शिरके पीछेकी ओर करदिये जाते थे. और उन गरदनके पीछे करदिये हुए हाथोंपर एक बड़ी भारी शिला रख दी जाती थी.

ठीक मध्याह्न हुआ, दिनभी गर्मी (उष्णकाल) के थे. अपराधियोंको दंड देनेका मैदानभी रेतीला था और वालू, दो पहरकी कड़ी धूपसे ऐसी तप गई थी कि, उसपर पांव नहीं धरा जाता था. उसी जगह स्वामी विरक्तानन्दभी लाये गये. उसके दोनों हाथ बांधकर गरदनके पीछे कर दिये गये और वहां पड़ी २ धूपमें तपीहुई गरम २ भारी शिला उसके हाथोंपर रखदी गई. स्वामी विना बोले चाले चुपचाप खड़े २ तपश्चर्या करने लगे. ऊपरसे सूर्यकी तीक्ष्ण धूप पड़ रही है, शरीरपर कोई वस्त्र

नहीं है, और गरदनपर शिला धरीहुई है, पांवोंके नीचे जलतेहुए लोहाके समान गरम २ वालू है. यह सब त्रास एकही साथ होनेसे स्वामीके रोम २ से पसीना वहने लगा और आंखोंमेंसे आंसुओंकी धारा गिरने लगी. हे यज्ञभू! इससे वढ़कर नरकयातना और कैसी होती है ? इस समय स्वामीके संन्यस्तमें सचमुच धूल पड़ी. अवही उनको विरक्तवेष शोभा देने लगा. अपराधी लोग गरदनके पीछे रक्खे पत्थरोंको नीचे न डाल देवें इस वातकी खवरदारीके लिये चारों ओर राजाके सिपाही कोड़े (चावुक) लिये घूम रहे थे. जो कोई भी अपराधी कुछभी आड़ा तेढ़ा हुआ कि फटाफट कोड़े पड़ने लगते. उसका ख्याल अर्थात् उससमय कैसा संकट पड़ रहा था, यह वात तो केवल स्वामीही अपने मनमें जानते थे. उनको ऐसा अनुभव आजसे पहले कभी नहीं हुआ था, इसीलिये आज सचमुच उपाधि छूटनेका समय आ पहुँचा. स्वामीके मनमें, अपने पापका फल कहो, चाहे अज्ञानका फल कहो, इस असह्य पीडासे कांटासा चुभगया. जैसे कोई सोयेहुए मनुष्यपर कोड़े पड़नेसे वह अचानक चौंक खड़ा होता है वैसेही अब स्वामी अज्ञाननिद्रामेंसे चौंक पड़े और अपने कृत्यके लिये पश्चात्ताप–सच्चा पश्चात्ताप करने लगे–" अरे देह ! यह तेरी क्या दशा हुई ? तू क्या था और क्या होगया ? अरे ऐसी घोरयातना तो किसी महान् पातकीकोभी नहीं होती. अहो ! तुझको ऐसा असह्य दुःख भुगतना चाहिये वा एकान्त स्थलमें स्थिर चित्तसे प्राणायाम करके प्रभुका ध्यान करना चाहिये ? कैसी वैष्णवी माया और कैसा उसका प्रावल्य ? परन्तु ऐसा होनेका कारण क्या ? अरे ! संसारकी उपाधि छोड़नेको तू विरक्त हुआ और गाममें रहा तव भी तुझको उपाधिने आ घेरा तव भागकर वनमें आया तो वहांभी तेरी यही दशा ! तुझको इस संकटमें डालनेवाले कौन ? वेही खेत; परन्तु ये खेतभी तो गौके लियेही थे. क्या गौ विना तेरा काम अटका था ? खेतोंका अनाज तथा गायका दूध तो कभी तेरे काममें नहीं आया. गायकी आवश्यकताभी विल्लीके लियेही थी और विना बिल्लीके चूहोंसे वस्त्रोंका रक्षण संभव नहीं था. तव क्या एक वस्त्रके लियेही तू ऐसे बड़े गोरखधंधेमें पड़ा और अन्तमें ऐसे दारुण दुःखमें आ गिरा ? हर ! हर ! कैसी तेरी नीच वुद्धि ! कैसा तेरा निंद्य विचार ! परन्तु वस्त्र विना तो तेरा काम नहीं चलता था, इसीलिये उसका रक्षण करना आवश्यक था. तब सभी बातें

तो यही है कि शरीरने अपनेही लिये अपने ही हाथसे अपने आपको महान् संकटमें डाल दिया. बस. अपना किया आप भोगना यही न्याय है. तब क्या शरीर दुःखी होकर किसी औरको दोष दे सकता है ? अस्तु. ईश्वरेच्छा, जो हुआ सो हुआ. जो आ पडी उसको भुगते विना छुटकारा नहीं." इतनेसेही उसके विचार शान्त नहीं होगये. इससेभी अधिक गहरा गंभीर विचार उसने किया. उसके मनमें फिर तरंग उठी–"हां हां शरीरका किया शरीरभी भोगे यह बात तो सत्य है, किन्तु यदि खेतके अन्नसे इसका पोषण हुआ होता तो यहभी संभव हो सकता था; परन्तु तत्संबंधी इस शरीरमें कुछ नहीं है. जो शरीरके संबंधसेही पीड़ा भोगनी पड़ती हो तो उस सेवकको भोगनी चाहिये; क्योंकि खेतके अन्न तथा गौके दूधका उसीने उपभोग किया था. तिसपरभी उसका तो किसीने नामभी नहीं लिया और मेरे गलेमें यह जाल आ पड़ा. इसका कारण क्या ? परन्तु हां, ये खेत 'मेरे' कहलाते हैं और उनका 'मैं मालिक बना हूं.' इसीलिये इस शरीरकी ऐसी दुर्दशा हुई; परन्तु ये खेत मेरे क्योंकर कहलाये ? मैं कहांसे लाया और किसने मुझको दिये ? पहले मैं जब कथा श्रवण करनेको जाया करता था तब वह महात्मा तो ऐसा कहते थे कि यह देह जिसके भीतर हम (अपना आत्मा) रहते हैं वहभी अपना नहीं है, तब और २ तो अपने कैसे हो सकते हैं ? फिर जब मैं ब्राह्मण था उस समयके मेरे स्त्री पुत्रभी अब मेरे नहीं रहे; क्योंकि मैं अब उनको अपने नहीं कहता हूं. जबसे मैं विरक्त हुआ हूं, तबसे उनकी तरफकी तो मेरी सब चिन्ताही मिट गई. नहीं तो पहले मुझको उनके लिये बड़ी २ विपत्तिमें फँसाना पड़ता था. वे मेरे थे भी नहीं, और हैं भी नहीं, तिसपरभी जिनको मैं अपना कहता था उनके लिये मुझको दुःखी होना पड़ता था. उसी भांति ये खेत मेरे नहीं होनेपरभी मुझको इनके लिये दुःखी होना पड़ता है. इसका सच्चा २ कारण अब मुझे ज्ञात हुआ. इन खेतोंको मैंने अपने कहे और उनका मालिक 'मैं' कहलाया. अरे ! तब तो 'मेरा' कहा इसीलिये मैं इस घोर संकटमें पड़ा. 'मेरा' और 'मैं' इन दोनों शब्दोंहीसे यह सब उपाधि बढ़ती है. मैं उपाधिका त्याग करनेके लिये आज तक कितना पचा, कितना परिश्रम किया परन्तु जब उपाधिकी असली जड़ मेरे मनमें दृढ़तर जमी हुई थी, तब वह कैसे छूट सकती थी ? अहो ! अब वह मेरे दृष्टिगोचर हुई है, जिसकी

जड़ गई–नष्टहुई तो फिर झाड़पात कहांसे होगे ? क्योंकि 'छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्' अस्तु; अब जो मैं उस जड़कोही काट दूं तो अवश्य मेरी सब उपाधियें आपही मिटजायँ और मैं परम सुखी हो जाऊं" ऐसे संकल्प–विकल्पकी धुनमेंसे वह एकाएक चमक उठा और "आजही मेरी उपाधि समूल नष्ट हुई" ये पिछले शब्द बड़े हर्षसे बोल उठा तथा हृदयमें आनन्द न समानेसे, एकाएक खिलखिलाकर हँसने लगा. उस समयके मनके उमंग उछलनेके झटकेसे गरदनपरका पत्थर अपने आप नीचे गिरपड़ा.

ऐसी जगह स्वामीका ऐसा विलक्षण ढंग देखकर तथा उस लोह जैसी लाल सुर्ख–गर्म २ वालू–रेतमें उसको प्रसन्नतापूर्वक नाचता कूदता देखकर सिपाही तथा और कैदी वगैर: उसके पास खड़े हुए सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ कि, इस स्वामीको ऐसा किस वातका आनन्द हो आया ? इसीका वे सब लोग विचार करने लगे. सिपाहियों तथा कारभारियों (अमलदारों) को विना पूछे स्वामी विरक्तानन्द निर्भय उस मैदानमेंसे निकलकर सीधा राजाके पास जा खड़ा हुआ और कहने लगा—"जिसने मुझको तेरी आज्ञानुसार इस दंडकी यातनामें गिराया है वह और दूसरा कोई नहीं किन्तु यह मेरी लंगोटीही है. (लंगोटी लज्जाकेही लिये है और लज्जा तभीतक है जबतक कि, अहंता बनी है) सो तुझको सौंपे देता हूं और मैं स्वतंत्र होता हूं. और इस विषयमें तूही मेरा सच्चा गुरु है इसलिये तुझको पूर्णप्रेमसे प्रणाम करता हूं" इतना कहकर स्वामीने राजाको साष्टांग नमस्कार किया और हजारों लोगोंके सन्मुख, अपनी पहनी हुई कौपीन निकालकर राजाके सामने फैंक दी और स्वयं दिगंबर होकर वहांसे चल दिया. आजसे उसकी जन्मभरकी, वल्कि उसको हजारों लाखों जन्म लेने पड़ते उन सबकी उपाधि टल गई और वह तत्क्षण महाज्ञानी जीवन्मुक्त होकर यथेच्छ विचरने लगा. इस प्रकार वह स्वामी अवधूत, सर्वोत्तम शान्तिसुखका भोक्ता होगया.

उपाधि इस भांति विना बढ़ाये अपने आप बढ़ती है और उससे ऐसी२विपद उठानी पड़ती हैं; इसलिये उपाधिको कभी बढ़ने नहीं देना और बहुत सावधान रहना. संसारमें रहकरभी जैसे बने तैसे उपाधिको घटातेही रहना. और उपाधिमात्रका मूल जो अहंता ममता है उसको जड़–मूलसे नष्ट करडालनेसेही पुरुष जीवन्मुक्त होता है, यही इस विस्तीर्ण इतिहासका सार-तात्पर्य है.

सारासारविचार.

हे विशालकेतु ! तदनन्तर उन महात्माने मुझे सम्बोधन करके, इसभांति कहा-इस जगत्‌में परमात्माकी निर्माण की हुई सब वस्तुयें, अपने २ अच्छे वा बुरे फलके लिये, उनका उपयोग करनेवाले मनुष्यको, भला बुरा समझनेके विवेकवाली बुद्धिपर आधार रखती है. यह बात ऊपर कहेहुए बहुतसे दृष्टान्तोंपरसे तेरी समझमें आई होगी. मैं जिन २ कर्तव्योंका अबतक वर्णन कर चुका हूं उन सबको जानना और अपने काममें लाना; अर्थात् हरेक वस्तु चाहे जैसे रूप और गुणमें हो परन्तु उसमेंसे अपने प्रयोजनका कितना है और व्यर्थ कितना है, इसका निश्चय करके, जितना अच्छा और अपने मतलबका हो उसको उपयोगमें लेना, ऐसी मतिको सारासारविचार कहते हैं. सारासारविचारको नहीं जाननेवाला अथवा नहीं करनेवाला मनुष्य गुणकारक पदार्थोंकाभी बड़ा उलटा उपयोग कर बैठता है. ऐसा न होने पावे इसके लिये मनुष्यको सारासार विचारनेके लिये बुद्धिका अवश्य उपयोग करना चाहिये और इसी अभिप्रायसे मैंने इसकोभी कर्त्तव्य कर्ममें गिनाया है. सार और असार इसको भलीभांति जानना, यह निर्मल-शुद्ध बुद्धिवाले मनुष्यका कर्तव्य है. और ऐसे विचक्षण तथा ज्ञाता पुरुष, चाहे जैसी (भली वा बुरी) वस्तु अपने सन्मुख आवे उसको भलीभांति पहँचान कर, उसमेंसे जितना सार निकल सके उतना मात्र ग्रहण करके शेष जो असार रहता है उसका परित्याग करते हैं. जैसे-दही देखनेमें तो एकही पदार्थ है, परन्तु सारग्राही उसका भली भांति मथन करके उसमेंसे साररूप नवनीत (मक्खन) निकाल लेता है. इसीरीतिसे देखनेमें मनुष्यप्राणी भी एकही वस्तु है; परन्तु ज्ञाता पुरुष उसमेंसे साररूप परम तत्त्व परमात्माको जानकर, बाकी रहेहुए असाररूपको उसमेंसे भिन्न और अनित्य मानते हैं. यह बात सत्य है. किसी एक वस्तुके (सार और असाररूप) दो भाग किये जायँ तो उनका उपभोग करनेवालेके मनमें सारवाले भागपर विशेष प्रीति देखी जायगी और असार रहा तबभी क्या और न रहा तबभी कुछ नहीं. इस कारण उसपर प्रीतिभी नहीं और अप्रीतिभी नहीं. ऐसा समझकर वर्ताव करेगा. इसी रीतिसे यह सारा ब्रह्मांड-जगत् और उसमें सर्वत्र व्याप्त परब्रह्म इन दोनोंमेंसे जब ज्ञाता साररूप परब्रह्मको भलीभांति चीह्न लेता है,

खूब पहचान लेता है तब उसकी असार अर्थात् संसारपरकी प्रीति अपने आप घटकर सच्ची प्रीति केवल ब्रह्मपर जा लगती है इस विषयमें, सारासारका सम्यक् विचार करनेवाले महात्मा जनकराजाको विचित्र रीतिसे प्रश्न उठा था, जिसका समाधान और किसीसे नहीं हो सका तब अन्तमें एक आठ वर्षके ऋषिकुमारने उस प्रश्नका उत्तर देकर अतुल यश प्राप्त किया था. वही इतिहास तुझको सुनाता हूं.

जनक विदेहका स्वप्न-चरित्र.

त्रिपथगामिनी, पतितपावनी, भगवती भागीरथीके पवित्र तटपर एक सुन्दर तपोवन था. वहां पुण्यपुंज अनेक ऋषि-महर्षियोंके रमणीय आश्रम बने हुए थे. नाना प्रकारके, सुपल्लवित विशाल वृक्ष यत्र तत्र शोभा दे रहे थे. प्रत्येक आश्रमके निकटवर्त्ती छोटी बड़ी पुष्पवाटिकायें अपनी सुन्दरतासे दर्शकोंके नेत्रोंको आल्हादित करती थीं. भांति २ के, रंगविरंगे प्रफुल्लित पुष्प और पुष्पोंकी कलियां तपोवनके वायुको सुगंधित कर रही थीं. छोटे बड़े रम्य मार्ग और तपोवनकी सुन्दर भूमि अपनी स्वच्छताके कारण दर्शकगणोंके मनोंका आकर्षण कर रहे थे. कहीं २ पथिकजन उस तपोवनके सघन वृक्षोंकी शीतल छायामें बैठे हुए श्रम-निवारण कर रहे थे. परमात्माकी सृष्टिका अनुपम लावण्य और अद्भुत सौंदर्य उस तपोवनमें अपना चमत्कार दिखला रहा था. सूर्यनारायण शीघ्रगतिसे अस्ताचलको गमन कर रहे थे. तीसरा प्रहर ढल चुका था उस मनोहर तपोवनमें गंगातटके लताकुंजमें कईएक बालक खेल रहे थे. उनमेंसे किसी २ की दृष्टि, जाह्नवीके गंभीर प्रवाहपर इस पारसे उसपार जाते आते हुए सुंदर मछुओं (छोटी २ नावों) पर लगी हुई थी; कितनेही बालक, वृक्षलतादिकपर निर्भय बैठेहुए नानाप्रकारके मधुर कोमल कलरव करतेहुए पक्षियोंकी ओर टकटकी लगाये हुए थे. बहुतसे बालकोंकी दृष्टि संध्याकाल होजानेसे एक २ करके अपने २ घोंसलोंमें बसेरा लेतेहुए पक्षियोंपर लगी हुई थी. कोई २ विचक्षण बालक सायंकालके समय अस्ताचलके समीपवर्ती सूर्यकी सुनहरी ठंढी धूपमें अपनी बड़ी लंबी परछायाको देखकर चकित होते थे, कोई २ एक दूसरेके साथ अपनी परछाईकी लंबाईकी तुलना कर रहे थे; कईएक शिशुगण भिन्न २ प्रकारके कौतुक कर रहे थे; कोई अपनी इच्छानुसार उछलते कूदते थे; कोई इधर

उधर दौड़तेहुए एक दूसरेको पकड़ लेनेका यत्न करते थे; कोई २ अपने मन-माने नये २ शब्द रचकर आनन्दित होते थे. ये सब बालक बहुत तेजस्वी और पवित्र दिखाई देते थे. कुछ बड़ी अवस्थावाले बालकोंके स्कन्धपर यज्ञोपवीत भी थे, कटिपर मौंजी मेखला लटक रही थी, इसपरसे स्पष्ट जान पड़ता था कि वे सब ऋषियोंके बालक थे. बालकोंके खेलकूदहीमें, सूर्यनारायण अस्ताचलके शिखरपर पहुँच गये. सायंसन्ध्याका समय हुआ जानकर, सब बालक सन्ध्यावन्दनके लिये भागीरथीके तटपर जानेको तैयार हुए. इतनेमें थोडी दूरपरके एक आश्रमकी ओरसे चला आता हुआ एक बालक दिखाई दिया. तत्काल सब बालक उसकी ओर फिरकर हँसने और कूदने लगे. "कुबड़ा आया रे कुबड़ा आया. देखो रे, देखो, कुबड़ा आया." ऐसा कह २ कर उसको चिढ़ाने लगे. जब वह कुबड़ा बालक उनके निकट आया तब किसीने उसके हाथकी लठिया छीन ली; किसीने कांख (बगल) मेंसे दर्भासन और यज्ञ–भस्मकी डिब्बी खैंचली; कोई पीछेसे उसकी लंगोटी खैंचने लगे; कोई उसकी पसलियोंमें गुदगुदाने लगे. ऐसे कई प्रकारकी चेष्टा और छेड़छाड़ करके उसको चिढ़ाने और तंग करने लगे. उस बालककी लकडी छिन जानेपर वह तुरन्त अशक्त होकर भूमिपर बैठ गया; क्योंकि वह लकड़ीहीके बल चल सकता था. उसके सारे शरीरमें आठ ठिकाने कूबड़ था. उसके सब अंग प्रत्यंग ऐसे कुढंगे और जहाँ तहाँसे टेढ़े बांके थे कि उनकी विलक्षणता देखकर हरेक मनुष्यको हँसी आ जाती. वह अपने हाथमें लकड़ी लेकर चलता तब उसके आठों अवयव एकही साथ ऐसे टेढ़े हो जाते कि देखनेवालेकी हँसी नहीं रुक सकती थी, और ऐसा होता तबही वह एक पांव आगे धरने पाता. उसको देखकर प्रत्येक दर्शकके मनमें दो भाव उत्पन्न होते थे–एक हास्य और दूसरी दया. इतनी छोटी अर्थात् आठही वर्षकी अवस्थामें उसे बड़ा दुःखी, कुरूप और अशक्त देखकर सबको सहज दया आ जाती, तिसपरभी इस समय और २ बालकोंने उसे सताकर बहुत तंग कर रक्खाथा जिससे वह दृश्य विशेष करुणाजनक होगयाथा; परन्तु यज्ञभू ! ईश्वरकी बड़ी अद्भुत लीला है. जगत्में कई ठिकाने देखनेमें आता है कि, यदि किसी मनुष्यका कोई एक अंग किसी कारणसे रहजाता—निरर्थक हो जाता है तो उसका दूसरा अंग विशेष बलवान् और चंचल होता है. किसीका एक हाथ युद्धमें

अथवा और किसी कारणसे कटगया हो तो उसका दूसरा हाथ अकेला दोनों हाथोंका कार्य विशेष बल तथा बड़ी फुर्ती और चालाकीसे पूरा कर सकता है. जिसकी चक्षुइंद्रिय नष्ट हो जाती है उसको स्मरणशक्तिमें तथा त्वचामें (स्पर्श करके–छु करके) प्रत्येक वस्तुको प्रत्यक्ष देखनेके समान निर्णय करनेकी विशेष शक्ति आ जाती है. ऐसाही आश्चर्य बल्कि इससे सहस्रगुनी अधिक विलक्षणता इस कुबड़े बालकमें पाई जाती थी; जो कि उसके शरीरकी बड़ी विचित्र स्थिति थी तो उसकी बुद्धि और ज्ञानशक्ति बड़े वृद्धसेभी बढ़कर श्रेष्ठ थी. इस बातमें तो विधाताका आढ़ा अंकही था. वह कुबड़ा बालक, अन्यान्य बालकोंसे इतना अधिक सताया जानेपरभी क्रोध न करके शान्त होकर बैठा था; परन्तु संध्याका समय बीता जाता देख कर वह उन बालकोंसे विनती करने लगा–" भाइयो ! कृपा करके मेरी लकड़ी देदो." उसपर दया करके झुंडमेंसे कईएक समझदार लड़के कहने लगे–– "अरे ! इस बेचारेको मत सताओ; इसके पिता नहीं हैं इसीसे तो यहां अपने मातामह––नानाके घर रहता है और जो इसका नाना ये समाचार सुन पावेगा तो हम सबको मारेगा. वह बूढ़ा बड़ा क्रोधी है और संध्यासमय होगया सो वहभी गंगास्नानको आताही होगा. इससे झटपट इसकी लकड़ी और आसन देडालो." उस कुबड़ेके नानाका नाम सुनतेही सब लड़के, उसकी लकड़ी, आसन, गोमुखी आदि उसके सन्मुख पटककर चुपचाप कोई गंगातटपर सन्ध्यावंदनके निमित्त चले गये और कितनेही आश्रमोंकी ओर दौड़ गये, उस कुबड़ेकी सब वस्तुयें फेंककर सब बालक वहांसे चले गये. सो देखकर उसको हर्ष होना चाहिये था; किन्तु इसके बदले उसकी मुखमुद्रा कुछेक गंभीर देख पड़ी कि मानों वह कुछ सोच रहा है. और तुरन्त निःश्वास छोडता हुआ बोला––" अरे क्या ये लड़के कहते हैं सो सत्य है ? क्या सचमुच मेरे बाप नहीं है ? क्या मैं जिनको अबतक ' पिताजी २ ' कहता रहा हूं वे मेरी माताके पिता हैं ? तो मेरा पिता कहां है ? क्या मेरी माताको इसकी खबर नहीं है ? मैं आज जाकर अवश्य पूछूंगा. " ऐसे तर्क–वितर्क करता २ अपनी लकडीके सहारे २ वह गंगातटपर गया और सन्ध्यावंदन करके उसी बातका मनन करता हुआ घर आया. अनन्तर जब रात्रिमें सोनेका समय हुआ तब वह अपने बिछौनेपर बैठाहुआ आंखोंसे आंसू बहा रहा था. यह दशा देखकर उसकी

माताने उसको पूछा—"हे पुत्र ! तू क्यों रोता है ? क्या तुझको किसीने मारा है अथवा और कुछ उपद्रव किया है ? रो मत. शान्त हो. जिसने तुझको सताया होगा उसको अपने पिताजीको कहकर इस आश्रमसेभी निकलवा देऊंगी. इससे झटपट कह कि क्या हुआ ?" "माता ! मुझको किसीनेभी नहीं मारा और न किसीने सताया है, परंतु जिनको तू पिताजी कहती है वे मेरे क्या लगते हैं ?" ऐसा जब गद्गदवाणीसे उस बालकने पूछा, तब माताने कहा—"हे वत्स ! ये मेरे पिता और तेरे मातामह-नाना हैं; परंतु छोटेपनसेही तूभी मेरी देखादेखी उनको पिता २ कहने लग गया, इसीसे मैं उनको अपने पिता कहती हूं." तब बालकने फिर पूछा कि "हे माता ! क्या अभी मैं अपने नाना मामाके यहां रहता हूं ? तो अपना घर कहां है ? मेरे पिता कहां हैं ? मुझको ऋषियोंके बालक सदा कहते रहते हैं कि इस बेचारेके बाप नहीं है. यह अपनी ननसारमें रहता है. तो क्या मेरे पिता नहीं हैं?" उसके ऐसे शोचनीय वचन सुनकरके ऋषिपत्नीको रोमांच हो आया, सहज दयाके योग्य, विकृत अंग, पितृरहित, शोकाकुल, सन्मुख बैठाहुआ हठपूर्वक अपने पिताका पता पूछ रहा है, यौवनावस्थासे पतिवियोगकी ज्वाला भभक उठी है, उसको कृपण धनकी भांति छिपा रखनेका यत्न करनेमें कोमल हृदयको औरभी तीव्र आंच लगरही है; किन्तु उसकी कुछ परवाह न करके ऋपिपत्नी अपने जीवनाधार परमप्रिय पुत्रकी चिंता मिटानेका, उसको शांत करनेका, उसको प्रसन्न करनेका प्रयत्न कर रही है. माताका एक हाथ पुत्रके शिरको सहारेहुए है, दूसरे हाथसे अपनी साड़ीके अंचलसे, उसके पितृचिन्तापरिपूरित नेत्रोंसे बहते हुए जलप्रवाहको पोंछती जाती है, अपनी आगे पीछेकी सब विपत्ति और वर्त्तमान स्थितिका वारंवार स्मरण-मनन हो आनेसे गद्गद वाणीसे उस कुबड़े परन्तु प्राणाधिकप्रिय पुत्रको कह रही है—

"हे बेटा ! धीरज धर और चिंता त्याग. अवश्यही ऋपि-बालकोंने जो कहा वह सत्य है. यह घर अपना नहीं है. यह तो तेरा ननिहाल-ननसार है. अपना घर यहांसे बडी दूर प्राचीनदीके तटपर है; किंतु वहां अब अपना कोई नहीं है. तेरा पिता वहां नहीं है. भला, जहां अपना कोई आश्रय नहीं हो, कोई रक्षक तथा पालक न हो, वहां मुझजैसी असहाय अबलाका रहना कैसे हो सके ? स्त्रियोंके लिये संसारमें दोही जगह रहने योग्य हैं—या तो

पतिके घर अथवा पिताके घर. इसीलिये मैं अपनी विपत्तिके दिन काटनेके लिये, अपनी रक्षा और तेरे पालन पोषणके लिये जब तू बहुतही छोटा था तबसे तुझे लेकर अपने पिताके घर चली आई. तबसे यहीं रहती हूं. तेरा यज्ञोपवीतभी यहीं हुआ है. तेरे नानाजीने तुझको गायत्रीमंत्रका उपदेश दिया है. "हे वत्स! यहां रहनेमें कोई दोष नहीं. नानाके घर रहनेमें निन्दाकी कोई बात नहीं; अतएव हे पुत्र ! तू लड़कोंके चिढ़ानेका कुछभी खेद मत कर."

बालकने ध्यानपूर्वक सब कुछ सुना परन्तु उसकी चिन्ता नहीं मिटी, वरंच उसका संदेह औरभी बढ़गया तब सन्तोष होना कैसे संभव था ? बालहठ, स्त्रीहठ, और राजहठ, ये तीन प्रकारके हठ जगतमें प्रसिद्ध हैं. ऋषिकुमारनेभी अवश्य हठ पकडा. किन्तु उसका हठ और २ बालकोंकी नांई व्यर्थ नहीं था. वह बालक तो था, परन्तु बेसमझ नहीं था. उसका हठ, उसका उद्वेग, उसकी आकांक्षा, केवल बाललीलाही नहीं थी. उसके हठके भीतर एक गंभीर रहस्य समाया हुआ था, जिसका परिणाम बहुत मधुर होनेवाला था. 'पिता कौन है ? वह कहां है ? नहीं आनेका क्या कारण है ?' इत्यादि प्रश्न उसके अंत:करणमें बारंबार उठ रहे थे. इसी तर्क-वितर्कसे उसका मस्तक घूम रहा था. निदान उस ऋषिपुत्रने बडे विनीतभावसे फिर मातासे पूछा:-"हे जननी ! जो कुछ मैंने सुना उसपरसे यह प्रकट नहीं हुआ, कि, मेरे पिताजी कहां हैं; अस्तु शीघ्र मुझे बता कि मेरे पिता कहां गये ? मुझको पिताजीके दर्शनकी बडी लालसा लग रही है. हे माता ! विलम्ब मत कर. सत्य २ कह पिताजी कहां हैं ?"

इतना सुनतेही स्नेह, शोक और विपत्ति, आश्चर्यके एक साथही आ उपस्थित होनेसे ऋषिपत्नीके नेत्रोंमें जल भर आया; और बावलीसी होकर कहने लगी-"तू कहाँ जायगा ? कैसे जायगा ? क्या कर सकेगा ? क्या तूभी मुझे छोड जायगा ? हां; तू मुझसे अदृश्य होगा ? नहीं २, मैं तुझे कदापि कहीं न जाने दूंगी. मैं तेरे बिना कैसे जी सकूंगी ?" माताको घबराती देख बालकने कहा-"हे माता ! मत घबरा. धीरज धर. भगवत्कृपासे, तेरे चरणोंके प्रतापसे, पिताजीके पुण्य-प्रभावसे मैं अवश्यही उनको घर ले आऊंगा, इसमें तू किंचिन्मात्रभी संदेह मत कर. माता ! मैं बिना बापका नहीं कहलाऊंगा. नानाजीके घर रहनेमें दोष

नहीं सो ठीक; परन्तु पिताजीने हमें क्यों परित्याग किया ? अब क्यों नहीं आते ? अथवा किस विपत्तिमें फँसे हैं सो क्यों नहीं आ सकते ? इसी बातकी मुझे बडी चिन्ता लगी है. मैं नहीं जानता था कि, मेरे पिता ये नहीं हैं इससे अज्ञानवश, मैं नानाजीको पिता २ कहता रहा, परंतु अब नहीं कह सकता. ज्ञान, अज्ञान, शोक, मोह, भ्रम वा भयादि चाहे जिस कारणसे क्यों न हो, परंतु मिथ्या भाषणका अपराध लगे विना नहीं रहता. ऋषि, महर्षि तथा संसारसे विरक्त संतजन पुरुषमात्रको पिता और स्त्रीमात्रको माता कहते हैं और कह सकते हैं; किन्तु मेरी जैसी मूर्खता कौन करता है ? नानाको पिता २ कहकर मैंने बड़ा अनुचित किया है. हरे ! हरे ! इस अनृत भाषणके महापापसे मैं कब और कैसे छूट सकूंगा ? इस अनुचित शब्दप्रयोगका मुझे कैसा दंड मिलेगा ? अब पहले मुझे यह बतादे कि पिताजी हैं कहां ?" पुत्रका बड़ा हठ देखकर, उसका विवेकसहित वार्त्तालाप सुनकर, अन्तमें माताने पुत्रसे कहा–" हे वत्स ! जब तेरा जन्मभी नहीं होने पाया था, तबसे तेरे पिताका और मेरा वियोग हुआ है. मिथिलापुरीके राजा जनकके यहां अनेक ऋषि मुनि विद्वान् एकत्रित हैं. तेरे पिताभी वहांही हैं." बालकने फिर पूछा–" वहां क्यों गये और अबतक क्यों नहीं लौटे ? क्या तुझसे अप्रसन्न होकर चले गये ?" माताने कहा– "नहीं सो बात नहीं है. मैंने कभी किसीभांति उनका मन नहीं दुखाया. वत्स ! तेरे पिता बड़े प्रसिद्ध विद्वान् और तेजस्वी हैं. अनेकबार भिन्न २ राजसभाओंमें, विद्वानोंकी सभाओंमें ऋषिमुनियोंके मंडलमें उन्होंने बड़ा मान प्राप्त किया था, इसीसे उनकी कीर्ति उज्ज्वल चांदनीके समान सारे भूमंडलमें चहुं ओर फैल गई थी. राजा जनकके गुप्त प्रश्नका उत्तर देनेके लिये सब जगहके बडे २ ऋषि महर्षियों और प्रसिद्ध २ विद्वानोंको आमंत्रण भेजे गये. उस समय राजाका आमंत्रण पाकर तेरे पिता भी मिथिलापुरीको गये तबसे आजतक वहीं हैं. ऐसा सुननेमें आया है कि, जितने ऋषि, मुनि और विद्वान् वहां गये, उनमेंसे कोई भी राजाके प्रश्नका उत्तर नहीं दे सका. जब राजाका समाधान नहीं हुआ तब उसने कहा– हे ऋषि महर्षियो और विद्वज्जनो ! जब तक आपलोग मेरे प्रश्नका यथार्थ उत्तर देकर मेरे मनका संशय न मिटादेवें तब तक आपको यहांसे चले जाना उचित नहीं. आपको अग्निहोत्रादिक नित्य नैमित्तिक कृत्यके लिये जो २ सामग्री चाहिये सो २

राजभंडारसे लीजिये और यथेच्छ पदार्थोंका उपभोग करते हुए आप लोग यहां निवास कीजिये.' इस राजाज्ञाके कारणसे वे सब आजतक वहीं निवास कर रहे हैं." यह वृत्तांत सुनकर वह ऋषिकुमार बडी उत्कंठासे पूछने लगा– "हे माता ! ऐसा कौनसा प्रश्न राजाने पूछा था, कि जिसका उत्तर अद्य पर्यंत किसीसे भी नहीं बन पडा ! यदि तू जानती हो तो मुझको कह. मैं कल ही अपने मामाको साथ लेकर जनकपुरको विदा होऊंगा और राजाके प्रश्नका उसके मनके अनुकूल यथार्थ उत्तर देकर अपने पिता आदिक सर्व ऋषि मुनियोंको मुक्त कराऊंगा. इतने वर्षोंतक राजाके एक प्रश्नका उत्तर नहीं दिया गया तो क्या सृष्टिमेंसे ब्रह्मबीज नष्ट होगया ? क्या स्त्रियां तत्त्वज्ञानी पुरुषोंको जन्म नहीं देतीं ?" ऋषिपत्नीने कहा–"पुत्र ! तू क्या कहता है ! बडे २ प्रतापी, अनुभवी, तेजस्वी पुरुषोंसे जिसका समाधान नहीं हो सका उसका उत्तर तू कैसे दे सकेगा ? न तो तूने अभी कुछ विद्याभ्यास किया है और न कुछ देखा सुना है ! तू अभी निरा बालक है, तेरे शरीरकी ऐसी दयार्ह स्थिति है तब तू ऐसा विषम साहस कैसे करता है ? राजाने केवल यही प्रश्न किया है कि 'यह सच्चा अथवा वह सच्चा ?' प्रथम तो इस प्रश्नको समझना ही असंभव है फिर उसका उत्तर देने जैसा महा दुष्कर कार्य तुझसे कैसे हो सकता है ? हे पुत्र ! तू अपनी बालक बुद्धिसे मुझको और भी अधिक दुःखी करेगा ऐसा दिखाई देता है. अनेक वर्षोंसे जो तेरे पिताका मुझसे वियोग है वह केवल तेरे ही सहारेसे सहरही हूं, तुझे देखकर मैं अपना सारा दुःख भूल जाती हूं, जो तू मेरी आंखोंकी ओटमें होगा तो मैं तेरे विना कैसे रहूंगी ?" माताके प्रेमपूरित स्निग्ध वचन सुनकर ऋषिकुमारने कहा—"हे जननी ! तू इस बातकी तनिक भी चिन्ता मत कर ! मुझको वहां बहुत दिन नहीं लगेंगे, क्योंकि मैं प्रश्नका उत्तर देकर तुरंत ही अपने पिताजीके साथ यहां आजाऊंगा. यदि तू प्रसन्न होकर जानेकी आज्ञा देगी तो भी जाऊंगा और अप्रसन्न होकर ना कहेगी तो भी जाऊंगा, इसमें संशय नहीं.'' पुत्रका इतना अधिक आग्रह देखकर अपने भाईको उसके साथ देकर दूसरे दिन उसको विदा किया, और वह अनेक नदियों, पर्वतों, वनों और नगरोंको उल्लंघन करता हुआ जनकपुरको गया.

अब यहांसे एक दूसरी बात आरम्भ होती है. एक समय उष्णकालके

दिनोंमें, जब ठीक मध्याह्न होचुका था, पथिकगण मार्गके श्रम सूर्यकी कडी धूप और लू (उष्णकालकी गरम २ हवा)से घबराकर, सघन छायावाले वृक्षोंके नीचे अथवा धर्मशालाओंमें विश्राम ले रहे थे; श्रीमंत लोग ऊंची २ अटारियोंमें द्वार और खिडकियोंपर लटकती हुई खसकी टट्टियोंमेंसे आतेहुए सुगंधमय शीतल पवनकी लहरोंसे हर्षित होते हुए झूलोंपर बैठे झूल रहे थे; मृगपति पर्वतकी कंदराओंमें निर्भय निश्चिन्त पडे हुए रातकी मृगयाके श्रमका परिहार कर रहे थे; उस समय सौभाग्यवती मिथिलापुरीमें एक गुप्त कौतुक हुआ. ग्रीष्मऋतु होनेके कारण महाराजा जनक विदेहका रंगमहल नानाप्रकारके शीतोपचारोंसे अलंकृत किया गया था; द्वार २ और खिडकी२पर सुगंधित खसके परदे लटक रहे थे, जिनपर वारंवार गुलावजल छिडका जाता था; महलके भीतर जहां तहां वैसेही खसके पंखे फर २ फर २ फिर रहे थे जिनके शीतल सुगंधमय पवनसे सारा रंगमहल विलकुल सर्द हिमवत् ठंढा हो रहा था. महलके बीचोबीच एक अतिशय सुशोभित सुवर्ण पलँग बिछा हुआ था. उसपर भांति २ की सौरभमय पुष्पोंके गादी तकिये लगे हुए थे, पलँगके आसपास महलके स्फटिकमय आंगनमें सुवर्णकी नलियों द्वारा गुलाव, मोगरा, केवडा इत्यादिक पुष्पोंके शीतल सुगंधमय जलके फुहारे छूट रहें थे. वहां महाराजा जनक भोजन करके उस पलँग पर तकियेके सहारे लेट गये थे; शरीरपर यक्षकर्दम-सुगंधित चन्दन अरगजादि चर्चित था सब प्रकारसे शीतल उपचार हो रहे थे इस कारण वहां उष्णकालका किंचित् भास भी नहीं होता था. पलँगपर लेटे २ जनकमहाराजकी आंख लग गई. वे आधे जागृत और आधे निद्रित थे अर्थात् कुछ नींद आई न आई जैसी थी उसमें उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा.

मिथिलापुरी पर कोई विदेशी बलवान् राजा चढ़ आया ! और उसकी अपार सेनाने नगरको चारों ओरसे घेर लिया है. उसके साथ तुमुल युद्ध करते २ अपनी सेनाका सर्वनाश हो जानेसे महाराज स्वयं निरुपाय होगये हैं. विजयी शत्रुने उनको नगरमेंसे निकल जानेकी कड़ी आज्ञा देकर राज्यसिंहासनको अपने आधीन कर लिया है. शत्रुने उनका राज्य, धन, संपत्ति स्त्रियादिक सर्वस्व हरण करलिया है, इतनाही नहीं किन्तु शरीर परके सर्व वस्त्र और अलंकार भी उतरवा लिये, और लज्जारक्षणार्थ एक अंगोछा मात्र देकर वहांसे निकाल दिया है और नगरमें ढंढोरा पिटवा

दिया है कि "दयासे, मित्रतासे अथवा अपना पहला राजा समझके इस जनकका कोई भी सत्कार न करे, तथा इसको अपने यहां रखकर किसी भांतिका कोई आश्रय भी इसको न दे." तत्काल राजा जनकको एक अत्यंत कंगाल मनुष्यकी दशामें, आखोंसे आंसू बहाते हुए, सिपाहियोंके धक्के खाते हुए, अति सुन्दर राजमहलमेंसे बाहर निकलना पडता है. मार्गमें गलीमें वा चौहट्टेमें कहीं कोई उसको न बुलाता हैं, न कोई उसका आदर मान करता है. उसकी राजसत्ताके समयमें जो लोग उसका नाम सुनतेही थर २ कांपने लगते थे और मुखसे निकलते ही उसकी आज्ञाका पालन करते थे, वही अब उसकी ओर देखते भी नहीं. हाथीपर अथवा सुखपालमें बैठकर जब उसकी सवारी बजारमें होकर निकलती थी तब बडे २ कोटयाधीशसे लेकर दीन दरिद्रीतक सब मनुष्य उसको दंडवत् करते थे, आज उनमेंसे कोई उसको अपने पास खड़ा भी नहीं होने देता. विजयवान् शत्रुको आज्ञा होनेसे जहां तहां उसका अपमान वं तिरस्कार होता है, और धिक्कार मिलता है. एक अंगोछा मात्र पहने रहनेसे उसको मार्गमें कुत्ते भोंकते हैं, और बालक हुरें २ करते और तालियां बजाते और पीछे २ दौड़ते हैं. इतना होनेपर भी उसको नगरमें रहनेकी आज्ञा नहीं है. ठीक दो पहरका समय है. उष्णकाल होनेसे बड़ी कड़ी धूप पड़ रही है, राजाके पांवोंमें न तो जूते हैं और न शरीर पर वस्त्र है. अपने राजकालमें वह ऐसी गर्मीमें बाहर कब निकलनेवाला था? परन्तु कदाचित् निकलना ही पड़ता तो सैकड़ों घोड़े सवार उसके आगे पीछे दौड़ते जाते और जिसमें किंचिन्मात्र भी गरम वायुका प्रवेश न हो ऐसे अत्यंत ठंढे म्याने वा हाथीकी अंबारीमें बैठ कर वह बाहर निकलता, तथा शिरपर छत्र धराता, ऐसे राजाधिराज महाराजको मध्याह्न समय, नंगे पांव और नंगे बदन यकायक नगरमेंसे बाहर निकलजाना पडता है.

सूर्यनारायण अपनी बारहों कलाओंसे तप रहे हैं; पांवके नीचे भाड जैसी गरम २ रेत है, जंगलमें चारों दिशाओंसे अग्निज्वालाके समान लूके झपाटोंसे शरीर जल रहा है, और समय हो चुका है इसलिये कडकडाके भूख लग रही है, ऐसी स्थितिमें राजा जनक मिथिलापुरीमेंसे निकलकर चला जा रहा है. मार्गमें वृक्ष भी बहुतसे नहीं हैं कि जिनके नीचे क्षण भर विश्राम लेनेको भी बैठ सके. अत्यन्त कष्ट, शोक और खेदसे चूर्ण

हुए अन्तःकरणवाला, आंखोंसे अश्रुधारा वहाता हुआ लगभग सांझ होनेको हुई तब वह एक दूसरे नगरमें पहुँचा. वहां भी शत्रु राजाने दुहाई फिरवा दी थी जिससे जनकको कोई आश्रय देनेवाला नहीं था. भूखके मारे पेट पीठसे चिपट गया था, कलजे बैठ गये और आंखें बाहर निकल पड़ती थीं. दिन-भर रौरव नरक समान मार्गके दुःखसे पांव सीधे नहीं होते थे, शरीर शिथिल ही नहीं, बिलकुल अशक्त हो गया था. और रिपुजनकृत निज अपमान और पदभ्रष्ट होनेकी महाचिन्ता तथा खेद ये तीनों लोकोंमें भी नहीं समाते थे. यह सब कुछ हुआ, परन्तु पेट माननेवाला नहीं था. भूखके आगे और सब दुःख दब जाते हैं. अस्तु. अब पहले उसीका उपाय करना चाहिये ऐसा राजाने मनमें विचार किया, परन्तु कोई आश्रय देनेवाला न होनेके कारण राजा घर २ भिक्षा मांगने लगा. सारे नगरमें—उसके उन्नीस बजारोंमें चक्कर खाते २ थक गया और जब पिछला दो घड़ी दिन बाकी रहा तब भीख माग २ कर कहीं, महा कठिनाईसे केवल उन्नीस कौड़ियां इकट्ठी हुईं! 'अरे मेरे पास पाव पैसेका भी वित्त नहीं अब इससे मैं क्या २ खरीदूं?' फिर जैसे तैसे उन कौड़ियोंसे कुँभारके एक मिट्टीका ढीवरा (ठिकरेका रामपात्र–भिख मांग खानेका) मोल लिया और एक साहूकार, अपने सदाव्रतमें नित्य भिखारियोंको रांधी हुई (पकाई हुई) खिचड़ी दिया करता था वहां पर वह ठिकरा लेके पहुँचनेमें विलम्ब हो गया था और भिखा-रियोंको खिचड़ी पहलेसे बट चुकी थी, इससे सदाव्रतका अधिकारी धक्का मुक्की करके उसको वहांसे भी निकालने लगा. जब अत्यन्त दीनतासे उसने बहुतेरे हाथ जोडे, पांव पड़ा, गिडगिडाया तब अधिकारीको दया आगई और उसने रांधनेके पात्रके पेंदेमें जो कुछ इधर उधर बची खुची खिचडी रह गई थी उसको पोछपांछकर भिखारी राजाको देदी. उसे लेकर सब भिखा-रियोंके साथ २ बजारमें जाकर स्वप्ननगरका राजा (जनक) बैठा. सदा-व्रतमें खिचडीके साथ २ एकेक पैसे भर घी भी दिया जाता था. अति-शय क्षुधाके कारण आत्मा अत्यन्त आकुल व्याकुल हो रहा था और सारा शरीर कांप रहा था, जिससे भिखारियोंकी भीड़में घी लेते वक्त उसका हाथ स्थिर नहीं रहनेके कारण ठिकरा हिलना बंद नहीं हुआ और सारा घी नीचे जमीनमें गिर गया! यह कोरी (रूखी) खिचडी अब कैसे खाई जायगी इस विचारसे जब उसने उस अधिकारीसे फिर प्रार्थना की, अपनी

दीनता दिखाई तब उसने दया करके दूसरी बार घी डाला. उसने सोचा, खिचड़ी मिली, घी मिला, परन्तु मार्गमें बैठकर खाना अच्छा नहीं परन्तु भूख बहुत लगी है-सो कोई एकान्त स्थल देखकर, वहां बैठकर खिचड़ी खा लेऊं तो ठीक. देखते २ बजारमें ही एक दूकानके चबूतराके नीचे अच्छी जगह देखकर वहां बैठ गया, और धीरे २ कांपते हुए हाथमें ठिकरा लेकर दूसरे हाथसे घी-खिचड़ीको मिलाने लगा. 'अरे रे! हे परमेश्वर! मैं क्या था और क्या हो गया? हे प्रभु! तेरी लीला-माया अपरम्पार है! तेरी कला तूही जाने. तू क्षणभरमें राजाको रंक और रंकको राजा बना देता है, यह बात सत्य है! हे दीनबन्धु! तेरी लीलाकी बलिहारी है. और मैं तेरा बड़ा उपकार मानता हूं कि इतनी २ विपत्ति झेलने पर भी अन्तमें तूने मुझे अब अन्नसे भेंट तो कराई. हे परमात्मा! तू देनेवाला और मैं लेनेवाला हूं; किन्तु हे भगवन्! यह ज्ञान मुझे अबही आया है. नहीं तो संसारकी रीति है कि जो कुछ संपत्ति मिलती है तो मनुष्य कहता है कि, मेरे भाग्यसे मिली और जो दुःख आ पड़ता है तो कहता है निर्दय ईश्वरने दिया. विपत्तिही मनुष्यमात्रकी गुरु है और दुःख ही परम श्रेष्ठ सत्संग है. दुःखसेही तेरे मंगलमय नामाभिधानका मनुष्यको स्मरण हो आता है, सुखसंपत्तिमें भूला हुआ मनुष्य जब दुःखमें फंसता है तब तेरा स्मरण करता है. परन्तु हे प्रभु! यह सब कुछ मनुष्यके हाथ नहीं; क्यों कि हम सब तेरी मायाके अधीन हैं और तेरी मायाके कारणसे ही हम लोगोंकी ऐसी विपरीत मति हो जाती है, परन्तु जो कोई निरन्तर तेरे परम पुनीत नामका स्मरण करते रहते हैं उनको माया भ्रष्टमतिवाला नहीं कर सकती. आज तो तूने मुझे सचमुच समझाया ठीक, जैसी तेरी इच्छा. इतना भारी कष्ट सहने पर यह मांगा तांगा अन्न मुझको मिला है सो भी तू खाने देगा तो ही खाया जायगा; क्योंकि तू यंत्री है और मैं यंत्र हूं. यंत्रमात्र यंत्रीकी आज्ञामें रहनेवाले हैं. जैसे वह घुमावेगा वैसे घुमेंगे (फिरेंगे) ऐसा सोच विचार करते २ जब घी खिचड़ी एकमेल होगये तब वह भगवान्‌का नाम लेकर ज्योंही पहला ग्रास लेना चाहता था कि तत्काल, कहींसे लड़ते २ दो मस्त सांड़ परस्पर अपने २ सींगोंके बलसे हटतेहटाते वहीं आ पहुँचे. उनकी टक्करसे राजाके हाथमेंका ठिकरा फूट गया और खिचड़ी मिट्टीमें मिलगई! 'अरे रे! हा! हा! मेरा भाग्य मेरे प्रारब्ध! हे देव!

अब मेरी क्या गति होगी ?' यह अन्तिम शब्द बोलते ही जनक महाराज पुष्पशय्यापर चौंक पड़े और स्वप्नकी लीला अदृश्य होगई.

राजाको जागृत हुआ देखकर छड़ीदार " महाराजाधिराज जनकरायकी जय !" पुकारने लगे, तथा उनपर पंखे होने लगे, और चंवर ढुलने लगे, परन्तु राजाको और कुछ अच्छा नहीं लगता था, केवल स्वप्नकी बात उसकी दृष्टिमें खेलने लगी. वह अपने मनमें बड़े आश्चर्यके साथ विचार करने लगा कि " मैंने यह क्या देखा ? अरे ! अभी स्वप्नमें मेरी कैसी दुर्गति हुई मैंने देखी ? हैं ! वह स्वप्न था कि सत्य ? क्योंकि मेरी जो २ दशा हुई और जैसा २ कष्ट मुझे भोगना पड़ा वह सब मुझको प्रत्यक्ष वीतता हो ऐसा ही जान पड़ता था. इस समय मेरी जैसी स्थिति है और मैं जैसे उत्तमोत्तम राजसी भोगका अनुभव कर रहा हूं, उतना ही,—नहीं २ अन्तकी पंक्तिका–पराकाष्ठाका दुःख मैं कंगाल होकर अभी भोग चुका हूं; तो क्या यह आश्चर्य नहीं है ? क्या मैं अभी घड़ी भर पहले था वैसा एक कंगाल पुरुष हूं वा इस मिथिला देशका राजा, इन दोनोंमेंसे मैं कौन हूं ? जो ऐसा मान लिया जाय कि मैं राजा नहीं एक कंगाल हूं तो ये हजारों दास दासियां और राजपाट और सेना समृद्धि इत्यादिक सब पदार्थ प्रत्यक्ष मेरा राजापन सिद्ध करते हैं. और यदि मैं कंगाल नहीं हूं और सचमुच राजा हूं तो फिर अभी क्षणभर पहले परम क्षुधार्त अवस्थामें मेरे हाथमेंकी खिचड़ी धूरमें मिलगई थी, यह भी मैं प्रत्यक्ष देख चुका हूं. और अभीतक मुझको उस दशामें जो दुःख हुआ था उसके भयसे मेरा कलेजा कांप रहा है; इन दोनोंमेंसे सत्य कौन ? यह सत्य कि वह सत्य ? इस विषयमें मेरे मनका समाधान कौन करेगा ? मैं यह बात किसको कहूं ? मैं राजा होकर, अभी मेरी भोगी हुई दीनता–महा कंगालपनकी बात क्या किसीके आगे प्रकाश कर सकता हूं ? नहीं, कदापि नहीं. यह बात मैं किसीसे नहीं कह सकता. अब इसका समाधान कैसे होगा ? " इसी भांति तर्क वितर्क करते२ राजा उसीमें तल्लीन होगया. उस दिनसे राजाका चित्त किसी भोगके भोगनेको नहीं चाहता, जगतके सब उत्तम २ पदार्थोंपरसे उसकी प्रीति हट गई और रात दिन 'यह सच्चा कि वह सच्चा,' इसी बातका मनन स्मरण किया करता. निदान राजा एक २ करके बड़े २ प्रसिद्ध२ ऋषि, मुनि, महर्षि, तपस्वी, विद्वान् ब्राह्मणादिकोंको निमंत्रण करके अपने यहां बुलाने लगा

और 'यह सच्चा कि वह सच्चा' मात्र इतनाही प्रश्न उन लोगोंको अपने समाधानके लिये पूछने लगा. प्रश्नका कुछ भी शिर पैर हो तो कोई उसका उत्तर देनेवाला समर्थ पुरुष भी मिल जावे; किन्तु बँधी मुट्ठी 'यह सच्चा कि वह सच्चा ?' ऐसे गुप्त प्रश्नका उत्तर चाहे जैसे विद्वान् और ज्ञानीसे भी कैसे दिया जा सके ? जिन २ महान् पुरुषोंको वह अपने यहां बुलाता, उनको अपनी सभामें सुन्दर आसनपर बिठाकर बड़े प्रेमसे उनका अर्चन-पूजन करता. तदनन्तर प्रश्न पूछता कि ' महाराज ! दासकी इतनी जिज्ञासा है कि आप मेरे एक प्रश्नका समाधान कृपापूर्वक कर देवें और वह प्रश्न भी मात्र यही है कि ' यह सच्चा कि वह सच्चा ?' यह प्रश्न पूछने पर जब महात्माओंसे कुछ भी उत्तर नहीं दिया जाता तब वह उनको यही कहता कि 'हे द्विजवर्य ! इस प्रश्नका उत्तर नहीं मिलनेसे, अधिक तो मैं क्या कहूं, परन्तु मुझे अन्न जल भी अच्छा नहीं लगता तो आपसे मुझको ऐसी दशामें छोड़ जाना कैसे बने ? आप सब प्रजाके माता पिता हो. हम राजा और सारी प्रजा ये सब ही आपकी सन्ततिके समान हैं; क्योंकि आप ही हम सबको धर्मशास्त्रोंका उपदेश करके सद्धर्ममार्गमें चलानेवाले हो. आप नित्यकृत्य अग्निहोत्र, देवार्चन, इत्यादिके लिये सर्व आवश्यक सामग्री राजभंडारमेंसे यथेच्छ लीजिये और मैं आपकी आज्ञानुसार सब प्रकार आपकी सेवामें हाजिर हूं, सो आप कृपापूर्वक यहीं निवास कीजिये. यह राज्य और संपत्ति सब आपहीकी है. यदि आप हमारा अपमान करके चले जायँ तो फिर हम किसकी शरण लें ? इस लिये जब तक मेरे प्रश्नका यथार्थ उत्तर मुझको न मिले तब तक आप कृपापूर्वक यहीं रहकर मेरी सेवाको अंगीकार करें. ' राजाका इस प्रकार न्यायपुरःसर संभाषण सुनकर कोईभी उसको अमान्य नहीं कर सकता था और इसीसे जो २ ऋषि मुनि वहां आते, वे सब कुछभी आनाकानी किये बिना जनकपुरीमें रह जाते थे. राजाके यहांसे उनको सब सामग्री पूरी २ पहुँचती रहती थी, और उनके निवासके लिये सब भांति सुभीतेवाले ऋषिमुनियोंको रहने योग्य आवास, जनकपुरीकी विलास-वाटिकाओंमें तैयार करा दिये जाते थे. ऐसा करते २ कई वर्ष व्यतीत होगये, परन्तु राजाके प्रश्नका उत्तर नहीं मिला. ब्राह्मण भी अपने घर कुटुंबका वियोग सहते हुए वहां ही पड़े हैं, परन्तु वहांसे उनको निकलते नहीं बनता.

एक दिन महाराजा जनक सुखपालमें बैठकर किसी कार्यनिमित्त

अपने अधिकारियोंको साथ लिये हुए छड़ी सवारीसे राजमार्गसे जा रहे थे, इतनेमें एक सँकड़े मार्ग पर उनकी सवारी रुकी. इस सवारीमें सबके आगे२ एक छड़ीदार जो बहुत विचक्षण था, चल रहा था. वह जब उस जगह पहुँचा तो क्या देखता है कि, आठेक वर्षकी अवस्थावाला बड़ा कुरूप एक ब्राह्मणबालक मार्गके बीचोबीच बैठा हुआ है. उसके सब अवयव बड़ी विचित्रतासे बांके टेढ़े होरहे थे, जिससे उसको चलनेमें बड़ा कष्ट होता होगा ऐसा दिखाई देता था. घोड़े पर सवार हुआ और सवारीमें सबसे आगे चलनेवाला वह चोबदार उसके निकट पहुँचा तो कहने लगा– "रे मार्गमें कौन है? चल, एक तरफ हट, मार्ग दे; महाराजा जनककी सवारी आ रही है." उसके ये वचन सुनतेही वह बालक यकायक क्रोध कर कह उठा "रे अन्धे! अरे *सनेत्रांध! क्या तू अपने नेत्रोंसे नहीं देख सकता सो मुझे पूछता है कि मार्गमें कौन है?" उस ब्राह्मण–बालकका ऐसा निर्भय प्रत्युत्तर सुनकर कुछ आश्चर्य होनेसे छड़ीदार कुछ रुका, और विशेष बोलना चाहताही था इतनेमें तो वही बालक फिर बोला—" अरे मूढ़मती! किनारे हटकर मार्ग देनेका किसको अधिकार है सो भी तू नहीं जानता क्या? इस परसे तो केवल तूही नहीं, वरंच जिसके लिये तू मार्ग देनेकी आज्ञा करता है वह राजा जनक भी महामूढ़ दिखाई पड़ता है. जा, मैं मार्गमेंसे नहीं उठता, तेरी आज्ञा मुझे मान्य नहीं है. जो यहीं होकर जाना हो तो अपने राजाको कह दे कि इधर मार्ग बंद है, किसी दूसरे मार्गसे चला जा." इस न्याययुक्त उद्दण्डताको देखकर चोबदार बड़े अचंभेमें पड़गया. इतनी छोटी वयका बालक जो कुछ कहता है सो न्यायपूर्वक कहता है इस कारण वह उसको कुछभी नहीं कर सका और अपने घोड़ेको मोड़ कर राजाके पास जाकर उसने सब वृत्तान्त निवेदन किया. चोबदारके मुखसे यह समाचार सुनकर राजाने पालखी खड़ी करवाई, और स्वयं ज्ञाता और चतुर होनेके कारण चोबदार द्वारा सुने हुए ब्राह्मणपुत्रके शब्दोंसे आश्चर्यान्वित होकर उस (छड़ीदार) को कहा–" तू कहाता है तदनुसार तो ब्राह्मणपुत्रका बोलना यथार्थ ही है. उसके तेज और शरीरपरके यज्ञोपवीतादि चिह्नोंसे तुझको समझलेना चाहिये था कि वह कोई ब्राह्मणबालक है, तिस

* आंख होतेहुए भी अंधा.

पर भी तूने उसको यह प्रश्न किया कि, 'मार्गमें कौन है' सो तुझे नहीं कहना चाहिये था. इसीसे उसने तुझको सनेत्रांध कहा. फिर 'हटकर मार्ग दे' यह तेरा कहना भी अनुचित ही था; क्योंकि वह ब्राह्मणपुत्र है इस लिये हम क्षत्रियोंका धर्म है कि उसको वन्दन करें और उसके जानेका मार्ग छोड़ दें. इसके सिवाय वह चलनेमें शरीरसे बिलकुल असमर्थ है तो ऐसे अशक्त निर्बल मनुष्यको, राजा प्रजा सबको ही मार्ग देना उचित है; क्योंकि हम राजमदमें छककर चाहे जैसी शीघ्रतासे उनको हट जानेका कहें तो भी वह किसी प्रकार हट नहीं सकता था, इसीलिये हमको उसे हटानेकाभी अधिकार नहीं था, यही कारण है जो उसने तुझको मूढ कहा और सेवकके किये हुए अपराधका भागी भी स्वामी होता है अर्थात् जो सेवकने अन्याय किया है तो उसका स्वामी भी अन्यायी ही होगा ऐसा अनुमान किया जा सकता है, इसीसे उसने मुझको भी मूढ कहा. इसपरसे जान पड़ता है कि, वह बालक बड़ा बुद्धिमान् और चमत्कारी है. अतएव, उसको यहां बुला ला. " चोबदारने बालकके समीप जाकर कहा—"हे ब्रह्मपुत्र ! मैं आपको वन्दन करता हूं. मेरा अपराध क्षमा कीजिये और महाराजा जनक आपको बुलाते हैं. सो कृपा करके चलो. वे आपका मार्ग देखते हुए मार्गमें ही खड़े हैं." यह सुनकर उस बालकने कहा—"कैसे बड़े आश्चर्यकी बात है ? अरे कितनी भारी अज्ञानता है ? हजारों लाखों मनुष्योंपर अपना अंकुश रखनेवाले और उनको अपनी आज्ञाके बन्धनमें रखनेवाले भूपतिमें ही जब न्यायपूर्वक चलनेका ज्ञान नहीं तब वह दूसरोंको न्यायमें कैसे प्रवृत्त कर सकता है ? मैं चल नहीं सकता हूं सो राजा जान चुका है, तथा अभी वह भी न्यायासन पर विराजमान नहीं है कि, जिससे उठकर यहांतक न आसके. अभी वह मार्गमें खड़ा है और जो मैं नहीं रोकता तो कभी यहां आ पहुँचता, जो वह दूर खड़ा रहकर मुझ अपंगको वहां आनेकी आज्ञा देता है तब इसको न्यायी कौन कह सकता है ? परन्तु यह तो उसका घमंड है. राजसेवक ! तू जा, जो तेरे राजाकी इच्छा होगी तो वह आपही मेरे पास चला आवेगा. मैं वहां नहीं आता." यह सब वृत्तान्त चोबदारने लौटकर राजाको कह सुनाया. राजा आश्चर्यसे कहने लगा कि—"सचमुच, वह कोई चमत्कारी पुरुष दिखाई देता है. अस्तु चलो, मैंही उसके पास आता हूं. ऐसा कहकर सुखपालमेंसे

उतरकर पांव २ चलकर मार्गमें बैठे हुए उस द्विजपुत्रके पास राजा गया. उस वालकका स्वरूप देखतेही तत्काल हँसी आजाने जैसी वात ही थी सो राजाको भी भीतरसे हँसी आई, किन्तु शापके भयसे उसने मनहीमें रोककर तुरन्त उसको नमन किया, और वहुतसी स्तुति करके कहा कि-"हे ब्रह्मदेव ! आप भले पधारे! आपने मेरे नगरको पवित्र किया, इससे मुझे वडी प्रसन्नता होती है. इसी भांति आप मेरे गृहको भी पवित्र कीजिये. आप किसके पुत्र हो और कहांके रहनेवाले हो ? आपका नामाभिधान क्या है ? आप यहां किस कार्यके लिये पधारे हो ? इसके उत्तरमें कुवडे वालकने कहा-" हे राजन्! मैं कहोल नामा ऋषिका पुत्र हूं. हमारा मूल निवास सरस्वतीके तीर पर है. परन्तु मेरे पिता-कहोल ऋषि, दीर्घ कालसे घर पर नहीं होनेके कारण मैं अपनी माताके साथ, अपने मामाके यहां रहता हूं. मेरा नाम अष्टावक्र है और आठ ठिकाने मेरा अंग टेढ़ा हो गया इसीलिये मेरा ऐसा नाम भी पड़ा है. अपनी मातासे मैंने ऐसा सुना है कि, जनक नाम राजर्षिने अपने किसी प्रश्नका समाधान करनेके लिये अनेक ऋषियोंको वहुत वर्षोंसे अपने यहां रोक रखकर उनके कुटुंबियोंसे वियोग कराया है. अभीतकभी जनक राजाके मनका उनसे समाधान नहीं हो सका, इस कारण राजा कदाचित् ऐसा मान वैठे कि इस जगतमेंसे ब्रह्मवीज नष्ट होगया होगा, तो मैं उस प्रश्नका समाधान करनेको यहां आया हूं. जिसको लोग जनक महाराज कहते हैं सो तू ही है ? कह, तेरा ऐसा कौनसा प्रश्न है जिसका आज तक किसीसे समाधान नहीं हो सका ? राजाने निवेदन किया—" महाराज ! वह जनक मैंही हूं और मेरे ही प्रश्नका आजतक किसीसे उत्तर नहीं मिला, परन्तु आप एकवार कृपा करके पहले मेरे राजभवनको पवित्र कीजिये. तदनंतर मैं अपना प्रश्न आपको विदित करूंगा. जब राजाके आग्रहसे ऋषिपुत्र अष्टावक्रने राजभवनको जाना स्वीकार किया; तव, राजाने उसको और उसके मामाको अपने साथ पालकीमें विठालिया और सवारी पीछी राजमहलकी ओर रवाना हुई.

राजाने ऋषिपुत्रको राजभवन लेजाकर, भलीभांती आदरसन्मानपूर्वक पूजन किया, भोजन पानादिसे सन्तुष्ट किया और एक सुन्दर स्थानमें निवास कराया. दूसरे दिन समय होनेपर राजाने अपने महलमें वड़ी भारी सभा की. जब सव प्रधानगण और भृत्यवर्ग तथा नगरके प्रतिष्ठित सभ्य

गृहस्थ अपने २ स्थान पर बैठे और समस्त ऋषि-मुनि जो अवतक राजाके आश्रयमें काल व्यतीत कररहे थे, वे सब आकर अपने २ योग्य स्थान पर विराजमान हुए, तब राजाने अष्टावक्र ऋषिको बुलानेके लिये प्रतीहार-चोबदारको उनके डेरे-उतारे पर भेजा. अल्पकालमें उसने लौटकर निवेदन किया कि " महाराज ! अष्टावक्र ऋषि पधारते हैं. " यह सुनकर समस्त सभासद्गण उनको देखनेके लिये बड़े आतुर होकर ऊंचा शिर करके बैठे. अष्टावक्र नाम सुनकरही उन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ. वे कल्पना करने लगे कि ' ये अष्टावक्र कौन और कैसे मुनि हैं ?' क्षणभरमें लकड़ी टेकते २ ऋषिबालक राजसभाके द्वार पर पहुँचा कि, तत्क्षण उनके सन्मानार्थ सर्व सभासद् उठ खड़े हुए. सब कोई उठकर खड़े तो होगये परन्तु इस विलक्षण मूर्तिको देखकर किसीका मन वशमें नहीं रह सका-सबके सब खिलखिलाकर हँसने लगे; क्योंकि जब एक पांव आगे रखते तब ही उन बालमुनिके आठों अंग एक ही साथ विचित्र ढंगसे टेढ़े हो जाते थे. और भी जो कुछ घटता था सो यह कि सभाका ऊंचा चौखट बीचमें आजानेसे हाथमेंकी लकड़ीकी आंटी खाकर वे गिरपड़े यह देखकर राजाका भी धीरज छूट गया-और मुखपर वस्त्र रखकर वह भी हँसने लगा. तदनन्तर उनके मामाने उनको उठाकर खड़ा किया और वे भीतर गये, तो सब लोगोंको हँसते, देखकर स्वयं भी मुंख टेढ़ाकर हँसने लगे. राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ, कि, *मानभंगका परिणाम तो कोपानल है, महात्मा जन उस क्रोधाग्निसे समुद्रको* भस्म करडालते हैं, ऐसा होने पर भी यह ऋषिकुमार उलटा हँस रहा है, इसका क्या कारण ? जो जितेन्द्रिय होते हैं वे मानापमानके वशीभूत नहीं होते, अथवा क्षुद्र मनुष्य मानभंग होनेसे दुःखी नहीं होता. क्या यह क्षुद्र है वा जितेन्द्रिय है सो देखना चाहिये. यह अज्ञ तो नहीं; क्योंकि, कल इसने जो २ उत्तर दिये थे उन परसे समझा जाता है कि कोई महात्मा पुरुष होना चाहिये. तदनन्तर गुणवान् और महात्मा पुरुषोंके समागमके अभिलाषी राजा जनकने उनको एक सुन्दर आसन पर बिठाया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि-" महाराज ! आपके हँसनेका क्या कारण था ? " अष्टावक्रने कहा-" तेरी इस मूर्खसभाको देखकर. परन्तु, तू क्यों हँसता था सो तो कह ? " राजाने कहा-" महाराज ! मैं सत्य २ कहता हूं, आप क्रोध न करें. आपकी स्थिति देखकर मेरे मनमें यह

विचार उत्पन्न हुआ कि, ये मेरे यहां निवास करते हुए ऋषि महर्षि जो अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण अपने पराक्रमसे सूर्यको स्तम्भित करनेमें भी समर्थ हैं, जब इनसे भी मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं दिया गया तब आप मेरा समाधान कैसे कर सकेंगे ? " यह सुनकर अष्टावक्रने क्रोध करके कहा–' तू मूर्ख है, इसीसे मुझको भी हँसी आगई; क्योंकि जिनमें गुण दोषकी परीक्षा अथवा अच्छा बुरा समझनेके लिये सारासारविचार करनेकी शक्ति नहीं ऐसे पुरुषोंसे भरी हुई इस सभामें बैठकर तू प्रजाका कौनसा हित करता होगा ? और ये पुरुष तुझको क्या अच्छी सम्मति दे सकते होंगे ? इस कारण मुझे भी हँसी आगई. बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है कि, जिस राजसभामें सकलगुणसंपन्न और सदसद्विवेकी * तथा प्रौढ़ विचारके पुरुष होने चाहिये, वहीं–उसी राजसभामें आज केवल पशुसमान विचारशून्य पुरुष एकत्रित हुए देखनेमें आते हैं. " ऐसे बेधड़क और निःस्पृहताभरे हुए वचनोंको सुनकर सारी सभा किंकर्त्तव्यविमूढ होगई. फिर वह बालक बोला–" अरे राजा ! तू विचार कर कि, तृषातुर मनुष्यको गंगाके प्रवाहमें बहते हुए निर्मल जलकी आवश्यकता है अथवा उसके टेढ़े बांके और कीचड़वाले किनारोंकी ? किनारे सुशोभित हों परन्तु प्रवाहस्थलमें पानी न हो तो क्या मनुष्य कीचड़ खाकर तृषा मिटा सकेगा ? ऐसे ही क्षुधातुर मनुष्यको भोजनके समय परोसे हुए अन्नकी आवश्यकता होती है न कि सुवर्ण, चांदी अथवा अन्य धातुके बरतनोंकी. जो बरतन सोने चांदीके हों और उनमें भूसेके लड्डू रखदिये जायँ तो क्या उससे भूख मिट जायगी ? क्या वह बरतनोंको चबाकर वा चाटकर संतुष्ट हो जायगा ? इसी प्रकार, मैं शरीरसे कुरूप और कुबड़ा हूं और मेरे हाथ पांव आदि सब अंग वक्र हैं, परन्तु इनसे तुझे क्या प्रयोजन है ? तू मुझको जो प्रश्न पूछेगा उसका प्रत्युत्तर, मेरे हाथ, पांव, कान, आंख, नासिका, पेट इत्यादि नहीं दे सकते. तेरे प्रश्नका उत्तर तो केवल मेरी वाणी दे सकेगी, कि जो काली या कुबड़ी नहीं है. अच्छा, चल मूढ़ ! शीघ्रता कर. क्या तेरा प्रश्न है ? यह रचना देखकर सब सभासदों सहित राजा बड़ा विस्मित हुआ और एक आठ वर्षके बालककी ऐसी प्रतिभा † देखकर उसने समझ लिया कि यह कोई बड़ा भारी महात्मा है, और इसमें कोई बड़ा दैवी चमत्कार है. तदनन्तर

* सत् और असत्को जाननेवाले. † नई कल्पनावाली बुद्धि.

राजा सिंहासन परसे नीचे उतरा और साष्टांग दंडवत् करके उनसे अपने अपराधकी क्षमा मांगकर, हाथ जोड़, सन्मुख खड़ा रहा.

राजाके गुप्त प्रश्नका उत्तर सुननेके लिये स्वयं राजा तथा ऋषि मुनि आदि समस्त सभासदगण अत्यंत उत्कंठित होरहे थे. उनकी ऐसी जिज्ञासा देखकर ऋषिपुत्रने राजाको फिर कहा—" बोल तेरा क्या प्रश्न है ?" राजाने सदाके नियमके अनुसार कुछभी न्यूनाधिक नहीं कहकर केवल इतनाही कहा कि 'महाराज ! यह सच्चा कि वह सच्चा ?' यह सुनतेही ऋषिकुमारने कहा—" बस ! क्या इतनेके लिये ही तूने इतने ऋषि-मुनियोंको वृथा रोक रक्खा था ? हे राजा ! इस सत्यके शोधन करनेमें केवल तेरी लज्जाने ही तुझको इतना भारी दुःख दिया है, और तूने उस अपनी लज्जाके कारणही इन सब ऋषि-महर्षियोंको संतापित किया है. जो तू लज्जाको त्यागकर स्पष्ट रीतिसे प्रश्न पूछता तो अब तक कभी तेरा समाधान होगया होता, परन्तु इसमें मुख्य तेराही अपराध है. अस्तु, अब श्रवण कर. यदि तू अपने प्रश्नका उत्तर गुप्त रीतिसे चाहता हो तो आपही समझ ले कि 'जैसा वह वैसा ही यह ! उसमें और इसमें कुछभी भेद नहीं. जैसा वह दिखाई देता था और फिर कुछ नहीं, वैसे ही यह भी है—दिखाई देता है और कुछ नहीं है.' इतना सुनतेही राजा ऋषिपुत्रके चरणोंमें गिर पड़ा और 'वाह सद्गुरु ! धन्य सद्गुरु !' इस भांति पुकारने लगा; क्योंकि इस उत्तरसे उसका यथोचित समाधान होगया. परन्तु यह रचना देखकर समस्त सभासदों तथा ऋषियोंकी उत्कंठा तो और भी बढ़ गई, उनके मन अधिकतर शंकाशील हो गये कि, 'क्या तो राजाने पूछा और क्या ऋषिपुत्रने कहा ?' अनन्तर उन्होंने ऋषिकुमारको विनती की कि—" हे ब्रह्मपुत्र ! इस प्रकार गूढार्थ कह देनेसे हमें क्या लाभ ? आपके दिये हुए उत्तरसे अकेले राजाके मनका ही समाधान हुआ; परन्तु हम लोग कुछ नहीं जान सके. अतः हे देव ! अनुग्रह करके हमारी सबकी शंकाका निवारण हो सके ऐसी रीतिसे इसका विवेचन कीजिये." अष्टावक्रने कहा—" राजन् ! इन सभासदोंका कहनाभी उचित है, इसकारण मैं तेरे प्रश्नका पर्दा उद्घाटन करता हूं. हे महानुभावो ! इस राजाने स्वप्नमें अपना उदय और अस्त दोनों देखे, जिससे इसको शंका हुई कि, मैं वैभवसंपन्न हूं तिसपर भी स्वप्नमें भिखारी बनगया, इनमें सत्य कौन ? मैंने उत्तर दिया कि, जो कुछ सुख, दुःख, हानि, लाभ तूने स्वप्नमें

देखा था वह सब मिथ्या है, तैसे ही यह सांसारिक दर्शनभी असत्य है. जैसा स्वप्न तैसा ही यह संसार इसीकारण ज्ञानी महात्मा पुरुषोंने संसारको स्वप्नवत् कहा है. जिस भांति राजाने स्वप्नमें अपना राज्य गँवाया, क्षुधा सही, दूकान २ फिरकर भिक्षा मांगी, जैसे तैसे महाकठिनतासे ठिकरा तथा खिचडी प्राप्त की और उसको खानेका बड़ा प्रयत्न किया तथा उत्कंठापूर्वक मुखमें ग्रास रखना चाहता था कि, तत्क्षण लडते हुए बैलोंके धक्केसे ठिकरा फुट गया और खिचडी धुलमें मिल गई अर्थात् आशाही आशामें, ऐसा मिथ्या प्रयत्न करते हुए भी अन्तमें इसको किंचिन्मात्र भी सुख नहीं रहते यह जैसाका तैसा निराश और दुःखी रहा. तैसे ही यह इसका राज्य तथा जिस दिन इसको स्वप्न हुआ था उस दिनका इसका अनुपम राज्यवैभव, ये सब मिथ्या हैं." तदनंतर राजाको संबोधन करके कहा—"हे राजा ! जो तुझको प्रत्यक्ष देखना हो तो तू विचार करके देख कि, उस दिनका स्वप्नमें भोगा हुआ दुःख और जागृतमें भोगा हुआ राज्य-सुख इन दोनोंमेंसे आज तेरे पास क्या है? उस समयके त्राससे क्या तुझको अब कुछ पीड़ा होती है? अथवा उस दिनके राज्यवैभवसे इस समय तुझको अब कुछ भी सुख मिल-रहा है ? नहीं, कुछ नहीं. जो स्वप्नका सुख दुःख ही झूठा हो, संसारका सच्चा हो तो निरन्तर जैसेका तैसा बना रहना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता. स्वप्नके समान इस संसारका भी नाश होता चला जाता है. अन्तर केवल इतनाही है कि निद्रामें दिखाई देनेवाला छोटा स्वप्न असत्य है तैसेही जागृत अवस्थामें दिखाई पड़ता हुआ यह बड़ा स्वप्न भी असत्य है. सेरभर अन्न एक दिन चलता है और मनभर अन्न चालीस दिन तक चलता है, परंतु जैसे सेरभर खाजाने परभी शेष कुछ नहीं रहता तैसेही चालीस दिनमें मनभर खालेने पर भी शेष कुछ नहीं रहेगा. हे राजा ! परमात्माने ज्ञानी जनोंको समझानेके लिये जैसा रात्रिका स्वप्न निर्माण किया है तैसाही संसार स्वप्न बनाया है. और ज्ञान होनेके लिये ही उदाहरणरूपसे यह स्वप्न रचा है. जैसे किसी देश वा नगरका चित्र (नक्शा) तथा अन्य किसी प्रकार बनाया हुआ उसका नमूना देखनेसे उस देशका वा नगरका ज्ञान होता है तैसेही स्वप्न देखनेमें तो सच्चा है परन्तु परिणाममें विनाशी है, उसी प्रकार यह संसार भी अनित्य है ऐसा सचमुच निश्चय होता है. अतएव मैं फिर भी यही कहता हूं कि, जैसा वह तैसा यह है; उसमें और इसमें कोई भेद नहीं.

परन्तु हे भूपति ! केवल सारासार विचार करनेवालेकोही इस सत्यासत्य वस्तुकी लीला समझ पड़ती है, अन्य किसीको नहीं. तुझको जब स्वप्न और संसार इन दोनोंमें सार पदार्थ कौनसा ? तथा असार क्या ? यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई तभी तुझको आज विदित हुआ कि, दोनोंमेंसे एकभी साररूप नहीं. याद रख कि, सारासार विचार करनेवाला पुरुष ही कालांतरमें कल्याणको प्राप्त होता है."

ऐसा समाधान सुनकरके सारी सभा चकित स्तम्भित हो गई, और सारा ऋषिमंडल इस द्विजपुत्रकी प्रशंसा करने लगा तथा अनेक प्रकारके आशीर्वाद देने लगा. तदनंतर राजाने ऋषिपुत्रको प्रणाम करके विनती की–"हे सद्गुरु ब्रह्मपुत्र ! आपके समाधानसे मुझको एक नूतन शंका उत्पन्न होगई कि, जब स्वप्न और संसार ये दोनों मिथ्या हैं–असार हैं, तब इनमें सार क्या है ?" अष्टावक्रने कहा—"इस भांती सूक्ष्मप्रश्न करना ही सच्चे मुमुक्षु पुरुषका लक्षण है और जो यह जिज्ञासा रखता है वही भाग्यशाली कहलाता है. अब तेरी शंका–जिज्ञासाके विषयमें श्रवण कर. स्वप्न और संसार दोनों मिथ्या हैं, असार हैं, असत्य हैं, और नाशवान् हैं; परन्तु जो इनका द्रष्टा–अनुभव करनेवाला चैतन्यमय है वही एक मात्र सत्य है. सारभूत है. वह स्वयं परमात्मा है. वह अजर, अमर, अविनाशी नित्य और मुक्त है. वह चराचरमें व्याप्त हो रहा है; इसी कारण विष्णु कहलाता है. मैं, तू ये ऋषिगण, मन्त्रीमंडल, समस्त सभासद और अन्ततः समस्त प्राणीमात्रमें जो अकेला ही साक्षीभूत होकर बसरहा है वही नित्य है, सार है; और वेदोंमें जिसका वर्णन है सोही पुराण–पुरुष पुरुषोत्तम है. उसीकी प्राप्तिके लिये, भक्त और ज्ञानी जन ज्ञान भक्तिके द्वारा उसको जानकर, उसीकी भक्ति करते हैं, और योगीजन उसीका ध्यान करते हैं, वही अकेला अपनी इच्छामात्रसे उत्पन्न करके इस जगत्का रक्षण करता है, वही पोषण करता है, और वही इसका संहार करता है. युग २ में अवतार धारण करके वही प्रभु धर्मको संस्थापन करता है, और योगी तथा भक्तजनोंका परम वात्सल्यसे रक्षण करता है, वही त्रिगुणात्मक रूपसे ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप बना हुआ है–व्याप्त है, और वही इन्द्रादिक सब देवताओं तथा सर्वभूत प्राणीमात्रके रूपमें, भिन्न २ रूपमें विराजमान है. जड और चैतन्यरूप है. वही सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और विराटसे भी विराट्रूप है. वही

निर्गुण है, और वही सगुण है. वही निराकार और वही साकार है, जो कहो सो वह है, जहां देखो वहां वही है, और चराचरमें भी वही है. इस कारण सबमें उसी एकको सारभूत—नित्य और सत्—चित् आनन्द जानना—समझना चाहिये." उस बालकका ऐसा अप्रतिम व्याख्यान श्रवण करके सारी सभा चित्रवत् स्तब्ध रह गई; और राजा आनन्दसागरमें तैरने लगा. उसके मनमें विचार हुआ कि " मुझ अकिञ्चनको आज सद्गुरुकी प्राप्ति हुई है. साक्षात् परमात्माने ही मुझपर कृपा करके मेरे यहां अपने आप इस ज्ञानमूर्तिको भेजा है. इस लिये ऐसा उत्तम अवसर क्यों व्यर्थ जाने दूं ? मुझको अवश्य इनका सदुपदेश ग्रहण करना चाहिये." ऐसा सोचकर वह कहने लगा—' हे सद्गुरु ! मेरे किसी जन्मके संचितके योगसे आप मुझे पवित्र करनेको यहां पधारे हो, ऐसा मेरा मन कहता है. अब मुझ दास पर दया करके सारभूत परमात्माकी कैसी महिमा है और उसका स्वरूप क्या है सो सुनाकर मुझे ब्रह्मोपदेश दीजिये.' यह सुनकर अष्टावक्रजी बोले—" हे जनकराज ! उपदेशकी बात तो पीछे रही. पहले तो तेरे प्रश्नका समाधान हुआ, उसकी दक्षिणा मुझे दे." तत्क्षण राजाने अपने प्रधानको आज्ञा देकर कोषाध्यक्षसे अति उत्तम बहुमूल्य रत्न—हीरा मोतियोंसे भरे हुए दो सुवर्णके बड़े २ थाल मँगवाये और ऋषिपुत्रको अर्पण करने लगा. यह देखकर ऋषिपुत्रने हँसकर कहा—" अरे मूढ़ ! मैं इनको लेकर क्या करूं ? तूने तो ऐसे रत्नोंके दो थाल ही मँगवाये हैं परन्तु जब ऐसे रत्नोंसे परिपूर्ण अनेक भंडार क्षणभरमें उत्पन्न करसकें ऐसी सर्व सिद्धियां हमारे (मेरे जैसे ज्ञानियों—आत्मज्ञानियोंके) आगे दासी बनी खड़ी रहती हैं, तब इनसे मेरा क्या संतोष हो सकता है ? मैं तेरी सभामें द्रव्यकी लालसासे नहीं आया हूं. और न मुझको कुछ मान प्रतिष्ठाकी आवश्यकता है, परन्तु ' ब्रह्मबीज नष्ट होगया क्या ?' ऐसी तेरी शंकाको निवृत्त करनेके लिये, और अनेक वर्षोंसे अवरोधित ऋषिवरोंको उनके कुटुंबसे भेंट करानेरूप उनकी परमार्थ सेवा करनेके लिये ही मैं यहां आया हूं, इसलिये, जो मुझको अपेक्षित है सो ही मुझको दे." राजाने कहा—" हे गुरुदेव ! जो आपकी आज्ञा हो वही वस्तु लाकर आपकी भेट करूं. अत एव आप आज्ञा दीजिये." ऋषिपुत्रने कहा—" हां, ऐसा है. तब तो तूं अपना तन (शरीर), मन और धन ये तीनों ही पदार्थ मुझको गुरुदक्षिणामें देदे

तो बस हुआ." राजाने बड़े हर्षपूर्वक ये तीनों वस्तु संकल्प करके गुरुदेवको अर्पण की. तिस पीछे कर जोड़कर उपदेश देनेकी प्रतीक्षा करने लगा.

अब ऋषिकुमार क्या उपदेश करेंगे यही देखनेके लिये सारी सभा बड़ी आतुर हो रही थी, राजा भी जिज्ञासु बनकर सन्मुख खड़ा हुआ है, इतनेमें राजसभाके द्वार पर पुकारता चिल्लाता एक ब्राह्मण आकर कहने लगा– " हे नरनाथ ! हे महाराज ! मेरा रक्षण करो, मुझे दुःखसे मुक्त करो." गोब्राह्मणप्रतिपालक महाराजाधिराज जनकराय उसके दीन वचन सुनकर दयासे उसकी ओर देखते हुए "तुझे क्या दुःख है ? मेरे राज्यमें तेरे समान ब्राह्मणको कौन दुष्ट दुःख देता है ? " ऐसा पूछना चाहते थे कि तत्क्षण विचार उत्पन्न हुआ कि "अरे ! मैंने अपना तन तो गुरुजीके अर्पण किया है अब मेरा कहां रहा ! तो फिर मैं उसकी ओर कैसे देखूं वा उससे कैसे बोलूं ? क्यों कि वाणी भी तो शरीरमें ही समाई हुई है. " यही सोच विचार कर राजाने उस ब्राह्मणकी ओर देखाभी नहीं और उससे कुछ पूछा भी नहीं. तब वह ब्राह्मण विशेष विलाप करने लगा कि–" मैं ऋणी हूं, मुझ पर बड़ा भारी ऋणका बोझा है जिससे लेनदार–महाजन लोगोंने मेरी सर्व संपत्ति हरण करली है, तिस पर भी मेरा छुटकारा नहीं हुआ. मेरे स्त्री–पुत्र और कुटुंबीजन अन्न वस्त्र विना बड़े दुःखी हैं, तड़प रहे हैं, और मुझको कहीं किसीका आश्रय न मिलनेसे मैं आपके पास आया हूं; अत एव, आप जैसे गोब्राह्मणप्रतिपालक महिपालको मेरा दुःख अवश्य दूर करना चाहिये." यह बात सुनकर राजाको उस ब्राह्मणका दुःख दूर करनेके लिये बड़ी आतुरता हुई, उससमय उसने मनमें सोचा कि ' इस ब्राह्मणको थोड़ासा धन मिल जानेसे इसका दुःख दूर हो सकता है और गुरु महाराजकी भेटके लिये लाये हुए रत्नोंसे भरेहुए दो थाल रक्खे हैं. यदि इनमेंसे एकाध रत्न इसको दे दियां जाय तो इसका दरिद्र दूर होजायगा. पर अरे ! धन तो सब मैंने गुरुके अर्पण कर दिया अब वह गुरुका हो चुका. अब उसका देनेवाला मैं कौन ?' इन विचारसे मन ही मन पछता पछताकर नीचा शिर किये ज्योंका त्यों खड़ा रहा. उससे एक भी शब्द नहीं बोला गया. उसकी दृष्टि केवल गुरुचरणोंमें ही लगी रही. अब गोब्राह्मणपालक कहलाता हुआ जनकराजा, उसके इतने पुकारने, चिल्लाने और गिड़गिड़ाने परभी कुछ नहीं बोला; यह देखकर उस ब्राह्मणको बड़ा क्रोध आया और वह राजाका तिरस्कार

करके कहने लगा—" अरे रे ! कैसा विपरीत समय आया है ! अहो ! इस कृतयुगमें भी कलियुग वर्त्त रहा दिखाई पड़ता है. धिक्कार है मुझे ! जो मैं ऐसे धन-लोलुप, कृपण, और गोब्राह्मणप्रतिपालक कहलाते हुए दांभिक नाम धरकर बैठे हुए राजाके पास याचना करनेको आया. इसकी अपेक्षा तो मैं किसी गहरे जालवाले कुएँमें डूब मरा होता तो अच्छा होता कि जिससे ऐसे षंढ राजाका मुख तो नहीं देखना पड़ता. धिक्कार है ऐसे राजाको भी कि, जिसके यहांसे अतिथि वा शरणागत विमुख (निराश) होकर लौटे. धिक्कार है उन लोगोंको जो दूर देशान्तरोंमें रहकर इस कृपण राजाकी भ्रष्टमतिको नहीं जाननेसे इसकी मिथ्या प्रशंसा करते हैं. अरे ओ मदगर्वित राजा ! मेरे ऐसे २ दीन वचन सुनने पर भी मुझको धन देना तो दूर रहा किन्तु शब्दमात्रसे प्रत्युत्तर देना भी तुझको भारी पड़ गया है ! हर ! हर ! कैसा अधम काल वर्तमान है ? " यह सुनकर राजाके मनमें खलबली मचगई कि ' अरे ! मेरा विरद देखकर मेरे नामको यह कैसा कलंक लगता है, क्या मेरे द्वारपरसे अतिथि विमुख जाता है ?' ऐसा वारं-वार विचार करने लगा, परन्तु फिर तरंग उठी कि-' अरे ! मैं क्या विचार करता हूं ? इस मनमें विचार करनेका भी मुझको क्या अधिकार है ? क्यों कि मैं तो तन और धनके साथ मन भी तो गुरुके अर्पण करचुका हूं. अब मेरा क्या है ? जो तन मेरा रहा हो तो ब्राह्मणको बुलाऊं, आश्वासन करूं, धन मेरा हो तो उसको देऊं और मन भी मेरा हो तो ही उसके कठोर वचनोंकी हीनता मुझे व्यापे, परन्तु अब मुझे तो कुछ लगता करता नहीं और न मुझको कोई व्यापार—हिलचल करनेका कुछ अधिकार है.' ऐसा मनही मनमें समाधान करके राजाने उस ब्राह्मणके ऐसे २ कठोर वचन सुनने पर भी जड़ और स्तब्ध होकर गुरुचरणों पर ही दृष्टि लगा रक्खी और हाथ जोड़े जैसेका तैसा खड़ा रहा. वह न तो हिलचल सका और न कुछ बोल सका. उसकी ऐसी स्थिति देखकर अष्टावक्रने पूछा—" कोभवान् (तू कौन है ?) " तब " जनकोऽस्मि (मैं जनक हूं) " ऐसा उसने प्रत्युत्तर दिया. ऋषिपुत्रने कहा—" हे राजा जनक ! इसमें तू जनक किसको कहता है ? तू अपने शिरको, हाथको, पैरको, बुद्धिको, अथवा प्राणको इन सबमेंसे किसको जनक कहता है ?" राजा क्या बतावे ? राजा तो फिर तद्रूप होगया. उसने बहुतसा विचार किया, परन्तु उसको किसीमें जनक दिखाई नहीं

दिया. अब वह क्या उत्तर देता ? बड़ी देरतक वह स्थिर, अचल और निमेषोन्मेष* रहित खड़ा रहा. यह देखकर ऋषिपुत्रने कहा-" हे राजा! बस. यही तुझको उपदेश, यही तेरा सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप." यह वचन सुनकर जनकने कहा—' हे गुरुदेव ! अब मैं वनमें जाकर रहूंगा.'? गुरुने कहा—"कैसे जायगा ? मेरे कहनेसे वा बिना कहे ? तेरा तन, मन और धन मेरे अर्पण हो चुका है तो अब तेरे पास क्या और तू भी कहां है. विचार करके बोल." यह वचन सुनकर राजा फिर चुप होगया. अष्टावक्रने कहा-" हे राजा ! जिस प्रकार कोई अपना घर बार द्रव्यादिक किसी दूसरेको संभाल रखनेको सौंप देता है तैसेही यह राज्यादि (तन, मन, धन इत्यादिक) मेरा है मैं तुझको संभाल रखनेके लिये सौंपता हूं इस लिये भृत्य † की नाई नीतिपूर्वक इसका रक्षण पालन कर. आजसे तू देही होनेपर भी विदेह + हुआ है. आजसे पहले कोई विदेह नहीं हुआ. परन्तु मेरी ऐसी स्थिति हो जानेसे तू उपदेश देकर विदेही कहलावेहीगा." यह कहकर गुरुने उसको राज्यासन पर स्थापित किया. तिस पीछे राजाने उस ब्रह्मस्वी ÷ ब्राह्मणको बहुतसा द्रव्य देकर उसको प्रसन्न करके विदा किया.

तिस पीछे अष्टावक्रने आज्ञा दी कि " अब इन समस्त ऋषियोंका भली-भांति संतोष करके इनको इनके घर विदा कर." राजाने अष्टावक्र गुरुकी आज्ञा होनेसे, वहां बैठे हुए समस्त ऋषियोंका यथाविधि पूजन करनेका आरंभ किया. सब ऋषियोंने मिलकर कहा कि "पहले हम सब लोग मिलकर महात्मा और ब्रह्मवेत्ता ऋषिपुत्र अष्टावक्रका पूजन वंदनादि करेंगे; क्योंकि ये हमारे सम्पूर्ण ऋषिकुलको प्रकाशमान करनेवाले ब्रह्मसूर्य हैं, तथा हमको बहुत वर्षोंके न्यायबन्धनमेंसे मुक्त करनेवाले भी यही महात्मा हैं." ऋषिपुत्रने कहा-" मैं बालक हूं और आप सब लोग वृद्ध होनेके कारण मेरे गुरुरूप हैं, इसलिये आपको मेरा पूजन वा वंदन करना उचित नहीं है." इस भांति विनय और विवेकपूर्वक कहने पर भी प्रत्येक ऋषि आ २ कर उनके चरणोंमें प्रणाम करके अनेकानेक आशीर्वाद देने लगे. उन सब ऋषियोंको महात्मा अष्टावक्र, प्रथम उनका नाम, कुल, गोत्र, प्रवर,

---

* आंख खोलना और मिटाना. † गुमास्तां, सेवक, प्रतिनिधि. + बिना देहका. ÷ देनदार, ऋणी.

शाखा वेद इत्यादि पूछ लेते तब उनके प्रणामको ग्रहण करते थे. ऐसा करते २ कहोल ऋषि उनको प्रणाम करनेको खड़े हुए. उनका कुल गोत्रादि सुनते ही, मुनिकुलदीपक अष्टावक्र तत्क्षण सिंहासनपरसे, उतरकर नीचे खड़े हुए और उनके चरणोंमें मस्तक धरकर प्रेमसहित वंदन किया. तब अन्य ऋष्यादिक सारी सभा यह देखकर बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुई. कहोलऋषिने उनका हाथ पकडकर उठाया और पूछा कि "आप कौन हैं,?" अष्टावक्रने अपनी माताका तथा पासमें खड़े हुए अपने मामाका नाम बतलाया तब उनके गोत्रका वर्णन सुनकर सर्व मुनिमंडल बड़े हर्षको प्राप्त हुआ. पिताने पुत्रको हृदयसे लगाकर प्रेमाश्रुओंसे उसके मस्तक पर अभिषेक किया. अब राजा आदिक सबने जाना कि ये कहोल ऋषि अष्टावक्रमुनिके पिता हैं. तदनन्तर सबने एकबार ही जयजयकी हर्षध्वनि की और कहने लगे कि "धन्य है उस पिताको कि जिसके ऐसा प्रतापी पुत्ररत्न है.' तब कहोलऋषि गद्‌गद वाणीसे सबके समक्ष कहने लगे कि "हे पुत्र अष्टावक्र! मैं तेरा पिता होकर भी तेरा हित नहीं कर सका. मैंने तेरा पालन पोषण भी नहीं किया, मैंने तुझे विद्यादान भी नहीं दिया, वरन उलटा मैं ही तेरे शरीरकी वक्रताका कारणरूप बना हूं, परन्तु तेरा कल्याण हो और तू चिरंजीव रह."

कहोल ऋषिके ऐसे वचन सुनकर राजाको शंका उत्पन्न हुई जिससे उसने गुरुकी आज्ञा लेकर, कहोल ऋषिको पूछा कि–"हे ऋषिवर्य! मेरे गुरुजीके शरीरकी वक्रावस्थाके कारणीभूत आप किस रीतिसे हुए?" राजाके प्रश्नके उत्तरमें ऋषिने कहा–"हे राजन्! यह मेरा पुत्र अष्टावक्र जब माताके गर्भमें था, तब नित्य नियमानुसार, एक दिन मैं वेदका पारायण करता था. इसकी मा उस समय सोई हुई थी, और मैं अपने वेदाध्ययनमें लीन होरहा था. तब इसने गर्भमेंसेही यकायक चमत्कारिक ध्वनि की जिससे मैं चौंका और पाठ करना बंद किया. तिसपीछे इसने कहा कि–'पिताजी! आप बड़े दीर्घकालसे वेदपाठ करते आते हो तोभी आपको उसकी पुनरावृत्ति किसलिये करनी पड़ती है! और वहभी ऐसी अशुद्ध क्यों? अमुक २ स्थलमें आपकी वाणी तथा हाथके स्वर अशुद्ध हैं' ये वचन सुनकर तथा गर्भकी ऐसी विचित्र प्रज्ञा देखकर, मनमें हर्ष होना चाहिये था उसके बदले उलटा क्रोध आया, और मैंने क्रोधवश होकर इसको कहा–"रे बच्चा! तू

अभी जन्माभी नहीं है तिसपरभी मेरे आवृत्ति क्रमको अशुद्ध कहता है.अत-एव जा तू आठों अंगोंसे वक्र होगा. इस कारणसे यह जन्मसेही मेरे शापके कारण ऐसे वक्र अंगवाला है; और इसीसे इसका नाम भी अष्टावक्र पड़ा है."

तदनंतर राजाने अर्चन पूजनादिकसे सब ऋषियोंको संतुष्ट करके अपने यहांसे विदा किया, तब अष्टावक्र भी अपने पिता तथा मामाके साथ आश्रमको आने लगे. मार्गमें मधुविला नामकी नदी आई, उसमें कहोलने विधिपूर्वक अष्टावक्रको स्नान कराया जिससे उनके सब अंगोंकी वक्रता (टेढ़ापन) निकल गई, और वे सब अंग सीधे, समान और स्वच्छ होगये. उसी दिनसे उस नदीका नाम समंगा (समान अंग करनेवाली) पड़ गया. तिसपीछे अष्टावक्र अपने ननसारमें आकर अपनी मातासे मिले, और माता-महकी आज्ञा लेकर माता तथा पिताके साथ अपने पूर्वके आश्रममें जा बिराजे.

हे राजपुत्र! ब्रह्मतत्त्वज्ञानसम्पन्न अष्टावक्र मुनि ऐसे परम समर्थ थे और सारासारका विचार करनेवाले राजर्षि जनकने ऊपर कहे अनुसार उनसे सदुपदेश ग्रहण किया था. ऐसा उपदेश मिलनेका मूल कारण केवल सारासार-विचारही था. सारासारका विचार करनेवाला मनुष्य इसप्रकार परब्रह्मको जानलेता है, इसीलिये मनुष्यके कर्त्तव्यरूप इस दृष्टांतको मैंने तुझे सुनाया है. जनकको स्वप्न और संसार इन दोनोंमें सचा कौन यह जाननेकी जिज्ञासा उत्पन्न हुई तबही उसको सारभूत वस्तु जो परमात्मा स्वरूप है उसकी प्राप्ति हुई थी.

अहिंसा.

फिर वही सद्गुरु महात्मा मुझको संबोधन करके कहने लगे-" प्रिय राजपुत्र! सर्व भूतप्राणीप्रति दया और नम्रता रखनी इसके समान कोई धर्म नहीं. "अहिंसा परमो धर्मः" अर्थात् दूसरे प्राणीको पीड़ित करना, इसका वध करना, इत्यादि दुष्ट और हिंसक आचरणका त्याग करना इसका नाम अहिंसा है, और यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है. नम्रता भी दयाके साथ लगी हुई है जिस भांति मुझको कोई आघात लगनेसे तथा निष्ठुर वचन सुननेसे मनमें दुःख होता है, वैसाही दूसरेकोभी होता है यह समझनेवाला पुरुष दयालु है, अहिंसक है; क्योंकि, अपने समान दूस-रेको जाननेवाला और किसीको कभी दुःख नहीं देसकता. और भी वह दयालु पुरुष, (वह तो करेही क्यों ? परन्तु) और किसी कारणसे

अथवा प्रारब्धयोगसे दूसरे किसी प्राणीको पीड़ा पहुँची हुई देखकर, अपने अन्तःकरणमें बड़ा खेद पाता है, तथा उसका दुःख दूर करनेमें अपने जन्मभरतक प्रयत्न करनेमें नहीं चूकता. ज्ञानी पुरुषमें पहले अंशमें दया होनी चाहिये. निर्मल और सूक्ष्म ज्ञानदृष्टिसे देखाजाय तो सब प्राणियोंके भीतर बसनेवाला और दूसरा कोई नहीं, किन्तु केवल अखंड एक परमात्मा ही है. ज्ञानी ऐसा जानता है कि जो तत्त्व मुझमें है वही उसमें भी है, इसीसे वह समझता है कि उसको दुःख हुआ सो मुझको ही हुआ. दया यह सच्चे अद्वैतभावका लक्षण है और निर्दयताके समान और कोई अधर्म नहीं. निर्दय पुरुष कदापि शक्तिमान् अथवा ज्ञानवान् नहीं हो सकता. जहां निर्दयता होती है वहां निरन्तर पाप निवास करता है; जहां पाप रहता है वहां ज्ञान अथवा भक्तिका निवास नहीं होता; अंधकार होता है वहां तेजका प्रकाश नहीं होता और जहां तेज प्रकाशमान् हो रहा है वहां अंधकार नहीं रहता, वहां केवल पुण्यज्ञानरूप तेजही रहता है; जहां पापादि दुष्कर्मरूप अंधकार रहता है तहां पुण्यज्ञानरूप तेजका प्रकाश नहीं होता. अतएव ज्ञानकी प्राप्तिके लिये, प्रथम सदय अंतःकरणवाला होना उचित है. दयालुका अन्तःकरण अतिशय मृदु और निर्मल होता है, इससे उसपर भगवत्प्राप्तिमें प्रयासरूप बीजद्वारा, दयाका अंकुर निकल आता है, और वह प्रतिदिन वृद्धिंगत होता रहता है. निर्दय मनुष्यका अन्तःकरण इससे बिलकुल उलटा है. वह मलिन और पाषाणवत् कठिन होता है, इसीसे उसके हृदयमें सत्संग तथा सद्गुरुके बोधरूप जलका वारंवार सिंचन करने परभी ज्ञानबीजका अंकुर नहीं उठने पाता. वह सर्व प्राणिमात्रको अपना शत्रु मानता है, सर्वत्र द्वैत ही द्वैत देखता है. किसीपर पूर्ण प्रीति नहीं होती, 'उसके शरीरमें सदा क्रोध बसा रहता है; और क्रोधसेही सब कार्य बिगड़ता है;' अतः समस्त अवगुणोंकी मूलरूप जो निर्दयता, उसको जड़से नष्ट करके, मनुष्यको सर्व भूतप्रति दयालु बनना चाहिये, यह उसका मुख्य कर्त्तव्य है.

नम्रता.

नम्रता दयाकी बहन है और यह भी दयाके समान ही परब्रह्मप्राप्तिमें सहायक है. संसारमूलक अहंकार है यह नम्रतासे बिलकुल दूर हो जाता है.

संसारमें प्राणीमात्रको अपनेसे अधिक माननेवाला पुरुष नम्र कहलाता है. और ऐसा (नम्र) होना, विना अहंकारको दर किये नहीं बन सकता. संसारमें सब मेरे गुरु (पुरखे–बुजुर्ग) और मैं उनके शिष्यके समान हूं ऐसा जानना और वर्त्ताव करना, यह निरभिमानी पुरुषका लक्षण है. प्रपंचमें भी नम्र पुरुष विशेष माननीय और सद्गुणी गिना जाता है; और उसको किसीवातका दुःख नहीं होता, वह हरेक बातमें सामनेवालेसे आप नम्र रहता है, अर्थात् अपना दोष उसको छिपाना नहीं पड़ता; क्योंकि वह अपने अपराधकी क्षमा मांगनेमें लज्जा नहीं करता. और लज्जा नहीं करना ही वास्तविक निरहंकारताका लक्षण तथा नम्रताका स्वरूप है. सबके साथ नम्र रहनेवाला सबको प्रिय होता है. उसको यदि कोई कुवचन कहदे तो वह उसका बुरा नहीं मानता और क्रोध भी नहीं करता. कारण यह कि, उसने क्रोधको जीत लिया है; इससे क्रोध उससे दूरही रहता है. वह स्वयं जिससे दूसरेको बुरा लगे अथवा क्रोध उत्पन्न हो ऐसा काम भी नहीं करसकता. नम्र पुरुषसे कभी कोई निर्दय–हिंसक कार्य नहीं होसकता, नम्र पुरुष दूसरेके दोषोंका वर्णन नहीं करसकता, और न उनपर कुछ ध्यान दे सकता है; कारण यह है कि, वह और सबको अपनेसे विशेष गुणवान् और निर्दोष समझता है, वह पराई निंदा नहीं करता. इन सब गुणोंके कारणसे परमात्मा उसपर सदा सन्तुष्ट रहता है. इसके विपरीत अनम्र अहंकारी पुरुष, सब दोषोंसे भरा हुआ होता है. जैसे नम्र पुरुषका अन्तःकरण निर्मल और सत्यप्रेमी होता है, वैसेही अनम्रके अन्तःकरणमें दंभ वसा रहता है. दंभ देखनेमेंभी असत्य ही है. भीतरके अवगुणको छिपाकर, ऊपरसे वड़ा आडम्बर रखनेवालेको दांभिक कहते हैं. स्वल्प विद्या होनेपरभी विद्वान् कहलाना, अल्प संपत्ति होनेपर संपत्तिवान् वनना–दिखाना, दुर्गुणी, अधर्मी, अनाचारी तथा अभक्त इत्यादि अवगुणवाला होकरभी वाहरसे गुणवान्, सत्यशील, धर्मिष्ट, सदाचारी तथा भक्तिमान् इत्यादिक होनेका ढोंग करना ये दांभिकके लक्षण हैं. और इसप्रकार एकको दूसरा कहना, अथवा प्रदर्शित करना असत्य नहीं तो और क्या है ? परन्तु यदि हृदयमें नम्रता वस रही हो तो ये सारे दुर्गुण एक साथ वाहर निकल जाते हैं–नष्ट हो जाते हैं; इसलिये सबके साथ नम्रता रखने-

वाला पुरुष सर्वजनवन्दनीय तथा श्रेष्ठ होता है, ज्ञानी पुरुषका सच्चा लक्षण क्या है, निरभिमानता, और यह निरभिमानत्व नम्रतासे अपने आपही प्राप्त होजाता है.

हरिनाम.

हे वत्स ! मैं तुझको कितने कर्त्तव्य गिनाऊं ? प्रत्येक कर्त्तव्य अत्यन्त आवश्यक और परम हितकारी है. इन सबको जाननेके लिये प्रथमतः मनुष्यको सचेत और शुद्ध बुद्धिवाला बनना चाहिये. जो ऐसा न हो तो साधारण प्रज्ञावाला इन कर्त्तव्योंको किसप्रकार साध सके ? अतएव सबसे विशेष सरल और कलियुगमें अतिशय कल्याणकारी कर्त्तव्य, श्रीहरिका नामस्मरण है. इसमें बुद्धि, विद्या वा उत्तम प्रकारके ज्ञानकी कुछ आवश्यकता नहीं. जैसे अश्विनीकुमारके जाने हुए ओषधोंका समूह और अरण्यनिवासीकी एकही जड़ी, उनकी व्याधिका समानभावसे जड़मूलसे नाश करते हैं, वैसेही और सब कर्तव्य एक ओर–तरफ तथा दूसरी ओर नामस्मरण है कि, जो परमकल्याणकारक तथा सर्वश्रेष्ठ फलका दाता है. यह नामस्मरण समस्त आधिव्याधिको समूल नष्ट करता है. इसके समान और किसीमें यह शक्ति नहीं हैं. परमात्माके मंगल नामका निरन्तर स्मरण करनेवाला पुरुष सहजमें निष्पाप हो जाता है, और पाप दूर होनेसे सारे दुर्गुण पलट करके सद्गुण बन जाते हैं. नामस्मरणकी अपार महिमा है. नामस्मरण करनेसे प्रभुके सगुण स्वरूपमें प्रीति लगती है और वह प्रीति ऐसी होती है कि, जिससे परमात्मा उसको सगुणरूपसे साक्षात् होता है–प्रत्यक्ष दर्शन देता है. और अन्तमें वह भक्तिमान् जीव, आत्माका शोधन करके परमात्माको प्राप्त होता है. नामस्मरण ही ज्ञानवृक्षके मोक्षफलका बीज है. नामस्मरण करनेवालेको उसकी लंबी चालसे नामी (नामवाला–परमात्मा) के दर्शनकी पूर्ण अभिलाषा होती है; और उसीमें तत्पर रहनेसे, प्रभुका साक्षात्कार होता है; जिससे पहले अभिलाषा होती है उससे विशेष बलवत्तर और सुदृढ़ होती है. जो ऐसी अभिलाषा है वही प्रेम है. प्रभु प्रेमके वशमें हैं. और यह तो एक साधारण नियम है कि, जब किसी एक वस्तुपर मनुष्यकी सच्ची निश्चल प्रीति होती है तब उसके सिवाय और सब वस्तु-

ओंपर अप्रीति (विराग) हो जाती है. जिसपर सम्पूर्ण अटल प्रीति हुआ करती है उसकी प्राप्ति निःसंशयतासे होती है और उस प्रियवस्तुकी प्राप्तिसे सर्वोत्कृष्ट सुख होता है. जिसकी परमात्माके सुन्दरनामके साथ प्रीति आ-गई है, उसको संसारकी दृश्य-मायिक वस्तुपर आपही अप्रीति हो जाती है. वह प्रीति ऐसी है कि फिर छुड़ानेसे भी नहीं छूटती. एककी अपेक्षा दूसरी कोई विशेष सुन्दर वस्तु दिखाई पड़े तो पहली वस्तुपरसे प्रीति हटे. परमात्माके प्रेमसे बढ़कर श्रेष्ठ प्रेम और क्या हो सकता है कि जिसपर प्रीति हो ? इसीसे संसार परसे उठी हुई प्रीति परमात्मामें लग जानेपर कभी पीछी नहीं लौटती. जो परमात्माके साथ अत्यन्त स्नेह होगया, वह तो ऐक्यही हुआ; और वहभी उत्कृष्ट प्रकारका ऐक्य हुआ, और जो कभी नहीं टूटे ऐसा जो ऐक्य है उसीको अद्वैत कहते हैं. सची प्रीतिसे द्वैतभाव मिट जाता है. राम और काम, हरि और सुवर्ण, संसार और साररूप परमात्मा, इन दो वस्तुओंपर सची प्रीति होनेसे मोह बिलकुल नहीं होता. हे बालऋषि ! याद रख कि, नामस्मरणही श्रेष्ठ साधन है. अकेले ज्ञानसे-शुष्कज्ञानसे भलीभांति समझ आजाती है, परन्तु विशुद्ध प्रेमवृत्ति उत्पन्न हुए विना संसारमें विराग और हरिमें अनुराग-सुन्दर सुदृढ़ नहीं होता. सांसारिक पदार्थ अनित्य (मिथ्या) हैं ऐसा जाननेसे अनित्यपर विराग तथा नित्यपर प्रीति होती है सही, परन्तु अकेला ज्ञान-शुष्कज्ञान है इससे जब वह विस्मृत होजाता है तब विराग फिरसही चला जाता है और फिर संकल्प होने लग जाते हैं, जिससे जीव फिर भव-जालमें पड़जाता है. तथा ज्ञानीको कभी २ ' मैं ज्ञानी हूं ' ऐसा अभिमान होनाभी संभव है, जिससे पीछा संसार-सागरमें गिरजानेका भय रहता है, परन्तु अनन्य भक्तिमान् अर्थात् ज्ञानी भक्तमें अभिमान उत्पन्न नहीं हो सकता; कारण यह कि, वह प्रभुको अपना सेव्य और अपने आपको उसका सेवक मानकर उसी आनंदमें रमण करता है. विचारपूर्वक देखाजाय तो भक्तही शुद्ध और परमज्ञानी ठहरता है, और भक्तिपूर्वक जो ज्ञान है वही परममुक्ति है. मैं परमात्मा स्वरूपका अंश हूं और मेरा अंशी परमात्मा है, परन्तु वास्तवमें मैं और वह दोनों एकही हैं. तब जुदा कैसे भासता हूं ? ऐसा जुदा भासमान न होऊं इसकारण मुझको मेरे अंशीका

निदिध्यास रखना चाहिये, अर्थात् स्मरण-ध्यान करना चाहिये; ऐसे निदिध्यासमें लीन-तत्पर जीवको शीघ्र साक्षात्कार होता है. प्रभुका साक्षात्कार होना, यही सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और यही सर्वोत्कृष्ट भक्ति है. भक्ति और ज्ञानमें भेद मानना यह जड़बुद्धिका कार्य है. वास्तवमें भक्ति और ज्ञानका बीज-वृक्षके समान संबंध है. बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज. जब बीज था तब तो वृक्ष होने पाया, और जब वृक्ष था तबही बीज हुआ. इसी भांति परमात्मा मेरा मूलस्वरूप है इतना ज्ञान होजानेपर शुद्ध परब्रह्मकी भक्ति होती है और भक्तिसे परमात्माका परिचय होने अर्थात् साक्षात्कार होनेसे उसके स्वरूपका उत्तम ज्ञान होता है कि 'अहो परमात्मारूप ऐसा है, यह नाशरहित और सर्वोपरि है, ऐसा ज्ञान होनेसे फिर ऐसी दृढ़ भक्ति होती है कि परमात्माका रूपही सत्य ज्ञान और परमानंदस्वरूप है, इसलिये यही सच्चा है; और सब मिथ्या है इस कारण इसीमें परायण रहना, ऐसा दृढ़ निश्चय होता है. इस भक्तिको ज्ञानोत्तर भक्ति अथवा महाभक्ति कहते हैं. हे राजपुत्र ! तेरी प्रज्ञाको जानने दे कि, भक्तिसे ज्ञान और ज्ञानसे भक्ति है. ज्ञान विना भक्ति मिथ्या है, और भक्ति विना ज्ञानभी मिथ्या है. इसीसे अकेली भक्ति सकामभक्ति और निष्कामभक्ति समझी जाती है. किन्तु ज्ञानभक्ति महाभक्ति गिनी जाती है. भक्तिका लक्षण बांधते हुए भक्तिसूत्रमें कहा है कि "सा परानुरक्तिरीश्वरे" ईश्वरविषे परम अनुराग होना, इसका नाम भक्ति, उस भक्तिरहित ज्ञान शून्यवत् है. सब कर्त्तव्योंकी अपेक्षा सहजमें सधजावे और जो सर्वोत्कृष्ट गिना जावे ऐसा कर्त्तव्य भगवन्नामस्मरण है. इस नामस्मरणमें भक्ति और ज्ञान ये दो मुख्य साधन हैं, इसलिये स्थिर चित्तसे-अनन्यभावसे-'यह सच्चा कि वह सच्चा' ऐसी व्यभिचारिणी प्रीतिसे रहित, नामस्मरणरूप तप करना चाहिये. चलते, फिरते, काम करते, भोजन करते, जल पीते, सोते, बैठते इत्यादि सब समय अन्तरमेंसे श्रीहरिनामका विस्मरण नहीं करना. किन्तु सब कामना त्याग करके, भय, लज्जा, शंकाको छोडकरके, निर्भयतासे भगवन्नामका रटन किया करना, और पास बैठा हुआ मनुष्यभी न जान सके, न सुन सके ऐसी रीतिसे निरन्तर जप करना, यही परम कर्त्तव्य है. यह नाम, सब मंगलोंका भी मंगल, पावनोंका भी पावन, कल्याणोंका निधान

और पापोंका हरण करनेवाला है. इसके उच्चारणमात्रसे सब दुःख दूर हो जाते हैं. इसकी मैं जितनी प्रशंसा करूं उतनी थोड़ीही है. नामस्मरण यह सचमुच अमृतौषधी है. निरन्तर प्रभुके मंगल नामका उच्चारण करना चाहिये जिससे सब कर्त्तव्य सधेंगे, भवसागर तैरा जा सकेगा, ज्ञानानंद लूटा जा सकेगा, और परमात्माकी भेंट होगी, यही सत्य है, यही नित्य है, यही परम है और यही सर्वोत्तम है.

इतना व्याख्यान समाप्त होते २ हमको सारा दिन तथा रातके दो प्रहर बीत गये. तिसपरभी उन योगीश्वरके अमृतसमान मधुर वचनोंसे होते हुए आनन्दके कारण मुझको इतना कालमात्र घड़ीभरके समान जान पड़ा. तिस पीछे उन्होंने मुझको आज्ञा दी तब मैं उनको साष्टांग दंडवत् प्रणाम करके वहांसे उठा, और अपने स्थान पर गया. आजकी प्रसन्नताके कारण मेरी क्षुधा तृषा सब विला गई थी इसीसे कुछ खाये पिये विनाही मैं आनन्दसागरमें मग्न होता हुआ उस कल्पवृक्षके नीचे सोगया.

पञ्चम बिन्दु.

ज्ञानानन्द.

परमार्थचमत्कारमन्तस्थानुभवं विना ।
अन्यस्यान्यं न जानाति सीधुस्वादुमिव द्विजः ॥
अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः ।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम् ॥
रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ॥

अर्थ—अन्तरमें अनुभव हुए विना, अन्यके परमार्थ चमत्कारको अन्य नहीं जान सकता; यथा मद्यके स्वादको द्विज—ब्राह्मण नहीं जानता. अहो शास्त्र, अहो शास्त्र, अहो गुरु, अहो गुरु, अहो ज्ञान, अहो ज्ञान, अहो सुख, अहो सुख. यह रस है; इस रसको जो प्राप्त करता है वह आनन्दी बनता है.

यज्ञभूने कहा—पिछली रातका जागरण था इस कारण पांचवें दिनमें कुछेक विलम्बसे जागा; परन्तु क्षुधाकी तो मुझे बिलकुल याद नहीं हुई उठतेही मैं सरोवरपर गया और वहां स्नान, सन्ध्या, तर्पण इत्यादिक नित्यकृत्य करके, विलम्ब हो गया था इसकारण, जल्दी २ पीछा आने लगा. मार्गमें सुन्दर २ पुष्पोंको सुशोभित देखकर मेरे मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि, 'ये सुन्दर पुष्प तो तयार हैं, और मैंने अभीतक अपने गुरुदेवकी पूजा की नहीं है; तो चलो, मैं इन पुष्पोंके द्वारा आज उनके चरणारविन्दका अर्चन करूंगा. इस विचारसे मैंने सद्यः प्रस्फुटित दिव्य पुष्प तथा मंजरीसहित तुलसीपत्र चुन २ कर इकट्ठे किये. और जल चाहिये सो तो मैं स्नान करके आता था तबही, गुरुजीका दिया हुआ पानी पीनेके कमंडलु शुद्ध करके उस सरोवरमेंसे भर लाया था. परन्तु चन्दन कहांसे मिले ? चन्दनकाष्ठ लाकर शिलापर घिसकर तयार करूं तब हो, परन्तु वहां शिला नहीं थी. तब मैंने विचार किया कि, गुरु प्रभुके तुल्य हैं, और

प्रभु–परमात्मा तो भक्तजनोंने जो पत्र पुष्प फलादिक शुद्ध भक्तिसे अर्पण किये हों उन्हींसे संतुष्ट होते हैं. मेरे पास पत्र, पुष्प और जल तो हैं परन्तु फल नहीं है, और यहांपर फल बहुतसे लगे हुए हैं, सो लेकर मैं इनसे गुरुजीका पूजन करूं तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो. ऐसा संकल्प करके मैं जरा मुड़कर दाहिने हाथकी ओर गया. वहां अनेक सघन अमराइयोंमें आम्र वृक्षोंको, पकनेको आये हुए फलोंसे लदे हुए देखा. विलंब होजानेके भयसे, और दूसरी जातके फल न लेते हुए मैंने केवल बड़ेसुन्दर मधुर पांच आम्रफल लिये और चलपड़ा. तदनन्तर वाटिकामें गया तो महात्मा योगीश्वर मानों मेरे आनेका मार्ग देख रहे हों इसभांति मार्गकी ओर मुख किये हुए मृगचर्मपर विराजमान थे. मैं उनके सन्मुख जाकर प्रणाम करके खड़ा रहा कि तुरन्त मेरे विना कहेही उन्होंने जान लिया, कि, आज उनका पूजन करनेकी मेरी इच्छा है, इससे अमृत समान मधुर वाणीसे उन्होंने कहा––" तेरे मनमें जो पवित्र विचार आया उससे तू मेरा पूजन करचुका है तो भी अपनी लालसा पूर्ण कर. " इतना कहकर उन्होंने अपने चरणारविन्द आगे किये. मैंने पत्रपुट*में पादप्रक्षालन किया और अपने उपवस्त्रसे चरण पोंछकर उनपर मैंने अपने लाये हुए मंगल पुष्प चढ़ाये, और उत्तमोत्तम सुगंधित सुन्दर सुमनों†का हार बनाकर बीचबीचमें वृन्दा+के पत्र तथा मंजरी लगाकर तयार की हुई सुन्दर माला गुरुदेवके कंठविषे धारण कराई. पीछे वे गुरुजी अवशिष्ट तुलसीदल तथा पुष्प अपने हाथसे लेकर अपनी सुवर्ण––रंग (सुनहरी) सदृश जटाविषे धारण करके स्मित हास्यसे मुझे देखने लगे. उसपरसे उनका मुझपर असीम अनुग्रह प्रत्यक्ष दिखाई दिया. अनन्तर मैंने प्रसन्न हृदयसे पांचों आम्रफल उनके सन्मुख धरे. उन्होंने अपने हाथमें फल अवश्य लिये परन्तु लेकर कहां रक्खे सो मुझको नहीं जान पड़ा. क्षणभर पीछे, उन्होंने एक फल मुझको प्रसादवत् पीछा दिया. इसभांति पूजा समाप्त होने पर मैंने उनकी स्तुति करनेका विचार किया. परन्तु अतिशय प्रेमके कारण छाती भरआनेसे मेरी वाणी बंद होगई और मेरे मुखसे एक अक्षरभी स्पष्ट नहीं निकलने पाया. तब मैंने मनही मनमें प्रार्थना करके बारंबार प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके अन्तमें अपना मस्तक उनके चर-

* पत्तोंका द्रोण–दोना. † पुष्पोंका. + तुलसी.

णारविन्दमें धर दिया. उस समयका प्रेमानन्द मैं किसी भांति भी वर्णन नहीं कर सकता. तब उन्होंने मुझको बहुतसे आशीर्वाद देकर उठ बठनेको कहा और मैं प्रेमभरित हृदयसे उनके चरणामृतका पान करके उनके सन्मुख बैठा.

पिछले दिनके मिलेहुए उपदेशपर विचार करनेका मुझको तनिकभी अवसर नहीं मिला था. प्रभातमें स्नान करनेके समय इतनाही मात्र मेरे मनमें आया था कि 'गुरुजीने जो कुछ कहा—जो २ कर्त्तव्य बताये, नियम कहे, ज्ञानोपदेश दिया, यह सब किसलिये कहा होगा? उनके उपदेश परसे ऐसा पाया जाता था कि, यह संसार जो किंचित् सुख और अपार दुःखसे भरा हुआ है, उसमें वारंवार न फँसकर, सुख दुःखको एक समान समझकर निरन्तर आत्मानन्दका अनुभव करना, यही मनुष्यजन्मका सार्थक्य है और यह सुख तो, उनके कथनानुसार केवल परमात्मस्वरूपमेंही है. वह परमात्मा अखंड, अविनाशी, नित्य मुक्त और सत्, तथा आनन्दस्वरूप है. यह अपनेही आत्माका स्वरूप है. और स्वरूपकी प्राप्तिमें ही आत्माका सर्व सुख समाया हुआ है. इसभांति उत्तम ज्ञानपूर्वक जानकर उस परमात्मस्वरूपको भजना (निरन्तर उसके विषे ऐक्यका सन्धान करना) यही सच्चा और अविनाशी सर्वोत्तम सुख है. गुरुवचनोंका ऐसा उपदेश-रहस्य विचारकर, वह परमानन्द और उसके उत्पन्न होते हुए आनन्दका स्वरूप कैसा होगा, ऐसी शंका सहज मेरे मनमें उत्पन्न हुई थी. पीछे जब मैं हाथ जोडकर एकाग्र चित्त होकर उनके सन्मुख बैठा, तब उन्होंने अपना अमृततुल्य मधुरधाराप्रवाह भाषण आरंभ किया कि, जिसका तात्पर्य मेरी शंकाका यथार्थ समाधानरूपही था.

मुनि बोले—"तू मेरे उपदेशके योग्य (पात्र) है. हे वत्स! तेरे मनमें, अन्तर्यामीपनसे, आज ज्ञानानन्द जाननेकी इच्छा उत्पन्न हुई है और यह पूर्ण अधिकारीका लक्षण है. जन्मान्तरमें जो २ पापकर्म किये हुए होते हैं, वे दूसरे जन्ममें प्रत्यक्ष नहीं जान पडते; परन्तु अशुभ वासनाद्वारा उनको अनुमान होता है. और निषिद्ध कर्मकी जो इच्छा होती है वही अशुभ वासना है. उसके विनाशके लिये, स्वरूपानुसन्धान ईश्वर-नामोच्चारण, निष्काम कर्मपर प्रीति और भूतदया मुख्य तथा आवश्यक हैं.

इनसे पापरूप मल तथा विक्षेपरूप मल इन दोनोंका नाश होता है. चित्तकी चंचलताका नाम विक्षेप है. इस चित्तनाशके दो क्रम हैं—एक ज्ञान और दूसरा योग. योग अर्थात् चित्तकी वृत्तिका निरोध, और ज्ञान अर्थात् सम्यक् दर्शन. तत्त्वज्ञानमें तथा स्वस्वरूपमें जिसका चित्त स्थिर नहीं रहता, और अन्य विषयोंमें भ्रमण करता रहता है, वही विक्षेप है तथा दोषयुक्त है. निर्गुण अथवा सगुण चिन्तनसे चित्तकी एकाग्रता होती है, और उससे विक्षेप–दोषका नाश होता है. उस दोषका नाश होजाने पश्चात् जीव जानने लगता है कि ब्रह्मरूप आत्माको मैं नहीं जानता, परन्तु इस ज्ञानका नाश तत्वज्ञानसे होता है. पहले कहेहुए दोनों दोषोंका तुझमेंसे लय होगया है. और जो अज्ञान रहा था सो भी लय होता जाता है. अब तुझको नवीन २ जिज्ञासा होती है. और इस नूतन जिज्ञासाके स्फुरायमान होनेपर तूने अपने आप समाधान किया सोभी यथार्थ ही है. वारंवार जन्ममरणकी आवृत्ति होकर संसारमें जो निरंतर दुःख होता है, उसका अंत लाकर, नित्य और सत्यको जानकर अपार सुखमें रहना, इसके लियेही सब कर्त्तव्य हैं. जीवनका–जन्मका यही सच्चा हेतु है. ज्ञानानन्द–ज्ञानसे होनेवाला सुख कितना है, कैसा है, सो किसीसे वर्णन नहीं किया जा सकता. वह अकथ्य (जो कथन नहीं किया जासके), अवर्ण्य (जिसका वर्णन नहीं होसके), अपार (पार–सीमारहित) और अतर्क्य (जो तर्क अथवा कल्पनामें न आसके) हैं. वह अनुपम है अर्थात् उसको किसी वस्तुकी उपमा नहीं दी जासकती. संसारके समस्त दृश्य सुखोंको एकत्र करें तो वे सबही एक बिंदुमात्र हैं और ज्ञानानंद अपार सागरसमान है. शिव, शेष, और ब्रह्मदेव आदि भी उसका पार नहीं पा सकते. वेद जो स्वतः श्रीमुख*से प्रकट हुए हैं वेभी उसे परमानंद (परम–सर्वोत्कृष्ट आनंद) अथवा अनंतानंद (जिसका अन्त नहीं आवे वह आनंद) कहकर वर्णन करते हैं. इस सच्चिदानन्द–ज्ञानानन्द–ब्रह्मानन्द–परमानन्दको जाननेमें वाणी अथवा चक्षु प्रवेश नहीं कर सकते. प्राण अथवा इंद्रियां प्रवेश नहीं कर सकतीं. जैसे अग्निकी ज्वाला अग्निमें प्रवेश नहीं करती, तैसे ही वेद भी उसमें प्रवेश नहीं करसकते, वह अनादि, अनंत, शेष, विज्ञानमय, मनो-

* श्रीहरि–परमात्माके मुखसे.

मय, प्राणमय, चक्षुमय, श्रोत्रमय, पृथ्वीमय, जलमय, वायुमय, आकाशमय तथा रजोमय है. औरभी वह काममय होकर भी अकाममय है, क्रोधमय होकर अक्रोधमय है, धर्ममय होकर अधर्ममय है. वह सर्वमय है. वह 'यह' रूप है. वह 'वह' रूप है. तिसपर भी 'यह नहीं' ऐसा निश्चय माननेका है. जिससे भूतमात्र जन्मते हैं, जन्म होनेके उपरांत जीते हैं, और जिसमें प्रविष्ट होकर विलीन हो जाते हैं वही यह है. जिसके लाभसे बढ़कर अन्य लाभ नहीं, जिसको जान लेने पर फिर और और कुछ जानना बाकी नहीं रहता, जिसके दर्शनके पीछे और किसीका दर्शन नहीं, जिसके आनन्दसे अधिक अन्य आनन्द नहीं, जिस आनंदमें विलीन होजानेपर और आनंदकी कामनाको भी स्थान नहीं, ऐसा वह ब्रह्मानंद-ज्ञानानंद-परमानन्द है. तुझको शंका होगी कि, जब वह आनन्द ऐसा है कि, जिसको कोई कथन नहीं करसका तब क्या उसका भोक्ता कोई आजपर्यंत हुआ ही न होगा ? नहीं, सो बात नहीं. वह स्वतः आनंदमूर्ति है. और निजरूपसे वह उसका भोक्ता है अर्थात् आनंद ही परमात्मस्वरूप है. और बहुतेरे महत् पुरुष जो ज्ञानी और मुक्त हैं, वे उस आनंदके संगी रंगी हैं. (मुक्त होना अर्थात् उस आनंद-परमात्म-ब्रह्मस्वरूपको पानाही है) परंतु वे अपने मुखसे उसका वर्णन नहीं कर सकते. वे केवल अनुभवके द्वारा अपने आपहीं उसको जानते हैं ऐसा वह अनिर्वचनीय है.

उनका ऐसा भाषण श्रवण करनेसे मुझको बड़ी उत्कंठा हुई. "अहो ! जिसको जान लेने परभी वर्णन नहीं करसकते, जिसको जान चुकनेपर और कुछ जाननेको शेष नहीं रहता, वह आनन्द कैसा होगा !" मेरी ऐसी स्थिति देखकर गुरुजीने कहा—"मैंने तेरी जिज्ञासा जानली है, परंतु वह अनुभवके सिवाय जाननेमें नहीं आता, जानलिया जानेपर जताया नहीं जा सकता, और जतानेसे भी जिज्ञासु जान नहीं सकता. जो जानता है वही इस आनन्दरसको चखता है और वही इस आनंदरसयुक्त होकर रहता है. इस वाटिकाके पीछे सरोवर है उसमेंसे तू यह कमंडलु भरकर लेआ, तिस पीछे हम इसके संबंधमें वार्तालाप करेंगे." उनकी आज्ञा होतेही तत्काल मैं कमंडलु लेकर उठ खड़ा हुआ और वाटिकाके सुन्दर वृक्षोंकी छायाके नीचे होकर आगे गया. मैं प्रतिदिन जब उपदेश श्रवण करलेनेके अनंतर टहलनेको निकलता, तब उस सारी वाटिकामें चारों ओर घूमता फिरता था; परंतु

मैंने पहले कभी गुरुजीका कहा हुआ वह सरोवर नहीं देखा था इससे मैंने विचार किया कि 'इधर आसपास तो कहीं सरोवर नहीं है, परंतु जो गुरुकी आज्ञा हुई है तो उधर जाके देखना चाहिये.' ऐसा विचार करता २ मैं कुछ दूर आगे गया. इतनेमें ही मैंने पहले कभी नहीं देखा था ऐसा अतिसुशोभित, सुंदर वृक्षोंसे आच्छादित हुआ एक जलाशय मुझे दिखाई पड़ा. मैं उसके किनारेपर जाकर खड़ा हुआ. अहो ! उसके सुंदर किनारे प्रवाल मुक्ताफल इत्यादिसे जटित परम शोभायमान हो रहे थे, बीचमें अमृत समान स्वच्छ निर्मल जल भरा हुआ था, मध्याह्न होने आया था इससे उसमें सर्वत्र नील, पीत, श्वेत, तथा रक्त कमलपुष्प खिल रहे थे, जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे, सुहावने तीरोंपर राजहंस, सारस, बक इत्यादि कलोल कर रहे थे. यह सब लीला देखकर मुझको बड़ा आनंद हुआ. गुफाके बाहर सरोवरपर मैं नित्य प्रातःस्नान करनेको जायाकरता था वह यद्यपि रम्य और विशाल था, किंतु इसकी शोभा उससे बहुतही बढ़कर थी. नीचे उतरकर जब मैं समीप गया तो उसके निर्मल नीरको देखकर मुझे आचमन कर लेनेकी इच्छा हुई. कमंडलु तटपर रखकर प्रथम मैंने हस्तपादादि प्रक्षालित* किये और अंजलि भरकर एक दो और तीन आचमन किये. आचमन करतेही मेरे देहकी विलक्षण स्थिति होगई. तुरंत मुझको शंका हुई कि "अरे, मैं तो ब्राह्मण हूं, नहीं २ मैं क्षत्रियपुत्र हूं, नहीं २ मैं भूलता हूं, मेरा यज्ञ अभी अपूर्ण है, ब्राह्मण मेरा मार्ग देख रहे हैं और मेरी स्त्री संकल्प करनेके लिये जलकी झारी भरकर बड़ी देरसे यज्ञकी वेदीके पास खड़ी हुई है, क्या मैं यह भूलजाऊं ? चलो २ शीघ्रतासे यज्ञशालामें जाकर यज्ञकी समाप्तिका संकल्प कर पूर्णाहुति दूं." ऐसे तर्क वितर्क कररहा था कि, सामनेसे एक अतिमधुर आलाप मेरे कानपर पड़ा. मैं चकित होकर उधर देखने लगा तो फिर दूसरा शब्द सुनाई दिया और वह भी मेरा बहुत दिनोंका परिचित हो ऐसा जान पड़ा. मैंने उसको पहचाननेका बड़ा यत्न किया किन्तु उसमें सफलीभूत नहीं हो सका. तब मैं कमंडलु भर कर उस शब्दको सुननेके लिये सन्मुखके तटकी ओर जाने लगा. झटपट मैं वहां जा पहुँचा. आसपास देखने लगा तो समीपकी लताओंमें मेरे

* धोये.

भयके मारे अथवा अपनी इच्छासे छिपती हुई एक स्त्री मुझको देखपड़ी. मैं तुझे क्या कहूं ? अब तक मुझको किसी स्त्रीके साथ एकान्तका अवसर नहीं प्राप्त हुआ था; परन्तु मेरी पूर्ण युवावस्था थी और थोड़े दिनसे अनेक पौष्टिक पदार्थोंसे मेरा पोषण हो रहा था, इससे उस लताओंमें छिपती स्त्रीको देखकर मेरे अंगकी विचित्र अवस्था होगई; परन्तु जैसे तैसे अपने मनको मारकर, मैं वहांसे पीछा लौटनेका विचार करता था, इतनेमेंही उस स्त्रीने वृक्षकी ओटमेंसे मेरी ओर एक कटाक्ष फेंक दिया तभी मैं उसके मुखचन्द्रका अवलोकन करसका. हे विशाल ! मैं उसके सौन्दर्यका तेरे सामने क्या वर्णन करूं ? संक्षेपमें इतनाही कहता हूं कि त्रैलोक्यमें भी विधाताने उसके समान और कोई स्त्री नहीं रची होगी. उसको देखते ही मेरा धीरज छूट गया, उसका सुन्दर मुख मानों मेरा आकर्षण कर रहा है इसभांति मैं बारंबार उसका मुख अवलोकन करनेकी आशासे, उसके पीछे खींचा या घसीटा गया. जैसे पवन अपने आधीन हुए तृणको इच्छानुकूल खैंच ले जाता है—उड़ाता है, तैसे ही मैं उसका अनुरागी बनकर उसके पीछे होलिया और झपटा. मुझे झपटा देखकर एकवार उसने पीछे फिरकर देखा और मुझको अपने पीछे लगा देखकर वह चंचल चपला बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़ी. उससमय मैंने उसका सारा शरीर भलीभांति देखपाया. उसने अत्यंत बारीक सालू (साडी) पहिन रक्खा था जिससे उसके सारे अवयव दिखाई पड़ते थे. शरीरपर धारण किये हुए अलंकार दिव्य थे और चलते समय उसके पांवके नूपुरकी झनझनाहट मेरे हृदयको तीक्ष्ण बाणके समान वेधती थी. वह मेरे आगे २ चली जाती थी. उसके अंगमेंसे निकलता हुआ सौरभ कस्तूरीसे बढ़कर सुगंधित जान-पड़ता था. इसपरसे मुझको निश्चय हुआ कि, अवश्यमेव यह कोई अप्सरा होगी. उसका वय पंद्रह सोलह वर्षका था. हे विशाल ! तू विचार कर कि, एक तो एकान्त अरण्य, उसमें भी नन्दनवनसे भी अधिक शोभावाला उपवन; और वहां ऐसी अनुपम सुन्दरीका दर्शन, किसको मोहित नहीं करता ?

वह स्त्री आगे चलने लगी, और मैं उसके पीछे २ चलता था. जैसे २ मैं उसके पीछे चलता जाता था, तैसे २ मेरी दृष्टि उसके शरीरपर स्थिर होती गई; उस समय मैं और सब बातोंको भूल गया, केवल उसके दर्शन-

मेंही लीन होगया. मुझको उसके सिवाय और कुछभी दिखाई नहीं देता था. उस समय मैं धीरजरहित होकर वावलेकी भांति उसके पीछे दौड़ा और अचानक पीछेसे उसको मैंने जा पकड़ा उसका स्पर्श होतेही मुझको अधिक स्मरण हो आया, और मैंने मायापाशमेंही उसको पहचान लिया हो इसभांति कहने लगा, " प्रिये ! तू इस अरण्यमें अकेली कैसी ? " तब वह सुन्दरी चमक उठी और किनारे हटकर मेरा मुख देखकर मानों मुझको पहचान लिया है, इस प्रकार कहने लगी—" कौन ? प्राणनाथ ! आपही ! क्या आज देववाणी सत्य हुई ? " इतना कहकर वह मेरे गलेसे लिपटगई. उसके कमलसमान नेत्रोंमेंसे आंसुओंकी धारा वहने लगी; और मेरीभी वही दशा हो गई. कुछभी कहे सुने विना हम दोनों परस्पर लिपटे रहे. वड़ी देरतक ज्योंके त्यों खड़े रहनेके पश्चात् वह कुछ सचेत हुई, और अपना कोमल हाथ मेरे मुखपर फेरकर मेरे आंसू पोंछने लगी और मेरे मस्तकको उसने अपने हृदयके साथ खूब दवाया.

तब वह कहने लगी—" हे नाथ ! आप कुशल तो हैं ? सोलह वर्षका वियोग मुझको सोलह युगोंके समान होगया. परन्तु अहा हा ! आज उस सब दुःखका अन्त आगया है. आप जैसे, यज्ञकी दीक्षा लिये हुए, दीक्षित ब्राह्मणका घात करनेवाले उस दुष्ट राक्षसका घोर नरकमेंसे यमराज कदापि उद्धार न करें ! "

उस समय मुझको अपने पूर्व जन्मकी पूरी २ स्मृति हो आई, और मैंने देखा कि, उस सरोवरका जल पीनेसे मुझको जो यत्किंचित् भास हुआ था, वह मेरे पूर्वजन्मका ही था. तदनन्तर वह सुन्दरी वोली—" प्राण॰ नाथ ! आपको तो इतने दिनोंमें कभी इस विरहिणी दासीका स्मरण नहीं आया होगा ! परन्तु मेरा तो एक पलभी आपके स्मरण विना नहीं बीता. प्रिय ! अपना यज्ञ निर्विघ्न पूरा हुआ होता तो मुझको आज तक आपका वियोग नहीं सहना पड़ता. यज्ञकी पूर्णाहुतिके समय मुझको यज्ञशालामें छोड़कर आप मध्याह्नसन्ध्या करने गये और वहां आपके शत्रु राक्षसने आपको जलमें डुबाकर आपका घात किया. क्या यह वात आपके ख्यालमें है ?" यह सुनकर मैंने कहा—"हां, प्रिये, परन्तु तिस पीछे क्या हुआ और तूने क्या किया ?" वह वोली—"नाथ ! मैं जलकी झारी लेकर यज्ञशालामें ऋत्विजोंके समीप बड़ी देरतक खड़ीही रही. परन्तु जब आप

नहीं पधारे तब यज्ञरक्षकगण आपको बुलालानेके लिये गंगातटपर गये. उन्होंने आपको वहां सर्वत्र देखा भाला, परन्तु आप कहीं दिखाई नहीं दिये. ज्योंही वे पीछे लौटनेवाले थे त्योंही गंगामें तैरता हुआ एक शव उन्होंने देखा और पासमें जाकर देखा तो आप." इतना कहकर वह प्रियवंदा फिर अश्रुधारा वर्षाने और करुणामय स्वरसे विलाप करने लगी. उसका कंठ रुकगया. तो मैंने हृदयसे लगाकर दवाया और विविध भांति आश्वासन दिया. तब वह बोली-" नेत्रमणि ! तिसपीछे उस शवको किनारेपर निकालकर एक सेवक वहीं खड़ा रहा और दूसरेने यज्ञ-शालामें आकर यह सब वृत्तान्त कहा. मैं तो सुनतेही मूर्छित होकर गिर-पड़ी. जैसे तैसे करके ऋत्विजोंने यज्ञकी समाप्ति की होगी, परन्तु उसकी मुझे कुछ सुधि नहीं. आपकी अचानक मृत्यु होनेसे सारा ऋषिमंडल परम खिन्न हुआ. बड़ी देरमें जब मैं सचेत हुई तब फिर मेरे रुदन और क्रन्दनका पूछनाही क्या था ? तत्काल मैं गंगातटपर आई. झटपट चन्दनकाष्ठकी चिता रचवाकर आपके शरीरको साथ लेकर चितामें बैठी और ब्राह्मणमंडलको कहा-"ऋषिवरो ! ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये, मेरे पतिका आरंभ किया हुआ यज्ञ जो कि, विधिपूर्वक समाप्त नहीं हुआ, और मेरे पति बिना, आपनेही उसकी पूर्णाहुति की है तो भी ठीक, जैसी ईश्वरेच्छा; परन्तु उस यज्ञका सर्व फल-श्रेय आप सब लोग मिलकर इस समय मेरे हाथमें अर्पण करें और अपनी यज्ञ-दक्षिणाके लिये मेरे आश्रममें धरी हुई, अनेक राजाओंसे मेरे पतिकी यज्ञार्थ एकत्रित की हुई सब समृद्धि परस्पर बांट लेना." तुरन्त ऋषियोंने 'यज्ञश्रेय' आपके नामसे मेरे हाथमें छोड़ा और यज्ञमेंसे अवशिष्ट रही हुई समिधा चितामें होम कर यज्ञकेही हुताशनसे चिता प्रज्व-लित की. देखते २ मेरा और आपका शरीर भस्म होगया कि, तत्क्षण आकाशमेंसे एक विमान उतर आया. उसमें बैठनेके लिये पार्षदोंने मुझे विनती की, परन्तु मैं अकेली उसमें कैसे बैठूं ? जब मैंने आपको उसमें नहीं देखा तो मैंने बैठना अस्वीकार किया. मेरी मनोवृत्ति जानकर उन विमानस्थ देवताओंने कहा-" हे देवी ! तुम्हारे पतिकी सद्गति है, परन्तु उसकी वासना ब्रह्मज्ञानप्राप्तिमें रहगई है इससे उसको भूलोकमें अव-

तार लेना पड़ेगा, और उस इच्छित वस्तुकी प्राप्ति होने पश्चात् वह तुमको आ मिलेगा. अभी किसी उपायसे भी उसका दर्शन तुझको नहीं हो सकेगा !*

पार्षदोंका यह वचन सुनकर व्यग्रचित्तसे मैं विमानमें बैठी. पीछे अन्तरिक्षमार्गसे कई एक स्थलोंको उल्लंघन करता हुआ वह विमान इस स्वर्गसमान वाटिकामें आकर उतरा और यहां पासही एक सुन्दर और विचित्रभवनमें विमानस्थोंने मुझे रखछोड़ा है. मेरी सेवामें ब्रह्मलोककी श्रद्धा और शान्ति नामकी दो दासियां रहती हैं. उनको मुझे सौंपते समय पार्षदोंने कहा था कि–' तुम्हारा पति तुमको सोलहवें वर्ष मनुष्यके वेषमें यहीं आ मिलेगा–तबतक धीरज धरकर यहां रहो. ' इतना कहकर विमान अंतरिक्षमें अदृश्य होगया."

" हे नाथ ! यहां कदापि मनुष्यका दर्शन नहीं होता, परन्तु यक्ष, गंधर्व, किन्नर, देवतागण, कभी २ अन्तरिक्षमें होकर जाते आते दिखाई पडते हैं. कभी २ अप्सराएं भी आकर मुझसे मिल जाती हैं और आपके वियोगसे होती हुई व्यथाका वेही शान्ति और श्रद्धा अनेक प्रकारसे सान्त्वन करती हैं, परन्तु नाथ ! अब आपको यहां क्यों खड़े रहना चाहिये ? कृपा कर मेरे साथ चलिये, और मेरी सेवाको अंगीकार करके मुझे कृतार्थ कीजिये, ऐसा कहकर मेरे स्कन्धपर हाथ रखकर मुझे साथ लिये हुए वह आगे बढ़ी. कुछ दूर चलनेपर वृक्षोंकी सघन घटामें ढँका हुआ इन्द्रसदनके समान एक भवन मेरी दृष्टि पड़ा. उसको अंगुलीसे बताकर उस सुन्दरीने कहा—" हे प्राणवल्लभ ! देवताओंका मुझे रहनेके अर्थ दिया हुआ मंदिर यही है. " हम भीतर गये तो हे विशाल ! उस मणिमय मन्दिरकी शोभा देखकर मुझको परम सानन्दाश्चर्य हुआ. उसका यथार्थ वर्णन नहीं हो सकता. इस भरतखंडमेंके उत्तमोत्तम राजगृहोंकी समग्र शोभा, इस वनभवनके बाह-

---

*किसीको शंका होगी, कि, परलोक-परमलोककी वासना बन्धनकर्त्ता है ? हां सचमुच यही बात है. किसीप्रकारकी भी वासना बन्धन–कारिणी है, फिर वह चाहे सत् हो वा असत् किन्तु वासना तो हैही. वासनाका होना यह अपूर्णता–अहंकारका–कामनाका बीज है. श्रीशंकर भगवानने कहा है कि 'आत्मज्ञस्यापि यस्य स्याद्धानोपादानता यदि । न मोक्षार्हः स विज्ञेयो वान्तोऽसौ ब्रह्मणा ध्रुवम् ॥' इसकारण जबतक निर्वासनामय न होजाय तब तक आवर्जन विसर्जन बनाही रहता है.

रके चबूतरेकी भी बराबरी करने योग्य नहीं. अस्तु ! वहां भीतर देवांगनाएं खड़ी थीं, उनमेंसे एकने एक श्रेष्ठ रत्नजटित बाजोट (चौकी) धरदिया, मैं उसपर बैठ गया. अनन्तर मेरी स्त्रीने उन किन्नरियोंको आज्ञा दी कि-" सखियो ! आज मेराभी भाग्योदय हुआ है. मेरे प्राणपति स्वेच्छासे यहां पधारे हैं और दीर्घकालीन वियोगिनी इस किंकरीको कृतार्थ किया है. तुम आपके लिये स्नान, भोजन तथा शयनादि सकल सामग्री तयार करो."

इन वचनोंको सुनकर मेरे आनन्दकी सीमा न रही. उस आनन्दका मैं किसी भांतिभी वर्णन करसकनेमें असमर्थ हूं. मैं उस आनन्दको पचालेनेमें बिलकुल अशक्त था, अर्थात् उस समयके अद्भुत सुखसे मेरी मति स्थिर नहीं रही, और उस सुखको भोगनेकी भी मुझे कुछ सुधि न रही तब मैं किस वाणीसे उसका वर्णन करूं ? वाग्देवता सरस्वती मेरी जिह्वाके अग्रभागपर निवास करे तबभी उस आनन्दका-सुखका वर्णन करनेमें मैं सशक्त नहीं.

थोड़ी देरमें दासियोंने झटपट सामग्री तैयार की. पीछे मुझे स्नान करनेको उठाया. एक अमूल्य रत्न-जटित बाजोट (चौकी) पर बिठाकर मेरी स्त्रीने अपने हाथसे नानाप्रकारके सुगंधित द्रव्य मल २ कर मुझे स्नान कराया. तिसपीछे सुन्दर पीतांबर पहनकर मैं भोजन-गृहमें गया. वहां नाना प्रकारके दिव्य अनुपम पक्वान्न, कि जिनके नाम मैं नहीं जानता, और जो वहांके सिवाय अन्यत्र कहीं भी मेरे देखनेमें नहीं आये, सुंदर मणिजटित सुवर्णके थालोंमें परस कर मेरे सन्मुख धरे गये. मैं बाजोटपर बैठकर भोजन करता था और मेरी स्त्री मुझको पंखा कररही थी. मैंने बड़ा आग्रह करके उसेभी अपने साथ भोजन करनेको बिठाया और दोनों परम आनंदमें मग्न होतेहुए थोडी देरमें भोजन करके उठे. उन व्यञ्जनोंका स्वाद तो जब मैं जीमता था तब मेरी जिह्वा ही जानती थी. वहां जो २ तैयारियां थीं वे सब बड़ी दिव्य थीं. मुखवासादि ग्रहण करके मैंने वस्त्र पहने. तुरंत मेरी अत्यन्त प्रेमातुर और परलोकमें भी स्वपतिकेही साथ रहनेकी इच्छावाली पतिव्रता पत्नी मुझको अपने शयनागारमें लेगई. वह शयनगृह परम सुखका धाम था. हंसके पंखोंकी जैसी श्वेत गद्दी बिछी हुई रत्नशय्यापर मुझको उसने बिठाया, और मेरी पादसेवा करने लगी. इस समय पूर्वकी बात स्मरण आजानेसे वह यकायक मुझको लिपटगई और रुदन

करती २ कहने लगी–"हे प्राणवल्लभ! परम कृपालु परमात्माने मुझको आज आपके दर्शन करनेका सौभाग्य प्रदान किया है इससे मैं परम कृतकृत्य हुई हूं. अब मुझको एक पलभरभी आपका वियोग न हो यही मैं श्रीहरिसे मांगती हूं." एक तो अरण्य, उसमें एकांत भवन, उसमें भी एकांत शयन-गृह, उसमें अत्यन्त सुंदररूपकी खानि, चन्द्रिकारूप स्त्रीका मिलाप, और सोभी दीर्घकालकी विरहिणी तथा प्रेमिनी, धर्मशीला और अपने पतिकोही सर्वस्व समझनेवाली यह सब सुख मनुष्यको बाहर तथा भीतरसे उद्दीपन करके रेलमरेल करे ऐसाही था. उस समय अपार आनन्द और प्रेमके भरपूर सागरमें झूलते हुए मैंने उसके अनुपम और कोमल अंगोंका खूब जोरसे आलिंगन किया. तदनन्तर हम दोनोंही परस्पर विलीन होते हुए मोहित होकर शय्यापर पड़े. बहुत देरतक दोनोंमेंसे किसीकोभी कुछ भान वा सुध नहीं हुई. तदनंतर मेरी स्त्रीने आज्ञा दे रक्खी होगी इससे हमारी शय्याके सन्मुख आकर उन दासियोंने मनोहर मधुर स्वरसे वीणा आदिक वाद्योंके साथ गान करना आरंभ किया. हम सावधान हुए और परस्पर लिपटकर गान सुननेको बैठे. उस समय मुझको अपने देहका किंचित् भान नहीं था, और मैं कहां हूं तथा कहांसे आया हूं ये सब बातें बिलकूल भूल गया. वीणाके नादके साथ गाती हुई किन्नरीके गान और तालसे तथा मृदंगपर पड़ती हुई थाप परसे मैं चौंक पड़ता और अपनी स्त्रीके गलबांहीं डालकर उसके अत्यन्य कोमल तथा गुलाबी गालोंका बारंबार चुंबन करता था. उसके अमृतसे भरपूर अधरोष्ठका पान, स्वर्गसुखसे भी बढ़कर अतिमिष्ट और प्रिय लगता था. उस समय उसमें और मुझमें कुछभी भेद नहीं दिखाई देता था. हम अद्वैतही थे. जगतमें द्वैत है ही नहीं इससे हम अद्वैतरूपसे शोभायमान थे. वह मुझको अपना आत्मा जानती थी और मैं उसको अपना आत्मा जानता था. हमारे दोनोंके आत्माका ही क्या, देहका भी ऐक्य होगया था. हम दोनों लिपटकर बैठे थे, सो दोनोंमेंसे किसीका भी मन तनिकभी हटनेको नहीं चाहता था. बस, ऐसीही दशामें बैठे २ रात हो गई. किन्नरियां मधुर स्वरसे गा रही थीं, भवनमेंके अमूल्य रत्न, तेजोमय दीपोंकी भांति प्रकाशमान होरहे थे, और मेरी स्त्रीके आभरणोंकी ज्योति तथा रत्नोंकी ज्योति एकाकार होगई थी. इतनेपरभी हमारी प्रेमगां-ठका छूटना तो दूर रहा; परन्तु किंचिन्मात्र भी ढीली नहीं पड़ी. जैसेके तैसे

हम उस मृदु शय्यापर फिर ढल पड़े, हृदयके साथ हृदय, मुखके साथ मुख, तथा अंगके संग अंग लिपटाकर सोगये, और हम दोनोंको सुखद निद्रा आगई!

अहो! ईश्वरीमाया अपरंपार है. प्रातःकालमें उठकर क्या देखता हूं कि मैं अपने नित्यके स्थान हिमगिरिके कल्पवृक्षके नीचेही पड़ा हुआ हूं. 'प्यारी! प्यारी प्राणवल्लभा! प्रिये! तु कहां गई? तेरा सुन्दर दिव्य आवास कहां गया? तेरा शरदसरोज समान सुकोमल सुंदर वदन कहां है? अहो! यह क्या विलक्षण दृश्य है? अरे! मैं कहां हूं? अरे! मेरी प्रियपत्नी मुझको अकेला छोड़कर कहां चली गई? अरे! मैं कहां आपड़ा हूं? यह तो वही मेरा नित्यका कल्पवृक्ष है. तब क्या मुझे स्वप्न हुआ था? यहां तो मैंने जो २ देखा था उसमेंसे कुछ भी नहीं है. मेरा अनहद आनंद तथा परमसुख कहां गया?' ऐसे उद्गार निकालता हुआ अद्भुत आश्चर्यानंदमें गिरेहुएकी तरह चारों ओर घबराई हुई दृष्टिसे देख रहा था, इतनेमें अपने गुरुका जलसे भरा हुआ कमंडलु अपने पास धरा हुआ मैंने देखा. उसपरसे मुझे निश्चय हुआ कि मुझको स्वप्न नहीं हुआ था. मैं कमंडलु लेकर जलभरने गया था और वहां मुझको मेरी प्रिया मिली थी और उसके साथ भोगविलास किया था. तब यह क्या हुआ? मैं यहां कैसे आया? मुझको यहां कौन ले आया? मेरी प्रियाका आवास कुछ दूर नहीं है. मैं वहां जाकरही उससे मिलूं, ऐसा विचार करके वहांसे उठा, और सरोवरका मार्ग लिया. थोड़ी दूरतक मुझको पिछले दिनका जैसाही मार्ग दीख पड़ा, परंतु आगे जाकर देखा तो न तो पूर्वमें देखा हुआ मार्ग है, न वहां कोई सरोवर है, न कोई वृक्ष लतादिक दिखाई पड़ीं. मैं भटक २ कर थक गया, परंतु मुझको उस सरोवरका अथवा उस विचित्र भवनका कुछ पता नहीं लगा. भटकते २ जब अत्यन्त थक गया तब निराश होकर, शिथिल गात्रसे पीछा कल्पवृक्षके नीचे आया. शोक और व्यग्रतामें लीन होजानेके कारण, बड़ी देरतक मैं वहांही पड़ा रहा. दिन बहुत चढ़गया था इससे गुरुके भयके मारे उठा और नियमानुसार गुफाके बाहरवाले सरोवरमें स्नान किया, और भरा हुआ कमंडलु लेकर गुरुके समीप गया, और कमंडलु उनके सन्मुख रक्खा. मेरे बोलनेसे पहलेही वे महात्मा बोल उठे—"क्यों क्या समाचार है? कलका सुख कैसा था? तुझको उसका स्मरण है? कह तो सही, वह आनंद कैसा था?" मैं क्या प्रत्युत्तर देता? मैं उनके सन्मुख क्या वर्णन करता? मेरा

तो कंठ रुक गया. नेत्रोंमें आनंदाश्रुओंकी धारा वह चली. तदनंतर मैंने साष्टांग दंडवत् किया, और चाहे मेरी प्यारीके पुनर्वार स्मरण हो आनेके कारणसे हो, चाहे ऐसा प्रत्यक्ष दृष्टांत देनेकी गुरुजीकी अद्भुत शक्तिके कारणसे हो, मुझको तो परम अद्भुत आनंद अनुभव होने लगा. फिर जब मैं उनके सन्मुख बैठा तब वे बोले—

"जैसे कल जो अपार आनंद तूने भोगा और जो २ सुख देखा उसको तू किसी तरह भी वर्णन करनेमें समर्थ नहीं, वैसे ही ब्रह्मानंद, ज्ञानानंद, वा स्वरूपानंद वा सच्चिदानंदके स्वरूपका भी कदापि वर्णन नहीं किया जासकता. असीम सुखका जो अनुभव तुझको हुआ था सो तेरा मनही जानता है. ऐसेही उस परमानंदकोभी जो उसका अनुभव करता है मात्र वही जानता है. अपनेको जो आनंद होता है वह दूसरेंको नहीं कहा जा सकता. परंतु तेरे इस क्षुद्र आनन्दमें और उस परमानन्दमें बड़ा भारी अन्तर है. वह आनन्द तेरे आनन्दसे लक्ष, कोटि, वा अनंत गुणा बढ़कर कहाजाय तो भी थोड़ा ही कहागया समझ. वह तो असीम, अपार, अवधिरहित और अनन्त है. अस्तु, अब तुझको भलीभांति विदित हुआ होगा कि वह ज्ञानानंद अपार और अवर्णनीय है; क्योंकि तुझको स्वतः प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है. औरभी वह आनन्द कहीं कोने कचरेमें नहीं छिपा रक्खा है और न वह जगतसे बाहर है, परंतु तो भी विरले जीवन्मुक्त पुरुषही यहांका यहीं इसी संसारमें रहकर उस परमानंदका अनुभव लेते हैं.

गुरुजीने फिरभी कहा—" अब तू अपने चित्तकी सब चिन्ताको दूर कर. क्योंकि जिस स्त्रीको तूने कल देखा था वह तेरी पूर्वजन्मकी धर्मपत्नी है. उसने जो वृत्तान्त तुझको कहा वह सत्य है, इस जन्ममें भी वह तुझको वरण करचुकी है, वह पूर्ण पतिव्रता है और जिसके दर्शनमात्रसे निष्पाप होजाता है ऐसी उस स्त्रीने तेरी पूर्वजन्ममें बड़ी सेवा की है, और उसी पुण्ययोगसे इस जन्ममेंभी तुम दोनोंभी अनन्त सुखको भोगोगे. वह सती-शिरोमणि अब तुझको शीघ्रही आ मिलेगी, और तेरे सकल मनोरथ पूर्ण होंगे. आज मैं तुझे जो कुछ कहता हूं वह यही है कि, मेरे इस प्रसादका प्राशन करनेसे भविष्यमें तुझको सदा भविष्यका ज्ञान बना रहेगा, और तू सदा सर्वोपरि राजा होकर विदेह रहकर राज्यसुख भोगेगा. तदनन्तर तू निर्वाण पदको पावेगा. वह निर्वाणपद कैसा है सो तुझको अपने आपही

ज्ञात होजायगा. जा, प्रतिष्ठा और कीर्तिके साथ राज्य कर. ले, यह प्रसाद." तदनन्तर उन्होंने अपने अवयवोंको स्थिर किया और नेत्र मूंद लिये. इसपरसे उठजानेकी आज्ञा हुई ऐसा समझकर, मैंने उनको दंड-वत् किया, परन्तु कलके दिन जो आम्रफल प्रसादरूपसे मुझको दिया था वह जहांका तहां पड़ा था, सो मुझे दिखाई दिया और मैंने उसको उठालिया तथा अपने स्थानको चल आया. गुरुजीके दृढीकरणसे तो मुझको अपनी प्रियाका अधिकतर स्मरण होने लगा. वह मानों मेरे नेत्रोंके आगे घूम रही हो ऐसा जान पड़ने लगा, परन्तु मनोवृत्तिको दबाकर तत्क्षण मैंने नित्य नियमानुसार प्रभुकी मानसिक सेवा करना आरंभ किया, परन्तु वहांभी भगवान्के श्यामसुन्दर स्वरूपके पहले अपनी स्त्रीको देखनेलगा. अनन्तर ज्ञानयोगसे सेवा समाप्त करके मैंने भोजनकी इच्छा की. तत्क्षण कल्पत-रुके प्रभावसे इच्छित पदार्थ मेरे समक्ष तैयार दिखाई दिये. इससमय भी 'मैं अपनी प्रियाके विना अकेला कैसे जीमूं ?' ऐसा मेरे मनमें आया, परन्तु उस प्रसादके फलको देखकर स्मरण हो आया कि "पहले. गुरुप्रसाद लेना चाहिये तब दूसरी बात." हे विशाल ! मैं तुझे क्या कहूं ? गुरुप्रसादका कैसा प्रबल प्रभाव ? ज्योंही मैंने आम्रफलको चूसना आरंभ किया कि तत्क्षण मुझको मेरी स्त्रीका तथा विहारसुखका विस्मरण होगया, और मैं जैसा पहले था वैसाही निस्पृह होकर हिमालयके सुन्दर शिखरपर विचरने लगा.

षष्ठ बिन्दु.

मनन.

वस्तुस्वरूपं स्फुटबोधचक्षुषा स्वेनैव वेद्यं न तु पण्डितेन ।
चन्द्रस्वरूपं निजचक्षुषैव ज्ञातव्यमन्यैरवगम्यते किम् ॥
स्वानुभूत्या स्वयं ज्ञात्वा स्वमात्मानमखण्डितम् ।
संसिद्धः सम्मुखं तिष्ठेन्निर्विकल्पात्मनात्मनि ॥

अर्थ—जैसे चन्द्रमाका स्वरूप अपनेही नेत्रोंद्वारा जाना जाता है, परन्तु अन्यके द्वारा जाननेमें नहीं आता, तैसेही आत्माका स्वरूप अपने स्फुटरूप बोधचक्षु द्वारा जो अपने आप समझे तबभी समझा जाता है, किन्तु अन्य किसीकी पंडिताईसे जाननेमें नहीं आता. स्वानुभवसेही अपने आप अपने आत्माको अखण्डित जानकर सिद्ध होकर, अपनेहीमें निर्विकल्परूपसे, मौजसे रहना=विचरना चाहिये.

प्रधान विशालकेतुको राजर्षि यज्ञभू कहता है—"छठे दिन नियमानुसार जब मैं उन योगीश्वरके समीप गया तब उन्होंने मुझको आशीर्वादयुक्त कहा—" तू विद्यासंपन्न तथा चतुर है, इतनाही नहीं, परन्तु तुझको पूर्वजन्मका पूर्ण संस्कार है इससे तेरी बुद्धि अतिनिर्मल है और तू श्रेष्ठ ज्ञानप्राप्तिका पात्र है. पूर्वके उत्तमसंस्कारसे और ईश्वरी शक्तिके बलसे तू यहां पहुँचसका है, और मुझसे नाना प्रकारका गुह्य तथा सानुभव ज्ञान तूने श्रवण किया है. तेरे सिवाय मैंने अपना यह ज्ञान पूर्वमें किसीको भी नहीं कहा है, और जो कहाभी है तो बड़े भिन्नरूपसे कहा है. तुझको देखकर मुझको बड़ा आनन्द होता है, और इस अपार ज्ञानका निरन्तर तुझे कथन करता रहूं तो भी कभी विश्राम लेनेका मनमें नहीं आता; परन्तु आजपर्यन्त जो तू मुझसे श्रवण करचुका है, उसका यथार्थ स्मरण तुझे रखना चाहिये. मुमुक्षुजनको प्रथम गुरुके पास ज्ञान श्रवण करना चाहिये, तदनन्तर सुने हुएका वारंवार स्मरण करके उसको चित्तमें दृढ

करना चाहिये, तबही वह श्रवण किया हुआ ज्ञान सार्थक होता है और उसके निदिध्यासनसे सर्व वस्तुका विस्मरण होकर, विरक्त बनता है; और अन्तमें साक्षात्कार होता है. श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार ये चार मोक्षके द्वार अथवा सीढ़ियां हैं; इनमेंसे पहला श्रवण हैं, और वह दृढ होजानेपर मनन है. श्रवण की हुई वस्तुका बारंबार स्मरण करके योग्यायोग्य विचारके साथ उसको अन्तःकरणमें दृढ़तासे आरोपित करनेको मनन कहते हैं; उस मननके विना श्रवण किये हुएकी विस्मृति होती है, जिससे सद्गुरुसमागमसे प्राप्त हुआ अमूल्य लाभ वृथा हो जाता है. अब तुझको मुझसे श्रवण किये हुए ज्ञानका भलीभांति दृढ़तापूर्वक मनन करना आवश्यक है. मनन करनेसे, जब प्रत्येक बातको, अपने अन्यत्र सुने हुए अथवा देखे हुए उदाहरणके द्वारा पुष्ट कर सकता है. तब वह वस्तु उसके अन्तःकरणमें दृढ़ हो जाती है. फिर हटानेसेभी नहीं हटती. इसलिये तूभी उत्तमतापूर्वक मनन कर. ऐसा करनेके पश्चात् तू श्रवण करने और उसको हृदयमें ठसाकर, स्वरूपानुसन्धान करनेमें शक्तिमान् होगा. अधिक २ श्रवण करनेसे अधिकाधिक मनन होगा; नित्यप्रतिके मननसे निर्लेप होकर, केवल आत्माराम हो जावेगा. मैं तुझपर प्रसन्न हूं, मेरी कृपासे तू संसारके अनन्त सुखोंको भोगता हुआ भी उससे अलिप्त रहकर जीवन्मुक्त होगा."

इतना अमृतमय भाषण करनेके पश्चात् गुरुजीने फिर नेत्र मूंदलिये. उनके अंग प्रत्यंग श्वासादिक सेव स्थिर हुए. जब मैंने जाना कि अब गुरुजी समाधिस्थ होंगे, तब उनको साष्टांग दंडवत् करके मैं तत्काल वहांसे उठा और मानों आज उन्होंने पिछले अभ्यासकी आवृत्तिके लिये अनध्याय* किया हो ऐसा समझकर मैं अपने निवासस्थान कल्पतरुके नीचे आया. वहां परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचंद्रजीकी मानसिक पूजा करके यथेच्छ भोजन किया और कुछ देर तक विश्राम लिया. उस समय मेरे मनमें सहज ऐसा विचार उठा कि–'इस स्वर्गसमान रमणीय स्थलमें मैं जबसे आया हूं, तबसे इसको देखनेकी मेरी इच्छा हो रही है; परन्तु अभीतक मैंने चारों ओर फिरकर कुछभी नहीं देख पाया. आज गुरु-

* छुट्टी. उस दिन नवा पढ़ना बंद रहता है और पिछला दुहराया जाता है.

जीने मुझे छुट्टी दी है, वह सचमुच मेरे मनकी कईदिनसे लगी हुई जिज्ञासा तृप्त करनेके लियेही दी होगी.' अस्तु. आज जितना देखाजाय उतनाही इस पवित्र स्थलको देखलेना चाहिये! यह सोच विचार करके मैं उठा और चलपड़ा. पूर्वकी ओर जो लतावृक्षादि थे उधर गया, तो एक साधारण ऊँचाईकी टेकरी दिखाई दी. वह चारों ओर लगे हुए वृक्षोंसे घिरी हुई होनेके कारण बड़ी सुशोभित होरही थी. जो मैं उसपर चढूंगा तो उसके आसपासकी सब लीला मुझे दिखाई देगी, ऐसा सोचकर, सब कामना छोड़कर, शान्तिको संग लेकर, धीरे २ मैं उसपर चढ़ने लगा. यहांके वृक्षोंमें निरन्तर निवास करनेवाले सुन्दर पक्षियोंके मधुर २ शब्दोंसे मेरा मन आनन्दमय होगया. ठेठ ऊपर पहुँचा तो वहां सुन्दर सपाट जमीन थी, बीचमें एक आम्रवृक्ष अपनी बड़ी शाखा प्रशाखाओंसे विस्तार पाकर पर्वतपर घटाटोप छाया कियेहुए था. उसके नीचे एक सुन्दर स्फटिक शिला पड़ी थी, उसपर मैं बैठगया; और चारों ओर देखने लगा तो मेरे आनन्दकी सीमा न रही. दृष्टिमर्यादाके भी परले पारतक विस्तार पाये हुए, अर्थात् उसकी हद कहांतक है ऐसा निश्चय नहीं होसकता था, ऐसे आनन्दवनकी सब शोभाको मैं एकसाथही निहारने लगा. सचमुच वह स्थल चमत्कारी था. यहां एक कौतुक देखा. ज्योंही मैं उस शिलापर बैठा त्योंही मेरे मनमें नानाप्रकारकी तरंगें उठने लगीं, और योगीश्वरके पास जो मैंने श्रवण किया था उस सबको समर्थन करनेवाले अनेक दृष्टान्त मेरे मनमें स्फुरने लगे. तदुपरान्त बहुतसा नया ज्ञान, मानों गुरुजी स्वयं अन्तर्यामित्वसे मेरे हृदयमें विराजमान होकर उपदेश कररहे हों, इसभांति मनमें फुरने लगा.

१–है और नहीं.

प्रथम तो मैं बैठा २ आकाशकी ओर देखता रहा. अनन्तगोलके अन्तरिक्षमें पवनमें निराधार लटकते हुए नक्षत्रोंका आवागमन देखता हुआ ईश्वरी लीलामें तल्लीन होता था. क्षणभरपीछे मैं बैठा था उसके उत्तर दिशाकी ओरसे एक तेजोमय विमान आता हुआ दिखलाई दिया. उसमें नृत्यगान करती हुई अनेक सुन्दरियां विराजमान थीं. वह विमान सीधा मेरी ओर चला आता था. इस परसे मैंने समझा कि, यह विमान निश्चय करके

इसी रमणीय पर्वतपर उतरेगा और आज मैं इसको देख सकूंगा. ऐसी उत्कंठासे मैं उसको देखनेकी आशासे उधरही यकटक देखने लगा. जिसमें इतनी दूरसे ऐसी शोभा और तेज दिखाई पड़ता है उसको मैं निकटसे देखूंगा तो कितना बड़ा आनन्द मुझे होगा, इसी ध्यानमें तैरने लगा. अहा! 'आज मैं देवांगनाओंके दर्शन करके कृतार्थ होऊंगा और बनसकेगा तो बातचीतभी करूंगा.' ऐसा विचार कररहा था इतनेमें वह विमान यकायक अदृश्य होगया. बिलकुल निराश होजानेसे मेरी आंखोंके आगे अंधेरी छागई. मेरा उत्साह भंग होगया. परन्तु फिर मेरे मनमें विचार आया कि "अरे! यह स्वप्नसमान हो गया! इस पर्वतपर आकर बैठनेसे मुझको जो आनन्द हुआ था वह क्षणमात्रमें कैसे नष्ट होगया?" फिर विचार हुआ कि 'मुझको किसलिये खेद करना चाहिये?' था भी कुछ नहीं और गया भी कुछ नहीं. जैसे स्वप्नमें देखा हुआ सब चरित्र जागृत होनेपर नहींके समान होजाता है, तैसेही यहभी एक स्वप्न था. यही नहीं, यह सारा जगतभी (दृश्य और अदृश्य) तद्वत् स्वप्नके समान–मृगतृष्णाके जलके समान है. जनकराजाको अष्टावक्रमुनिने स्पष्टतया कहा था कि, जैसा स्वप्न वैसाही संसार है. तब फिर आवर्जन विसर्जनमें मोह करना उचित नहीं. यह अविद्याका ही प्रताप है. मृगजलका दृष्टान्त इस संसारके योग्य ही है. यह संसार है और नहीं है यह निश्चय है.

२ मृगतृष्णा.

यह विमान था, मैंने देखा था, तो भी अब नहीं है. नहीं होता तब भी नहीं है. परन्तु क्या मैंने उसको अपनी आंखोंसे नहीं देखा था? हां २ आखोंसे देखा था. किन्तु देखा हुआ भी मिथ्याही है. मैंने पहले देखा था, परन्तु अब नहीं दिखाई देता. तब था कहां? नहीं सो नहीं. मृगजल कि जिसको तृष्णाका जल कहते हैं, जब २ उसको देखते हैं तब २ वह स्पष्टतया जलही दिखाई देता है, तिस परभी वह जल नहीं. यह भी है और नहीं है. जो मूलमेंही नहीं है उसपर आसक्ति नहीं रखना यही ज्ञानीका लक्षण है. तृष्णाका जल दिखाई देता है, परन्तु वस्तुतः वह कुछ नहीं है, ऐसा निश्चयात्मक समझनेवाला तो दौड़कर उसमें लोटा भरनेको नहीं जावेगा और भ्रांतिसे लोटा भरनेको जानेवाले अज्ञानीको वह कहेगा कि, जिसको तू देखता है वह मूलमें नहीं, वर्त्तमानमें जो दिखाई देता है

वह भ्रम है, और भविष्यमें भी वह नहीं है. वह है ही नहीं इससे इसकी आशा छोड़ इसपरभी वह अज्ञानी उस मृगतृष्णाके जलको लेनेको दौड़ेगा तो थककर निराश होकर पीछा लौटेगा और शोक करेगा. तव क्या ज्ञानी होनेसे (ज्ञाननेसे) वह जल नहीं दिखाई पड़ता ? नहीं, वैसाभी नहीं है, वह तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंको एकसा दिखाई देता है, परन्तु जो अज्ञानी है वह भूलकर वारंवार उसे लेनेको दौड़ता है और ज्ञानी उसको देखनेपरभी अपना मन नहीं डुलाता और इसीसे उसको निराशभी नहीं होना पड़ता, तथा दुःखभी नहीं उठाना पड़ता. जो बँधी हुई-लगी हुई आशा टूट जाय तो दुःख होता है, परन्तु मूलमेंही आशा नहीं हो तो क्या टूटे और किसका दुःख हो ?

इसीभांति यह जगत् सचमुच मृगतृष्णाका जल है. अज्ञानीको यह सत्य दिखाई देता है इसलिये वह इसमें मोहित होता है-इसपर प्रीति रखता है. परन्तु जब यह सब बिलकुल मिथ्या है, तब इसमेंसे निरन्तर सुख-अखंडित सुख कैसे प्राप्त हो सके ? कभी नहीं हो सकता. इसीसे अज्ञानसे मोहको प्राप्त हुआ जीव असत्को सत् माननेसे दुःखमें पड़ता है, परन्तु ज्ञानीको ऐसा नहीं होता. जब वह पहलेही जगत्को मिथ्या समझ बैठा है, तब उसमेंकी किसी वस्तुपर उसको आसक्ति नहीं हो सकती और जिसको आसक्ति नहीं उसको ज्ञानमेंभी आसक्ति नहीं होती. वह जैसा है वैसाका वैसा बना रहता है, और निरन्तर महासुखमें मग्न रहता है. अस्तु, मैंने मिथ्यावस्तु पर मोह किया, इसीसे मेरा सब आनन्द लय होगया, और मैं भ्रान्तिके तथा निराशाके दुःखमें गिरपड़ा ! तब मिथ्या पदार्थमें सत्यकी भावना होना यह क्या है ? निःसंदेह यह तो अविद्या है और अविद्याही क्लेशका कारण है.

३-क्लेश (दुःख) का कारण अविद्या.

इसप्रकार क्लेश होनेका कारण अविद्या (झूठी वस्तुमें सच्चीकी भावना होना) ही है. और उससे किस भांति क्लेश आ पड़ता है अर्थात् इस अविद्यामें डूबा हुआ प्राणी कैसे क्लेशको भोक्ता है, इसविषयमें मुझे एक उत्तम दृष्टान्त स्मरण हो आया—

किसी महावनमें एक मदोन्मत्त वनराज-सिंह रहता था. वनमें सिंहसे विशेष बलवान् और कौन ? इस कारण शशोंसे लेकर हाथीतक सर्व वनचर

प्राणी उससे भयभीत रहते थे. क्योंकि जब कभी वह अपने आखेटके लिये निकलता तब अनेक प्राणियोंका वध कर डालता था, जब उसकी भयंकर गर्जनाको सुनते तब किसी प्राणीको इधरउधर हिलनेका भी साहस नहीं हो सकता था. इस भांति वे सब वनचर प्राणी महादुःखी थे. यह दुःख किसप्रकार मिटे इसका वे उपाय सोचने लगे. एक दिन जब वह मृगराज (सिंह) मृगया करके पीछा अपनी गुफाको लौटगया, तब निर्भय होजानेसे, सर्व वनचर एक गुप्त स्थानमें इकट्ठे हुए, और अपना दुःख दूर करनेका उपाय ढूंढ़ने लगे. उन्होंने यह निश्चय किया कि, हम सबको एकसाथ मिलकर मृगराजके पास जाकर विनती करना चाहिये और अपनेमेंसे प्रतिदिन एक २ प्राणी खानेको देनेका ठहराव करना चाहिये जिससे वह अपनेमेंसे बहुतोंके प्राण हरण नहीं किया करेगा. ऐसा विचार करके उन्होंने सिंहके पास जाकर विनती की कि, "महाराज! हम आपकी प्रजा हैं, और जिसप्रकार आपको सुख हो वैसाही करनेको हम तत्पर हैं. हे वनराज! आपको उचित जान पड़े तो हम एक २ प्राणी नित्य प्रति आपके आहारके लिये दिया करें उसमें आप सन्तुष्ट रहो. इससे आपको वनमें भटकनेका कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा और घर बैठे आहार मिला करेगा. सिंहने यह बात स्वीकार की. नियमानुसार पारी २ से नित्य एक २ प्राणी उसके भक्ष्यके लिये जाने लगा. एकदिन एक शृगालके जानेकी पारी आई. सियार बड़ा चतुर और कपटकुशल होता है. उसने अपनी मृत्यु टाल देनेकी एक युक्ति खोज निकाली. वह नियमसे कुछ जियादः देर करके सिंहके समीप गया. सिंहने क्रोधकरके पूछा—"क्यों रे! स्वल्पकालके प्राणी! आज तू अबेरसे क्यों आया?" शृगालने कहा—"महाराज! एक प्रजापर दो राजा हों तो किसकी आज्ञा मान्य की जाय? मैं क्या करूं? हमारे पर आप जैसे बलवान् राजाके रहते भी हमको सतानेवाला एक दूसरा राजा इस वनमें बसता है, और यह हमको आने नहीं देता." यह सुनकर सिंहने आश्चर्यसे कहा—"तू क्या बकता है? क्या मेरे जैसा सिंह इस वनमें और भी है! चल, बता. वह दुष्ट कहां है? अभीका अभी मैं उसका नाश करता हूं." सियार उसको साथ लेकर वहांसे रवाना हुआ और एक बड़े चौड़े कुएके किनारे पर सिंहको खड़ा करके कहने लगा—"हे स्वामी! देखिये, वह आपका शत्रु खड़ा है." अपनाही प्रतिबिंब पानीमें देखकर अज्ञानी

सिंहने जाना कि "सचमुच यह तो मेरे समानही बड़ा सिंह है !" इससे क्रुद्ध होकर एक वड़ी गर्जना करके कहा—"अरे दुष्ट ! तू यहां मेरे वनमें कैसे आया ? क्या तू मुझको तथा मेरी शक्तिको नहीं जानता. !" कुएके भीतरसे भी वैसीही प्रतिध्वनि निकली. उसको सुनकर सिंहने तो सचमुच समझ लिया कि 'इस कुँएमें, अवश्य कोई बलवान् सिंह रहता है. जो मैं उसका नाश नहीं करूंगा तो शीघ्रही मेरे राज्यका अन्त आ जावेगा. यह विचार कर जब उसने क्रोधमें भरकर फिर गर्जना की, तब उसकी भी फिर वैसीही प्रतिध्वनि निकली. उसको सुनकर अतिशय चिढ़कर वह एकदम कुँएमें कूद पड़ा, और उस गहरे पानीमें पड़कर तत्काल मृत्युको प्राप्त हुआ. सियार अपने घर गया. वहां जाकर उसने सब वनचरोंको कहदिया कि, 'अब तुमको कोई सतानेवाला नहीं रहा. तुम निर्भय यथेच्छ विचरो.' तबसे सर्व वनचर परम निर्भय और सुखको प्राप्त हुए.

इस भांति, हे विशाल ! प्रतिविम्बरूप दिखाई देते हुए इस मिथ्या संसारमें, अविद्याको त्याग करके, सर्व जगत्को, जगत्‌रूप भ्रान्तिसे नहीं पहचानते हुए, सर्वत्र ब्रह्मरूपही समझना जिससे जीव क्लेशोंको समूल नष्ट करके आत्मा परमात्माके स्वरूपानन्दमें निमग्न रहेगा. परन्तु जब यह अविद्या ऐसी विनाशकारिणी है तब क्या इसका नाश नहीं हो सकता ? हो सकता है. विद्याके प्राप्त होनेसे अविद्याका नाश होता है.

४–ज्ञानदीपक.

किसी एक पुरुषने सन्ध्यासमय बाहरसे आकर अपने घरको खोला, सो उसके भीतर एक बड़ा सर्प पड़ा हुआ दिखाइ दिया. भयके मारे थर २ कांपते २ उसने सर्पको नमस्कार किया, और तुरन्त स्नान करके उसके पास जाकर विनती करने लगा—"हे महाराज नागदेव ! आप मुझपर कृपा करके यहांसे चलेजाओ. मैं आपके निमित्त १०० जप करूंगा." ऐसा कहकर वह अंधेरेका अंधेरेमें ही जप करनेको बैठगया. जब वह बड़ी देरतक जप करता रहा, परन्तु सर्प वहांसे हटता हुआ उसको नहीं जानपड़ा तब वह खड़ा होकर जो देखने लगा तो सर्पको ज्योंका त्यों पड़ा देखा. एक तो अँधियारा, और दूसरे–घरमें सर्प घुसा हुआ, अब डरका क्या कहना था ? ब्राह्मण अतिशय भयसे घबराकर उसको शपथ दिलाने लगा—"महाराज ! मैंने आपके निमित्त बहुतसे जप किये तिसपर भी नहीं हटते तो आपको

शेषनागकी दुहाई है ! इतना कहनेपर भी जब सर्प वहांसे नहीं हटा, तब उसने हार थककर विचार किया, कि, 'जो नागदेव कदाचित् क्रोधमें हों तो चलो घीका दीपक करके क्रोध शान्त करूं,' ऐसा कहकर उसने घीका दीपक जलाया और लंबा होकर उसको प्रणाम करने लगा तो तुरन्त जानपड़ा कि वह तो सर्प नहीं किन्तु रज्जु (रस्सी) पड़ी है. "अरे रे ! मैंने निरर्थक-मिथ्याही इतना यत्न किया और त्रास भोगा. यह तो रस्सी है. इससे मिथ्याही भयभीत हुआ. अंधेरेके कारण मैंने इसको सर्प मान लिया. जो मैं प्रथमही दीपक जला लेता तो मुझको और कुछभी नहीं करना पड़ता." यह जानकर उसने नमस्कार, जप, ध्यान छोड़ दिया और सुखसे घरका कामकाज करने लगा.

इसीप्रकार उस रज्जू (रस्सी) में सर्पकी भ्रान्तिरूप अविद्या हुई सो केवल अंधकारका ही परिणाम था. परन्तु जब ज्ञानरूप दीपक प्रकट हुआ तब वह सब विडम्बना मिट गई. वैसेही इस जगत्में अज्ञानरूपी अंधकारके कारणसे, जगत्को सत् चित् जाननेकी अविद्या, अज्ञानी मनुष्योंमें बस रही है, इसीसे वह दुःख पाता है. परन्तु ज्ञानरूपी दीपकका प्रकाश होनेपर सर्व भ्रम मिट जाता है और सर्वत्र ब्रह्ममय जानकर आत्मा निजानन्दमें मस्त रहता है. इससे मुझे यह निश्चय हुआ कि,—

ज्ञान है वहां कर्म नहीं, कर्म है वहां ज्ञान नहीं.

क्योंकि इसमें तो संदेह नहीं कि, जहां अंधकार तहां प्रकाश (दीपादिकका) नहीं और जहां प्रकाश है वहां अंधकार नहीं होता.

राम जहां नहिं काम है, काम तहां नहिं राम ।
तुलसी दोनों नहिं रहैं, रवि रजनी इक ठाम ॥

जैसे–जहां श्रीहरि हैं वहां कामवासना जगत्का मोह–ममता–माया नहीं. जहां जगत्की माया है वहां श्रीहरि नहीं; इसीभांति अज्ञान होता है वहां ज्ञानका अभाव हो ही चुका. अतः जब तक अज्ञानरूपी अंधकारके कारण अविद्यारूपी जगतके प्रपंचोंमें जीव लिपटाया रहता है, तब तक अनेक प्रकारके कर्म करनेकी आवश्यकता बनी रहती है, परन्तु जब ज्ञानदीपक प्रकाशित हो जाता है, तब अविद्यारूप जगत्के प्रपंच अपने आप शान्त हो जाते हैं; और तब कर्म करनेकी कुछभी आवश्यकता नहीं रहती. ज्ञान होजाने पर किसी भी साधनकी कुछ आवश्यकता नहीं रहती; परन्तु जब

ऐसाही है तब कर्म, उपासना आदि जो ज्ञानके-ज्ञान होनेके-साधन कहे हैं उनको क्यों नहीं करना चाहिये ? हां, ये साधन हैं सही, परन्तु जैसे अंधेरेका पराभव करनेके लिये दीपक करनेको प्रथम मिट्टीका दीपक, पीछे वत्ती, फिर तेल, इन सबको इकट्ठे करके उनका अग्निके साथ संयोग किया जाता है तब प्रकाश होता है, और अंधेरा मिटता है; और जब दीपक होगया तब तेल वत्ती लानेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती जो है उसकी रक्षा करके उसके प्रकाशमें अपना काम करलिया तो बस है; वैसेही ज्ञानरूप दीपकके प्रकट होनेतकही, कर्म उपासनादि साधनोंकी आवश्यकता रहती है, परन्तु उसके प्रकट होजाने पीछे नहीं. ऐसेही जब ज्ञानी होकर निश्चयपूर्वक जान लिया कि; यह जगत् उससे पृथक् प्रापंचिकरूपसे नहीं है, किन्तु सर्वत्र ब्रह्मरूपही है, तब फिर किसी साधनकी अपेक्षा नहीं रहती.

फिरभी यहां यह समझना चाहिये, कि, ज्ञानी होजानेपरभी कर्म करते रहना; नहीं तो कर्म तथा उपासनाको प्रतिपादन करनेवाली ९६००० श्रुतियां निरर्थक समझी जावेंगी. क्या श्रुतियां निरर्थक हो सकती हैं ? नहीं, कदापि नहीं. श्रेष्ठ पुरुष जो २ आचरण करते हैं वह सामान्य-सर्व साधारण लोगोंके शिक्षण-अनुकरणके लिये हैं, न कि उनके स्वतःके हितके लिये. इसलिये ज्ञानीको भी कर्म तथा उपासना करनी चाहिये. यदि ऐसा हो तो 'जहां ज्ञान है वहां कर्म नहीं, और जहां कर्म वहां ज्ञान नहीं' यह वाक्य मिथ्या ठहरेगा. उसमें कुछ खोनेका नहीं है, और वास्तविकरीतिसे भी वैसा नहीं है. ज्ञानीको कर्म मात्र करना चाहिये, परन्तु उनमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, तो वह कर्म किये न किये बराबर है, और इसीसे 'जहां ज्ञान है वहां कर्म नहीं' यही निश्चय होता है. सच्चा ज्ञान वही कि जो कर्मोंको करते हुए भी उनपर आसक्ति न रक्खी जाय. श्रुतियां भी कर्म करके पल्ले बांधनेको नहीं कहतीं. उनकी आज्ञा है कि, निष्काम कर्म करना; अर्थात् कर्म करके उनके फलकी आशा न रखकर '.ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु' इस वचनद्वारा ब्रह्मार्पणही करना, और स्वयं निर्लेप रहना. ऐसे निष्काम कर्म करनेसे चित्तकी पूर्ण शुद्धि होती है और उसीसे अन्तमें जन्म मरण अपने आप निवृत्त होकर, मोक्ष प्राप्त होता है. इसी हेतुसे कर्म करना, परन्तु फलेच्छारहित होकर-निष्कामतासे कर्म करना कहा है. फलेच्छाके निमित्त किये हुए कर्मोंसे जगत्में बंधन होता जाता है, और उसीसे अज्ञानमें जीव लिप्त

होता है, किन्तु निष्काम कर्म ज्ञानके साधन हैं. परन्तु जो जगत्में उत्पन्न होनेवाले जीवमात्रको जब कोई न कोई कामना अवश्य हुआ करती है तब वह कामनासे रहित कब होसकता है ? इसके लिये मुझको एक दृष्टान्त मेरे पर्वाभ्यास समयका स्मरण हो आया:—

६–जीम चूकनेपर जहरके लड्डू !

इस जगत्में आसक्ति उपजानेवाले विषय हैं, इसकारण जो उन विषयोंको विषयरूप-जहर समान जाने तो, उनमें लेशमात्रभी वासना नहीं रहनेसे जगत्की सब आसक्ति समूल नष्ट हो जाती है. एक समय ऐसा हुआ कि, कोई पुरुष तीन दिनका भूखा था. वह भिक्षा मांगनेके लिये एक गृहस्थके यहां कुछ खानेके लिये मांगने लगा. गृहस्थने कहा–" महाराज ! आप तीन दीनके भूखे हो; इसकारण खानेको देऊं तो सही मेरे यहां सुन्दर मोतीचूरके लड्डू हैं; परन्तु उनमें किंचित् जहर मिला है, सो क्या आप ले सकेंगे ? " इसके उत्तरमें भिक्षुकने कहा—" भाई ! अपने लड्डू अपनेही पास रहने दे. चाहे जैसे भूखा होऊं तो भी क्या जहर खाकर मरूं ? " फिर वह आगे चला, और एक ठिकानेपर मिष्टान्न जीमकर तृप्त हुआ. जब वहांसे पीछा लौटरहा था तब फिर उस पहले गृहस्थने कहा कि " महाराज ! जीमो २ ये लड्डू बड़े स्वादिष्ट हैं. जीमोगे तो मैं भी बहुतसी दक्षिणा दे दूंगा. " उसने कहा–" भले आदमी ! जब भूखा था तब तो तेरे जहरके लड्डू लिये ही नहीं, अब तृप्त होनेपर क्या मरनेके लियेही तेरे लड्डू लेऊं ? और सोभी दक्षिणाके लालचसे ? अरे मूर्ख ! मेरे मरे पीछे दक्षिणा मेरे क्या काम आवेगी ?" ऐसा कहकर वह चलता बना.

इसीभांति विषय हैं कि जिनको भोगनेसे संसारमें प्राणीकी आशा प्रतिदिन वृद्धिंगत होती जाती है, इनकोभी विषरूप जानना चाहिये. और जब ये विषही हैं अर्थात् अभी भोगते समय कदाचित् मीठे लगेंगे तथापि उनका परिणाम विषके समानही होनेवाला है, तब अपनी एक वारकी भूख मिटानेके लिये अपने सारे आयुष्यका नाश करनेवाले जहरके लड्डुओंको भिक्षुकने जैसे अतिक्षुधातुर होनेपरभी नहीं खाया, और दक्षिणाकी लालच नहीं किया; वैसेही एक क्षणभरके सुखके लिये, अपने अनन्त सुख (ज्ञान

प्राप्ति-निजस्वरूप) का नाश करनेवाले विषयमें मुमुक्षुको आसक्ति नहीं रखनी चाहिये. तथा उस क्षुधातुर भिक्षुकके समान, विषय भोगनेमें इच्छुक (आसक्ति होनेवाला) होनेपरभी जिसने विष जानकर विषयोंका त्याग किया (उनमें आसक्त नहीं हुआ) तब फिर ज्ञानी (तृप्त) होजानेपर उन-पर मन कैसे दौड़ावे ? तथा इस विषयासक्तिको छोड़ करके, मुमुक्षु पुरुष ऐसा विराग रक्खे कि जैसे बहिर्दिशा* को गया हुआ पुरुष उस स्थलसे उठकर तिरस्कारसे कदापि अपने मलमूत्रकी ओर दृष्टि नहीं करता; किंतु तुरन्त अपने घर चला आता है; इसीप्रकार परित्यक्त विषयोंकी ओर सदा सर्वदा तिरस्कार रखना चाहिये. किंतु ऐसा वैराग्य, अन्तःकरणकी शुद्धिके विना कहांसे हो ? ऐसा होनेके लियेही मनुष्यके लिये कर्मादि निर्माण किये गये हैं. परन्तु यदि ऐसा वैराग्य स्थिर होनेके लिये निरन्तर कर्मादि किये जायँ तो उनका अन्त कब आवे ?

७-ज्ञान होजानेपर कुछभी नहीं.

कुक्कुट, कपोत, काक, कोकिला, इत्यादि पक्षी अपने अंडेका तभीतक सेवन करते हैं जहांतक कि, वह परिपक्व न होजाय. परन्तु पक्व होजानेपर वे पक्षी स्वाभाविक रीतिसेही अपने अंडोंको फोड़ डालते हैं, तब उनमेंसे पक्षी (बच्चे) निकलते हैं. यदि वे पक्षी, पक्व हो चुकनेपरभी अंडेका सेवन निरंतर कियाकरें तो भीतरके बच्चेके पंख गल (सड़) जाते हैं. इसीभांति कर्मा-दिकका सेवनभी तबतकही कहा गया है जबतक ज्ञान न हो जाय. ज्ञान होजा-नेपर कर्म आपही क्षय होजाते हैं-जगत्‌की आसक्ति आपही छूट जाती है. कर्म करते रहनेमें आवे और जो वे ब्रह्मार्पण हों तिस पीछे, कर्मोंमें आसक्ति रक्खे तो परिपक्व हुए अंडेका सेवन करनेसे गलजानेवाले बच्चेके पंखके समान, वह ज्ञान-पक्व हुए हृदयके भीतरका ज्ञानभी बाह्य आसक्तिके कारण गल जाता है अर्थात् शिथिल हो जाता है. अतएव ज्ञान होजानेपर आसक्ति-रहित निजानंदपनसेही विचरनेका समय है.

उस समय मुझको ऐसा विचार आया कि " अहो ! मैं अपनेही मनसे ऐसी अनेक प्रकारकी शंका और उनका मनमाना समाधान कररहा हूं यह किसका प्रताप ? सच मुच, यह महात्मा गुरुजीकाही प्रताप है. नहीं तो,

* मलत्याग.

मुझ पामरको उनके विना ऐसा अलभ्य लाभ कहांसे हो ? और मुझहीको नहीं किंतु चाहे जैसे महापुरुषकोभी गुरुके विना ज्ञान होताही नहीं.

८ गुरुकी आवश्यकता.

प्रत्येक प्राणी (मनुष्यादि) नित्य सर्व दृश्य प्रपंच स्थूलादिकी उत्पत्ति करता है, अर्थात् जाग्रत् अवस्थामें उत्पन्न करता है, और उस जाग्रत् अवस्थाको (उसमें किये हुए क्रियमाणमात्रको) स्वप्नावस्थामें लय करता है अर्थात् स्वप्नावस्थामें, जाग्रत् समयमें कियेहुएका कुछभी स्मरण नहीं रहता, इसीलिये उसका लय हुआ. उस जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थाको सुषुप्ति अवस्थामें लय करता है, अर्थात् जाग्रत् तथा स्वप्नमें देखी हुई अनेक वस्तुएँ और किये हुए अनेक व्यापार गाढ निद्रामें कुछ नहीं दिखाई पड़ते, और न उनका कुछ स्मरणही होता है, इसलिये वेभी लयही हो जाते हैं. सुषुप्ति अर्थात् किसी वातका भान न रहनेरूप गाढ़ निद्रा आना, यह तम अर्थात् अज्ञानही हैं. उस (सुषुप्ति अवस्था) को तुरीय नामकी चौथी अवस्थामें अर्थात् समाधिमें लय करते हैं. इसीका नाम ज्ञान है. प्रत्येक मनुष्य निरंतर व्यापार करता रहता है; परन्तु उसका उसे ज्ञान नहीं होता. वह ज्ञान होनेके लियेही गुरुकी सहायता अपेक्षित होती है. 'गुशब्दस्त्वन्धकारोऽस्ति रुशब्दस्तन्निरोधकः' गु अर्थात् अंधेरा और रु अर्थात् उसका नाश करनेवाला सो गुरुही अज्ञानरूपी अंधकारका नाश करनेवाला है. मनुष्य अज्ञानी है, और उसको ज्ञान होनेके लिये गुरुकी आवश्यकता है, परंतु ईश्वर (समर्थ) को ऐसी कुछ आवश्यकता नहीं. ईश्वर–हिरण्यगर्भ, ईश्वर,–ब्रह्मदेव–सृष्टिकर्त्ता, ईश्वर (ब्रह्मदेव) का वेदोंको, स्मरणरूप गुरु है. जबतक श्रुतियोंका स्मरण नहीं हुआ था तबतक ब्रह्मदेवको, क्या करना है सो कुछ नहीं सूझता था. परन्तु आकाशवाणी द्वारा उनको वेदका उपदेश हुआ तब उस (वेद) में कहे अनुसार उन्होंने इस सृष्टिकी रचना करना आरंभ किया. इसभांति सर्वत्र गुरुकी आवश्यकता है. मनुष्य अथवा ईश्वरही गुरु हो सकता है, ऐसा नहीं है किंतु प्रत्येक पदार्थ–जगत्का हरकोई पदार्थ मनुष्यका गुरु हो सकता है. यह जगतही मनुष्यका महागुरु है. महासमर्थ सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी, श्रीदत्तात्रेय स्वामीने चौवीस गुरु किये हैं वे सब मनुष्यही नहीं, किन्तु कुक्कुट, श्वान, गीध आदिक प्राणी हैं. अस्तु, गुरु विना ज्ञान (परमपदकी) प्राप्ति नहीं होती.

गुरु कहांसे लाकर शिष्यको ज्ञान (परमानंद-प्राप्तिका मार्ग) दर्शाते हैं ? क्या उनको कुछ अपने पल्लेसे देना पड़ता है? नहीं, मुझको तो मेरे महात्मा योगीश्वर गुरुने मेरा अपनाही स्वरूप (मूल परमात्मस्वरूप) ज्ञानद्वारा दर्शाया है, उसमें दूसरा कुछभी नहीं बतलाया; परन्तु मेरे इस देहके मध्यमें ज्योतिश्चक्रके बीचमें देखनेका ज्ञान कराया है; अर्थात् कुछभी मुझसे भिन्न नहीं. जो कुछ हूं सो सब मैंही हूं, यही समझाया है. इससे यह सिद्ध होता है कि, गुरुओंको अपनी गांठका कुछ नहीं खर्चना पड़ता, जो शिष्यका है सोही उसको शोधकर बता देते हैं. इसपर एक दृष्टांत स्मरण हो आया है, सो यहः—

९-शिखरमें धन.

एक साहूकार जिस समय मृत्युशय्यापर सोया हुआ था उस समय उसने अपने सर्व पुत्रोंको अपने पास बुलाया और कहा—"हे पुत्रो ! तुम लोग मेरे पीछेभी जैसी मेरी प्रतिष्ठा है वैसी की वैसी बनी रखना, बल्कि उससेभी अधिक बढ़ाना; परन्तु उसमें न्यूनता नहीं होने देओगे तबही तुमने मेरा नाम रक्खा और मेरा उद्धार किया समझा जायगा. मेरी कितनीही संपत्ति स्थावर है तथा बहुतसी जंगम है सो तुम सबको भलीभांति विदित है. उसमेंसे तुम रीतिके अनुसार काममें लाना; परन्तु दैववशात् व्यापारमें नफा नुकसान होनेका संभव होनेसे, जो तुमको रुपयोंकी आवश्यकता लगे तो मेरी पुरानी बहियोंको विचारपूर्वक ढूंढ़नेसे तुमको मेरा विशेष धन मिल जावेगा और तुम्हारा संकट दूर होजायगा." वह साहूकार मरगया और बहुतसे वर्ष बीत गये. एक समय ऐसा हुआ कि, उसके लड़के उनके पासका द्रव्य खूट जानेसे इकठ्ठे होकर अपने पिताकी सूचनाके अनुसार पुरानी बहियां ढूंढ़ने लगे. पन्नोंकी उलट पुलट करते २ एक बहुत पुरानी बहीमें ऐसा लिखा हुआ मिला—"चैत्रसुदी १०के दिन, प्रहर दिन चढ़े अपने घरके पासवाले शिवालयके शिखरमें मैंने बहुतसा धन रक्खा है, जब तुमको अपेक्षा हो तब खोदकर निकाललेना." ये मार्मिक वाक्य पढ़कर, दूसरेही दिन उन्होंने निश्चय किया कि, इस शिवालयके शिखरमें पिताजीका धन है इसलिये उसको तोड़फोड़कर निकाल लावें. तदनन्तर कई मजूरोंको काममें लगाकर उन्होंने शिखर गिरवाना (तुड़वाना) आरंभ किया. यह समाचार सुनतेही सारे शहरमें हाहाकार मच गया. लोग उन वणिक्पुत्रोंको फटकारने

लगे–" अरे रे ! सचमुच कलिकाल आगया है; जगत्में शंकरजीके मंदिरका शिखर किसीने गिरवाया हो ऐसा आजतक नहीं सुननेमें आया; परन्तु ठीक, सेठके पीछे ये अच्छे सपूत निकले; जो इनके पिताने बहुतसा द्रव्य लगाकर परमार्थके लिये शिवालय बँधवाया था, उसका शिखर ये आज गिरवाने लगे. छिः छिः धंधेमें दिवाला निकाला. अब शिवालयके शिखरमेंसे धन निकालने लगे; परन्तु मूर्ख ! इतना नहीं समझते कि उसमें द्रव्य कहांसे आया ? "

उस मृत साहूकारका एक वृद्ध और चतुर अनुभवी मित्र जो उसी नगरमें रहता था उसको यह बात विदित हुई. उसने मंदिरके पास जाकर उन वणिक्–पुत्रोंको कहा–" भाई ! तुम यह क्या करते हो ? " उन्होंने कहा–" काका ! हमारे पिताजीने वहियोंमें लिखा है तदनुसार हम इस शिवमंदिरके शिखरमेंसे द्रव्य निकालते हैं. " वृद्ध बोला–" अरे भले आदमीयो ! शिखरमें कहींभी अपार द्रव्य समा सकता है ? वहियोंमें क्या लिखा है सो तुम समझे नहीं होंगे. सो वही लाओ, देखूं उनमें क्या लिखा है ? " उन्होंने तुरन्त वहियां लाकर उनके सन्मुख धरीं. वृद्धने बांचकर देखा कि 'अमुक समय शिखरमें द्रव्य गाड़ दिया है.' वह वृद्धपुरुष कहने लगा कि "लिखा तो यही है, परन्तु तुम्हारा पिता बड़ा विचक्षण पुरुष था, इसलिये उसके लिखनेमें कुछ भेद अवश्य है. विचार किये विना वह भेद समझमें नहीं आ सकता. सोचो कि देवालय बँधानेको तो बहुत वर्ष होगये, और यह द्रव्य तो देवालय बन चुकनेपर पीछेसे गाड़ागया है, तो शिखर उतारकर द्रव्य गाड़ागया हो यह बात नहीं बन सकती. औरभी अमुकवर्षमें द्रव्य गाड़ा है ऐसा न लिखते केवल चैत्र सुदी दशमी ही लिखी है. अस्तु, चैत्रसुदी १० आने दो तब इसकी पूरी २ खोज हो सकेगी कि धन गाड़नेको लिखा है या क्या ? चैत्र सुदी दशमीके दिन उन वणिक्–पुत्रोंने उस वृद्धको बुलाया. जब दो पहर दिन चढ़ा तब सब जने उस शिवालयके पास खडे हुए. इधर उधर देखभालकर उस वृद्धने उनको कहा कि वणिक्–पुत्रो ! क्या तुम मुझको यह बता सकते हो कि इससमय शिवालयका शिखर कहां है ? जो कोई सबसे पहले शिखरको छुवेगा उसीको उसमेंका द्रव्य मिलेगा. जब तीन पुत्र जैसे तैसे करके शिखरको छूनेके लिये उसपर चढ़ने लगे तब चौथा पुत्र जो विचक्षण था उसने विचार किया कि "मैं तो चढ़ नहीं सकता.

और जो इसकी छाया है वह भी तो शिखरही है; इससे चलो, उसीको जा छुऊं." तुरत वह उस शिखरकी छायापर जाकर खड़ा होगया. यह देखकर उस वृद्धने उन तीनोंकी ओर दृष्टि करके कहा—"अरे अज्ञानियो! मिथ्या श्रम किस लिये करते हो? नीचे उतरो. शिखरको तो तुम्हारे छोटे भाईने छू लिया है." उन्होंने कहा कि "उस छायाको शिखर कैसे कहसकते हैं?" वृद्धने कहा "हां, यह छाया किसकी कहलाती है?" वे बोले "देवालयकी. उसमें इस देवालयका शिखर कैसा?" तब वह वृद्ध कहने लगा—"भाई! यही शिखर है. यहीं खोदो ताकि तुम्हारा द्रव्य तुमको मिले. तुम्हारे पिताने शिखर गिरानेको नहीं लिखा, परंतु खोदनेको लिखा है; सो क्यों भूलते हो?" अनंतर सबने पृथ्वीपर शिखरकी छायाकी जगह खोदकर अपार द्रव्य प्राप्त किया, और बड़े प्रसन्न होतेहुए उस वृद्धकी स्तुति करने लगे—"काकासाहब! आप हमारे पिताके मित्र हैं सो हमारे पितातुल्यही हैं. आप थे इसीलिये हमको यह द्रव्य मिला और लज्जा रही, अतः हम आपका बड़ा उपकार मानते हैं." यह सुनकर उसने उत्तर दिया—"भाई, द्रव्य तो तुम्हारा ही था सो तुमको मिला. इसमें मेरा क्या उपकार? मैंने कुछ अपनी गांठसे निकालके तो दिया ही नहीं. केवल अपनी अज्ञानताके कारण तुम जानते नहीं थे सो मैंने तुमको बतादिया. अस्तु, खाओ, पीओ और सुमार्गमें लगाओ." ऐसा कहकर वह वृद्ध अपने घर गया.

इसीप्रकार अज्ञानी जीव, जो अज्ञानरूपी तम (अंधकार) में भटकनेसे अथवा भ्रान्तिसे अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको नहीं जान सकता, उसको गुरु ज्ञानोपदेश करके निज—स्वरूपका भान कराते हैं, परन्तु गुरु कुछ नया ही सच्चिदानन्दरूप नहीं दे देते हैं.

हे विशाल! इस समय मैंने जाना कि, जब सर्वत्र सच्चिदानन्दरूपही विराजमान है तब तो उसकी प्राप्तिके लिये कुछभी आयास नहीं पड़ना चाहिये. निश्चय ऐसाही है. इसपर एक दृष्टान्त है:—

१०–केवल देखनेमें अन्तर है.

किसी मुमुक्षुने एक संतको जाकर पूछा कि—"महाराज! मुझसे परमात्मा किस भांति देखा जाय? सर्व ज्ञानीजन तथा आप बारंबार यही

कहते हो कि, जहां तहां सच्चिदानन्दही विराजमान है, परन्तु मेरी दृष्टिसे तो कहीं भी देखनेमें नहीं आता." यह सुनकर उन महात्माने कहा— "भाई! तू कहता है सो सत्य है; परन्तु केवल देखने २ में अंतर है. हीरेकी परीक्षा करके उसका परखैया जौहरी उसको बड़े मुकुट अथवा कंठेमें ही जड़ता है, परन्तु उस हीराकी कीमत नहीं जाननेवाला गँवार गड़रिया उसको एक चमचमाता हुआ पत्थर समझकर अपनी भेड़के गलेमें बांधदेता है. परन्तु वह हीरा पत्थर नहीं होजाता, हीरा तो हीरा ही रहता है. तू यहां बैठा है, सो जरा हटकर बैठ तो तुझे परमात्मा प्रत्यक्ष दिखाई देगा." तात्पर्य यह कि, तेरी बुद्धि जो जगत्में सत्यत्व (जगत्पन) मान रही है उसको तू परमात्मामें सत्यत्व (अर्थात् जगत् है सो परमात्माकाही रूप है, जगत्में जितनी दृश्य और अदृश्य वस्तु हैं उन सबमें परमात्मा है ऐसा) माननेवाली कर, तब तू महाज्ञानी बन जानेसे निजस्वरूपको निरख सकेगा. कारण यह कि यह जगत् कहीं अन्यत्रसे नहीं आ गिरा है, यह तो परब्रह्मके स्वरूपमेंसेही आविर्भावको प्राप्त हुआ है (उत्पन्न हुआ है); इसीलिये वेदोंमें कहा हुआ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह वाक्य तेरे मनमें ठस जायगा. अर्थात् यह जो कुछ है सो सब ब्रह्मही है, अन्य कुछ नहीं. क्योंकि उसी ब्रह्ममेंसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है. तथा—

११–कारण और कार्यमें भेद नहीं.

इस परसे यह सिद्ध है कि कारणसे कार्य भिन्न नहीं होता. कार्य अर्थात् उत्पन्न होकर किसी रूपमें आया हुआ पदार्थ, और कारण अर्थात् जिससे कार्य हुआ—जिसमेंसे उस वस्तुकी उत्पत्ति हुई. जैसे घड़ा और मिट्टी. मिट्टीसे घड़ा बना इस लिये मिट्टी कारण है और घड़ा कार्य. अब यहां कारणसे कार्य भिन्न कहां रहा? क्योंकि आदिमें भी मिट्टी ही थी और घड़ा फूटगया तब फिर पीछी मिट्टी ही होगई. अर्थात् घड़ा बनगया सही, परन्तु उसमेंसे कुछ मिट्टीपन नहीं चला गया. इसलिये मिट्टीही मिट्टी है और घड़ा है तबभी मिट्टी ही है. केवल 'घड़ा' यह मध्यदशामें दृष्टि पड़ता है; और मृत्तिकाके विकारकी 'घड़ा' संज्ञा है इसके शिवाय और कुछ नहीं है.

और भी दृष्टान्त यह है कि, किसी साहूकारने सेरभर चांदी सुनारको देकर उसका एक लोटा बनवाया. जब लोटा तयार हुआ तब सुनारने सेठको बुलाकर कहा—" सेठ ! अपना लोटा लेजाओ." सेठने आकर देखा तो लोटेका घाट (बनावट) पसंद नहीं आया इस कारण क्रुद्ध होकर उस सुनारको कहा—" अरे तू कैसा मूर्ख है ? मेरी उस सुन्दर चांदीका ऐसा भद्दा* लोटा बनाया है ? मैंने ऐसा घाट बनानेको तुझे कब कहा था ? मुझको मेरी चांदी पीछी देदे." तुरन्त सुनारने लोटा सेठको सौंपा. उसने उसे फेंककर कहा " मैं इसको क्या करूं ? मुझको मेरी चांदी चाहिये." सुनारने विचार किया कि "यह मूर्ख ऐसे नहीं समझेगा. अब मैं भी ऐसाही बनूं तब ठीक होगा" तब उस सुनारने वह लोटा उठालिया और सेठके देखते निहाय पर रखकर कूटपीटके एक गोला बनाकर सेठको सौंपा और कहा 'लो सेठ अपनी चांदी.' यह देखकर सेठको बहुत बुरा लगा, परन्तु सत्य बातमें क्या बोल सकता था ? इसलिये वह चांदीका गोला लेकर चुपचाप अपने घर चला गया.

अतएव कार्य तो कारणकी कल्पना मात्र है. जब यह जगत्रूपी कार्य, परमात्मारूपी कारणमेंसे उत्पन्न हुआ है, तब वह इससे भिन्न कैसे हो सकता है ? भिन्न हैही नहीं. वस्तुतः ज्ञानदृष्टिसे देखा जाय तो जगत् हैही नहीं, किन्तु सब ब्रह्मही ब्रह्म है.

इसी समय मैंने निश्चय किया कि, जब कारण और कार्य भिन्न नहीं, तब यह समस्त दृश्यादिक प्रपंच परमात्मारूप है, उसके सिवाय और कुछ नहीं.

१२–परमात्मा पृथक् नहीं.

वह स्वयं ही (परमात्माही) केवल उपाधिभेदसे जगत् तथा जीव ईश्वरादिरूप हुआ और कहलाया है. सूक्ष्मदृष्टिद्वारा देखनेसे, जिस २ भांति उत्पत्ति, स्थिति, और लय ये सब कार्य ईश्वरके हैं उसी २ रीतिसे सर्व प्राणीमात्रकेभी हैं. इसलियेही समष्टिभेदसे परमात्मा ईश्वर और व्यष्टिभेदसे जीव कहलाता है. जीव ईश्वरका ही स्वरूप है, वह उससे अतिरिक्त (भिन्न) नहीं. तथा ईश्वर जैसे स्वतंत्र है तैसेही जीवभी अपने कार्यमें स्वतंत्र है और जब जीव तथा ईश्वर दोनोंको स्वतंत्र गिने

---

* बेडौल.

जाँय तब जीव भी ईश्वरके समान महत् कार्य कर सकता है; परन्तु ऐसा होता नहीं. इसका कारण यह है कि, कारण वा कार्य (कृत्य-कर्म) भेदसेही जीव और ईश्वरको भिन्न-न्यूनाधिक मानते हैं; परन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि ईश्वरका भी किसी कार्यमें ईश्वरत्व और किसीमें अनीश्वरत्व हो जाता है. यथा-रावणादिकको मारनेके लिये ईश्वरने रामावतार लिया. वहां जलशायी विष्णु ईश्वर नहीं समझा जायगा. किन्तु श्रीरामचंद्रही ईश्वर माने जायँगे. ऐसेही कंसको मारनेके लिये कृष्णावतार हुआ. वहां श्रीकृष्णही ईश्वर समझे जायँगे; कंसवधादि कार्यमें रामचंद्र ईश्वर नहीं गिने जायँगे. इसीप्रकार हिरण्यकशिपुके वधके लिये श्रीनृसिंहही ईश्वर हैं, न कि राम, कृष्ण. इसपरसे स्पष्ट-प्रकट है कि, एकही ईश्वररूप कर्मभेदसे भिन्न २ समझा जाता है. तैसेही जीवभी केवल मायारूपी उपाधि और कर्मरूपी उपाधिके कारणसे जीव कहलाता है. ज्ञानदृष्टिसे देखनेपर जीवही ईश्वररूप है; ईश्वरसे कुछभी न्यूनाधिक नहीं. क्योंकि जीवभी अपने काममें (अज्ञानवृत्तिमें) ईश्वरही है. राजा एक जीव है तबभी प्रजाके संबंधसे ईश्वरही है. गृहपति अपने घरमें ईश्वरही है. जीवभी अपने कर्ममें ईश्वरही है. विश्वामित्र महर्षिको भी जीवकोटिमें गिन सकते हैं; तोभी उन्होंने नवीन सृष्टि रची और त्रिशंकुको ईश्वर (उस नई सृष्टिका अधिपति) करके स्थापन किया. इसपरसे तो विश्वामित्र ईश्वरके भी ईश्वर सिद्ध हो चुके (नई सृष्टिका ईश्वर तो त्रिशंकु और उसका ईश्वर विश्वामित्र) तब उनमें जीवत्व (जीवपन) कहां रहा ? इसलिये ईश्वर, जीव और सारा जगत् ये सब पूर्ण पुरुष परमात्माके स्वरूप हैं, न कि उससे भिन्न. जब सारा जगत् परमात्माका स्वरूप है और परमात्मा अपने संपूर्णपनसे जगत्रूप हैं तब परमात्मा भिन्न कैसे रह सकता है ?

१३-निवृत्ति.

हे विशाल ! इस समय मुझे यहभी विचार उत्पन्न हुआ कि, वस्तुतः एक होनेपरभी उपाधिके कारण ईश्वरसे भिन्न दिखाई देता हुआ जीव, निर्मल (प्रारब्धादिक कर्मोंसे रहित) कब हो ? ज्ञान-ज्योतिसे जान पड़ा कि, जब वह स्थूल सूक्ष्म देहका त्याग किया करे तब निर्मल हो. स्थूल अर्थात् बाहरसे दृश्यमान पांचभौतिक शरीर, और सूक्ष्म अर्थात् वासनारूपसे अदृश्य

रहनेवाला शरीर—स्थूलके भीतर और स्थूलके गिरजाने (नष्ट होजाने) परभी आत्माके साथमें रहनेवाला लिंगशरीर. यह स्थूल देह है वही जब प्रारब्ध कर्म भोगे जा चुकते हैं तब निवृत्त होता है; और लिंगदेह, अज्ञान जाता रहकर जब सर्वत्र विरागवृत्ति—व्यापारसे वासनाका नाश होता है तब निवृत्त होता है. ये दोनों देह निवृत्त (समाप्त—मानसिक मृत्युमय) होनेपर आत्मा निरंजन निराकार स्वयंप्रकाश होकर, अपने मूल—परमात्मस्वरूपमें लीन होता है अर्थात् मोक्ष पाता है—संसारत्राससे छूटकर निवृत्ति (शान्ति) पाता है, और फिर आवर्त्तन (जन्ममरण) करनेकी आवश्यकता नहीं रहती.

१४—प्रारब्ध.

जब यह स्थूलदेह प्रारब्धकी निवृत्ति होनेसे निवृत्त होता है, तब प्रारब्धकी निवृत्ति कैसे हो ?

किसी युद्धप्रसंगमें एक बलवान् योद्धा हाथमें धनुष और पीठ परके भाथेमें सैंकड़ों बाण भरकर रणभूमिमें गया. शत्रुओंको यकायक मारमार करते देखकर, समरांगणमें प्रवेश करतेही उसने अतिशय क्रोध करके, अपने हाथमेंका एक दिव्य बाण, कि जो एकही बारमें सारे शत्रुसैन्यका नाश करनेमें समर्थ था, अपने धनुषपर चढ़ाकर शत्रुओंपर छोड़ा. वह बाण धनुषमेंसे छूटतेही अनेक शत्रुओंका—रथ, घोड़े, सारथि, तथा और वाहनोंसहित सेनाका—नाश करता हुआ सड़सड़ाहटसे आगेही बढ़ता गया, उस योद्धाने एकही बारमें सारे सैन्यका नाश होता देखकर विचार किया कि—" अरेरे ! मुझसे वह संहारक बाण छूटगया, इससे तो सहजमें बड़ा भारी सत्यानाश हो जायगा; परन्तु अब क्या उपाय ? छोड़दिया सो तो छोड़दिया. यह बाण अब कुछ मेरे हाथमें पीछा आनेवाला नहीं. यह तो जितना उसमें वेग होगा वह सब पूरा होजायगा तबही निवृत्त होगा, अतः अब इसमें मेरा कुछ उपाय नहीं चलसकता. " ऐसा विचार करता हुआ, अपने पहले जैसे आवेशमें ही दूसरा बाण भाथेमेंसे निकालकर हाथमें लिया और धनुषपर संधान किया था, उसको न छोड़कर, वह जड़वत् खड़ा २ फिर सोचने लगा कि " अब मैं इस बाणको नहीं छोडूं; क्योंकि यह अभीतक मेरे स्वाधीन है, परन्तु छोड़ देनेपर यह मेरे वशका नहीं." उस—समय शत्रुसेनाका मुख्य अधिपति उसका सब ढंग देखकर सोचने लगा कि—"इस सैनिकने एक बाण छोड़ा जिससे तो सारा सैन्य मूर्च्छित होगया है. अब दूसरा

बाण चलानेका विचार करता है, यदि उसने छोड़ दिया तो न जाने उससे कैसा सत्यानाश हो जाय. इसकारण मैं उसके यत्नकाही भंग कर डालूं तो ठीक." ऐसा विचार करके तुरन्त उसने एक अग्न्यस्त्र वाण धनुषपर चढ़ाया और उसके द्वारा, उस बलवान् योद्धाका धनुष, वाण, तथा अस्त्रोंसे भरा हुआ भाथा इन सबको जलाकर भस्म कर डाला! इस घटनासे दुःखी होनेके बदले उस योद्धाने बड़ा आनन्द मनाया, और वाण तथा धनुषादिक सब उपाधि–भस्मीभूत होगईं इससे उसने अपनेको सचमुच शान्त और निवृत्त हुआ मान लिया. इतनाही नहीं, किन्तु वह रणांगण छोड़कर आनन्दित होताहुआ विरक्तके समान चल पड़ा; कारण यह कि उसने युद्धमें आते समय अपने पिताके सन्मुख ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि "ये एकही वारके ग्रहण (धारण) किये हुए आयुध जबतक निःशेष न होजायँगे तब तक मैं युद्ध करता रहूंगा, और जो युद्धमें जीता बच जाऊंगा तो युद्धस्थल छोड़कर चला जाऊंगा. यह इतिहास बड़ा विस्तीर्ण और रसिक है; परन्तु हे विशाल! यहांपर वह सब कहनेकी आवश्यकता नहीं है, जितने सार मात्र अंशका मुझे स्मरण होआया था, उतनाही भाग मैंने तुझको सुनाया. इसप्रकार जब वह योद्धा रण छोड़कर विरक्त होकर चलागया तब युद्ध भी बंद होगया.

इस उदाहरणसे मैंने यह तात्पर्य निकाला कि, प्राणीको इस योद्धाके समान समझना. उसके भाथामें भरे हुए जो सैकड़ों वाण थे उनके समान उसके प्रारब्ध कर्म मानना, तथा हाथमेंके धनुषको उसके जीवपनकी उपाधिरूप जानना. अब भाथामेंसे निकालकर छोड़दिया हुआ वाण कि जो पहले चलकर सैन्यको मूर्च्छित कर चुका था, उसके समान यह प्रत्यक्ष प्रारब्ध है. जो २ प्रारब्ध फल देने (भोगने)को आगे बढ़चुके हैं वे सब तो भोगनेही पड़ेंगे–पहले छूटेहुए वाणकी भांति वे जब भोगलिये जायँगे, तब उनकी गति अपने आप बंद हो जायगी. और उसीसमय पूर्ण शान्ति–निवृत्ति सोहंको प्राप्त होगी. जैसे वह छूटा हुआ वाण पीछा नहीं आ सकता तैसेही जो फल देनेका प्रारंभ करचुके हैं वे प्रारब्ध पूरा २ फल भोगेविना, उस बाणके समान आपही निवृत्त होनेवाले नहीं–उनको भोगे विना छुटकारा नहीं. सैन्यका यकायक नाश होता देखकर जैसे योद्धाको विचार उत्पन्न होआनेसे उसने दूसरा बाण छोड़ना बंद करदिया, ऐसेही

प्रारब्धकर्मसे भोगेजाते हुए अनेक सुखदुःखोंको देखकर, भविष्यमें अन्यान्य प्रारब्ध न भोगने पड़ें अर्थात् भोगनेवाला शरीर धारण करना न पड़े तो ठीक, ऐसा विचार करके प्राणीको परमार्थ–साधनका विचार करना चाहिये. और जैसे उस शत्रुकी ओरसे आयेहुए अग्न्यस्त्र वाणके द्वारा योद्धाके भाथा-सहित सब वाण भस्म होगये, वैसे प्रारब्धसे डरकर परमार्थ–साधनका विचार (यत्न) करते हुए मुमुक्षु पुरुषको ज्ञान होनेसे अर्थात् जब ज्ञानरूप अग्निसे उसके अवशिष्ट संचित प्रारब्ध जलकर भस्म हो जाते हैं, तब उन अस्त्रोंरूपी उपाधिके नाश पानेसे वह योद्धा जैसे निस्स्पृह और निवृत्त होगया तथा हर्षित होकर वहां चला गया; वैसेही सर्व प्रारब्ध जल जानेसे और देह-रूप उपाधिका नाश होजानेसे, मुक्त हुआ जीव अपने परमात्मरूपानन्दमें मग्न होजाता है.

ये प्रारब्ध दो प्रकारके हैं. ये क्यों कर निवृत्त हों ऐसा प्रश्न साह-जिक है. एक प्रारब्ध संचित अर्थात् पूर्वमें जो किया गया है वह इस भवमें भोगनेके लिये तयार रहनेवाला संचित प्रारब्ध, उस भाथामेंके वाणोंके समान ज्ञानरूपी अग्न्यस्त्रसे जलकर भस्म होजाय; और केवल पहले छोड़ेगये वाणकी नाईं, भोगनेको प्रारंभ भये हुए प्रारब्ध भोग लेनेसे निवृत्त हों अर्थात् यह देह रहे तहांतक जो भुगतना पड़े सो भोग कर उतनेसेही समाप्ति होजाय इस प्रकार संचित तो दोनों प्रकारसे निवृत्त होजाते हैं. अब रहा दूसरा प्रारब्ध ‘ क्रियमाण ’ अर्थात् यह देह वर्त्तमान रहे तहांतक इसके किये हुए तथा प्रतिदिन होते रहनेवाले (नये २) अच्छे वा बुरे कार्यरूप प्रारब्ध–जो यह देह छूटकर दूसरे देह धारण करने पर भोगने पड़ते हैं वे क्रियमाण प्रारब्ध तो ज्ञान होजानेके पीछे ज्ञानीके पल्ले रहतेही नहीं; क्योंकि जहांतक फलकी आसक्ति रहती है वहीं तक उसको कर्म भोगनेके लिये बंधन होता है. परन्तु ज्ञानी होजानेपर किसीमें आसक्ति न रहनेसे होते हुए (किये जाते हुए) कर्म ब्रह्मा-र्पण–कृष्णार्पण–शिवार्पण होनेसे जीवके अंगको नहीं लगते. इसकारण चाहे जितने क्रियमाण कर्म क्यों न हों, आसक्तिरहित कियेहुए होनेके कारणसे वे ज्ञानीको कुछभी बाधा नहीं कर सकते; अर्थात् वे तो निवृत्त हुए ही हैं. श्रुतिवाक्य है कि ‘ ज्ञानबलसे सर्व कर्म जलकर भस्म होजाते हैं, ’ परन्तु जब ऐसाही है तब ज्ञानी होजानेपर मनुष्यका देह क्योंकर

रहता है ? क्योंकि देह तो प्रत्यक्ष प्रारब्धोंका पुतलाही है. (प्रारब्ध भोगनेके लिये ही निर्माण हुआ है,) और होजाने पीछे कर्म (प्रारब्ध) जलगये तो तत्काल उस (देह) को निवृत्त होजानाही चाहिये. ज्ञान होजाने पश्चात् देह भलेही बना रहे, कर्मभी क्यों न होते रहैं, परन्तु वे कर्म ज्ञानके प्रतापसे कृष्णार्पण–ब्रह्मार्पण–शिवार्पण करनेमें आवें तो वे बाधक नहीं— बाधा करनेमें अशक्त होजाते हैं. परन्तु जो ज्ञानी वा अज्ञानी "मैं करता हूं" ऐसे 'मैं'—का आश्रय करता है, उसीके योगसे वह बन्धनमें पड़ा रहता है. 'मैं' का त्याग करके किये हुए कर्म व्रत-तप-दान-यज्ञ आदि कदापि बाधा नहीं कर सकते.

१५ अश्वत्थामाका अग्न्यस्त्र.

अज्ञानरूपी अविद्याके अपने अन्तर (पेटे) में दो भेद हैं. एक आवरण- शक्ति और दूसरी विक्षेपशक्ति. आवरणशक्ति आत्माको अज्ञानमेंही डुबाने- ढांक रखनेवाली है, और विक्षेपशक्ति प्रारब्ध भोगनेके रूपसे आत्माको परमात्माके स्वरूपसे विक्षेप (जुदाई) डालनेवाली है. ज्ञान होतेही अविद्या (अज्ञान) की आवरण–शक्तिका अभाव होजाता है, अर्थात् आत्मापर छाया हुआ अज्ञानका आवरण–पर्दा दूर हट जाता है; परन्तु विक्षेप–शक्ति दूर नहीं होती यद्यपि वहभी दूर होजाती है सही तथापि जैसे जला हुआ वस्त्र नहीं है अर्थात् भस्मरूप है–नाश होगया है; परन्तु जबतक कोई मनुष्य अथवा वायु उसको चूरमूर न करडाले तबतक उसका आकार अव्यक्तपनसे दिखाई देता रहता है; तैसेही विक्षेपशक्ति देख पड़ती रहती है. यह विक्षे- पशक्ति तो स्थूलादिक दृश्य पदार्थोंके साथ ही साथ निवृत्त होजाती है इस- पर एक दृष्टान्त है.—

महाभारतके युद्धमें कौरवपक्षके महारथी अश्वत्थामाने अर्जुनपर अग्न्यस्त्र चलाया, उससे उसका रथ, घोडे इत्यादिक जलगये; परन्तु अर्जुनके सारथि श्रीकृष्ण होनेसे, उनकी ईश्वरीशक्तिद्वारा वह सब जलाहुआ होनेपरभी जैसेका तैसा (विना जलेहुएके समान) चलता था–रणक्षेत्रमें स्थित रहकर पूर्वके समान ही सर्व कार्य करता था. इस बातको परम पुरुष श्रीकृष्ण परमात्मा भलीभांति जानते थे, परन्तु अर्जुनको उसकी कुछभी खबर नहीं थी इससे वह तो यही समझ रहा था कि "अश्वत्थामाकी क्या शक्ति है जो

मुझ पर एकभी बाण प्रहार कर सके ? मेरे अस्त्र ऐसे बड़े बलवाले और पराक्रमवाले हैं कि उन्हींके द्वारा आज मैंने उसके अग्न्यस्त्रको निष्फल कर-डाला है ! " इस परसे अन्तर्यामी श्रीकृष्णजीने जाना कि " अरे ! इस अज्ञानी अर्जुनको कितना अभिमान होगया है ? यह नहीं जानता है कि, अग्न्यस्त्र एक ईश्वरके विना (उसको छोड़कर) सबको जला डालता है. अज्ञानी सखाका अज्ञानपूर्ण अभिमान टूटना चाहिये; जबतक यह नहीं टूटेगा तब तक इसको जो ज्ञानोपदेश किया गया है वह सब निष्फलही है. " तदनन्तर जब युद्ध बंद हुआ तब श्रीहरिने रथको अपने स्थानकी ओर हांका-चलाया और डेरेपर पहुँचकर उन्होंने अर्जुनको रथपरसे उतरनेको कहा. इसपर अज्ञानी अर्जुनने कहा-" यादवेश्वर ! नित्यप्रति रथमेंसे आप पहले उतरते हैं और आज मुझको उतरनेको कहते हैं सो यह क्यों ?" श्रीकृष्णने कहा-"एकबार तू पहले नीचे उतर, पीछे मैं इसका कारण कहूंगा,"-प्रेमी भक्त अर्जुन, श्रीकृष्णको परमसखारूप मानता था, इससे उसकी आज्ञानुसार वह रथपरसे पहले नीचे उतरा, तब परमात्मा उतरे. श्रीकृष्णके उतरतेही एक कौतुक हुआ. देखते २ अर्जुनका सारा रथ और घोड़े भस्मका ढेर होगये. यह चमत्कार देखकर अर्जुनको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर खड़ा ही रहा. उसको ऐसा जड़भरत बना देखकर श्रीकृष्ण भगवानने कहा "क्यों अर्जुन ! अश्वत्थामाके अग्न्यस्त्रका प्रभाव देखो ! जो मैं प्रथम उतरता तो रथ और अश्वके साथ २ तेराभी होम होजाता. उसके अग्न्यस्त्रका प्रहार हुआ तबसे वे सब जल चुके थे, परन्तु केवल मेरी योग-शक्तिके प्रभावसे जलेहुए होने परभी चलते थे, और कार्य करते थे. मैंने तेरे संरक्षणके लियेही ऐसा किया था. यह सुनकर अर्जुन गर्वरहित होकर स्तुति करता हुआ भगवान्‌के चरणोंमें गिरा.

तात्पर्य यह कि, पूर्ण ईश्वर श्रीकृष्णरूप विक्षेपशक्तिवाले जो प्रारब्ध-उनकी शक्तिद्वाराही इंद्रियोंरूप घोड़ोंसे जुदा हुआ शरीररूपी रथ चला करता है. जो कि ज्ञानरूप अग्न्यस्त्रके द्वारा सर्व कर्म भस्म होचुके तिसपरभी जब उसमेंसे विक्षेपशक्तिरूप श्रीकृष्ण नीचे उतरे, अर्थात् विक्षेपशक्ति दूर होगई-समाप्त होगई, तब अवधिज्ञानसे सर्वकर्म (प्रारब्धादिक सब) उसी समय भस्म होजाते हैं इसकारण ज्ञानीका शरीर जगत् व्यवहारमें बना रहनेपरभी, वे सब व्यवहार ब्रह्मार्पणरूपसे करता है तो उसके शरीरके

व्यवहार नहींके समानही समझना चाहिये. केवल अविद्याकी दृष्टिसे वे व्यवहार दिखाई पड़ते हैं, परन्तु ज्ञानदृष्टिसे नहीं दिखाई देते.

ज्ञान ऐसी उत्तम वस्तु है कि जिससे ज्ञानी निष्पाप, निष्कर्म, और निर्बंध (मुक्त) हो जाता है; तब क्या यह ज्ञान ज्ञानीके अन्त:करणमें जैसाका तैसा सतेज वना रहता है ? हां, ऐसेही है, परन्तु जो ज्ञानी निरन्तर विषयसेवनसे वैराग्यवान् रहे तब ही. नहीं तो विषय ऐसे बलवान् हैं कि चाहे जैसे ज्ञानीको ी ज्ञानशिखरपरसे अज्ञानरूपी गढ़ेमें ढकेल देते हैं.

१६–यति और राजकन्या.

कोई एक त्यागी परमहंस एक नगरके बाहर एक वृक्षके नीचे आकर ठहरा. वह पूर्ण ब्रह्मदशाको पहुँचा हुआ पुरुष था. भोजनपानादिककी भी उसको कुछ चिंता नहीं थी, इसीसे वह नगरमें किसीके यहां भिक्षाको भी नहीं जाता था. मात्र अपनी इच्छानुसार चाहे जहां मस्त पड़ा रहता था. कोई कुछ खिलावे तो वह खावे और पानी पिलावे तो पीले. उसकी तो परब्रह्म परमात्मामेंही लगन लगी हुई थी. नगरके बाहर पड़े २ कई दिन बीतगये; तब घर २ के सब लोग उसको जानगये. राजाको भी उस महात्माकी खबर हुई कि एक बड़ा परमहंस महात्मा अपने नगरमें आया है. इस बातसे बड़ा आनंद और संतोष मानकर उस नगरका राजा स्वयम् उसके लिये सुंदर २ पकान्नोंसे भरे हुए थाल लेकर उसके पास गया और अपने हाथसे उस विरक्तको जिमाया. तिस पीछे और किसीको न लाने देकर राजाने नित्यप्रति अपनेही यहांसे भोजन लाकर उसको जिमाना जारी रक्खा. ऐसा करते २ डेढ़ दो महीने बीतगये, तब सन्तजनोंके प्रति ऐसी भक्ति देखकर विरक्त महात्माने प्रसन्न होकर राजाको कहा—"राजा, तू धर्मात्मा और भक्तिमान् है. इससे मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं. कह, तेरी क्या कामना है ?" यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न होकर विनती करने लगा—"महाराज ! आपकी कृपासे मेरे यहां समस्त सुख, संपत्ति और ऋद्धि, सिद्धि विद्यमान हैं, परंतु एक पुत्रकी न्यूनता है." तब परमहंसने कहा—"बचा ! तू चिंता मत कर. तेरे यहां एक सुंदर पुत्र उत्पन्न होगा." परमपदको पहुँचे हुए महात्मा पुरुषके वाक्यको परमात्मा कैसे निष्फल होने दे ? अल्प कालहीमें राजाकी स्त्रीको गर्भ रहा. नव मास पूर्ण होनेपर रानीने एक कांतिमान् पुत्र प्रसव किया. यह देखकर राजाको उस

परमहंसके वाक्यपर अत्यंत श्रद्धा हुई. वह उसको साक्षात् प्रभुके समान मानने लगा. और बहुत २ विनती करके तथा परम आग्रहसे उस महात्माको अपने महलमें लाकर एकांत स्थानमें निवास कराया. उसकी परिचर्यामें अनेक दास नियत करदिये और स्वयं राजा रानी तथा उसका सब कुटुंब दिनका बहुतसा भाग उसीकी सेवा टहलमें बिताने लगे. ये भक्तजन प्रतिदिन विविध भांतिके सुंदर स्वादिष्ठ व्यञ्जन बना बनाकर महात्माको यथेच्छ जिमाने लगे और सब प्रकारके राजभोग अपने हाथोंसे तयार करके उसको अर्पण करनेलगे. विरक्त महात्माके मुखसे जो आज्ञा निकले वैसाही राजा करे और सर्व सेवक जनभी उसकी आज्ञामें निरंतर तत्पर रहें. रानी और राजपुत्रीभी प्रायः महात्माकी चरणसेवा (पगचंपी) किया करें. तथा 'महाराज २' करते उनके मुख सूख जायँ. इसप्रकार सब बातोंसे महात्मा स्वामीको उन्होंने पूर्ण विलासी बना दिये.

नानाप्रकारके स्वादिष्ठ तथा पौष्टिक पदार्थोंके सेवनसे महात्माका शरीरभी खूब हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ होगया. उन्होंने अपनी सब इंद्रियोंको अनेक २ कष्ट देकर दमन करके निर्बल करडाला था, वैसीही वे अब फिर सतेज और बलवान् होगईं. राजाका अन्न पूर्ण रजोगुणी, उसके आहारसे बुद्धि कभी सात्त्विकी नहीं रहसकती. महाराजभी राजसी होगये. यतिकी सब इंद्रियां जागृत होकर नाचने कूदने लगीं. जहां घृत वहां अग्नि; इन दोनोंका संयोग होगया फिर क्या था ? उस राजाकी पुत्रीकी आयुभी पंद्रह सोलह वर्षकी थी. उसका स्वरूप देवांगनासमान था. तिसपरभी वह अनुपम सुन्दरी, एकांतमें यतिकी सेवामें तत्पर रहा करती थी. यह देखकर महाराजका मन विचलित हुआ. प्रथम ही राजान्न भक्षण किया तब नगरमें आनेकी बुद्धि हुई. और फिर तो रग २ में (नस २में) रजोगुण व्याप्त होगया. और ऐसी मति भ्रष्ट हुई कि यतिमहाराज व्यभिचारके पापमें गिरनेको तयार हुए. उनको रातदिन उसीका स्मरण रहने लगा. अब कामना होने लगी कि, वह राजकन्या कब अपनेको पत्नीवत् प्राप्त होगी ? ऐसे कुविचारसे एकदिन उसने युक्ति गढ़कर राजासे एकांतमें कहा-"राजा ! मैं कहूं सो करेगा ?" वह तो पुत्र होनेके कारण दासानुदास बन रहा था, सब प्रकारसे महाराजकी आज्ञा सेवामें तत्पर ही था-फिर महाराज ऐसी आज्ञा देखकर हाथ जोड़कर कहने लगा-" आपने यह क्या कहा ? जो

आप कहेंगे वही करनेके लिये यह दास हाजिर है." जटिल महात्मा बोले- "मैंने तुझे पुत्र दिया परन्तु उसका जन्म किसी कठिन योगमें हुआ है, इसकारण उसके संरक्षणके अर्थ मैं एक उपाय बतलाता हूं सो कर. और कोई वस्तु तेरे पुत्रके लिये घातक नहीं है, परन्तु तेरी इस पुत्री-राजपुत्रीका योग तेरे पुत्रके लिये घातक है. अतः तू शीघ्र उसका त्याग कर, नहीं तो इस दैवी पुत्रका बचना अशक्य है" ! राजाने पूछा-"महाराज ! ऐसेही है तो मैं उसका त्याग कैसे करूं ? आप कहें तो अभी किसी योग्य पुरुषके साथ उसका विवाह करदूं." स्वामीने कहा-"नहीं विवाह करदेनेसे तो उसका त्याग किया नहीं समझा जा सकता, किन्तु वह कदापि तेरे घर पीछी नहीं आने पावे ऐसा उपाय कर." जटिल स्वामीने मनमें विचार किया कि, जो विवाह करदेनेको कहूंगा तब तो राजकन्या मेरे हाथ नहीं लगेगी, इसकारण उसने कहा-" तू कन्याको सोलह शृंगार कराकर पानीमें तैरती रहे ऐसे एक संदूकमें बंद करके नदीमें बहादे. राजाने कहा- "आपकी ऐसीही आज्ञा है तो मैं अभी ऐसाही किये देता हूं." ऐसा कहकर उसने तुरन्त यह बात अपने प्रधानसे कही और वैसीही एक संदूक बनवानेको कहा. प्रधान यह बात सुनकर अपने मनमें चौंक उठा-" अरे ! यह तो निश्चय बाबाजीका मन बिगड़ा है ! यह पापकर्म करवानेमें ऐसे कुत्सितहेतुके सिवाय और कोई बात नहीं." तिस पीछे राजाने बाबाजीके कहे अनुसार राजपुत्रीको षोड़श शृंगार कराकर प्रधानके यहां भेज दिया, वहां उसको बंद करनेके लिये संदूक तयारही थी. विचारशील प्रधानने सत्यासत्यकी परीक्षाके लिये, तथा स्वामीजीके आचरण कैसे हैं सो जानेके लिये उस निर्दोष राजकन्यापर दया करके, पहलेसेही योद्धाओंको भेजकर जंगलमेंसे एक व्याघ्र पकड़वा मँगवाया था. उसी विकराल पशुको संदूकमें भरकर और श्वास लेनेके लिये जहां तहां छिद्र करके, उस संदूकको बंद कर दिया ! इस बातकी राजा तथा जटिल बाबा इत्यादि किसीको भी सूचना न होने पावे इसकारणसे उस संदूकको बड़े धूमधाम और बाजे गाजोंसे उठवाया और नदी किनारेपर लाकर, राजाको दूरसे ही दिखाकर उसको नदीमें छोड़ दिया. उस जटिल महात्माको तो यही अभीष्ट था. उसके लिये तो आज सुवर्णका सूरज उदय हुआ था. संधि देखकर वह शौचका मिष (बहाना) बताकर राजमहलमेंसे बाहर निकला, और

बड़ी दूर नगरके बाहर चला गया. जहां वह संदक नदीमें बहा दी गई थी, वहांसे नीचेकी ओर बहुत दूर जाकर नदीके किनारे खड़ा २ संदूक आनेका मार्ग देखनेलगा. कुछ देर पीछे वही संदूक तैरती २ वहां आपहुँची. उसने बड़ी प्रसन्नताके साथ नदीमेंसे उसे बाहर निकाला और किनारेपर लाकर राजपुत्रीका मुखावलोकन करनेके लिये बड़ी आतुरतासे झटपट उस संदूकका ढकना खोला. ज्योंही ढकना उठाया कि तत्काल उसमेंसे एक बाघ निकलपड़ा. "अरे यह क्या गहजब ! ऐसा आश्चर्य करते २ तो बाघने बाबाजीकी गरदन दबाली और अनेक पौष्टिक पदार्थोंसे अत्यन्त स्वादिष्ठ बना हुआ रुधिर पीने लगा. जब बाबाजीका छटपटाना बंद होगया, प्राण विसर्जन हुए तब बाघनेभी लाशको वहीं फेंक दिया और अपना रस्ता लिया. उस समय स्वामीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ, परन्तु उपाय क्या था ? मरते २ उसने भूमिपर एक श्लोक लिखा.

मनसा चिन्तितं कार्यं दैवमन्यद्विचिन्तयेत् ।
राजकन्याप्रसंगेन व्याघ्रो जटिलभक्षकः ॥

उधर राजद्वारमें महाराज शौच करनेको गये उनको गये बड़ी देर होगई इससे 'महाराज कहां ? महाराज कहां ?' ऐसी पुकार मचगई. सब जगह ढूंढ खोज हुई. बड़ी देरके पश्चात् पता लगा कि वे तो नदीतीरपर मरे हुए पड़े हैं. तत्काल राजा और प्रधान आदिकने वहां जाकर देखा तो संदूकके पासमें बाबाजी चित्त पड़े हुए हैं. राजा बड़ा खेद करने लगा. प्रधानने कहा—" राजाधिराज ! इसमें खेद करनेका कुछ कारण नहीं है. सब अपने २ पापसे नष्ट होते हैं. यह संदूक राजपुत्रीकी ही है. और ये बाबाजी उस राजकन्याको लेकर भागजानेकी इच्छासे—अपने तप और ऐश्वर्यको धूलमें मिलादेनेके लिये यहां आये थे. इसीसे इस दशाको पहुँचे हैं." राजाने बड़े आश्चर्यपूर्वक पूछा—" यह कैसे ! क्या यह सत्य है ?" प्रधानने जिसप्रकार राजकन्याका रक्षण किया था वह सब वृत्तान्त राजाको कह सुनाया और राजकन्या राजाको सोंपी. यह देखकर राजा प्रधानपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और उसकी विचक्षण सूक्ष्म बुद्धिके लिये उसको बहुत धन्यवाद दिया.

अतः हे विशाल ! जबतक उस ज्ञानीने विषयविषका बिलकुल पान नहीं किया था तबतक तो उसकी बुद्धि परमशुद्ध—अमृततुल्य थी; और

इसीसे उसका कहा हुआ, राजपुत्र होनेका वचन भी ईश्वरकृपासे सिद्ध हुआ था. परंतु जब उसने राजान्न भक्षण किया, तथा उत्तमोत्तम स्वादिष्ट व्यंजन-भोजन पानादिक उत्तमोत्तम वैभव भोगते हुए स्त्रियोंके साथ रहने-लगा-एकान्त मिलने लगा, शरीरको उनका स्पर्श होनेदिया इसीसे उसने प्राण गँवाया. अतएव ज्ञानीको किसीभांतिके भी विषयसेवनसे सदा दूरही रहना चाहिये, तथा राजाका, वेश्याका और दुष्ट मनुष्यका अन्न प्राणान्तमें भी भक्षण नहीं करना चाहिये.

१७-जैसा आहार वैसी डकार.

उस जटिलके दृष्टान्तपरसे मैंने निश्चय जान लिया कि जैसा अन्न खानेमें आता है वैसीही बुद्धि होजाती है. इस शरीरका मनके साथ कई अंशोंमें निकटका संबंध है इसकारण जैसी शरीरकी स्थिति होती है वैसीही मनकी भी होजाती है. सात्विक, राजस और तामस इन तीन प्रकारका अन्न होता है. राजस अन्नका भक्षण किया जावे तो उससे रजोगुण, तामस अन्नके भक्षणसे तमोगुण और सात्विक अन्नसे सत्वगुण शरीरमें उत्पन्न होता है. सर्वत्र प्रसिद्ध है कि जैसे पदार्थका सेवन वैसीही बुद्धि. जैसे किसी पुरुषने भांग अथवा मद्यका सेवन किया हो तो तत्काल उसकी बुद्धि फिर जाती है. वह नानाप्रकारकी कुचेष्टा करता हुआ यद्वा तद्वा बकने लगता है. यदि उसको कुछ कहा जाता है तो उससे उलटा क्रुद्ध होता है. यह सब तामस पदार्थके सेवनका प्रताप है. इसीलिये जैसा आहार वैसी डकार जानना.

पहले एक समय किसी गाममेंसे दो ब्राह्मण विद्यासंपादनार्थ काशीपुरीको गये थे. वे दोनों सगे भाई थे. बहुत वर्षोंतक विद्याभ्यास करचुकनेके पीछे वे काशीपुरीसे अपने घरको आने लगे. मार्गमें, एक तो रसोई करता और दूसरा भिक्षा मांगने जाया करता. ऐसे निर्वाह करते २ वे एक दिन एक धर्मशालामें आ उतरे. नियमानुसार उसमेंसे एक भाई रसोई करने तथा सामान संभालनेके लिये वहीं रहा और दूसरा भाई भिक्षान्न-लानेको गाममें गया. फिरते २ वह जहां एक अच्छा सदाव्रत बंटता था वहां पहुँचा, और आटा, दाल, चावल, घी वगैरा दो मनुष्योंके योग्य सीधा सामान लेकर पीछा धर्मशालाको आने लगा. दोनों भाई थके हुए तो

पहलेसे थे ही; फिर वह दूसरा जो गाममें सीधा लेनेको गया था उसको बहुतसा भटकना पड़ा था इससे वह बहुत थक गया था. भूख और थका-वट दोनोंकी एकसाथ प्रबलताको वह सहन नहीं कर सका. 'क्षुधातुराणां न बलं न तेजः' इस नीतिवचनके अनुसार उसकी दशा होगई. मध्याह्न होने आया था, भूखके मारे प्राण निकल रहे थे और चलते २ पांव भारी होगये थे इसकारण "अब तो कुछ खाये विना आगे पांव नहीं उठता," ऐसा विचार करके अपने पल्लेमें बँधा हुआ जो सामान था उसमेंसे कच्चा अन्न ही फांकनेका विचार किया, आटा और दाल तो कच्चा नहीं खाया गया, किन्तु उसने चावलकी मुट्ठी भर २ कर चवाना आरंभ किया. दो तीन मुट्ठी चावल खालेने पर जब उसको कुछ शान्ति आई, तब उसने अपनी गठरी बांधी और उतारेपर आया. वहां उसका भाई स्नान सन्ध्या कर रसोईकी विधि करके उसके आनेका मार्ग देख रहा था. उसने कहा-" भाई अच्छा आया, ले कुएपरसे पानीका घड़ा भरला तो रसोईका लग्गा लगादूं." कुआ धर्मशालामें ही था. वहां गामकी कितनीही स्त्रियांभी पानी भररही थीं कुए पर भीड़ होनेसे वह शुद्धतापूर्वक विनाछीटे छिड़के पानी भरसके ऐसा सुभीता नहीं था. तब उस ब्राह्मणने एक युक्ति रची और उन पनि-हारियोंसे कहा-" बहिनो ! जरा हट जाओ, मुझको पानी भरलेने दो, क्यों कि हम अंत्यजोंके गुरु महाब्राह्मण हैं, तुमको हमारे छींटे न लग जायँ." छोटेभाईके ऐसे वचन सुनकर बड़े भाईको बड़ा आश्चर्य हुआ. वह अपने मनमें विचार करने लगा कि " अरे ! यह क्या अनर्थ ? आज इस भाईकी मति ऐसी भ्रष्ट क्यों होगई कि जो वह अपनेको अंत्यजोंका गुरु महाब्राह्मण कहता है. इसको पूंछकर देखूं कि इसने किसी नीचका अन्न तो नहीं खा लिया है? क्योंकि यह परम स्नातक और मुझसेभी बढ़कर शुद्ध मनवाला है तिसपरभी इसकी एकाएक ऐसी नीचबुद्धि होगई, इसमें कुछभी भेद है." कुएपरकी पनिहारियोंने भी कहा-"महाराज ! आप तो शुद्ध ब्राह्मण दिखा पड़ते हो, फिर हम अंत्यजोंके गुरु महाब्राह्मण हैं ऐसे कैसे कह रहे हो ?" उसने कहा-"वास्तवमें हम तो वेही हैं!" पीछे जब वह पानी भरकर भाईके पासगया तब बड़े भाईने कहा-"भाई ! तू कल दुपहरसे भूखा है सो मैं तेरे लिये कुछ तजवीज पहले करदूं, जिससे यदि रसोईमें देरभी लगजाय तो तुझे घबराहट न होगी." यह सुनकर उस छोटेभाईने कहा-" ऐसे

कुछ जरूर नहीं रही. बात तो तुमने कही सो ही थी; क्योंकि हमको तो बड़ी मंजिल करनी पड़ी थी. मुझको सीधेके लिये गाममें भटकना भी बहुत पड़ा था, इससे मुझको अत्यन्त क्षुधा लगी थी. जब मुझमें चलनेकी भी शक्ति नहीं रही तब थोड़ेसे कच्चे चावल चबानेपर धीरज आया. अब कुछ खटपटकी आवश्यकता नहीं, रसोंई हो जायगी तब साथ २ ही जीमेंगे." बड़े भाईने अनुमान कर लिया कि—"इसके अंत्यजोंका महाब्राह्मण बननेमें उन्हीं चावलोंका प्रभाव है. वे जबसे इसके पेटमें पहुँचे तबसेही इसकी बुद्धि भ्रष्ट हुई दिखाई देती है. माने चाहे न माने. परन्तु यह अन्न किसी नीचजातिका होना चाहिये." ऐसा विचार करके उसने चौकमेंसे बाहर निकलकर कुएपरकी पनिहारियोंसे पूछा—"बहिनो! इस गाममें सदाव्रत कितने हैं?" एक स्त्रीने उत्तर दिया—"महाराज! ऐसे छोटेसे गाममें सदाव्रत कहांसे होगा? एक सदाव्रत जैसा ही जानपड़ता है, परन्तु ऐसा सुननेमें आता है कि बहुतसे पथिक वहांसे सीधा नहीं लेते." दूसरी स्त्री बोल उठी कि "विचारे अनजान राहगी (पथिक) तो सीधा लेलेते हैं परन्तु जब कोई वहां किसीसे पूंछ लेता है 'यह सदाव्रत किसका है,' तब उसका उत्तर मिलने पीछे कोई ब्राह्मण वा संत तो चाहे जैसा गरजू (अपेक्षावाला) होता है तब भी विना सदाव्रत लियेही लौट जाता है!" यह सुनकर उस ब्राह्मणने फिर पूंछा—"तब वह सदाव्रत किसका है?" एक पनिहारीने कहा—"महाराज! हमको पक्की खबर नहीं, आप गाममें जाकर पूंछलो." दोनों भाई गाममें गये और पूंछताछ की तो जान गया कि, वह सदाव्रत किसी चमारका है. यह बात विदित होतेही बड़े भाईको दृढ़ निश्चय होगया कि इस नीच-अंत्यजका अन्न खानेसे मेरे भाईकी बुद्धि भ्रष्ट हुई इससे उसको अपने तईं गरुडा (महाब्राह्मण या चर्मकार आदि अंत्यजोंका ब्राह्मणाभास) कहनेमें कुछ घृणा वा लज्जा नहीं आई. फिर उसदिन उसको उपवासआदि प्रायश्चित्त कराया और गाममेंसे दूसरा भिक्षान्न लाकर उसने रसोंई बनाई और खाई. तदनन्तर उसने अपने भाईको कहा कि आगेको कभी नीचका, पापीका, वेश्याका, राजाका अन्न नहीं खाना और इसको दृष्टान्त देकर समझाया कि—

यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी।
दीपस्तिमिरमश्नाति कज्जलं च प्रसूयते ॥ १ ॥

"जैसा अन्न खानेमें आता है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है. जैसे कि, दीपक अंधेरेका भक्षण करता है तो काजलको जन्म देता है-प्रगट करता है." इसी लिये 'जैसा आहार तैसा डकार' यह कहावत सत्य है. भोजनका अन्न निषिद्ध अथवा निषिद्ध स्थानका न हो इस बातके लिये मनुष्यको बड़ा सावधान रहना चाहिये.

यहां मुझे एक शंका उत्पन्न हुई कि वह, जटिल (राजकन्याप्रसंगवाला) तो विद्वान् (ज्ञानी) था, और (जैसा अन्न खानेमें आवे तैसी ही बुद्धि इस नियमके अनुसार) राजान्न भक्षण करनेसेही मृत्युको प्राप्त हुआ. तब उसने मरते समय लिखा कि–मनसा चिंतितं कार्यं दैवमन्यद्विचिंतयेत्–(मनमें कोई और कार्य विचारा जाता है, परन्तु प्रारब्धयोगसे उसका कुछ औरका औरही होजाता है.) इसका क्या कारण? यद्यपि उसमें निमित्त राजाका अन्न हुआ था, परन्तु वाघसे मृत्यु होनेमें तो दैव-प्रारब्ध-भाग्यही मूल कारण था: भाग्यके योगसें ही उसकी वैसी बुद्धि हुई. अर्थात् वह राजाके गाममें गया, वहां गामके बाहर उतरा, राजाने उसका आदर मानकिया, उसके वचनसे राजाके पुत्र हुआ, उसने राजान्न भक्षण किया, राजकन्यादिकने उसकी सेवा की, वहां राजपुत्रीपर वह मोहित हुआ, और अपनी मृत्युको नहीं जानकर उसनेही राजकन्याको संदूकमें बंद कराय उसे नदीमें छोड़ आनेके लिये राजाको कहा. इन सब कार्योंकी प्रेरणा उसके प्रारब्धनेंही की थी और 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' 'बुद्धि पूर्वकर्मोंका अनुसरण करती है' इस नीतिवचनके अनुसारही उसने 'मनसा०' यह श्लोक लिखाथा. चाहे जहां जाओ, चाहे जैसा करो तथापि प्रारब्ध तो अपना फल भुगतानेको उसके साथही लगे रहते हैं.

१८–भाडेका वर (दूल्हा)

किसी नगरमें एक ब्राह्मण अपने पीछे दो पुत्र छोड़कर मृत्युको प्राप्त हुआ. बड़े लड़केका विवाह तो उसने जीतेजी ही करदिया था, परन्तु मरणसमय निकट आ पहुँचनेसे वह अपने छोटे लड़केकी सगाई (मँगनी) भी नहीं करसका था. पिताके देवलोक होजानेपर दोनों भाई साथही साथ रहते थे. बड़े भाईकी स्त्री अपने घर आती जाती रहती थी इससे छोटे भाईको भोजन पानादिककी चिन्ता नहीं थी. वह निश्चिन्त होकर अपना विद्याभ्यास किया करता था. एकदिन घरमें बैठा २ वह अपना अध्ययन

आवर्तन कररहा था, इतनेमें भावज (भौजाई) ने आकर कहा-" देवरजी ! मैं* रसोंई करती हूं, और यह बच्चा रोरहा है सो जरा इसको वहलाकर चुप करो." उसने कहा-" मैं अपने विद्याभ्ययनमेंसे कैसे उठूं और इसको वहलाने बैठूं ? " तब उसने जरा ठपका करके कहा-" इतनेमें तुम्हारा क्या विगड़ा जाता है ? मैं इस समय किसी अन्यका स्पर्श नहीं कर सकती, यह क्या नहीं जानते हो ? " इसपरसे विवश होकर अपना पाठ छोड़ना वज्र लगने समान असह्य होनेपरभी उठकर उस बच्चेको लेना पड़ा, वह परतंत्र था इसकारण कुछभी नहीं कहसका. थोड़ी देर पीछे रसोंई बनजानेपर जब अपने बड़े भाईके साथ वह भोजन करने बैठा, तब दालमें कुछ निमक न्यून रहा होगा इससे उसने कहा-" भाभी, आज दाल बिलकुल अलोनी जैसी लगती है ?" उसने चिढ़कर प्रत्युत्तर दिया-" देवरजी ! तुम्हारे भाई बैठे हैं इससे मैं अधिक तो कुछ नहीं कहसकती, परन्तु मेरी दिवरानीको ले आओ तो वह सब संभालकर चतुराईसे करके तुझे जिमावेगी." ये शब्द तीक्ष्ण बाणके समान उसके हृदयमें लगे. परन्तु वह विचारशील था इसकारण कुछभी न बोलकर, जो भाया सो खाकर चुपचाप उठगया, किन्तु उसको कुछ चैन नहीं पड़ा. विद्याभ्यासादि किसी बातमें उसका मन नहीं लगसका. उसके चित्तमें अपनी भावजके वचनबाण खटक रहे थे. ऐसे विचारही विचारमें उसको परिपूर्ण क्रोध हो आनेसे उसने अपने मनमें दृढ़ निश्चय करलिया कि " बस मुझे अब इस भावजके हाथकी रसोंई जीमनीही नहीं. अपनीही स्त्रीके हाथकी जीमूंगा. इसलिये काशी जाकर खूब विद्याभ्यास करके जब स्त्री विवाह लाऊंगा तबही घरमें पांव रक्खूंगा. अब मेरे यहां रहनेको धिक्कार है !" ऐसे आवेशमेंही वह लगभग अर्द्धरात्रिके समय बिछौनेपरसे उठा और कोई न जान ले इसप्रकारसे गुपचुप अपने पुस्तक पत्रे लेकर घरमेंसे बाहर निकल गया. आधीरात और सारा दिनभर बड़े वेगसे बराबर चलते २ वह एक दूसरे नगरमें पहुँचा. सन्ध्या होनेको आई थी, दिनभरका थका मांदा था, इसकारण वहीं गामके बाहर एक धर्मशालामें उतरा, और गाममेंसे भिक्षा मांग लाकर खिचड़ी चढ़ाई. इतनेमें एक विचित्र कौतुक हुआ.

वह ब्राह्मणपुत्र जिस नगरमें ठहरा था वहांके राजाकी कन्याका उसी

* रसोई-चौकेमें होनेसे और किसी [विना न्हाये धोये] का स्पर्श करना योग्य नहीं है.

दिन विवाह था इससे सारे नगरमें बड़ी धूमधाम होरही थी. राजकन्याके पिताका आधीन (मातहत) कोई मांडलिक-छोटा राजा अपने कुँवरको विवाहनेके लिये बरात लेकर आया था. धर्मकर्मके योगसे उस दूल्हे (विवाहनेवाले राजपुत्र) को मृगीका रोग था. सोभी कैसा कि जब उस रोगका वेग-दौरा होता तब वह राजपुत्र एकाएक मूर्छित हो जाता और दो तीन दिनतक जैसेका तैसा बेहोश पड़ा रहता. तिस पीछे उसको फिर सुध आती और चैतन्य होता था. राजालोगोंका काम था. जो कन्याके बापको इस बातकी खबर लगजावे तो वह अपनी कन्या उसको न दे, और ऐसा हो तो उसकी बड़ी अपकीर्ति हो और फिर दूसरी कन्या न मिले. बड़ी धूमधाम बरात सजकर समधी राजा विवाहनेको तो चले आये, परन्तु सांझ हुई और लग्नका मुहूर्त ज्यों २ निकट आने लगा त्यों २ उस राजा (वरके पिता) के मनमें चिंता बढ़ने लगी. उसने अपने प्रधानको बुलाकर कहा कि-" मुझे तो कोई बात अच्छी नहीं लगती. बिलकुल चैन नहीं पड़ती. तुम जानते हो कि राजकुमारको दोचार दीपक इकट्ठे देखपड़ते ही यकायक चक्कर आने लगते हैं और बावलेकी भांति गिरपड़ता है और साथ २ मृगीकाभी दौर होजाता है. आज विवाहका दिन है इसलिये धूमधामका तो कहनाही क्या ? नानाप्रकारकी आतशबाजी छूटेगी, अनेक मशालें जलेंगी, मंडपमें असंख्य दीपक प्रकाशित होंगे, बन्दूकों और तोपोंके छूटनेसे घोर घमसान मच जायगा. स्त्रियोंके गीतोंसे, नानाप्रकारके बाजोंसे, तथा हाथी घोड़ोंके उन्मत्त शब्दोंसे तथा एकत्र जमेहुए मनुष्योंके शब्दोंसे राजमहलही नहीं, सारा नगरभर गुंज उठेगा. तथा बिजलीके समान चमकतेहुए अनेक शस्त्रों, हय गजादिक वाहनोंके साज सामान, स्त्रीपुरुषोंके पहने हुए सुवर्ण तथा बहुमूल्य रत्नोंके अलंकार इन सबकी जगमगाहटसे उत्पन्न हुए प्रकाशके कारण राजकुमारकी क्या दशा होगी ? इस विचारसे, इसी उद्वेगसे, मेरा मन बिलकुल स्थिर नहीं होता है. क्षण २ मेरी घबराहट बढ़ती जाती है. मुझे दीख पड़ता है कि, आज अपनी लाज बनी रहना असंभव है. " प्रधान बड़ा विचक्षण था. वह राजाकी बात सुनकर, धीरज बांधता हुआ कहने लगा-" महाराज ! ऐसे समयमें घबराजाना योग्य नहीं. किसीप्रकारभी इस संकटमेंसे पार उतरनेका हमको उपाय करना चाहिये. आप धीरज धरिये. मैं अभी

इसका उपाय करता हूं." ऐसा कहकर तुरन्त वह नगरमें घूमनेको निकला, और जहां २ उसको अच्छे दिखाऊ और राजकुमारकी उमरवाले लड़के खेलते हुए दिखाई पड़े वहांसे जिन २ की यत्किंचितभी कान्ति तथा रंगरूप और चेहरा, राजकुमारसे मिलता हुआ देखा उन सबको ला २ कर जनवासेमें इकट्ठा किया और विशेषकरके राजकुमारके साथ तादृश (हूबहू) मिलजावे ऐसे लड़केको ढूंढने लगा. फिरते २ वह उसी धर्मशालाके पास आया और देखा कि एक ब्राह्मणपुत्र सन्ध्या कर रहा है और पासमें रसोई चढ़ रही है. प्रधान धर्मशालाके भीतर प्रवेश करते ही इस ब्राह्मणपुत्रको सब प्रकार राजकुमारसे मिलता जुलता देखकर अपने मनमें बड़ा प्रसन्न हुआ. और उससे कहा—"महाराज! चलो, जल्दी करो तुमको हमारे राजाजी बुलाते हैं." अपनी भौजाईके वचनबाणसे भिदा हुआ काशी जानेको निकला हुआ विद्यार्थीही धर्मशालामेंका ब्राह्मण-पुत्र था. वह प्रधानके ऐसे वचन सुनकर भयसे कांपने लगा. उसके मनमें अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उठने लगे. उसने अपने मनमें कहा-"हे प्रभु! मैंने कुछ अपराध नहीं किया, मैंने किसीका कुछ विगाड़ा नहीं. फिर यह प्रधान मुझको किसलिये बुलाये लिये जाता है ?" फिर उसने प्रधानसे कहा-"सरदार साहब! आपके राजाजीको मुझसे क्या काम है ? मैं अभी सन्ध्याकर रहा हूं और खिचड़ी सीझकर तयार होगई है सो खाकर आपके साथ चलता हूं." ! प्रधानको तो अब क्षण २ भारी था. और लग्नकी वेला होने आई थी इससे उसने एकदम अपने साथ आनेकी आज्ञा की. बिचारा ब्राह्मणपुत्र, खिचड़ीको चूल्हेकी चूल्हे परही छोड़कर कांपता २ उसके साथ हो लिया. प्रधानने अपने स्थान पर आकर अपने राजाके सन्मुख उसको खड़ा किया वह और सब लड़कोंकी अपेक्षा राजकुमारसे बहुत कुछ मिलता जुलताही नहीं किन्तु तद्रूप (हूबहू) राजकुमारही दीखपड़ा. राजाकी सम्मतिसे प्रधानने और सब लडकोंके हाथमें एक २ मुद्रा रखकर उनको विदा किया, और उस ब्राह्मणको मंगल-स्नान कराकर उत्तमोत्तम वस्त्रालंकारोंसे सजाना आरंभ किया. तदनन्तर प्रधानने उसको एकान्तमें समझादिया कि-"महाराज! अभी उतावलीमें मैं विशेष कुछ नहीं कहता. केवल इतनाही कहता हूं कि आप हमारे राजपुत्रके बदले ब्याहनेको चलो. आजकी रात हमारे लिये

यहां रुककर कल आपकी जहाँ इच्छा हो वहां चले जाना और इसके लिये आपको एक सहस्र सुवर्ण–मुद्रा दीजावेगी. हमारे समधी राजाके मंडपमें आप अपनेको राजपुत्र समझकरही सब रीति भांति करना, किसी वातसे भी 'राजपुत्रके वदले व्याहनेको आये हो यह खवर किसीको न पड़ने देना. हम सव लोगभी आपको 'कुँवरजी–कुँवरजी कहकरही पुकारेंगे. आजकी रात सावधान रहकर हमारा काम करोगे तो आपको अन्यप्रकारसे भी प्रसन्न करेंगे." इसभांति समझा वुझाकर उसको राजकुलकी रीतिभांतिसे सव प्रकार परिचित करा दिया.

उस विचारे ब्रह्मपुत्रको अव थोड़ा सन्तोप हुआ. वह मनही मन विचार करने लगा कि "चाहे जो हो, अपनेको अन्य किसी वातका क्या प्रयोजन है? रातकी रात तो राजपुत्रका सुख भोग लूंगा; और एक सहस्र सुवर्ण–मुद्रा मिलेगी सो जुदी! अपनेको तो सगुन अच्छे फले!" अव लग्नकी वेळा हुई. सारी वरात वड़ी सज–धजके साथ विदा हुई. वह द्विजपुत्र राजकुमार वन, सुसज्जित होकर वहु-मूल्य अश्वपर सवार हुआ. शिरपर छत्र धरा है, चंवर ढुलरहे हैं, मोरछल झल रहेहैं, वाजे वज रहेहैं, वड़ा ठाटवाट है. ऐसी वड़ी धामधूमसे वह राजद्वार-पर जा पहुँचा, विधियुक्त दोनों पक्षके गोत्रोचार करके, विवाहक्रिया करनेमें आई. वहां कन्याके पिताके कुलमें ऐसी प्रथा थी, कि, जिस दिन विवाह हो उसीदिन राजपुत्रीके रंगमहलमें वरकन्या (दूल्हा–दुलहिन) साथ रहकर रतिविलासका सुख भोगें. भांवरी पड़ चुकनेपर थोड़ी देरपीछे वरराजको राजकन्याके शयनमंदिरमें भेजनेमें आया. तुरन्तही वहांसे सव दास दासियां अलग हटगईं. उधर विवाहक्रिया समाप्त होनेपर, ये वरराज महलमें गये तव वरात भी अपने डेरे गई. यहां उतारेपर राजा तथा प्रधान परस्पर कहने-लगे "चलो. ठीक होगया कि यह ब्राह्मणका लड़का मिलगया जिससे अपनी वात अच्छी वनी रहगई."

लगभग प्रहर रात वीतगई होगी; और भाड़ेके वरराजको पिछली रातका जागरण था, तथा कई एक कोसोंकी मंजिलभी होचुकी थी, और रहा सारे दिनभरसे कुछ खानेको भी नहीं मिला था. इससे वह तो जव महलमें जाकर सुवर्ण–पलंगपर लेटा तभी तत्काल निद्राके वशीभूत होगया. थोड़ी देर पीछे, जिसको देवीकी उपमा दीजासके ऐसी अद्भुत सौन्दर्यवती अथवा स्वर्गकी अप्सराओंके समान लावण्यमयी वह राज-

कन्या सोलहों शृंगार सजकर एक हाथमें रत्नदीपक तथा दूसरे हाथमें चंदन, पुष्प, मुखवास आदिक सुगंधित पदार्थोंसे भरा हुआ थाल लेकर; 'रमझम रमझम' करती हुई शयन-मंदिरमें आकर पलँगके पास खड़ी हुई और देखा कि अपने वरराज सोगये हैं. उसने मुखदर्शनकी आशासे पतिको हिलाया डुलाया इससे वह जागृत तो हुआ, परन्तु एक शब्दभी बोला नहीं. बोलनेके लिये राजकन्याने उससे बहुत कुछ विनती की—" हे प्राण-वल्लभ ! मुझमें क्या अवगुण है ? क्या मैं आपको नहीं सुहाती ? आप मुझसे क्यों नहीं बोलते ? हे नाथ ! आज तो हर्ष और आनंदका प्रथम दिन है, और मैं आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती हुई कर जोड़े खड़ी हूं; तथापि आप नहीं बोलते; इसका क्या कारण है ? " इसप्रकार उस नवोढ़ाके सरल हृदयसे प्रार्थना करने परभी जब वरराज (द्विजपुत्र) कुछ नहीं वोले; तब वह राजकन्या बड़ी खिन्न होकर अपने मनमें विचार करने लगी कि ' क्या यह गूंगा है, वा मूर्ख है, वा पुरुषत्वहीन है ? ऐसा नहीं होता तो इतनी विनती करनेपर भी मुझसे नहीं बोलता ! यह तो आश्चर्यही है ! स्त्रीपुरुषोंके ऐसे एकान्त प्रसंगमें ऐसा कौन पुरुष होगा कि जिसको धीरज रहे ? अब मैं किसप्रकार इसकी परीक्षा करलूँ ? " तदनन्तर, वह राजकन्या, विद्या तथा काव्यकलामें निपुण होनेके कारण वहीं खड़ी२ आधा श्लोक बनाकर बोली—

शय्या वस्त्रं भूषणं चारुगन्धो, वीणा वाणी दर्शनीया च रामा ।

अर्थात् "ऐसी एकान्तशय्या, मेरे धारण किये हुए उत्तमोत्तम वस्त्राभूषण, तथा सेवन करने योग्य नानाप्रकारके अतर पुष्पमालादि पदार्थ, वीणासमान मेरी मनोहर वाणी, और सबप्रकारसे मेरे समान श्रेष्ठ सौन्दर्यवती-भार्या' इन सब आनन्ददायक पदार्थोंके प्राप्त होने परभी आप किसलिये नहीं बोलते हैं ?" वह द्विजपुत्रभी बड़ा विद्वान् और काव्यकलासम्पन्न था, इससे उस राजकन्यामें शीघ्र काव्य करनेकी ऐसी अद्भुत शक्ति देखकर, आनंद और आश्चर्यसे उठकर बैठ गया कि 'कदाचित् यह स्त्री मुझको मूर्ख समझ लें; क्योंकि इस राजकन्याने मेरी परीक्षाके लिये इस श्लोकमें समस्या कही है, और उसका उत्तरार्ध मानों मुझसे पूरा कराना चाहती हो इसलिये बाकी रख छोड़ा है, तो मुझे भी दूसरे दो चरण शीघ्र पूर्ण करने चाहिये.' उस ब्राह्मणपुत्रने क्षणभर ऐसा विचार करके मनमें कहा—

'मुझे यह समस्या पूरी करनी चाहिये. नहीं करनेसे मेरी विद्या फिर किस काम आवेगी ?' यह विचार करके तुरन्त उस राजपुत्रीके श्लोकके उत्तरमें शेष आधा श्लोक बोला—

नो रोचन्ते क्षुत्पिपासातुरेभ्यः सर्वारम्भास्तन्दुलप्रस्थमूलाः ॥

अर्थात् हे स्त्री ! तूने कहा सो सब सच है, परन्तु भूखे प्यासे पुरुषको उसमेंसे कोईभी किसप्रकार अच्छा लगे ? क्योंकि इन सबका मूल तो केवल तंदुल (अन्न) है. जो वह न हो तो रंभा जैसी सुन्दर स्त्री भी सर्पिणी जैसी लगती है.

यह सुनकर वह चतुर राजकन्या अपने मनमें कहने लगी—" धन्य भाग्य है ! मान न मान, यह कोई मूर्ख अथवा नपुंसक नहीं है. वरन महा-विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुष है, और अपने आपको भूखा, प्यासा प्रद-र्शित करता है. फिर वह आश्चर्यके साथ कहने लगी—" हे प्राणेश ! और कभी नहीं, और आज विवाहके दिनही आप भूखे ! इसका क्या कारण ?" उस द्विजपुत्रने अपनी भावजके मर्मवचनसे, विद्याभ्यास करके स्त्री विवाह लानेके निश्चयसे मैं घरसे किस भांति निकल आया और पीछे धर्मशालामें आकर कैसे ठहरा, वहांकी खिचड़ी वहीं कैसी रहगई, और इस पलँगपर कभीका अन्न विना अशक्त होकर कैसे पड़ा यहांतकका साद्यंत सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों कह सुनाया. राजपुत्रीको यह सुनकर बड़ा विस्मय हुआ और उसकी आज्ञा लेकर वह तत्काल अपनी माता (रानी) के पास गई तथा उसको सब ब्योरा कह सुनाया. यह सुन वहभी बहुत चकित हुई; परन्तु मनमें यह जानकर सन्तोष मानने लगी कि—" मेरी पुत्री भाग्यशालिनी है इससे उसको यह पहलेहीसे खबर हो गई. नहीं तो व्याहनेको आनेवाला राजपुत्र, जो अवश्य किसी दुर्गुणवाला होगा तो उसके साथ व्यर्थ जन्म गँवाना पड़ता. अच्छा हुआ कि इस द्विजपुत्रके साथ इसका व्याह होगया."

फिर अनेक प्रकारके मिष्टान्नोंके थाल भरकर राजपुत्रीको पीछी शय-नमन्दिरमें भेजा और उसने उस द्विजपुत्रको भली भांति तृप्त किया. मुख-वासादि देकर थोड़ी देर चुप बैठनेके पश्चात् फिर राजकन्याने कहा—" हे प्राणनाथ ! अब क्या आज्ञा है ? " उसने कहा—" हे बाला ! मैं तुझको पहलेही कहचुका हूं कि मेरा काशी जानेका संकल्प है और वहां विद्या-

भ्यास करते २ मुझे लगभग दश बारह वर्ष लगेंगे. इस लिये जो मैं अभी तुझसे प्रीति लगाऊं तो वह पीछे तुझको और मुझको अपार दुःखदायिनी होजायगी. इसके सिवाय, यह मेरा कर्तव्यभी नहीं; क्योंकि मैंने तेरे साथ केवल लोगदिखाऊ लग्न किया है, इसलिये तुझको तेरे असली पति रूपसे तो, यहां वरात सजकर लानेवाले और मुझको भाड़ा देकर विवाह करानेवाले राजकुमारकीही सेवा करनेकी है. मैं एक बटोही (पथिक) हूं, सो अपना काम पूर्ण करके प्रातःकाल होनेपर अपना मार्ग सुधार लेऊंगा. मैं आजकी रात चुपचाप बिताकर सबेरे चलाजाऊंगा; परन्तु मैं मूर्ख समझाजाऊं इसकारण तेरे श्लोकके पूर्वार्द्धका उत्तर देनेके लिये मुझे बोलना पड़ा है. हे स्त्री ! हे राजकन्या ! मेरे जैसे बटोही और ब्राह्मणपुत्रसे तुझको प्रीति लगाना उचित नहीं. तू तो नानाप्रकारका राजवैभव भोगनेवाली है, इसलिये अपने पति राजपुत्रके सुन्दर महलमें रहकर, उस राजपुत्रके साथ नानाप्रकारके सुख भोगनेकी अधिकारिणी है." ब्राह्मणपुत्रका ऐसा निःस्पृह संभाषण सुनकर वह राजकन्या बोली—" प्राणवल्लभ ! कौनसा राजपुत्र और किसका पति ! चाहे जैसा वह बड़े चक्रवर्तीकाभी पुत्र क्यों न हो, तो भी मेरा उसके साथ क्या संबंध ? मैं और किसीको नहीं, किन्तु आपहीको व्याही गई हूं. मेरे पिताने मेरा दाहिना हाथ लेकर आपके हाथमेंही कन्यादान रूपसे दिया है. यहां तो क्या ? परन्तु परलोकमेंभी अब आपका और मेरा सम्बन्ध कदापि छूटनेवाला नहीं. तदुपरान्त मैं सयानी होकर व्याहीगई हूं. इसकारण मेरा विवाह बाल-विवाह-अज्ञात-विवाहभी नहीं कहला सकता. हे प्राणपति ! मेरे तो आपही इस देहके स्वामी हो. आपके सिवाय और सर्व पुरुष मेरे पिता तथा भ्राता समान हैं. क्या दमयन्तीने दारिद्र्यके दास और कुरूप बने हुए नलका परित्याग किया था? क्या वनमें निवास करतेहुए पांडवोंको द्रौपदीने तजदिया था ? क्या परमन्दिरमें परमकष्टसे दिन बिताती हुई सीताजीने रामचन्द्रजीको त्याग किया था ? मैंभी वैसी ही हूं. आपके सिवाय मैं और किसीको नहीं व्याऊंगी. इतनेपरभी आप मेरा त्याग करेंगे तो निश्चय मैं इस देहका त्याग करके परलोकमें जाकर आपको वरनेकी प्रतीक्षा करूंगी. " इतना कहकर फिर उसने कहा—" प्राणनाथ ! आपका काशी जानेका संकल्प है तो भलेही जा आवें. किन्तु थोड़ेही दिनोंमें पीछे आकर यहांपर बड़े २ शास्त्रियोंको शिक्षाके

लिये नियत करके जैसी आपकी इच्छा हो वैसी विद्या पढ़िये. आप जानते हैं कि मेरे पिता सब बातसे समर्थ हैं. आप जो चाहेंगे सो सब आपके लिये हाजिर करेंगे. अस्तु, हे पतिदेव! अब तो यह देह, प्राण और सब कुछ आपके ही अर्पण है. आप मेरे स्वामी और मैं आपकी दासी; परन्तु मेरी एक विनती सुनिये. आप वचनोंसे बँधे हुए हो, इससे प्रभातमें यहांसे विदा होओहीगे. अतः जब आपको राजा विदा करदें तब इस महलके पाससे जावें और इस दासीके जन्मको निष्फल होनेसे बचावें." इसप्रकार उस द्विजपुत्रका समाधान करके वह सुन्दरी फिर बोली–"हे प्राणपति! अब तो यह दासी केवल आपकी आज्ञाकी राह देख रही है, अतः आपकी प्रसन्नता हो तो शय्यापर बैठ जावें." द्विजपुत्रने राजकन्याका अन्तःकरण पवित्र और दृढ़ देखकर शय्यापर आनेकी आज्ञा दी और दोनों समान होनेसे उन्होंने सारी रात्रि रतिसुखमें व्यतीत की.

दूसरे दिन वरराजा जनवासे गये, और अपना राजपुत्रका वेष उतार कर, वदीहुई (ठहरी हुई) सहस्र–सुवर्ण मुद्रा लेकर, अपने पहले जैसे ब्राह्मणवेषमें काशी जानेको विदा हुए. राजकन्याके रात्रिमें किये हुए संकेतके अनुसार ज्योंही वह ब्राह्मणपुत्र राजमहलके नीचेसे होकर जाने लगा कि, तुरन्त उस सती राजकन्याने उसको महलमें अपनेपास बुलवा-लिया; और ब्राह्मण बटोहीका वेष उतरवाकर, सुन्दर वस्त्र तथा अलंकार उसको धारण कराये, तथा उसको गुप्तरीतिसे अपने महलमें ही रक्खा. दो एक दिन होगये तब उस वरका पिता बरातके मनुष्योंको लेकर राजमहलमें पहिरावनीको आया और कहने लगा कि–"हे राजन्! अब बहुत दिवस होगये, इससे अपनी कन्यासहित हमे विदा कीजिये." उधर कन्याके कह देनेसे उसके मातापिता (राजा रानी इत्यादिक) भीतरकी गुप्त बात जानचुके थे, परन्तु केवल लोकव्यवहार दिखलानेके लिये कन्याके पिताने वरके पिताको दो एक दिन और रहनेका आग्रह किया, परन्तु अन्तमें उसके जानेका विचार देखकर महलमेंसे अपनी कन्याको बुलवाया और जब राजपुत्रके साथ रथमें बैठनेका अवसर आया, तब बरातवाले, मंडपवाले (कन्यापक्षीय) तथा नगरके और २ सब लोगोंके सन्मुख राजकन्याने चौंककर कहा—"अरे! इस रथमें तो कोई औरही बैठा है यह तो

मेरा पति नहीं है, किन्तु परपुरुष है, इसकारण मैं इसके साथ रथमें नहीं बैठ सकती." यह सुनकर सब लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह राजकन्या क्या कहती है सो सुननेके लिये एकत्रित हुए, बरातवालोंने और वरके पिताने राजकन्याको बहुतेरा समझाया बुझाया कि "यही तेरा पति है, यही राजकुमार है जिसके साथ तेरा विवाह हुआ है." परन्तु राजकन्या तो एकसे दो नहीं हुई. वह उन सबका तिरस्कार करके रथसे दूर जाकर जहां उसके पिता इत्यादिक खड़े थे वहां आकर खड़ी हुई, और कहने लगी-" पिताजी ! इस रथमें वैठा हुआ पुरुष मेरा पति नहीं है; जिस पुरुषके साथ मेरा विवाह हुआ है उसका एकभी लक्षण इसमें नहीं मिलता. पूर्वसंकेतके अनुसार जब कन्याने अपना हठ नहीं छोड़ा, तब वरके पिताने हार मानकर कहा कि "हे राजन् ! राजकन्या तो बालक होनेसे वृथा हठ ठान वैठगई हैं, इससे अभी नहीं तो थोड़े दिन पीछे गौना करानेके लिये आवेंगे. राजाने कहा कि-"ऐसा क्यों कर होसकता है ? यह तो कहती है कि, यह मेरा पति ही नहीं, तब मैं इसको आज अथवा फिर कभी, आपके साथ कैसे भेजसकता हूं ? मैं इसको समझाकर पूछता हूं कि इसके ऐसा बोलनेमें क्या भेद है फिर आपको कुछ उत्तर देसकूंगा." ऐसा कहकर अपनी कन्याके साथ सहज एकाध बात कह सुनकर राजाने वरके पिताको कहा-" कन्या तो कहती है कि चाहे सो कहो परन्तु यह मेरा पति है ही नहीं. इतने परभी आप नहीं मानते हो तो, मेरे साथ विवाह करनेवाले पतिके साथ रात्रिमें जो बातचीत हुई है उसका यह राजपुत्र चिह्न बतावे तो मैं उसको अपना पति मान सकती हूं. अतएव, हे समधीजी ! जैसे इस कन्याका समाधान हो वैसे राजपुत्रसे उत्तर दिलाओगे तो यह अपना हठ छोड़देगी." यह बात तो अवश्य स्वीकारने योग्य ही थी इसकारण विवश (लाचार) होकर वरके पिताने स्वीकार किया. फिर राजकन्याने कहा कि-" और कोई दूसरी निशानी नहीं चाहिये. मैंने विवाह की रातमें एक आधे श्लोकमें समस्या पूछी थी और मेरे पतिने तुरन्त प्रत्युत्तर रूपसे उस श्लोकको पूर्ण करदिया था; उसी श्लोकका उत्तरार्द्ध यह राजकुमार बतादे तो यही मेरा पति है ऐसा मैं स्वीकार करूंगी. इतना कहकर वह बोली-

उस राजपुत्रको इस श्लोककी क्या खबर? वह बिचारा कैसे जानसकता था कि जो इसका उत्तर देता? यह देखकर वरका पिता इत्यादिक सब बराती बड़े लज्जित हुए. तब कन्याके पिताने बड़े क्रोधसे उनको कहा–"क्यों समधी! क्या तुमने मेरे साथ कपटजाल नहीं चलाया है? अपने कुँवरकी मूर्खता, रोग अथवा ऐसेही कोई और बड़े भारी दूषणको छिपानेके लिये यह जाल रचा था कि और ही किसीको दूल्हा बनाकर विवाहको ले आये! धिक्कार है तुमको और तुम्हारी चालबाजीको. मैंने तुम्हारे कपटजालको खूब जानलिया! तुम तो किसी कुबड़े लँगड़ेके साथ मेरी कन्या विवाहना चाहते थे. परन्तु उसका अहोभाग्य, जो उसको सत्पात्र वर मिलगया. वह पुरुष उच्चवर्णका और विद्वान् है.अस्तु,ईश्वरनेही मेरी लाज रक्खी. मेरी पुत्रीके प्रारब्धने जोर किया, नहीं तो तुम्हारे मूर्खपुत्रसे उसको काम पड़ता. तुम्हारे इस अधम कार्यके लिये मैं तुम्हारे साथ जितना बुरा वर्त्ताव करूं उतना थोड़ाही है. मुझे बतलाओ वह ब्याहनेवाला पुरुष कहां है?" यह सुनकर राजकन्या बोल उठी "पिताजी! मेरा पति मेरे महलमेंसे जनवासे जाकर अपना राजवेश उतारकर, ब्राह्मणवेष करके काशीजीको जाता था तब मैंने बुलाकर महलमें छिपालिया है." राजाने तुरन्त उसको वहां बुलवाया. उसने आकर सब लोगोंके सन्मुख, राजपुत्रीके आधे श्लोकका उत्तरार्द्ध जिसे वह विवाहकी रात्रिमें पूरा करचुका था,–'नो रोचन्ते०' इत्यादि–तुरन्त कह सुनाया. इसपरसे सब राजा और प्रजाजनोंको पूर्ण निश्चय होगया कि यह द्विजपुत्र ही राजकन्याका असली पति है. उसको देखकर सबलोग प्रसन्न हुए. बरातवालोंके चेहरे फीके पड़गये और वरका पिता, कन्याके पिताका अधीन–कर भरनेवाला राजा था इससे बिना कुछ बोले चाले शिशुपालकी भांति चुपचाप बिदा होगया. तिसपीछे वह द्विजपुत्र अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये काशी जा आया और महान् विद्वान् होकर बहुतसी ऋद्धिसिद्धिके साथ राजकन्याको लेकर अपने घरगया. इन दंपतीको देखकर उसकी भौजाई अपने कहे हुए मर्मवचनोंके लिये बहुत पछताने लगी; परन्तु पीछेसे वे दोनों भाई और उनकी स्त्रियां आदिक सब कुटुंब एकत्र रहकर पूर्ण सुख भोगने लगे.

हे विशाल! इस दृष्टान्त परसे यही निश्चय होता है कि कर्मोंके भोग तो

विना चाहे और विना मांगे आगे आकर खड़े रहते हैं. उनके लिये चिन्ता, हर्ष वा शोक करना ज्ञानी पुरुषका कर्त्तव्य नहीं है.

१९--स्थूल और सूक्ष्म (लिंग) देह.

जब मनुष्यको हरेक रीतिसे प्रारब्ध कर्म भोगनेही पड़ते हैं, और देहही उनको भोगता है, आत्माको उनका स्पर्श नहीं—उसके साथ उनका कुछभी सम्बन्ध नहीं, तब पूर्वके प्रारब्ध-संचित, पूर्वका देह नष्ट होजाने पर कहां रहते होंगे ? और वे दूसरे नवीन देहको क्यों भोगने पड़ते हैं ? जो देखाजाय तो पूर्वके देहसे इस नवीन देहका कुछभी सम्बन्ध नहीं दिखाई देता. गुरुकृपासे इस शंकाका मेरे मनको इसप्रकार समाधान हुआ कि प्रारब्ध तो शरीरही भोगता है, परन्तु वह दो प्रकारका है. एक स्थूल शरीर और दूसरा सूक्ष्म अथवा लिंगशरीर जिसको ज्ञानी लोग वासना-देह भी कहते हैं. स्थूलदेह तो इस प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले शरीरको ही कहते हैं, परन्तु सूक्ष्म देह इस (स्थूल) के भीतर अदृश्यरूपसे रहता है. स्थूलदेहका जब तब नाश होजाता है परन्तु सूक्ष्म देह ज्योंका त्यों बनारहता है अर्थात् वह एक जन्ममेंही नहीं वल्कि अनेक जन्म जन्मान्तरोंमेंभी एकका एक—वही एक बनारहता है. ऐसे अनेक स्थूल देह जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादिके शरीर बदलते रहनेपरभी भीतर रहनेवाला लिंगदेह—सूक्ष्मदेह कदापि नहीं बदलता, वह तो वही एकका एक बना रहता है. प्रारब्धकर्मोंका भोक्ता और अभिमानी भी वही सूक्ष्मदेह है, और उसी सूक्ष्मदेहके कारणसे जीवको वारंवार जन्म मरण होता रहता है; और वह अपने प्रारब्ध कर्मोंको भुगा करता है. यह स्थूलदेह ऊपरसे दिखलाई देता है सही, परंतु उसका मूलकारण भीतरवाला लिंगदेहही है, और उसीसे स्थूलदेहको यह सब भासता है. तथा वह स्थूल देहके आश्रयभूत होनेके कारणसेही प्रारब्धसे होते हुए सुखदुःखका अनुभव करता है. अकेले सूक्ष्मदेहसे भी कुछ नहीं होसकता. इन दोनों स्थूल और सूक्ष्मदेहोंके एकत्र होजानेपरही प्रारब्धकर्म भोगे जा सकते हैं. जब एक स्थूल देह गिरजाता है तब लिंग-देह अपने प्रारब्धोंको साथ लेकर, दूसरा रूप अर्थात् दूसरा स्थूल देह धारण करता है, और वह जैसे २ प्रतिदिन वृद्धिगत होता जाता है, वैसेही वैसे सुखदुःखकी परीक्षा करनेवाला बनता है. परन्तु जबतक स्थूलदेह

वृद्धिको नहीं प्राप्त होता तबतक सूक्ष्मदेह उसके सुखदुःख किसीकोभी नहीं जानसकता और न कह सकता है. यहांपर दृष्टान्त है कि जैसे कोई बालक जब हाथमें खिलौना लेकर खेलता रहता है तब यदि उससे कहा-जाय कि-" अरे तेरा बाप मरगया अथवा तेरी मा मरगई, तेरे घरमें चोर आये अथवा तेरे घरमें आग लग गई, तो वह इन बातोंसे कुछ खेद न पाकर ज्योंका त्यों खेला करता है. क्योंकि उसको इनका कुछभी दुःख वा सुख नहीं, परन्तु जब वही बचा बड़ा होकर जवान होगा तब उसको ऊपरके वाक्योंका औरही कुछ असर होगा. तब वह चोरसे अथवा आगसे भयभीत होकर भागने दौड़ने लगेगा और माता पिताका मरण सुनकर श्राद्ध करने लगेगा. उन बातोंको सुननेवाला सूक्ष्म देह तो पहलेही वही था परन्तु स्थूलदेहकी सहायताके विना कुछभी नहीं करसकता था; इसीसे उसको उस समय कुछ असरभी नहीं होता था. लिंगदेहकी शक्तिसे एक जलबिन्दुका शरीर बनगया और वही धीरे २ वृक्षकी पिंडीके समान मोटा होगया ! किन्तु जब पांच पचास अथवा सौ बरस पीछे उसमेंसे लिंगदेह आत्माके साथ चला जाता है अथवा यों कहो कि उसको त्यागकर आत्माको अपने साथ लियें हुए चला जाता है, तब उस स्थूल देहसे भी कुछ नहीं हो सकता, वह निःसत्व ही पड़ा रहता है. जैसे कोई मनुष्य अपने कानोंको चाहे जैसे बंद करले तथापि घोर शब्दका थोड़ा बहुत भुन-कार सुने विना नहीं रहेगा; क्योंकि उस स्थूल देहके भीतर सूक्ष्म देह विद्यमान है; परन्तु जिसकिसीके कानोंके छिद्रही न हों, अथवा स्थूलदेह जिसने धारणही न किया हो तो फिर वह सूक्ष्मदेह क्या सुन सकता है? और सूक्ष्मरहित निःसार निःसत्व पड़ा हुआ यह स्थूलदेहभी क्या सुन सकता है ? इसलिये यद्यपि इन प्रारब्धोंको संचय कर रखनेवाला संभाल रखने-वाला सूक्ष्मदेहही है, तथापि वह स्थूलदेह धारण करके उसके सम्बन्धसे ही सर्व कर्मोंको भोगता है.

२०–वासना.

अब यह लिंगदेह कि जो स्थूलदेहका बीजरूप है इसीको वासनादेह भी कहते हैं; किसलिये कि स्थूलशरीर गिरते समय (पतन होते समय) जो मनकी वासना (इच्छा-अभिलाषा) संसारके किसी सुख वा भोगके भोग-नेमें रहजाती है, वही पतन-समयकी वासनारूप नया लिंगदेह बनजाता है.

और जैसी वासना वैसाही जन्म लेकर उसको अनेक जगह भ्रमण करना पड़ता है. इससे इस वासनाको ही मिटा देना चाहिये. इसलिये परमात्मा श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा है कि "जो प्राणी मरणसमय मेरा ध्यान स्मरण करके देहत्याग करता है वह निश्चय सद्गति पाता है." 'अन्ते या मतिः सा गतिः' मृत्युके समय जैसी मति होती है और जैसी वासना रहजाती है वैसीही गति होती है अर्थात् उसके अनुसारही उसका फिर आगमन होता है. यह संसार हरेक प्रकारसे वासनामूलक है. वासनाके कारणही प्राणीको वारंवार मरना और जन्मना पड़ता है. ज्ञानी पुरुष, कि जिसके सर्व कर्म ज्ञानाग्निसे भस्म होचुके हैं, और जो जीवन्मुक्त हैं (पापपुण्यसे रहित होजानेके कारण इस संसारमें शरीर धारण किये रहने परभी मुक्त दशाको प्राप्त होगये हैं,) उनकोभी, यदि यह स्थूल देह त्यागते समय कोई वासना बनी रह जाती है तो उस वासनाके अनुसार फिर देह धारण करना पड़ता है. श्रीऋषभदेव भगवानके पुत्र भरतजी जो परम ज्ञानी थे, और संसारको त्यागके किसीका संग न होनेपावे इस निमित्तसे, वनमें जाकर एकान्तमें रहते थे उनको भी, एक मृगशावकमें वासना रहजानेसे, मृगका शरीर धारण करना पड़ा था. और पीछे दूसरे जन्ममें—जड़भरत नामके अवतारमें वे, अपनी वासना किसी वस्तुमें न रहजानेसे, संसारका सर्व संग त्याग करके, गूंगे बहरेके समान जगतमें विचरते थे. इसी भांतिके वासनाके विषयमें जो अनेक दृष्टान्त हैं उनमेंसे एक फिर मुझे स्मरण होआया.

कोई एक महात्मा अपने दो शिष्योंसहित गंगातटपर एक सुन्दर आश्रममें रहते थे. वे ब्रह्मविद्यामें अत्यन्त निपुण थे. इसीसे उनके पास नित्यप्रति अन्यान्य महात्मा उनके दर्शन और समागमके लिये आया करते थे. एक दिन उन स्वामीने कथा कहते २ अपने शिष्योंसे कहा कि "यह मनुष्यदेह सर्वोत्तम है, अतः इसका आश्रय पाकर प्राणी प्रयत्न करे तो परम ज्ञानी होकर परम पदको प्राप्त होजाता है. इसलिये यह मनुष्यदेह धारण करना उसी समय सफल समझा जाता है कि जब आत्माको और दूसरा कोई देह धारण नहीं करना पड़ता. वह सार्थक प्रयत्नही ब्रह्मज्ञान है कि जिसके होजानेपर आत्माको निश्चयपूर्वक अपना परम धाम प्राप्त होता है." यह सुनकर एक शिष्यने सहज विनोदार्थ पूछा कि "गुरुदेव! यह किस भांति

जाना जासके कि ज्ञानीने परमपद पाया ? " शिष्यके प्रश्नके उत्तरमें स्वामीने कहा—" ज्ञान होनेके पश्चात् अपने आपको वा दूसरे किसीको कुछ कहना सुनना वा जानना शेष नहीं रहजाता. यह जीव अपने स्वरूपको देखकर–जानकर आत्मरूपमें लीन होजाता है, तथा आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप होजाता है. उसको कोई जान नहीं सकता, परन्तु जो तू जानना चाहता है तो कभी तुझको बतावेंगे. "

इतनेमें कुछ कालके अनन्तर वे स्वामी स्वयंही आयुष्य–बंधन पूरा होचुकनेसे मृत्युशय्यापर सोये. दोनों शिष्य बहुत रोने तथा शोक करनेलगे तथा " हे गुरुजी ! आप हमको छोड़कर कहां जाते हो ? अब हमारी कौन रक्षा करेगा ? " इत्यादि २ कहकर विलाप करने लगे. गुरुजीने बहुतसा समझा बुझाकर कहा–' भाइयो ! इस जगतमें जन्म पाये हुए सबहीका किसी दिन आगे पीछे नाश होनेवाला हैही; इसकारण ऐसी नाशवान् वस्तुके लिये क्यों शोक करना ? सच्चिदानन्द स्वरूप जो देही (देहके भीतर रहनेवाला आत्मा) है, उसका किसी कालमें किसी प्रकारभी नाश नहीं होता–वह तो अविनाशी है, अजर है, अमर है, नित्य है, शुद्ध है, वह या तो कर्मानुसार एक देहको त्यागकर दूसरा देह धारण करता है अथवा वासनारहित होता है तो परमपदको प्राप्त होता है ! " यह पिछला वाक्य श्रवण करनेपर उनमेंसे एक शिष्यको पहली बातका स्मरण हो आया; इससे उसने पूछा कि–' हे गुरुदेव ! यह जीव परमपद कैसे पाता है सो आप हमको कब बतावेंगे ?" स्वामीने कहा—" परम पदको पानेवाला तथा निजस्वरूपको प्राप्त होनेवाला आत्मा जब केवल, निर्गुण और निराकार होजाता है, तब उसको कौन जान सके ? परन्तु तुमको निश्चय करानेके लिये, आत्माने कोई दूसरा देह धारण किया है अथवा वह मुक्त होगया है इसको जाननेके लिये, मैं अपनेही सम्बन्धमें तुमको एक निशानी बतलाता हूं, सो सुनो. मेरी इच्छा इस जगतकी किसी दृश्य वा अदृश्य वस्तुपर नहीं है; मैं केवल परमात्मस्वरूपको ही सत्य जानता हूं, और उसीमें मैंने अपने आत्माको लगा दिया है–तल्लीन कर दिया है, इससे जब मेरा यह कलेवर छूटेगा तब अल्पकालमेंही आकाशमार्गमें जो घंटा दुंदुभि इत्यादि दिव्य बाजोंका घोष तुमको सुनाई पड़े तो तुम जानना कि मेरा आत्मा

परमपदको प्राप्त हुआ; और जो ऐसा न हो तो निश्चय जानलेना कि मैंने कोई न कोई देह अवश्य धारण किया है."

इस वातको एक दो दिन बीत गये तिस पीछे स्वामीने, अपना अन्तःकाल समीप आया जानकर, शिष्योंसे सब तयारी करवाई, और ठीक मध्यान्ह समयमें, उन्होंने अपना देह छोड़ा ! तत्काल वहुतसे और २ मनुष्योंसहित शिष्योंने, शास्त्रोक्त विधिसे उनका पूजन किया, और एक पालकीमें बैठाकर गंगाके प्रवाहमें विसर्जन कर दिया और सब लोग शोक करते हुए पीछे आश्रमको आये. उस समय उनमेंसे एक शिष्यको याद आगया कि " क्या अपने गुरुजीकी असद्गति हुई ? क्योंकि उनके कथनानुसार दैवी वाद्योंके बजनेका तो कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ा." ऐसे संशयपरसे सब लोग कहने लगे कि " ऐसा कैसे हुआ ? ऐसे महात्माकी दुर्गति होना तो कदापि संभव नहीं; वे तो साक्षात् जीवन्मुक्त थे; और फिर उनका कहा हुआ वचनभी मिथ्या कैसे होसकता है ? किसको खबर क्या है ? हरिकी गति हरि जानै." ऐसा विचार चलते २ कई दिन पीछे उन गुरु महात्मा स्वामीके पास; बहुधा सत्संगार्थ आते जाते रहनेवाले एक महात्मा उनसे मिलनेकी इच्छासे उस आश्रममें आये. इनको आये देखकर वे दोनों शिष्य बहुत शोक करने लगे, तथा स्वामीके देवलोक होजानेके समाचार सुनाये. इससे उन महात्माको भी बड़ा खेद हुआ तथा अब ऐसे महात्माके दर्शन कहां होंगे ? उसके विना अपने अन्तःकरणमें ब्रह्मज्योति कौन प्रदीप्त करेगा ? ऐसा कहते २ परम शोकाकुल होगये. पीछे अपना और उन शिष्योंका समाधान किया. अनन्तर शिष्योंने आगंतुक महात्माको वही पिछली बात कह सुनाई कि ' गुरुने कहा था तदनुसार अन्तरिक्षमें दिव्य वाद्योंका घोष नहीं सुनपड़ा, इसपरसे अवश्य उनकी असद्गति हुई है, ऐसा जानकर हमलोग बहुत दुःखी होगये हैं. यह सुन उन महात्माने आगे पीछेका सब, भलीभांति विचारकरके सोचा कि स्वामी केवल परम ज्ञानी थे, ब्रह्मनिष्ठ थे, वासनारहित थे, इससे उनकी दुर्गति तो नहीं होनी चाहिये. परन्तु कौन जाने ? कदाचित् प्राणीको असावधान करदेनेवाले अन्तकाल समयमें किसी वस्तुमें उनकी वासना रहगई हो, ऐसा संभव है. फिर उसने उन शिष्योंको कहा कि मुझको एक उपाय सूझ पड़ा है जिसके द्वारा उन मृत महात्माकी गति अगतिका रहस्य हम लोग जानसकेंगे. क्या तुम यह बता सकते हो कि,

मृत्यु होनेके समय स्वामीजी कहां और किसभांति सोये हुए थे ?" शिष्योंने पर्णकुटीके भीतर जाकर महात्माके मरण-समयका स्थल दिखाया और जितनी जगहमें उनका बिछौना था उतनीही जगहमें पहलेके समान ही बिछौना बिछाया. ये महात्मा मृतमहात्माके समान उस बिछौनेपर सोगये, और उन शिष्योंको पूछा कि 'अब तुम यह बताओ कि मृत्यु-समय उन महात्माकी दृष्टि कहां थी ?' "हां, उनकी दृष्टि नासिकापर थी परन्तु सहज झोंका आजानेसे उनकी आंख दाहिनी ओर झुकगई (हटगई) थी." इसीके अनुसार देह तथा दृष्टिकी स्थिति बनाकर बिछौनापर पड़े २ उन महात्माने देखा तो उस समय उनकी दृष्टि एक बेरके फलित वृक्षपर गिरी और वहांभी अपनी दृष्टिके ठीक सामनेही उस बेरवृक्षपर एक सुन्दर पका हुआ बेर दिख पड़ा. बिछौनेमेंसे उठकर शिष्योंसे वही बेर तुड़वा मँगाया और उन दोनोंको पास बिठाकर उसे देखने लगेतो बेरके ऊपरका छिलका मात्र शेष रहगया था और उसका मिठा २ गूदा (भीतरका भाग जो खाया जाता है) खायाहुआ था. उस बेरकी गुठलीके एकतरफ एक बड़ा कीड़ा, खूब खा पीकर मस्त हुए मनुष्यके समान मानों अब किसी बातकी इच्छा न रही हो ऐसे आनन्दमें शान्त पड़ाहुआ था-वह हिलना चलना वा कुछ चेष्टासे रहित था. यद्यपि वह एक जन्तु था तोभी उसके शरीरकी दिव्य कांतिसे बेरकी पोलाईका सब भाग तेजोमय दिखाई पड़ता था. यह चमत्कार दिखलाकर महात्माने उन शिष्योंको कहा—"हे शिष्यो ! तुम और सब काम छोड़कर इस बेरको कीड़ेसहित गंगाके प्रवाहमें छोड़ आओ. तत्काल दौड़ो. क्योंकि इस कीटका अब बिलकुल स्वल्प आयुष्य अवशिष्ट है, अतः इसके मरनेके पहले इसको गंगाजलका स्पर्श होजाना चाहिये.

इस बातका पूरा २ मर्म नहीं समझे तोभी वे शिष्य तत्क्षण गंगातटपर गये और उस कीटको गंगाजीके परम पवित्र प्रवाहमें फेंकदिया. एक क्षणभर पीछे उन शिष्योंने तथा गंगातटपरके अनेक मनुष्योंने एक दिव्य-प्रकाशको आकाशमें गमन करते देखा और तत्क्षण अंतरिक्षमें बड़े जोरसे घंटानाद तथा दुंदुभि, वीणा, वेणु, शंख इत्यादिका शब्द होता हुआ सुनपड़ा. सबको बड़ा विस्मय हुआ, और उन दोनों शिष्योंको तो ऐसा आश्चर्य हुआ कि यह क्या हुआ, इसका विचार करनेकी भी उनके मनमें

जगह न रही. बहुतसे मनुष्योंको साथ लिये हुए परम आनन्दमें मग्न होते हुए वे दोनों शिष्य पीछे आश्रमको आये तब उस महात्माने उनको पूछा कि-"" क्यों भाई ! तुम्हारे गुरुने दिव्यगति (देवलोक) पाया ? अब तो उनको परमधाम प्राप्त हुआ न ? इस प्रश्नसे औरभी चकित होकर शिष्यने पूछा—आप यह क्या कहते हो ? क्या वे हमारे गुरुजी थे, और वे परमपदको प्राप्त हुए इसीसे अन्तरिक्षमें बाजे बजने लगे थे ?" महात्माने कहा-" हां, वेही तुम्हारे गुरु ! " "क्या उन्होंने ऐसे एक जंतुकी योनि पाई थी ? ऐसी असंभव बात कैसे होसकती है ? " स्वामीने कहा—" उनके अन्तकालसमयमें विचलित हुई दृष्टि उस बेरपर जागिरी थी, और उनके अव्यवस्थित चित्तकी (मृत्युसमयमें विशेष करके, दुःखके कारणसे चित्त व्याकुल और विचलित होजाया करता है) उसमें वासना दौड़गई थी, इससे मनुष्यदेह छूटतेही उनका आत्मा वासनारूप देह धारण करके उस बेरमें बैठा था; और कईदिन तक कीट [कृमि—कीड़ें] का स्थूल-देह धारण करके उन्होंने बेरका सत्त्व भक्षण करके अपनी वासना तृप्त की थी, परन्तु अब उनको बेरमें किसी प्रकारकी वासना नहीं रहजानेसे, पूर्व जन्मके ज्ञानबलसे, कीटरूप महात्मा बिलकुल शान्त होकर देह छूटनेकी आशासे पड़े हुए थे. ज्योंही उनको गंगाजलका स्पर्श हुआ और कीटदेह छूटगया कि तत्काल उनके आत्माने सच्चिदानंदरूप धारण करलिया, तब स्वामीजीके कथनानुसार दिव्यवाद्योंका घोष सुनाई पड़ा ! अतः हे शिष्यों ! यह संसार वासनामूलक है. मनकी जिस किसीमें वासना रहजाती है, वही देह जीवको धारण करनी पड़ती है. इसीलिये मुमुक्षु ज्ञानी जनको वासनाको समूल नष्ट करदेना चाहिये. "

२१—मन.

ऊपरका दृष्टान्त सुनकर उन शिष्योंके मनका भलीभांति समाधान हुआ, और उन्होंने अपने गुरुका शोध करना छोड़दिया. परन्तु इस दृष्टान्त परसे मुझको ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि यह सब कुछ वासनाके कारणसे भोगना पड़ता है, और उसमें प्रारब्ध भी आ मिलते हैं; परन्तु यह वासना तो मनका धर्म है अर्थात् मनको होती है—न कि आत्माको ! फिर वासनाके कारणसे आत्माको किसलिये अनेक प्रकारके विडम्बनारूप देह धारण करने पड़ते हैं ? इसका समाधान यह है कि मन कोई स्वतःसिद्ध

वस्तु नहीं है. उसके पीछे लगी हुई अर्थात् उसके आधीन रहनेवाली दशों इन्द्रियोंके साथमें वह एक कल्पित और जड़रूप पदार्थ है और चैतन्य (आत्मा) की सत्तासे प्रकाशित है. यह वासना यद्यपि मनको होती है, तो भी उसके साथ २ अलिप्त* आत्माभी घसीटा जाता है. जैसे जलमें सूर्यका प्रतिविम्ब पड़नेसे वह चमकने लगता है, परन्तु स्वतः जल तो जड़रूप ही है. उसमें प्रकाशित होनेकी स्वतंत्र कोई शक्ति नहीं, ऐसेही मनको जानना चाहिये. मनभी जड़ है, वह अपनेआप कुछ नहीं कर सकता. परन्तु वह चेतनके सम्बन्धसे नानाप्रकारके विचार-संकल्प विकल्प करता रहता है, और देखेहुए सुनेहुए कई स्थलों—स्थानोंमें गति करता है, इसलिये सब बोझ आत्माहीके शिरपर पड़ता है. यद्यपि मन आत्माकी सत्तासे स्फुरता है तथापि उसकी शक्तिभी कुछ ऐसी नहीं है. रथमें बैठकर गमन करनेवाला अथवा युद्ध करनेवाला महारथी जैसे सर्व सत्ताधारी है परन्तु फिर भी उसका सब आधार सारथीके ऊपर है और रथको जहां वह (सारथी) लेजाता है वहां उस (महारथी) को भी जाना पड़ता है, ऐसेही मन इन्द्रियरूपी अश्वोंको जिस मार्गमें हांकता है उधरही देहस्थ (शरीररूपी रथ) खिसकता हुआ चला जाता है. अतएव, मन आत्माके सत्ताधीन होनेपरभी स्वेच्छानुसार गति-क्रीड़ा करता रहता है. मन ऐसा प्रबल है कि, नाना प्रकारके यत्न करनेपरभी वह वशमें नहीं होता. यह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतम और स्थूलसे भी स्थूलतम है. इसकी गतिका वेग अपरम्पार है. यह बड़ा चंचल और अस्थिर है. यह महाबलवान्, दृढ़ और सर्व इन्द्रियोंको मथन करनेवाला है, इसीसे इसको वशमें करना बहुत अशक्य है. आकाश कि जो सर्वत्र व्याप्त हो रहा है और निःसीम तथा अपार है, कदाचित् कोई उसका भी माप करसके; पवन जो अतिशय चंचल, महावेगवान् और सर्वव्यापक है, कदाचित् उसकीभी पुड़िया बांधी जासके; और समुद्र जो परम अगाध और अतिशय विस्तीर्ण है, कदाचित् वहभी अंजलिमें समाजाय; अर्थात् ऐसी २ असंभव-अशक्य बातोंको भी कुछ देरके लिये मान लें; तो भी मनको स्थिर-वशीभूत करनेका काम उनसे भी महाकठिन कार्य समझना चाहिये. मनही संसाररूपी बन्धनका कारण है, और यही अविद्या है. मनका नाश हो तो सब प्रपंचोंका नाश होजाय; ऐसेही मनकी वृद्धि होनेसे

* किसीमें लिप्त नहीं होनेवाला.

प्रपंचमात्रकी सत्वर अपार वृद्धि होजाती है. सुषुप्तिमें मनका लय हो जाता है, तब कुछभी नहीं रहता. इसीसे जीवको यह संसार मनःकल्पित है, वास्तविक नहीं. ऐसा होतेहुए भी इस (मन) को विरले ज्ञानी पुरुष नित्यके अभ्यासद्वारा दीर्घकालमें अपने वश करही लेते हैं. जैसे बादलों (मेघों) को लानेवाला-प्रेरित करनेवाला भी वायु है, और उनको बिखेर देनेवाला-छिन्नभिन्न कर डालनेवालाभी वही है, वैसेही संसाररूपी बन्धनको काटनेवालाभी मनही है, और बांधनेवाला अथवा बन्धनमें रखनेवालाभी वही है; मनही देहादि सब पदार्थोंमें व्याप्त हो रहा है. वह देह (अंगके) सब विषयमें प्रेम-राग उपजाता है और मनही सर्व विषयोंमें वैराग्यभी उपजाता है. विवेक वैराग्यके बढनेसे मन विशुद्धिको प्राप्त होकर मुक्ति देनेमें समर्थ होजाता है; और रज, तम गुणके बढनेसे मलिन होकर संसारके रगड़े झगड़े और खैंचतानमें पड़जाता है; परन्तु यदि मन शुद्धिके मार्गमें पड़जाता है तो शनैः २ उसका झुकाव सत्य (आत्मतत्त्व) वस्तुकी ओर होताजाता है और उसीमें प्रीति होतीजाती है. अनेक प्रकारकी युक्ति प्रयुक्तियोंसे ज्ञानीलोग मनपर अंकुश जमाते हैं. जैसे, जब आपन ध्यानमें बैठते हैं और मनको एकाग्र कर रखते हैं तब यदि पड़ोसमें गाना होता हो, अथवा नगारे बजते हों, वा बंदूकें छूटती हों; तो वे अपनेको सुनाई देती हैं, बस, उनको सुनतेही मनकी वृत्ति चंचल होने लगती है. मन वहीं जा पहुँचता है और उसीमें अटक रहता है. उस समय मनको इसभांति समझाना चाहिये कि आपन तो मनुष्य हैं. यदि कोई कुत्तेको तू तू करके बुलाता है और दूसरा मनुष्य उसको सुनभी लेता है तथापि उसका मन उस पुकारनेवालेकी ओर दौड जानेका नहीं होता; ऐसेही यदि किसी मनुष्यके नामसे भिन्न हरिदास, रामदास इत्यादि तन्नामवाचक नामोंसे भी कोई पुकारता है तो वहांभी वह नहीं जाता. कुत्तेके बदलेमें कोई मनुष्य हाउहाउ करता पुकारनेवालेकी ओर नहीं दौडजाता, और हरिदास रामदासके बदलेभी हां २ करके उन नामोंसे भिन्न नामोंवाला मनुष्य नहीं दौड़जाता. ऐसेही जब मनुष्य बड़ी उमरका होजाता है तब किसी छोटे बालकको पालनेमें सोयाहुआ देखकर स्वयम् उसमें सोनेका मन नहीं करता, अथवा बच्चेको चकरी भँवरा खेलता देखकर वह बड़ी उमरवाला मनुष्य नहीं खेलने लगजाता, इसीप्रकार मनुष्यके चाहे जैसे शब्दोंको भी वह सुन पावे

अथवा लोग चाहे जैसे क्यों न बोलते पुकारते रहें, परन्तु मैं मनुष्य हूं, न कि कुत्ता इसभांति सांसारिक मनुष्यको भी अपने लिये दृढ ज्ञान होता है; इसी-प्रकार, विवेकी पुरुष—आत्मानात्मज्ञ पुरुषकोभी, मैं पुरुष नहीं, स्त्री नहीं, ब्राह्मण नहीं, शूद्र नहीं, पांचभौतिक देह नहीं; किन्तु अविनाशी परब्रह्मरूप हूं, इसभांति नित्यप्रति ज्ञानदृष्टिसे मनन करके मनको वशमें करना चाहिये.

२२—अभ्यास.

यह काम नित्यके अभ्याससे सिद्ध होता है, जब अभ्याससे चाहे जैसा अशक्य कार्यभी शक्य हो जाता है. अर्जुनने श्रीकृष्णभगवानको मनकी चंचल और अनिवार्य स्थितिके लिये पूछा तब भगवानने उसको यही प्रत्युत्तर दिया, कि, "हे अर्जुन ! मन निःसंदेह वायुके समान दुर्निग्रह्य और चंचल है, परन्तु उसको अभ्याससे वशमें करसकते हैं." नियमपूर्वक किसी कार्यको प्रतिदिन करते रहना इसीका नाम अभ्यास है. अभ्यास करनेमें भी युक्ति चाहिये. प्रथमही थोड़ा २ करना, फिर उससे कुछ अधिक, तब और अधिक, इसभांति क्रमशः बढ़ाते जाना. किसी ऊंचे पर्वतपर चढ़ना हो तो एकदम फलांग मारकर चढ़ा नहीं जायगा; किन्तु धीरे २ एक २ कदम चलकर ठेठ शिखरपर पहुँचसकेंगे. अभ्यासमें भी थोड़े दिनोंके अभ्यासकी अपेक्षा अधिक दिनोंका अभ्यास सुखसाध्य होता है. इस विषयमें एक राजाका इतिहास मुझे याद आगयाः—

किसी देशका राजा अपनी बाल्यावस्थासेही, किसी नीच संगति अथवा और किसी कारणसे एक प्रकारका विष खाना सीखगया था. ऐसा नियम ही है कि किसी प्रकारका भी क्यों न हो परन्तु व्यसन एकबार शरीरको लगजाता है तो फिर उसका छूटना दुष्कर होजाता है. वह अपने आप तो भला कब छूटसकता है ? बल्कि प्रतिदिन औरभी अधिकाधिक बढ़ता रहता है. जब वह राजा भरपूर जवानीमें आया और सारे राज्यका कार-बार उसके शिरपर आपड़ा; तब उसकी ऐसी शोचनीय स्थिति होगई कि मंत्रिमंडल बड़ी चिंतामें पड़गया. उस राजाने जब विष खानेको आरंभ किया था तब तो वह केवल एक रत्तीभर विष खाता था, परन्तु शनैः २ बढ़ते २ उसका प्रमाण लगभग दो तीन तोला होगया. प्रातःकाल स्नानादिकसे निवृत्त होतेही सबसे पहले उसको तीन तोले विष चाहिये, और वह उसको

खांचुके तबही उनको चैन पडे. जो किंचित् विलम्ब होजाय तो रोना पड़जाय ऐसे निरन्तर विषसेवनसे उसके शरीरमें वा शक्तिमें तो कुछ विशेष फरक नहीं पड़ा; क्योंकि विषज्वालाको शान्त करनेके लिये घृत दुग्ध इत्यादिक अनेक पौष्टिक पदार्थ यथेच्छ मिलजाते थे, परन्तु उसके मनकी स्थिति बहुत प्रमादी तथा कुविचारी होगई. विषका सेवन और ऊपरसे जितना चाहिये उतनाही शरीरका पोषण होता गया इससे उसकी कामवासना इतनी बढ़गई कि एक घड़ी उससे स्त्रीविना नहीं रहा जाता. रात और दिन स्त्रीही स्त्री ! वह तो स्त्रीका ही निरन्तर सेवन करने लगा. ऐसा होनेसे राजकार्यमें बिलकुल अंधेर मचगया. यद्यपि प्रधान बड़ा बुद्धिमान् था, तथापि राजाके विना उसकी कुछ नहीं चलने पाती थी. अन्यान्य कार्यभारी और सेनापति, इत्यादिक अपनी२ इच्छानुसार चलने लगे. जहां तहां अन्याय और अनीति होने लगी. सारांश यह कि सारा राज्य टुकड़े २ हो जानेका समय आ पहुँचा और सुविचारी तथा कार्यदक्ष प्रधान नित्यप्रति बड़ी कड़ी २ फिर्यादें राजाके पास लाने लगा.

राजा अपनी एक अत्यन्त स्वरूपवती और गुणवती पटरानीमें लुब्ध होकर सदा सर्वदा उसीके रंगमहलमें ही पड़ा रहता था. स्त्रियोंको तो यही चाहिये, कि, पुरुष उनके लावण्यके कारण वशमें होजाय, और उनके पासही रहकर कामवासनाकी शान्ति किया करे. बहुत दिनोंतक तो ऐसाही चला. राजा सदा उसीके पास रहता था. इससे रानीको भी बड़ा हर्ष होता था; परन्तु जब प्रधान नित्य प्रति जा २ कर रानीके समक्षही राज्यकी गिरती दशाकी सूचना और भांति २ अन्यायोंकी शिकायतें करने लगा, तब तो रानीकी कुछ आंख उघड़ी-खुली. वह बहुत चतुर थी. उसने विचार किया कि, जो राजाजी राज्यकी ओर न देखकर निरन्तर मेरेहि पास पड़े रहेंगे तो मेरा यह सुख अधिक दिन तक नहीं ठहर सकेगा. राजा हो तो राज्य है और राज्य हो तो राजा है. परन्तु ऐसी अव्यवस्था रहनेसे तो अल्पकालहीमें मेरे पतिके हाथोंसे राज्य जाता रहेगा. यदि ऐसा होजायगा तो मैं तथा प्रजा सब महादुःखी होजायँगे. इसकारण, अब मुझको इसका शीघ्रही कुछ उपाय करना चाहिये. ऐसा सोच विचार करके उसने एक दिन प्रधानको समझाकर कहा—"राजा चाहे जैसा हो तो भी राज्यकी लगाम बुद्धिमान् प्रधानके हाथमें रहनेसे

राज्यको कुछ हानि नहीं पहुँच सकती. आप बड़े बुद्धिमान् और राज्यके परम शुभचिंतक हैं, इसलिये राजाजी स्वयं जैसी लगन और युक्तिसे कार्य करें वैसीही लगन और चिन्ता रखकर युक्ति प्रयुक्तिसे आप राज्यकार्य करेंगे तो मुझे भरोसा है कि राज्यमें शीघ्रही शान्ति स्थापित हो जायगी. और आज-हीसे मैं भी राजाजीको, पूर्ण सावधानीपूर्वक राज्य सँभाल सकें ऐसी स्थितिमें लानेका यथोचित प्रयत्न करूंगी! अभी तो आप सबको ताकीद करदेवें फिर किसी अधिकारी वा प्रजासे किसी प्रकारका अपराध होजाय तो एकाधको ऐसा बड़ा कड़ा दंड दें कि जिसको देखकर और२ भी भयके मारे थर्राने लगें."

इसप्रकार प्रधानको कहकर रानीने स्वतः विचार किया कि 'मेरे पतिकी ऐसी दशा होजानेका कारण मैं नहीं किन्तु उनका दुर्व्यसन है. जबसे यह दुष्ट इनके शरीरमें बैठा है तबसे इनकी ऐसी दशा होगई है. परन्तु अब इनको सुधारनेका एक मात्र यही उपाय है कि किसीप्रकारसे यह व्यसन दूर कर दिया जाय. परन्तु यह कैसे छूटे? एक दिन चूकना तो बड़ी भारी बात ह, परन्तु नित्यप्रति विष-सेवनका जो समय है उससे क्षणभरभी विलंब होजाय तो उनका शरीर मूर्छित जैसा होजाता है. इसकारण यदि एकदम इनका व्यसन छुड़ाया जाय तब तो प्राणहानिका भय बनाहि है! तब करना क्या? बड़े आश्चर्यकी बात है कि राजाजी जितना विष खाते हैं उसका एक अष्टमांश भी दूसरा कोई मनुष्य खालेवे तो तत्काल मरणको प्राप्त होजावे, किन्तु राजाजीको तो उतनेसे भी कुछ पीडा नहीं होती, इसका क्या कारण? यदि एक साथ ही उन्होंने इतना अधिक खाया होता तो उनकी भी ऐसीही स्थिति होजाती; परन्तु पहले २ तो एक रत्तीभर विष खाया करते थे, फिर बढ़ते २ तीन तोले होगया. मैं समझती हूं कि यदि इसी भांति थोड़ा २ करके प्रतिदिन घटाया जाय तो बिलकुल घटभी सकेगा. अच्छा, तो यही उपाय ठीक है.' उस चतुर रानीने ऐसा विचार करके, ज़ब दूसरे दिन राजाके विष-सेवनका समय आया तब नानाप्रकारके हावभाव कटाक्ष करके मधुरवाणीसे कहा-"हे प्राणनाथ! आप नित्यप्रति अपने आपही कसूंबा (कुसुंभा) लेते हो परन्तु आज तो इस दासीको अपने हाथसे आपको रंग देनेकी इच्छा है." राजाने कहा-"मैं बहुत प्रसन्न हूं तुम इसीभांति नित्य दिया करो तो

मुझे बड़ा आनन्द होगा." इसप्रकार राजाने रानीके हाथसे कसूंबा लेना स्वीकार करलेनेपर एक दिन रानीने अपने हाथसे कसूंबा दिया और फिर तो राजाकीभी आदत पड़गई सो प्रतिदिन रानीके हाथसेही कसूंबा लेने लगा. पहले तो रानी प्रतिदिन तीन तोला बराबर तोल २ कर विष दिया करती थी. अब तो सब सत्ता रानीके हाथमें आगई. पहले जब विषका तोल करती थी तब संगमरमरके एक बाँटसे किया करती थी, परन्तु अब उसने उतनेही तोलका एक खड़िया मिट्टीका ढेला लेकर तोलना आरंभ किया. प्रतिदिन विष तोलनेसे पहले, उस खड़ियासे दीवारपर एक लकीर करदेती तब उससे विष तोलती. थोड़े दिनतक तो ऐसा करती रही. तिस पीछे ऐसा नियम रक्खा कि उस खड़ियासे दो लकीरें दिवार पर खेंच २ कर विष तोलना. ऐसा करनेसे दो महीनोंमें वही खड़िया आधी रह गई. और राजाके पेटमें विषभी उतनाही कम जाने लगा तिसपरभी उसको कुछभी व्यथा वा उदासी नहीं जान पड़ी; क्योंकि राजा तो यही जानता था कि मैं तो पहले जितनाही विष खाता हूं. और दो महीने वीत जानेपर जब वह खड़िया चनेके दाने समान रहगया तब तो मानों नींदमेंसे उठा हो इसभांति राजा एकदम उठ बैठा—सचेत होगया और उसका आलस तथा नशा बिलकुल दूर होगया. अब वह धीरे २ राजसभामें भी जाने लगा. जब वह राजसभामें बैठने लगा तो राज्यकी अव्यवस्थाभी घटने लगी. ऐसे करते २ वह खड़िया मिट्टी घिसती २ बिलकुल समाप्त होगई और राजाभी भलिभांति सचेत होगया; तब राज्यकार्यमें अच्छीतरह प्रवृत्त होनेसे राज्य जैसा पहले था वैसाही व्यवस्थित और सुप्रबंधित होगया. अधिकारी वर्ग पूरा २ भय मानने लगे, और सब प्रकार शान्ति होजानेसे राजारानीने बहुतकाल सुखसे बिताया. तिस पीछे एक दिन राजाको, उसका विषका व्यसन कैसे दूर हुआ, इसका सब भेद रानीसे सुननेपर, बड़ा आनन्द हुआ और उसका ऐसा परमहित तथा युक्ति रचनेके लिये राजा रानीको बड़ा धन्यवाद देनेलगा.

इसीरीतिसे धीरे २ अभ्यास करते २ चाहे जैसे अनिवार्य मनको भी मनुष्य सुलभतासे अपने वशमें करलेता है. अभ्यासही सब कार्योंकी सुलभताका मुख्य कारण है. और सर्वस्मृतिकार, शास्त्रकार तथा पुराणकार मनुष्यके हितकी इच्छासे, नाना भांतिके उपायोंद्वारा शनैः २ मनको

दृढ करना कहगये हैं. और प्रतिदिन अमुक २ यम नियमादि करनेके लिये भी बहुतसी आज्ञायें देगये हैं. उदाहरणरूपसे मनुष्यको त्रिकाल सन्ध्या करना, अमुक २ सूक्त वा स्तोत्रादिका पाठ करना, प्रतिदिन नियमित रीतिसे प्रभुका ध्यान करना, वारंवार हरिस्मरण करना इत्यादिक शास्त्राज्ञा किसलिये हैं? केवल दीर्घसमयतकके सदभ्यासके लियेही. अपनेको भोजनका अभ्यास पड़रहा है, इससे कदाचित् अँधेरेमेंभी जीमना पडे तो, ग्रास किसी और इन्द्रियमें न जाकर वरावर मुखमें ही जायगा. इसप्रकार प्रतिदिन नियमपूर्वक भगवद्–ध्यानादि करनेका अभ्यास होनेसे अन्तसमयमें अपने आपही उनका (भगवान्‌का) ही स्मरण हो आता है, और परमात्माके सिवाय अन्य किसी वस्तुमें वासना न रहनेसे ही प्राणीकी सद्गति होती है, यह निश्चयात्मक है. शास्त्रोंमें भगवान्‌की सेवा, ध्यान, अथवा नाम–स्तुति, पाठादि स्मरण जो एकही वार करनेमें आवे तो उसका अनंत (परमपद प्राप्तितक) फल वतलाया है. उसपर अविद्याग्रसित तथा अल्पबुद्धिके मनुष्योंको शंका होती है और उसको मिथ्या मानते हैं; परन्तु ऐसी शंका न करके उसका अभ्यास करना चाहिये कि जिससे निश्चयपूर्वक केवल एकही वार परन्तु प्रतिदिन नियमपूर्वक शुद्ध मनसे परमात्माका स्मरणादिक किया जावे तो अन्तमें ऐसा करनेवालेकी अवश्यही सद्गति होगी. अभ्यासही सवमें सवल कारण है.

२३–जो वोलता है, वह दूसरा नहीं.

अभ्यास करके मनको वशमें करना चाहिये. और मनके वशीभूत होनेहीसे मनकी वृत्ति ब्रह्मके साथ अखंड एकाकार होगई तो फिर वह मनुष्य संसारमें रहा तो भी क्या और न रहा तो भी क्या? परन्तु इसके विपरीत एकाकारवृत्तिरहित, चाहे जितना और चाहे जैसाभी ध्यान क्यों नहीं किया जाय वा चाहे जितनी विरक्तता क्यों न रक्खीजाय, परन्तु उससें कुछभी प्रयोजनकी सिद्धि नहीं. किसीएक महात्माके पास एक शिष्य उपदेश ग्रहण करता था. एक दिन गुरुने कथाप्रसंगमें उसको कहा कि–"जो वोलता है वह अन्य कोई नहीं, अर्थात् घटपटमें सर्वत्र व्यापक ब्रह्मही है, दूसरा कुछ नहीं." इस उपदेशपर यथोचित लक्ष्य देकर एक दिन वह शिष्य ध्यान करनेको वैठा. प्राणायाम कर मनको एकाग्र

करके परमात्माके स्वरूपमें लीन करनेका प्रयत्न करनेलगा. इतनेहीमें उस नगरके राजाका एक हाथी मदोन्मत्त होकर छूटगया. किसीसे न पकड़ा जाकर, उस हाथीने गली २ में बड़ी धूम मचादी. वह मार्गमें दौड़ता जाता था और जो कोई सामने आजाता तो उसको सूंड़में पकड़कर चाहे जहां फेंक देता था. इससे सारे शहरमें हाहाकार मचगया. राजाने तत्काल आज्ञा दी कि जो कोई 'इस हाथीको पकड़ देगा उसको एक हजार रुपया इनाम मिलेगा.' तब तो बहुतसे चतुर महावत, बड़ी सावधानीसे उसकी पुच्छ पकड़कर हाथीकी गरदन पर जा बैठे और अंकुशका प्रहार करनेलगे; परन्तु हाथी तो वश होनेके बदले दुगुना मस्त होता गया. तब थककर महावत ऊपरसे पुकार २ कर कहने लगे, कि, "भाइयो! जो कोई मार्गमें हों सो दूर भागजावे, हाथी मतवाला होगया है, किसीको मार न डाले." तब वह शिष्य जो ध्यानमें मग्न बैठा था उसने भी वह पुकार सुनी, क्योंकि इन्द्रियोंके द्वार तो खुलेही रहते हैं और इसीसे वे अपना २ धर्म पालती हैं. परन्तु उसने तो 'जो बोलता है वह दूसरा कोई नहीं' इस गुरुवचनपरही श्रद्धा रक्खी और 'बोलनेवाला तथा हाथी आदिक सबही ब्रह्मही हैं इसलिये मुझको इनसे कोई पीड़ा होनेवाली नहीं' ऐसा मानकर आसपास होते हुए कोलाहलपर कुछ ध्यान न देकर पूर्ववत् बैठा रहा. इतनेमें वह हाथी दौड़ता २ वहीं आपहुँचा और उस सिद्धको सूंड़में पकड़ एक तरफ फेंककर आगे चलता बना. तत्क्षण उस शिष्यका ध्यान छूटगया इतनाही नहीं बल्कि उसका एक हाथ भी टूट गया. वह क्रोधमें भरकर गुरुके समीप गया और कहने लगा कि "महाराज! आपका 'घट २ में ब्रह्म है, सर्वत्र ब्रह्म है, सर्व ब्रह्मरूप हैं' यह कहना मिथ्या है; क्योंकि ऐसा हो तो ब्रह्म निर्विकार है, जगत्भी निर्विकार है, मैं ब्रह्म हूं, जगत् ब्रह्म है, मैं ब्रह्मकेही ध्यानमें बैठा था, तोभी हाथीने मुझको पटक मारा जिससे मेरा हाथ टूटगया. यह क्यों?" गुरुने कहा—"यह महावाक्य मिथ्या नहीं है, किन्तु तेरे समझनेमें और वर्त्तनेमें अन्तर है, इससे तुझको मेरा कथन असत्य प्रतीत होता है. जगत्में सर्वत्र ब्रह्म हैं सही, परन्तु वह व्यवहार दृष्टिसे नहीं, यह तो जैसे जिसकी वृत्ति वैसी ही उसकी स्थिति. यदि दृढ़तापूर्वक तेरी वृत्ति ब्रह्ममें एकाकार होगई होती तो सर्वत्र ब्रह्मही था, और हाथीसे भी तुझे कुछ पीड़ा नहीं होती. परन्तु 'हाथी

आता है. हटजाना, भागना' इत्यादिक शब्द तूने सुने वा नहीं ?' शिष्यने कहा "हां." तब गुरुने कहा-" तब तू क्यों नहीं भागगया ? यह बात श्रवण करने योग्य तेरी वृत्ति चंचल थी तो तुझको सर्वत्र ब्रह्म भासमान कैसे हुआ ? 'यह सब ब्रह्मही, अन्य कुछ नहीं.' ऐसी वृत्तिसे तू तल्लीन होगया होता तो तू साक्षात् ब्रह्माकारही था. तब तो हाथी तेरे निकट आकरभी तुझे अपने कालके समान जानकर दूर भागजाता. परन्तु तू बचगया यह भी केवल परमात्माके ध्यानका तथा 'सर्वत्र ब्रह्म है' ऐसा जाननेका ही प्रताप समझ; क्योंकि इतनी तोभी तेरी वृत्ति परमात्मामें लगी हुई थी. नहीं तो जैसे जो २ उस हाथीके सपाटेमें आया सो मरही गया, वैसे ही तू भी मरजाता. तू कैसा मूर्ख है ? जब तूने यह मान लिया कि सर्वत्र ब्रह्मही है तब हाथी और महावतको भी ब्रह्म क्यों नहीं माना ? तू ब्रह्म, हाथी ब्रह्म, और महावत भी ब्रह्म ! अब ब्रह्मने ब्रह्मको जो आज्ञा की उसका तूने अनादर करनेका प्रयत्न क्यों किया ? हे शिष्य ! व्यावहारिक जीवको तो महावाक्योंमेंसे रहस्य मात्र लेना चाहिये, शब्दार्थ लेनेवाला तो दुःखही पाता है. इसलिये गुरुके वचनपर अविश्वास न करके उसपर पूर्ण विचार करके अनुभव करना, और तिस पीछे सिद्ध बनना; जिससे परमात्मा परब्रह्म-श्रीकृष्णका साक्षात्कार होगा. विचारशून्य कार्य सच्चा भी हो तोभी मिथ्या होजाता है. विना विचारे करनेमें कुछ सार नहीं."

इसपर मुझे ऐसा प्रश्न उठा कि-'तब परमात्माके साथ एकाकार वृत्ति कैसी होनी चाहिये ?'

२४-एकाग्रवृत्ति-शुकदेव मुनि.

श्रीकृष्णद्वैपायन-श्रीमद्वेदव्यास मुनीश्वरके स्खलित वीर्यसे *उत्पन्न हुए शुकदेव मुनि श्रीशंकरके प्रसादसे अवतार धारण करनेके कारण जन्मसेही

---

* घृताची नामकी अप्सरा शुकी (तोती) का रूप धारण करके पृथ्वीपर विहार करती थी; वह अप्सरा अत्यन्त सौन्दर्यवती थी. एक समय वह वनमें विचरती थी. तब वनकी शोभाको देखकर उसने स्वेच्छासे अपना दिव्य स्वरूप प्रकट किया, और सुन्दर वृक्ष लताओंमें क्रीडा करने लगी. दैवयोगसे वेदव्यासजी उधर जा निकले और उनकी दृष्टि उस अप्सरापर पड़ी. उस देवांगनाकी अलौकिक सुन्दरताको देखकर वे उसपर मोहित होगये. उनके रोम २ में कामदेव व्याप्त होगया. स्वयं महाज्ञानवान् होनेसे उन्होंने कामवेगको बहुतही रोका तिसपरही उसका आवेश सहन न हो सकनेसे उनका दिव्यवीर्य स्थान

महाज्ञानी थे. वे जन्मसेंही इस संसारसे उदासीन तथा विरक्त रहते थे. वे माता पिता आदिकमें या किसी वस्तुमें भी प्रीति नहीं रखते थे. वे जन्मतेही तुरन्त वनमें चले गये. उस समय उनका शरीर जन्मते हुए छोटे बच्चेके समान नहीं था, किन्तु सोलह वर्षवालेके समान था; परन्तु पूर्ण त्यागवृत्तिके योगसे वस्त्रादिक कुछ भी साथमें न लेते हुए, जैसे जन्मे वैसेही नग्नके नग्नही जैसे कोई प्राणी दावानलको देखकर भागजाता है वैसेही वे इस संसाररूपी दावानलसे छूटनेके लिये भागने लगे. ऐसा दिव्य पुत्र, उत्पन्न होते ही, मातापिताको पुत्रसुख दिये विना ही चला जाता है ऐसा देखकर महामुनि वेदव्यासजी उनको पीछे लौटा लानेके लिये उनके पीछे २ दौड़े. उन्होंने पुत्र-शुकदेव मुनिको अनेकानेक बोधवचन कहे, नानाप्रकारसे समझाया, संसारमें मोहित करनेके लिये विविध युक्ति प्रयुक्तियों द्वारा बहुत कुछ समझाया* किन्तु शुकदेवजीने एकभी नहीं सुनी; क्योंकि उनके मनमें ऐसा अभिमान था कि "मैं स्वयंपूर्ण ज्ञानी हूं तिसपरभी संसारमें प्रीति-आसक्ति रखनेसें संसारबन्धन मुझे बाधक होगा और मैं अज्ञानांधकारसे संसारमें मोहित होजाऊंगा." श्रीशुकदेवजीने वेदव्यासजी महाराजको उत्तर दिया कि-"हे पिताजी ! आप मेरे आनेकी आशा मत रखिये. मैं ज्ञानी हूं इसकारण जानबूझकर संसारपर कालांतरमेंभी मोह नहीं करूंगा." इसप्रकार जब शुकने कुछभी नहीं माना तब व्यासजीने देखा, कि, इस पुत्रको

भ्रष्ट होकर स्खलित होगया. उस वीर्यमेंसे तत्काल एक दिव्य बालक प्रकट हुआ. वही बालक ये शुकमुनि थे. शुकी (तोती) रूप अप्सराको देखकर वीर्यपतन हुआ इससे उस बालकका नाम शुक हुआ. वेही शुकदेव और वेही जन्मयोगी शुक महामुनि कहलाये कि जिनके उपदेशसे महाराजा परीक्षित सात ही दिनमें कैवल्य पदको प्राप्त होगये थे.

* व्यास मुनिने उनको कहा था कि—"हे पुत्र ! अभी तुझको संसारका पवन नहीं लगा और तू सब भांतिसे निर्लेप है; परन्तु संसारानुभव लिये विना अभीसे ही तू विरक्त होजायगा तो पीछेसे तेरा मन ललचायमान होगा जिससे तेरी पिछली (बाल्यावस्थाकी) विरक्तता भ्रष्ट होजायगी ! कारण कि, जिसने संसारको देखाभी नहीं उसको किससे विरक्त होना था ? 'संसारमें क्या है और उससे किस लिये उदासीन होना चाहिये' यह संसारके अनुभव विना ज्ञात नहीं हो सकता. अतः संसारका पूर्ण अनुभव प्राप्त होजानेपर उसको मिथ्या समझनेसे जब ग्लानि उत्पन्न होजाय तब फिर ज्ञानीका मन कदापि संसारमें लुब्ध नहीं होता.

अपने ज्ञानका अभिमान है और वह इसके योगमें लांछनरूप है. यदि यह कलंक दूर होजाय तो फिर यह साक्षात् ब्रह्मरूप होजाय, इसमें संदेह नहीं. अतः इसको कुछ बोध देना चाहिये, ऐसा विचार कर पुत्रका अभिमान दूर करने और पूर्णतत्त्व प्राप्त करानेके लिये वेद व्यासजीने वनमें दौड़े जाते हुए शुकदेवजीको कहा—"इतना २ समझाने बुझानेपरभी तू मेरा कहा नहीं मानता, तो भले ही यथेच्छ विचर, परन्तु प्रथम एकवार जनकराजाके यहां जाकर फिर जहां इच्छा हो वहां जाना !" पिताका यह वचन भागते २ शुकदेवजीके कानोंमें पड़ा. 'जनकके यहां जा' इतनेही वचनको ग्रहण करके वे फिरते २ किसी समय जनकपुरमें पहुँचे. महाराजा जनकके दर्शन करनेके लिये उन्होंने नगरमें प्रवेश किया. राजा जनक साक्षात् विदेह होनेसे सर्वज्ञ थे, इससे शुकदेवजीको आया देख आत्मशक्तिद्वारा जान लिया कि श्रीमद्वेदव्यासजीने इस बालयोगीका ज्ञानाभिमान दूर होनेके लिये मेरे पास भेजा है. राजाने शुकदेवजीका भली भांति आदर सत्कार किया और स्वयं सब वृत्तांतसे जानकार होनेपरभी दोनों हाथ जोड़कर उनको पूछा कि "हे गर्भज्ञानी !* आपके यहां पधारनेसे मेरा घर, राज्य और मैं ये सब पवित्र हुए हैं. आपकी क्या आज्ञा है सो कृपापूर्वक इस दासको कहिये !" तब शुकदेवजी बोले—"हे राजन् ! मुझको ज्ञानोपदेश (आत्मोपदेश) दीजिये." जनक महाराजने कहा—"हे महाराज ! आप सर्व ज्ञानियोंके शिरोमणि होकरभी मझ अकिञ्चनसे उपदेश चाहते हैं इसका क्या कारण ? परन्तु यदि आपका ऐसाही आग्रह है तो आप इस संसारमेंकी कोई निरुपयोगी वस्तु मुझे ला दीजिये तब मैं आपको आत्मोपदेश करूंगा." यह सुनकर शुकदेवजी कि जो परम ज्ञानी थे तो भी ज्ञानाभिमानके कारण जनकके कथनका मर्म नहीं समझ सके, और निरर्थक वस्तुको खोजनेके लिये भ्रमण करने लगे. परन्तु संसारका अनुभव करना तो दूर रहा, उनको तो संसारकी गंध मात्रभी नहीं आई थी, तब वे कैसे जान सकते थे कि संसारमें कौनसी वस्तु उपयोगी और कौनसी निरुपयोगी है. संसारका अवलोकन न करलेनेसे उनको किसी पदार्थके गुण अवगुणका ज्ञान कहांसे आवे ? तब उन्होंने संसा-

* गर्भमेंही ज्ञान होगया है जिसको.

रकी प्रत्येक दृश्य वस्तुको निरुपयोगी समझकर अर्थात् तत्क्षण जिसका कुछभी उपयोग होता हुआ नहीं देखनेमें आया वह निरुपयोगी होगी ऐसा समझकर उसे उठाना आरंभ किया. परन्तु वहां जनकराजकी ज्ञानशक्तिद्वारा ऐसा चमत्कार देखनेमें आया कि जिस २ वस्तुको शुकदेवजी निरुपयोगी समझकर उठाना चाहते थे, वही वस्तु तत्काल अपनी उपयोगिताके विषयमें अनेक उदाहरण देने लगी* और ऐसी उपयोगी वस्तुको निरुपयोगी मानने की अज्ञानताके लिये उनका हास्य करने लगी ! इस प्रकार पदार्थ मात्रका उपयोगीपन देखकर आश्चर्यको प्राप्त होनेसे शुकदेवजीका " मैं ज्ञानी हूं " ऐसा जो अभिमान था वह शनैः २ नष्ट होने लगा; परन्तु तबतक भी उनको यह जान पड़ा कि कौनसी वस्तु निरुपयोगी है ? वे बहुत २ हिरे फिरे. जहां तहां सर्वत्र ढूंढा खोजा परन्तु जहां देखा वहां हवामें उड़ता हुआ तृण और पांवोंसे खुदती हुई धूलतकभी उनको उपयोगी दिखाई पड़ी. तब बहुत संतप्त और खेदित होकर उन्होंने पीछे लौट जानेका विचार किया. इतनेमें विष्ठापर उनकी दृष्टि पड़ी. " अहो ! अब मुझे निकम्मी वस्तु मिली. सचमुच यह सबसे निकम्मीसे निकम्मी वस्तु है " ऐसा कहते हुए ज्यों ही उसको हाथमें लेने लगे त्योंही एक प्रकारकी चमत्कारिक वाणी उसमेंसे प्रकट हुई–" तू कौन है ? हजारोंके

---

*जैसे–उन्होंने एक पत्थरको मार्गमें लुड़कता देखकर यह निरर्थक है ऐसा मान जब उठाना चाहा तब पत्थरने कहा–"हे भाई ! तू मुझको निरुपयोगी समझकर मेरा मान खंडन करनेके लिये मुझको राजाके पास लेजाता है, परन्तु तुझे जानलेना चाहिये कि मैं निरुपयोगी नहीं हूं. मैं हजारों कामोंमें आ सकनेवाला हूं. अनेक प्रकारके घर, देवालय, और गढ़ (किले) बांधनेके कामोंमें मेरी आवश्यकता होती है. मैं जब व्यापारीके हाथमें जाता हूं तब उसकी तुला (तराजू) में बैठकर आनन्द करता हूं. मेरे द्वारा विविध भांतिके अन्न, औषधियां, घृत, शर्करा, सुवर्ण, चांदी इत्यादि अनेक वस्तुएं तोली जाती हैं. अरे ! अतिशय मूल्यवाले हीरे मोती आदिक रत्नभी तो मुझको गढ़कर बनाये हुए बांटसेंही तोले जाते हैं. अभी तो मैं ऐसी स्थितिमें हूं, परन्तु यदि किसी निपुण कारीगरके हाथ लगूं तो वह अपनी बढ़िया कारीगरी खर्च करके मेरी एक सुन्दर प्रतिमा बनाडाले और फिर जब मुझसे बनी हुई प्रतिमाकी वेदमंत्रोंसे प्राणप्रतिष्ठा करनेमें आती है तब मेरा ईश्वरतुल्य पूजन-अर्चन कियाजाता है. इससेभी मैं अत्यन्त उपयोगमें आता हूं.

कामके लिये निर्माण हुई मुझको तू कहां लिये जाता है ? क्या तू मुझको निकम्मी समझता है ? मेरे उपयोगको सारा संसार तो जानता है और तू योगी अजानही रहा ?" विष्ठाके ऐसे वचन सुनकर शुकदेवजीको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसको प्रश्न किया कि "हे विष्ठा ! तू किस कामकी है, तुझको कोई मनुष्य आंखोंसे देखनाभी तो नहीं चाहता. तिसपरभी तू अपने उपयोगीपनका इतना अभिमान करती है इसका क्या कारण है ?" इसके प्रत्युत्तरमें विष्ठासे ध्वनि निकली कि "हे सन्त ! खर, शूकर कूकरादि कुटेववाले प्राणी मुझको खाकर अपना पेट भरते हैं; किसान लोग मुझको सबसे पहले दर्जेका उपयोगी समझकर खेतीके कामोंमें लगाते हैं. और मैं भी उनके खेतोंमें गिरकर भूमिको विशेष उपजाऊ और फलदायक बना देती हूं. जमीनका मुझसे संग होता है तो वह दुगुना और रसमय अन्न पैदा करती है जिसको तुम (मनुष्य) लोग खाकर अपना पोषण करते हो, उसी अन्नमेंसे वीर्य बनता है कि जिससे नाना नररत्न जन्मते हैं. मैं जो ऐसी उपयोगी हूं उसको तुम निरुपयोगी कैसे समझते हो ? और भी इस समय जो मेरी स्थिति घिनौनी और दुर्गंधयुक्त दिखाई देती है सो भी पहलेसे नहीं थी. पूर्वाश्रममें तो मैं साक्षात् परब्रह्मरूप अन्न थी. 'अन्नं ब्रह्म रसो विष्णुः' अन्न साक्षात् ब्रह्मरूप और रस अर्थात् जल साक्षात् विष्णुरूप है. हे योगींद्र ! तब तो मैं नाना प्रकारोंके सुन्दर स्वादिष्ठ मिष्टान्नोंका रूप धारण किये हुई थी और सुवर्णके रत्नजटित थालोंमें मैं रक्खी जाती थी. परन्तु मुझको जीम जाने-खाजानेवाले मनुष्यका केवल एक रात्रि संग होनेसे ही मेरी ऐसी नीचातिनीच और दुष्ट स्थिति होगई ! तब हे योगीश्वर ! क्या तुम मनुष्योंके शरीरसे भी मैं गई बीती होगई ?"

इतना कहकर वह ध्वनि बंद होगई और जैसे निद्रामेंसे चौंकपड़े हों उसभांति शुकदेवजीको एकदम ज्ञान हुआ कि 'अहो ! सच बात तो यही है कि इस मेरे (मनुष्य) देहसे बढ़कर निरुपयोगी जगत्‌में अन्य कोई पदार्थ नहीं कि जिसकी संगतिसे अन्नकी ऐसी दुर्दशा होगई. और २ प्राणियोंकी देह तो मृत्युके पश्चात्‌भी अनेक कामोंमें आती है, परन्तु हंसके उड़जाने पर-आत्माके निकल जानेपर जो यह देह घड़ीभर अधिक पड़ा रहजाय तो इसमेंसे दुर्गंध निकलने लगती है. यही कारण है कि आत्माके

प्रयाण करतेही मिट्टी (लाश) को तत्काल गाड़देते या जलाकर भस्म करदेते हैं. ऐसे निश्चय होनेपर महामुनि शुकदेवजी जनक राजाके पास गये और 'लो, यह निरुपयोगी वस्तु' ऐसा कह कर अपना देह उनके सन्मुख झुकाया. और फिर कहा कि 'मुझे आत्मोपदेश करो!' यह सुनकर जनकराजाने कहा—"हे शुक! अबतक भी उपदेश बाकी है? (यह देह आत्मा न होकर मिथ्या ही है. इसलिये इसका अवलंबन करके मैं तथा मेरा ऐसा कथन करना, देहको व्यर्थ जानलेनेपर मिटगया—अर्थात् देहाभिमान छूटनेरूप बोध हो ही चुका,) ठीक; आप एक काम करें. यह तैलपूर्ण (तेलसे ऊपरके किनारे तक लबालब—छलाछल भरी हुई) थाली अपने दोनों हाथोंमें लेकर मेरे नगरकी प्रदक्षिणा कर आओ. परन्तु खबरदार ध्यान रखना कि इस थालीमेंसे एक बूंदभी तेल न गिरने पावे. यदि गिरगया तो आपके पीछे २ मेरे सिपाही नंगी तलवार लिये चलरहे हैं वे तुरन्त आपका शिर उड़ादेंगे."

दोनों हाथोंमें तैलसे भरी हुई थाली लिये हुए हैं, उनके आगे पीछे राजसेवक (सिपाही) खड्ग लियेहुए साथ २ चले जारहे हैं; ऐसी स्थितिमें शुकदेवजी नगरप्रदक्षिणा करते हैं. उस दिन जनकपुरके बाहर एक बड़ा भारी मेला लगा था. वहां कहीं २ रंभाके समान रूपवती स्त्रियां नृत्य कर रही थीं. किसी तरफ नानाप्रकारके मिष्टान्न और अनेक स्वादिष्ठ फलोंकी दुकानें लग रही थीं. कहीं पर वस्त्रों, आभूषणों और पात्रों (बरतनों) इत्यादिको ले २ कर व्यापारीगण बेचनेको बैठे हुए थे. किसी जगह भांति २ के कौतुक—खेल तमाशे होरहे थे. और किसी स्थानपर मधुर २ बजते हुए बाजे चित्तको हरलेते थे. इसप्रकार यत्र तत्र मनोहर वस्तुओंका समूह—सुन्दर मेला, नगरके आसपास भरा हुआ था. उसके बीचमें होकर शुकदेवजीको तैलपात्र लिये हुए चलना था. चारों ओर दाहिने बांये आगे पीछे विविध भांतिके चित्ताकर्षक रंग राग होरहे थे तथापि शुकदेवजीकी दृष्टि तो उस पात्रपरसे हटकर इधर उधर जानेवाली नहीं थी. क्योंकि उनके मनमें पूरा डर समाया हुआ था कि जो कदाचित् एक बूंदभी तैल नीचे गिरगया तो तत्काल शिरश्छेद होनेमें संदेह नहीं है. इससे किसीतरफ न देखकर उन्होंने तो केवल तैल न लुढ़कनेपरही दृष्टि जमा रक्खी और अत्यन्त सँभलकर चलते हुए नगरकी प्रदक्षिणा देकर रात होते २ पीछे राजद्वारमें आपहुँचे. जनक-

महाराजने प्रणाम करके उनको धन्यवाद देते हुए उनके हाथोंमेंसे तेलकी थाली लेली तबभी शुकदेवजीने यही कहा कि "हे राजन्! बोध कराइये." "क्या अभीतक आत्मबोध अवशिष्ट रहगया ?" ऐसा जनक राजाने पूछा, और कहा–"ठीक, ऐसाही होगा. परन्तु पहले आप एकबार भोजन कर लीजिये तब निश्चिन्ततासे आपको आत्मबोध कराया जावेगा." तत्काल महलमें सुन्दर रत्नजटित आसन बिछवा दिये गये और जगमग२ करतेहुए दिव्य रत्नोंसे जटित सुवर्णके थालोंमें भरकर नानाप्रकारके स्वादिष्ठ व्यञ्जन–उन बालयोगीश्वरके सन्मुख धरे गये. तब राजाने निवेदन किया कि "महाराज! भोजन करिये." परन्तु प्राणाहुति देकर ज्योंहीं ग्रास लेना चाहिते थे कि तत्क्षण उनकी दृष्टि एक भारी शिलापर पड़ी कि, जो उनके शिरपर निराश्रय लटक रही थी और 'अब पड़े–अब गिरे' ऐसी होरही थी. उस लटकती हुई शिलाको न गिरने देनेके लिये कहीं कोई आधार नहीं दिखाई देता था इससे उन्होंने यही समझा कि यह शिला गिरनाही चाहती है, और गिरतेही अपनेको चूर २ कर डालेगी. जबसे शिला उनको दिखाई दी तबसे उनका चित्त तो वहीं जालगा. उनको यह भय व्याप गया कि जो यह शिला गिरपड़ी तो मेरे प्राण निकल जायँगे. यद्यपि भोजन बहुत स्वादिष्ठ था तथापि उनकी दृष्टि तथा मन उस शिलापर लगे हुए थे इससे उनको तो थालमें क्या है और क्या खाते हैं इसका कुछभी भान नहीं रहा जैसे तैसे करके झटपट भोजन करके उठगये.

तदनन्तर मुखवास–ताम्बूलादि लेकर, जनक महाराजके तयार कराये हुए आसनपर शुकदेवजी विराजमान हुए तब उन्होंने फिर भी वही आत्मबोधविषयक प्रश्न किया. उसे सुनकर राजा जनकने कहा–" हे व्यासपुत्र! आप कृपा कर यह कहिये कि आज आपने मेरे नगरकी प्रदक्षिणा की तब क्या २ देखा ?" शुकदेवजी बोले–" हे राजन्! मैंने अपने हाथमेंके तैलपात्रके सिवाय और कुछभी नहीं देखा." " ठीक. अभी आप क्या २ जीमे सो तो कहिये ?" "नहीं. मुझे तो कुछभी खबर नहीं कि मेरे थालमें क्या २ पदार्थ थे; क्योंकि मेरे आसनके ठीक ऊपरही एक शिला टँग रही थी उसको देखतेही वह मुझपर गिरपड़नेके भयसे मेरी दृष्टि और मनोवृत्ति उसी तरफ जालगी थी." यह सुनकर राजाने

कहा "बस, यहीं आपको बोध है और यही उपदेश है. आप पूर्ण आत्मज्ञानी हैं इसीसे आपको परमात्मस्वरूपका साक्षात्कार तो होही चुका है, परन्तु जिसप्रकार आपने नगर-प्रदक्षिणा करते समय मार्गमें आसपासकी वस्तुओंको नहीं देखा, भोजन करते समय देहोत्सर्गके भयसे भोज्य पदार्थोंपर लक्ष्य नहीं रक्खा, और आपकी दृष्टि तथा मनोवृत्ति केवल भयप्रद वस्तुपरही जा लगी थी, वैसीही स्थिर वृत्तिसे—तदाकार रूपसे आप अपने जानेहुए परमात्मस्वरूपपर अविचल दृष्टि लगाये रहिये तो आपको यह संसार किसी प्रकारसेभी बाधक नहीं होगा." इसभांति प्रत्यक्ष समाधान होजानेसे परम प्रसन्न होकर जनकको गुरु मानकर शुकदेवजी वहांसे विदा हुए. अतएव, हे विशाल! एक ध्यानके समयही नहीं किन्तु अहोरात्र-निरन्तर पुरुषकी वृत्ति ऊपर कही हुई रीतिसे परमात्मामें स्थिर रहे तवही उसे एकाग्र-एकाकार-तदाकार वृत्ति कह सकते हैं. और उसीसे आत्मा तथा परमात्माका अनुसन्धान-परमैक्य अद्वैत होजाता है अर्थात् वह ब्रह्माकार होजाता है. *

२८-माया.

हे विशाल! मुझे यहांभी अब एक शंका उठ आई कि, इस प्रकार एकाग्र वृत्ति रखना मनुष्यके आधीन नहीं. कारण कि मनुष्य चाहे कैसाभी उपाय क्यों न करे किन्तु प्रभुकी माया उसे भुला देनेमें नहीं चूकेगी. मनुष्यके मनको निर्मल जलकी उपमा दी जा सकती है, और जलका धर्म द्रवता है, इसीसे वह अच्छी वा बुरी हरेक वस्तुके साथ शीघ्रतर मिल जाता है, जिससे उसमें अनेक प्रकारके मल-विकार मिल जानेसे उसके ऊपर उन मलोंका आवरण अर्थात् लील जमजाती है कि जो शुद्ध जलको ढांक देती है. इसीभांति मनका धर्म भी द्रवताका है. वह हरेक किसीको देखते ही तत्काल उसके अच्छे वा बुरे विषयोंमें द्रवीभूत होजाता है और परस्पर मिलजाता है. ऐसा होनेसे उसकी स्वच्छता पर-(उसको ढाककर) नाना प्रकारके पापरूप मल इकट्ठे होजाते हैं अर्थात् मायारूपी लील (आवरण)

---

*परब्रह्म परमात्माका ध्यान करते समय मन तो नाना मायावी पदार्थोंमें लगारहे और ऊपरसे ज्ञानका ढोंग करे, पाठ पूजा करे तो केवल दंभही है, इसके शिवाय और कुछ नहीं. एकाग्रवृत्तिके विना जो ब्रह्मका-प्रभुका ध्यान किया जाता है वह पूर्ण ध्यान नहीं समझा जाता.

जमते कुछ विलम्ब नहीं लगता. इस रीतिकी माया, मोह–आवरणके भीतर लपेटकर आत्मा तथा मन इन दोनोंको भी ढांक देती है. इस लिये इस मायाके आवरण–मोहमें फँसाहुआ प्राणी कभीभी अपनी चित्तवृत्तिको दृढ नहीं रख सकता.

२६–माया क्या है ?

तब माया क्या वस्तु है ? शास्त्रोंमें मायाके लिये नीचे लिखे अनुसार भिन्न २ छः व्याख्याएँ की गई हैं.

उनमेंसे पहली व्याख्या यह है कि–जो वस्तु भूत, भविष्यत् और वर्त्त-मान तीनोंभी कालमें है ही नहीं उसको 'है' ऐसा मानना इसीका नाम माया है.

दूसरी–जीवके आत्मस्वरूपको जो अपने आवरणसे आच्छादित करती है वह माया है.

तीसरी–जो वस्तु यथार्थ ज्ञान होनेके उपरान्त समूल निवृत्त होजाती है उसका नाम माया है.

चौथी–कार्य–कारण (जगत् कार्य और परमात्मा उसका कारण है) के भेदका कारण अर्थात् कार्य–कारणके भेदको उत्पन्न करनेवाली जो वस्तु, वही माया है.

पांचवीं–माया वास्तवमें कुछ भी नहीं है, परन्तु वेदमें आत्माको जगत्का कारण तथा सर्व जगत्रूप कहा है, इससे जगत्का कारण सिद्ध होनेके लिये अर्थात् जगतके उत्पन्न होनेमें परमात्मा आदि कोईभी कारणभूत है ऐसा निश्चय होनेके लिये मायाकी केवल कल्पना मात्र की गई है.

छठी–अपने अधिष्ठानमें जो आत्मा है उसके साक्षात्–द्वारा जब अज्ञानकी निवृत्ति होजाती है, तब सर्वत्र परब्रह्म ही परब्रह्म भासमान होता है. वह जो अज्ञान है, उसीका दूसरा नाम माया है.

२७–माया कैसे प्रकट होती है ?

यह माया अपने आपही प्रकट होती है. यदि उसके सन्मुख होजाय सामना कर बैठे और उसको कुछ न गिने अर्थात् उसकी कुछ परवाह न करे तो उसका कुछ वश नहीं चलता. जब विलासवैभवमें होते हैं तब, संसारकी अनेक पीडामें अनुरक्त होगये हों तब, प्राकृत मनुष्यके समान

व्यवहारमें लिपटेहुए होते हैं उस समय, गान तान राग रंगकी धुनमें मर्यादा-शून्य अविवेककी वेलामें यह राक्षसी नानाविध रूपधारिणी माया कुछभी नहीं करती; परन्तु जब आत्मा जाग्रत् होकर उन्नत भावनावाला बनना चाहता है; तबही यह दुष्टा माया बीचमें खड़ी होकर बाधक हो जाती है. जब ऐसा विचार आजाता है कि यह संसार असार है तब, यह जीवन व्यर्थ है. ऐसा विचार जब कभी उत्पन्न होता है तब, ज्ञानकथा पढ़े सुने तब, सद्गुरुका समागम हो तब, महात्मा जन जिस मार्गसे गये हों उस मार्गसे जाने लगे तब, और ध्यानस्थ होनेके पूर्वमें यह माया प्रगट होकर अवरोध करती है. अपना चित्तही जब द्रवताके गुणवाला है तब उसपर माया अपना प्रभाव (असर) जमाये विना कैसे रहे ?

एक महाजन नित्य प्रति सत्संग करता रहता था, इससे एक विष्णुमंदिरमें जाकर प्रतिदिन पिछले पहरमें कथा सुननेको जाया करता था. एकदिन कथामें पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचंद्र परमात्माके अतिअद्भुत चरित्रका वर्णन होरहा था, उसके रसमें सर्व श्रोताजन एकाग्रचित्त होकर चित्रवत् होगये थे, किसीको भी अपनी देहकी सुधी न थी उस समय उस महाजनका कोई सगा सम्बन्धी जो कि व्यवहारमें बड़ा प्रतिष्ठित समझा जाता था सो वहां आकर उसको कहने लगा—" संतदास संतदास! उठो २ एक मौका आया है, अमुक २ व्यापारमें दो हजार रुपये मिलने जैसे हैं. सौदा तो मैंने कर लिया है, परन्तु केवल 'सही' बोलनेकी देरी है; इससे मैंने सोचा कि जब तुम मेरे निकटके सगे और स्नेही हो तब तुमको छोड़कर भला मैं अकेलाही कैसे करलूं ? इसीलिये तो सारे गाममें तुमको ढूंढ़ता २ यहां आया हूं. अतः चलो, झटपट चलो, देर मत करो. " इस समय कथा सुननेसे सबके मन एकाग्र होरहे थे, और वहां माया फाया कुछ नहीं थी, परन्तु उस व्यवहारीने—प्रपंचीने आकर सबके मन व्यग्र करदिये. उस सत्संगी महाजनके मनमें तत्काल माया प्रकट हुई—" ऐसा मेरा सगा और स्नेही जो ऐसे लाभदायक व्यापारमें मेरा भाग (हिस्सा) रखकर मेरे लिये वह स्वयंही इतना घूम २ फिरकर यहां तक आया है तो मुझको भी अवश्य जाना चाहिये. यदि नहीं जाऊंगा तो मेरीभी हानि होगी और इसको भी बुरा लगेगा. " इसप्रकार मायाने प्रत्यक्ष दर्शन दिया. तब मायाबन्धनमें फँस कर वह महाजन वहांसे

उठकर अपने सगेके साथ, कथाको रामराम करगया. बाजारमें जाकर सौदा पक्का कर उसमें सही कर रुपये गिनदिये और माल अपने घरमें ला डाला. परन्तु माया तो मायाही ठहरी ! अब यहां ऐसा हुआ, कि, जो माल उन्होंने खरीदा था और जो महँगे भाव बिकेगा ऐसा निश्चय था, देशावरोंमें उस मालकी भरती होजानेके समाचार आनेपर दूसरेही दिन उसका भाव मद्दा होगया. जो उसको तत्क्षण थोड़ा बहुत नुकसान उठाकर न वेचडाले तो आगेको अधिक हानि होनेवाली दिखाई देती थी. परन्तु व्यवहार बड़ा विचित्र है. थोड़ी हानिसे वा थोड़े लाभसे व्यवहारियोंको चैन नहीं पड़ता. हानि उठावे तब तो पूरी २, और लाभ तो दैवाधीन ही है, उसने उस समय मालको नहीं वेचा. भाव दिनोदिन घटता गया और जब अत्यन्त हानि होचुकी तब कसर खाकर मद्देभावसे माल वेचना पड़ा, टोटा बहुत लगगया. लाभ हुआ होता तो सबको अपना २ भाग अधिकतर रखनेकी इच्छा होती, परन्तु टोटेमें कौन शामिल हो ? इससे वह सगा स्नेही अपने पाससे हानिकी पूर्तिके लिये रुपये भरनेमें आनाकानी करने लगा और दोनोंमें परस्पर बड़ा विरोध होगया. जिसका कहना उल्लंघन नहीं होसके ऐसे प्रतिष्ठित और और स्नेही सम्बन्धीके साथ पूरी २ शत्रुता होगई. कैसी माया ? क्या मायाका प्राबल्य ?

यह अपनी हानिसंबंधी बात उसने कई दिन पीछे कथा कहनेवाले सन्त पुरुषको कही, तब उसने हँसकर कहा—"भाई ! भगवद्गुणोंके श्रवणरूपी अमृतको छोड़कर मायामें फँसा तो तेरी यह दशा हुई. यह भी खोया और वहभी खोया. यदि प्रथमसेही उस अपने सगेको तू कह देता कि 'सेठजी ! मैं तो कथा श्रवण करनेको बैठा हूं इससे मेरा आना नहीं होसकता. तिसपरभी यदि आपकी ऐसीही इच्छा हो तो मेरे नामसे आपही रखलेना. जो होगा उसमें मैं हिस्सेदार हूं.' तो वह अपने आपही समझकर चला जाता और लाभके लोभसे दूसरेको पातीदार कौन रक्खे ऐसा सोचकर तेरा भाग नहीं रखता; यदि रखता तोभी श्रीहरिकृपासे तुझको लाभ ही होता. परन्तु यह माया तेरे घटमें प्रबलतासे प्रकट हुई और उसके आवरणसे तेरा मन आच्छादित होगया, तब तो कर्मोंका फल भोगनाही चाहिये."

२८ माया ठगिनी है.

यह सारा जगत् मायाकी रस्सीमें पिरोया हुआ है, और जैसे एकही डोरीसे वा पेंचसे सारा यंत्र चलता है अथवा यंत्र द्वारा होनेवाला काम विना किसी दूसरेकी सहायताके अपने आपही होता रहता है, उसी रीतिसे मायारूपी यंत्रके द्वारा यह समस्त जगत् घूमरहा है. वह माया कैसी है ? कि जो प्राणियोंको अपनेमें लुभाती है–भुलाती है ! जैसे कोई ठग, मुखपर मीठा २ बोलकर मौका आनेपर अपने अन्तःकरणका दुष्ट विचार प्रगट करता है; अथवा कोई लुचा व्यापारी अच्छा माल दिखला· कर पीछे देते समय खराब माल ढकेल देता है; वैसेही यह माया अपने क्षणिक सौन्दर्यमें फँसानेके लिये पहले तो प्राणीको उसका हित और अच्छा २ दिखाती है, परन्तु पीछेसे उस सत्संगी महाजनकी भांति कंटकरूप होजाती है. उदाहरणरूपसे शरीरकोही देखो कि स्त्री अत्यन्त सुरूपवती, नवयौवना और मंजुभाषिणी जान पड़ती है; परन्तु उसके देहके भीतर मल, मूत्र, रक्त, मांस, हाड़, मज्जा इत्यादि दूषित और घृणित पदार्थ भरे हैं. रूपलावण्य, और मधुर भाषण यह सब मायाका रूप है, यही उसकी ठगाई है. माया सच मुच ठगिनी ही है कि जिसके फंदेमें फँसा हुआ यह अखिल विश्व भी उसके गुणका ही अनुसरण करके धूर्त–ठग बनगया है. यह जगत् तो ऐसा स्वार्थी ठग है कि जो कुछ करता है, सो समझ देखनेसे, सचमुच अपनेही लिये करता है. तिसपरभी ऊपर २ से दूसरेका सुख और स्वार्थ प्रदर्शित करता है. देखो कि, स्त्री और पुरुष अपनेही विषय–सुखके लिये एक दूसरेके साथ प्रीति करते हैं, परन्तु ऊपरसे पुरुष तो कहता है कि–" हे प्रिये ! तुझको कुछ दुःख हो तो उसे मैं क्यों कर सकता हूं ? मैं जो कुछ करता हूं सब तेरेही लिये करता हूं." तब स्त्री कहती है–" प्राणनाथ ! यह दासी आपकी सेवा करनेके लियेही उत्पन्न हुई है, और आपको सुख हो ऐसेही प्रयत्नमें निरन्तर लगी रहती है." जब दोनोंमें कोईएक मरजाता है तब अपने नष्ट हुए स्वार्थके लिये गला फाड़ २ कर रुदन करता है, परन्तु उस मर-जानेवालेकी कैसी दशा हुई होगी अथवा उसको दुःख होता होगा वा सुख, इसका तो वह कुछ विचारही नहीं करता. ऐसेही पुत्रपर अत्यन्त

प्रीति देखी जाती है. ऊपरसे तो पुत्रके हितके लिये जान पड़ती है, परंतु वास्तवमें वह करनेवालेके स्वार्थके लिये ही है. जो अपने सुखके लिये प्रीति न हो और पुत्रके लिये ही हो तो जब पुत्र किसी नीच स्त्रीके साथ लंपट होकर भ्रष्ट होजाता है, तब उसके साथ उसके माता पिता क्यों नहीं खाते पीते ? वे क्यों नहीं सोचते कि अपना पुत्र विचारा दुःखी होगया होगा ? किन्तु वे यदि ऐसा करे-पुत्र पर प्रीति दिखानेको दौड़े तो उनको विपत्ति आ दवाती है, सब लोग उनका तिरस्कार करने लगते हैं और जातिसे वहिष्कृत करदेते हैं. इसीसे 'पुत्र गया तो गया, उसकी करनी वह पायगा. अब हम क्या करें ?' ऐसा कहकर चुप बैठते हैं. इसी प्रकार जेवर वगैरःको लोग सन्दूकमें-तिजोरीमें रखकर ताला वंद करते हैं और कहते हैं कि गहनेकी रक्षाके लिये उसे जाप्तेसे रक्खा है. अब यदि उनसे पूछा जाय कि 'क्यों भाई ! गहनेको क्या ठंड लगती थी वा धूप लगती थी सो तुमने दया करके उसे तालेमें वंद कर दिया ?' तो वे क्या उत्तर देसकेंगे ? कुछ भी नहीं. यदि उसको कोई चोर चुरा ले जाय तो उनको हानि पहुँचे और वे क्या पहनें ? अर्थात् अपनेही लिये उसे तालेमें सुरक्षित रखते हैं. इसी भांति जहां देखो वहां अपनेही स्वार्थके सिवाय इस जगतमें और कुछभी नहीं है. इस धूर्त-ठगिनी मायाके आवरण अर्थात् मोहमें फँसाहुआ सब कोई अपने २ सुखके लिये प्रीति करता है और उसके आवरण-मोहमें आच्छादित नहीं हुए तथा परमार्थके लिये प्रीति करनेवाले तो विरलेही हैं.

२९ मायाका वन्धन.

परन्तु अविद्यासे परिपूर्ण प्राणी क्या करे ? इस मायाका वन्धनही वड़ा विचित्र है, दुस्तर है, जिससे प्राणीमात्र अपने आपही, आंखें होते हुएभी अंधेकी भांति उसमें बँधजाते-फँसजाते हैं.

किसी वणिक्पुत्रकी सगाई एक दूरदेशस्थ साहूकारकी पुत्रीके साथ कीगई थी. दूर देश होनेके कारणसे उस साहूकारका पुरोहितही आकर सगाई करगया था और सब ब्योरा उसको कह सुनाया था. "उस साहूकारकी तीन पुत्रियां हैं, उनमें सबमें सयानी, समझदार और रूपवती बड़ी लड़की है उसके साथ मैं तुम्हारी सगाई-सम्बन्ध किये जाता हूं."

इस प्रकार वह वणिक्पुत्र भविष्यमें अपनी स्त्री बननेवाली उस साहूकारकी पुत्रीके गुण सुनकर मनही मन बड़ा प्रसन्न होने लगा. बहुत दिनोंतक यह सगाई बनी रही, उस बीचमें साहूकारके पुत्रकी ओरसे भाविनी वधूके लिये बहुतसे वस्त्र आभूषण तथा खानेपीनेके पदार्थ भेजनेमें आये. कर्मयोगसे थोड़ेही दिन पीछे यकायक ऐसा सुननेमें आया कि 'उस साहूकारकी बड़ी लड़कीका देहान्त होगया' यह सुनकर वह वणिक्पुत्र रोने लगा—"अरे रे! मेरा घर बिगड़ गया. हाय २! ऐसी गुण तथा रूपवाली स्त्री मुझे अब कहां मिलेगी? अरे! मेरे भाग्य फूट गये! अरे बाप रे!" इत्यादि नानाप्रकारके विलाप करनेलगा. यद्यपि उस महाजन-पुत्रने आजपर्यन्त अपनी होनहार वधूको आंखसेभी कभी नहीं देखा था, न कभी बोलते हुए सुनाभी था, केवल उस सगाई करानेवाले पुरोहितके कहनेमात्रसे वह मायाके बन्धनमें बँध गया था. इसीभांति वाग्जालसे भी माया प्राणीको बांधलेती है. तब:—

३०—माया किसके आधीन है?

मुझको शंका हुई कि तब वह माया किसके आधीन है? इसका समाधान यह है कि—मायारूपी यंत्रके कारण यह सारा जगत् चलरहा है; परन्तु यंत्रकी कोई कल अथवा रस्सी उसके कर्त्ता अथवा चलानेवालेके हाथमें होती है जिससे वह जिधर कल घुमादेता है अथवा डोरीको खींचता है उधरही—वैसेही यंत्रको चलनाही पड़ता है; इसी भांति इस मायायंत्रकी डोरी जगत्कर्ता श्रीहरिके हाथमें है और वह अपनी इच्छासे जैसे चलाना चाहता है वैसेही वह मायायन्त्र चलता है; अर्थात् माया ईश्वरके आधीन है. तब यह—

३१—माया किसप्रकार हमको बाधक न हो?

माया किसप्रकारसे हमको बाधक न हो ऐसा मुझे विचार उत्पन्न हुआ. इस विषयमें मुझे यही निश्चय हुआ कि जो वस्तु जिसके आधीन हो उसीकी कृपा संपादन करनेसे वह हमको बाधक नहीं हो सकती. यहांपर एक दृष्टान्त हैं. बैलों पर लादकर व्यापारका माल एक देशसे दूसरे देशको लेजानेवालोंको बनजारे कहते हैं. मार्गमें, जंगलमें, रात्रिके समय, तथा संकट समयमें उनके मालके रक्षण करनेका काम उनके साथ २ रहनेवाले कुत्ते करते हैं, अर्थात् जहां २ पड़ाव पड़ता है वहां उन बैलोंके चारों ओर

वे कुत्ते घूमते रहते हैं और जब किसी प्रकारका खटका देखते हैं तो तत्काल अपने मालिकको सूचित कर देते हैं. इसप्रकार वे कुत्ते किसीभी अनजाने-अपरिचित मनुष्यको वहां नहीं आने देते. जब कभी किसी मनुष्यको व्यापारके लिये अथवा और कोई बातचीत करनेके लिये वनजारेके पास जानेकी आवश्यकता होती है तब उसको, जिधरसे वह जाने लगता है उधर-वाला कुत्ता रोकता है और जो वह कुत्तेकी परवाह न करके जबरदस्तीसे चला जाता है तो कुत्ता दौड़कर उसे काटखाता है. परन्तु यदि वह जानेवाला मनुष्य नम्रतासे वनजारेको पुकारे कि "भाई! मुझको तुमारे पास आना है." तो वनजारा कुत्तेको पुकारकर समझादेता है अथवा अपने पास बुलालेता है जिससे वह मनुष्य निर्विघ्न वनजारेके पास जा पहुँ-चता है. इसी भांतिसे यह मायाभी ईश्वरके आधीन है. अतएव जो हम ईश्वरका प्रेमपूर्वक एकाग्रचित्तवृत्तिसे सेवन करें—अनन्यभावद्वारा उसकी शरण जावें तो वह अपनी मायाको खैंचलेता है तब उसको लौटजानेमें कुछभी विलंब नहीं लगता; परन्तु ईश्वरकी सहायताके विना स्वाभिमानसे कोईभी जीव उसको जीतलेना चाहे तो वह उलटा अधिकाधिक उसमें लिप्त होता है और दुःख पाता है; कारण यह कि माया बड़ी प्रबल है, ऐसा महत् पुरुषोंका कथन है. हे विशाल! अब मुझको यह प्रश्न उठा कि, तब ऐसी वह—

३२–माया कैसी है?

'माया कैसी है?' इस प्रश्नके उत्तरमें मुझको महाभारतका एक दृष्टान्त याद आगया:—

एक दिन धर्मधुरंधर महाराजा युधिष्ठिर राजसभासे निवृत्त होकर अन्तःपुरमें गये तो वहां महारानी द्रौपदीको नहीं देखा. 'कभी ऐसा नहीं हुआ; परन्तु आज मेरे आनेके समय सती द्रौपदी कहां गई होगी?' ऐसा विचार करके वे शून्य पलंगपर उसकी मार्ग-प्रतीक्षा करतेहुए बैठगये. थोड़ीही देरमें द्रौपदी आ पहुँची और आज सतीके धर्मानुसार, महारा-जको नमन प्रार्थना किये विना तथा उनकी आज्ञा लिये विनाही, उनके पलंगपर बैठ गई! इससे आश्चर्यान्वित होकर धर्मराज (युधिष्ठिर) विचार करनेलगे कि 'आज ऐसा क्यों? नित्य तो यह मेरी नानाप्रकारसे सेवा करती है और आज्ञा लेकर पलंगपर बैठती है और मेरे चरण पलोटने लगती है.

आज तो उनमेंसे एकभी बात नहीं, यह क्या ?' परन्तु वे स्वयं महाज्ञानी और विद्वान् होनेसे द्रौपदीके गुह्यप्रतापको जानते थे; इससे वे मनहीमन समझकर उठगये. तब तो महारानी द्रौपदी पलंगपर सोगई और महाराजाको अपने पांव दाबनेकी आज्ञा की. बिना कुछ कहे सुने महाराजा युधिष्ठिर द्रौपदीके चरण चापने लगे. तब द्रौपदीने कहा कि "महलके सब खिड़की द्वार खोल दीजिये तथा चिक पड़दे हटा दीजिये !" तुरंत ऐसा करके धर्मराज फिर पांव दबानेको बैठगये. इतनेमें महाराजके छोटे भ्राता भीमसेन बाहरसे आये और यह सब विपरीतता देखकर दंग होगये. भीमसेन एक ओर हटकर मनही मन कहनेलगे-'अरे यह क्या ? आज धर्मराज देवी द्रौपदी अपनी स्त्रीकी पगचप्पी करते हैं ! क्या इनको बुद्धिभ्रम होगया है या पागल होगये हैं ? क्या आज इनमें अधर्मका प्रवेश होगया है ? अरे ! यह तो बड़े दुःखकी बात है, क्योंकि जब इस सतीके साथ मेरे रहनेकी वारी आवेगी तब मुझकोभी ऐसाही करना पड़ेगा. अरे रे ! एक तो पांव दबाना और सोभी स्त्रीके ! यह काम मुझसे कैसे होगा ? मैं तो कदापि ऐसा नहीं करूंगा. भीमके हाथ तो रणमें लड़नेवाले हैं वे क्या इस स्त्रीकी चरणचप्पी करेंगे ? परन्तु धर्मराजने जो प्रथा चलाई है उसको भी मैं कैसे तोड़ सकूंगा ? अब मुझे क्या करना चाहिये ? और इस बातका मर्म किसे कहना चाहिये ? ' ऐसा सोच विचार करके भीमसेनने श्रीकृष्णके पास जानेका निश्चय किया. जब रात होगई तब वे कृष्णभगवानके डेरेपर गये. पहले द्वारपालद्वारा सूचना कराकर फिर भीतर गये. श्रीकृष्णजी नित्यकृत्यसे निपटकर एक सुन्दर आसनपर विराजमान थे. भीमने उनसे मिलकर धर्मराज तथा द्रौपदीके संबंधका सब वृत्तान्त आदिसे अन्ततक निवेदन किया, तथा प्रार्थनापूर्वक कहा-" महाराज ! आप कृपा करके धर्मराजको समझाइये कि जिससे अभीसे ही यह कुटेव दूर होजाय. धर्मराज केवल आपकाही कहना मानेंगे." यत्किंचित्भी विस्मयता दर्शाये विना यादवेश्वरने कहा-" भीमसेन ! मैं इस बातके बीचमें नहीं पड़ता और धर्मराजकोभी इस विषयमें कुछभी नहीं कह सकता; क्योंकि प्रेम ऐसाही होता है. किसी समय तुमकोभी ऐसा ही करना होगा, अर्थात् द्रौपदीके चरण दाबना होगा." भीमसेनने कहा-" प्रभु ! तो क्या स्त्री रूपवती हो तो पुरुषको उसके कपड़े धोना या पगचप्पी करना चाहिये ?

ऐसी स्त्री किस कामकी ? जिस वस्तुको सुखके निमित्त ग्रहण किया जावे यदि उसीसे कोई दूषण लगता हो तो फिर वह किस कामकी ? ऐसा सेवक किस कामका कि जो अपने स्वामीको खरारूढ करावे, अर्थात् गधेपर बिठावे और लज्जित करे ? महाराज ! स्वादमें और देखनेमें चाहे अमृतके तुल्य हो परन्तु यदि परिणाममें धर्मसे अथवा शरीरसे रहित करनेवाला (भ्रष्ट करे अथवा मृत्यु लावे ऐसा) हो तो सुज्ञ पुरुष ऐसा भोजन कदापि नहीं कर सकता. तब स्त्री जो खासकरके पुरुषकी परिचर्याके लियेही सृजीगई है उसकी क्या पति सेवा करे ? ”

इस प्रकार भीमसेनने बहुतेरी बिनती की; परन्तु भगवानने तो केवल यही उत्तर दिया कि “ भीम ! इस बातको छेडनेमें कुछ सार नहीं, अतः मनमें ही समझके चुप बैठ, और जैसे धर्म करें वैसेही तू भी किये जा. मैं इस बातमें धर्मको कुछ भी कहसकूं वा समझा सकूं ऐसा नहीं होगा!” इस प्रत्युत्तरसे समाधान न होनेसे भीमसेन पछताता हुआ वहांसे पीछा लौटा. परन्तु उस दिनसे उसके मनमें इस बातकी बड़ी खटक बैठगई. जब २ उसको यह बात याद आजावे तब २ वह बड़ा उदास होजावे और उसको बिलकुल चैन नहीं पड़े. दिन प्रतिदिन उसके दिलमें इस बातने बड़ा जमाव जमादिया जिससे अन्नपानादिक परसेभी उसको अरुचि होगई और शरीरभी सूखने लगा. इसी प्रकार चिन्ताही चिन्तामें बहुत दिन बीत गये. उसका शरीर बहुतही दुर्बल होगया देखा तो एक दिन कुंती माताने पूछा–“ बेटा भीम ! तेरे शरीरकी ऐसी दशा कैसी होगई ? क्या तेरे खाने-पीनेका बराबर प्रबन्ध नहीं रहता ? क्या तुझको किसीसे भय होने लगा है ? नहीं, ऐसा तो नहीं हो सकता. क्योंकि तू तो बड़ा पराक्रमी है. ” तब भीमसेनने कहा–“ माता ! मुझको एक प्रकारका रोग होगया है उससे मेरे देहकी ऐसी दुर्दशा होगई है; इस रोगकी दवा श्रीकृष्णजीके पास है परन्तु वे मुझको नहीं देते हैं, सो आप उनको कुछ कहें तो अच्छा हो ! ” तुरन्त कुंतीने श्रीकृष्णके पास जाकर बिनती की. भगवानने कहा–– “फूफी (फुआ) ऐसी छोटीसी बातके लिये आपने इतना कष्ट क्यों उठाया ? ठीक है, आजही अमावास और शनिवार है सो मैं उसको औषधि दूंगा. रातको भीमको मेरे पास भेजना. ”

कुंती माताके कहनेसे रात पड़ी तब भीम श्रीकृष्णके पास गया. भगवानने कहा–"भीमसेन! मैं जहां कहूं वहां तुम जाओगे?" भीमने कहा:–"हां; आप जो आज्ञा करेंगे वैसा करनेके लिये यह दास तत्पर है." श्रीकृष्णने कहा–"उत्तर दिशाको जाना तो नगरसे बाहर कुछ दूरपर एक अश्वत्थ वृक्ष दिखाई देगा, उसपर चढ़कर तुम छिपकर बैठ-जाना, और वहां जो कुछ हो उसे छिपे २ देखते रहना. परन्तु ध्यान रखना वहां बड़ा भय है. तत्काल भीमसेन अस्त्रशस्त्रसे सुसज्जित होकर उस पीपलके पास गया. वहां व्याघ्र सिंह इत्यादि भयंकर पशु तथा भूत, पिशाच, डाकिनी, वेताल इत्यादि निशाचर नानाप्रकारके डरावने शब्द कर रहे थे; उनको सुनकर चाहे जैसे वीर पुरुषका भी कलेजा कांपने लगता था; घोर अँधियारी रात थी और गंगाजीका प्रवाह खलखलाहट कर बह रहा था. ऐसे वैसेका तो वहां शरीरही ठंढा पड़जाय, परन्तु भीमसेन जैसे वीरपुरुषको उन सबका क्या भय हो सकता था? वह तो वहां होते हुए अनेक कौतुकोंकी बिलकुल परवाह न करके झटपट पीपल वृक्षपर चढ़गया, और गहरे घने पत्तोंकी ओटमें एक मजबूत डालपर जा बैठा. लगभग डेढ़ प्रहर रात बीतगई होगी, तब एकसे एक बढकर अद्भुत चमत्कार भीमसेनको दिखाई देने लगे.

सबसे पहले तो एक जगमगाता हुआ दिव्य प्रकाश दिखाई दिया. थोड़ीदेरमें एक कान्तिमान् और बलवान् पुरुष, पवनसमान वेगसे, उस प्रकाशित सपाट मैदानमें आकर जगह साफ करने लगा. वह भीमसेनका पिता–वायु था. तिसपीछे दिव्य शिल्पी विश्वकर्माने आकर देखते २ एक अतिसुन्दर और अनेक प्रकारकी मणियों तथा रत्नोंसे जटित स्तम्भ-वाला विशाल मंडप रचदिया. उसके मध्यमें अपनी जगमगाहटसे आंखोंको चौंधियाता हुआ बड़ा चमकदार सिंहासन बिछाया गया. उसके आस पास और भी कई एक छोटे नानाप्रकारके सुन्दर आसन बिछाये गये. मंडपके तैयार होजानेपर रवि सोमादि नवग्रह, हाथोंमें छड़ियां लियेहुए, द्वारपाल होकर मंडपके द्वार पर आ खड़े हुए. तब एकादश रुद्र, दशों दिक्पाल, तथा इंद्रादिक तेतीस कोटि देवता भी वहां आये, उनको नारद मुनिने यथायोग्य आसनोंपर बिठाया. तब छप्पनकोटी यादवोंको लेकर श्रीकृष्ण परमात्माभी वहां आपहुँचे. उनके साथ पांचों

पांडव भी आये, उनमें अपने समानही दूसरे भीमको देखकर, अश्वत्थपर बैठे हुए भीमसेनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि,—"अरे ये पांडव कौन, और भीम यह कि मैं? दोनोंमेंसे असली कौन?" इसी अवसरपर अपने गणोंको साथ लियेहुए शंकर आये. उनके अन्यान्य गणोंको बाहर रखकर मुख्य २ गणोंसहित महादेवको नारदजीने मंडपमें विराजमान किया. तदनन्तर विष्णु और ब्रह्मदेव आये. इनको उस उच्च सिंहासनके दोनों ओर दाहिने बांये आसनोंपर बिठाया. इसप्रकार धीरे २ सारा त्रैलोक्य (त्रैलोक्यमें कारवार करनेवाले) आया और सारा मण्डप खचाखच भरगया, परन्तु मुख्य सिंहासन तो अबतक खाली पड़ा था. यह देखकर भीमसेनने मनमें सोचा कि—"इस सारी देवसभाका मुख्य अधिपति तो अभीतक नहीं आया. न जाने वह कौन होगा? ब्रह्मा, विष्णु और शंकर ये त्रिगुणात्मक ईश्वर भी उस सिंहासनके नीचे बैठे हैं तो इनसे भी श्रेष्ठ और कोई है?" ऐसा विचारकर रहा था कि इतनेमें ही एक महाभव्य स्वरूपवाली स्त्री छमछम करती आती हुई दूरसे देखपड़ी. उसने दिव्य वस्त्रालंकार धारण कर रक्खे थे, उसके अंगकी द्युतिके आगे सभामंडपमें स्थित समस्त देवगण छविहीन होगये थे; उसके केश खुले हुए थे और ठेठ पावकी एंड़ीतक लटक रहे थे. ललाटमें कुंकुमकी भव्य आड़ कढ़ी हुई थी, और हाथमें त्रिशूल तथा पाश धारण किये हुए थी. उसे मंडपके द्वारके निकट आतेही सभाके सब देवगण एकसाथ उठ खड़े हुए और 'महामाया' आदिशक्तिकी जय बोलनेलगे. वह महादेवी मंडपमें जाकर उस परम दिव्य सिंहासन पर जा विराजमान हुई. अनन्तर उसकी आज्ञासे सब देवतागण बैठ गये. भीमसेनकी दृष्टि उस महामायाके दिव्य तेजसे चकचौंधी होगई जिससे उस सुन्दर मूर्तिपर तुरन्त नहीं ठहरसकी, परंतु बड़ी देरतक ध्यानपूर्वक—दृष्टि जमाकर—ताककर देखनेसे जानपड़ा कि—"अरे! यह तो देवी द्रौपदी! क्या उसका ऐसा प्रताप है कि जिसको ब्रह्मा विष्णु आदिकभी नमन करते हैं? अहो! द्रौपदी तो साक्षात् आदिमाया है! भला, देखना चाहिये अब आगे क्या होता है?"

पहले ब्रह्मदेव उठे और हाथ जोड़कर विनती करने लगे तब उससे महामायाने पूछा—"कमलभू ब्रह्मदेव! सृष्टिक्रम बराबर वर्त्ता चलाजाता है?" "हां, माता! आपकी आज्ञाके अनुसार दास निरन्तर वर्त्तरहा है." ऐसा

कह कर आज्ञा होनेसे ब्रह्मदेव अपने स्थानपर बैठ गये. तब महादेवीने विष्णुको पूछा—" हे चक्रपाणि ! तुम्हारे विश्वंभर पदके अनुसार तुम सृष्टिका यथार्थ पालन करते हो ? हे शूलपाणि ! (शंकर !) नियमपूर्वक सृष्टिके संहारकार्यको चलाते जाते हो ? " दोनोंने नमनपूर्वक विनती की कि "हे माता ! आपकी आज्ञानुसार सब करते जाते हैं." इत्यादि प्रश्नोत्तर होनेके पीछे नारदने उनको बैठ जानेको कहा. तिस पीछे इन्द्रादिक देवों तथा दिक्पालों आदि सबसेही उनके नियमित कामोंके लिये पूछताछ की. सबसे पीछे यमराजने आकर नमस्कार किया और हाथ जोड़कर खड़े रहे. उन्होंने रुधिरसे भरे हुए छः घड़े और एक खाली घड़ा सामने धरकर कहा—" हे जगदंबे ! ये छः कुंभ सृष्टिके आरंभसे लेकर यह कल्प आरंभ हुआ तबसे अभीतक, महिषासुरादि अनेक दैत्यों और योद्धाओंके रक्तसे भरेहुए हैं, परन्तु यह सातवां घड़ा खाली है; वह अब होनेवाले कौरव पांडवोंके युद्धसमयमें भरनेवाला है. " यह सुनकर देवी द्रौपदीने पूछा—" यह किसके रक्तसे भरनेवाला है ? इन दोनों पक्षकी सेनाओंमें जिसके प्रतापी रक्तसे यह घट परिपूर्ण हो ऐसा योद्धा कौन है ? " तब यमराजने कहा—"हे जननी ! भीम योद्धा अपने बलका बड़ा अभिमान करता है, उसीके रक्तसे यह घट भरा जायगा. यदि वह यहां आजाय तो मैं इसीक्षण उसके रुधिरसे इस सातवें घडेको भी भरदूं ! "इतनेमें नारदजी बोल उठे—" अरे यमराज ! वह भीम तो इसी पीपलपर छिपकर बैठा है, अतः अपने दूतोंको भेजकर पकड़वा मँगाओ !" भीमसेन जो यह सब लीला देख रहा था सो अब थर र कांपने लगा. उसने जाना कि ' हा ! आज तो मृत्यु आ पहुँची. पर क्या यमदूत मुझे लेने आवेंगे ? मुझको तो ऐसेभी मरना है और वैसेभी मरना है. तब फिर यमदूतोंके साथ जानेसे तो यही अच्छा कि मैं स्वयंही अपनेआप जाकर द्रौपदी देवीके चरणस्पर्श क्यों न करूं ? यह मेरी स्त्री नहीं, किन्तु देवी है, साक्षात् महामाया आदिशक्ति ह, तो उसकी चरणचप्पीही नहीं बल्कि वह जो कहे सो सब सेवा करनेको मैं तयार हूं.' ऐसा दृढ़ निश्चय करके पीपलके वृक्षपरसे भीमसेन यकायक द्रौपदीदेवीको नमन करनेके लिये घड़ड़धम करता नीचे कूद पड़ा. परन्तु इतनेमें तो वहां सभाभी नहीं और देवी भी नहीं. सब माया जहांकी तहां अदृश्य होगई. '

यह देखकर भीमसेनको बड़ा भय व्याप गया, उसके शरीरपर प्रस्वेदकी धारा बहने लगी, अन्तःकरण धकधक धड़कने लगा. कुछ देरमें सचेत हुआ तो वह वहांसे अपना जीव बचाकर भागकर नगरमें श्रीकृष्णके स्थानपर गया और अपनी बीती सब कह सुनाई. श्रीकृष्ण उसको धीरज देकर कहने लगे–" हे वृकोदर ! मैं परमात्मा इस जगत्में क्षर* और अक्षर † इन दोनों पुरुषोंसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम हूं, और जिसको तूने देखा वह महाशक्ति मेरी माया है. वह मेरे अधीन है, परन्तु मैं किसीके अधीन नहीं. मेरी इस मायाके पाशसे ही सारा जगत् घिरा हुआ है, अर्थात् मेरी प्रेरी हुई वह माया सब कुछ करती है. फिर सभामें जो २ तूने देखा वह सब मेरी मायाके तंत्रमें है, इस कारण मेरी कृपाके विना कोई इसको जीत नहीं सकता. यह कृष्णा (द्रौपदीका दूसरा नाम कृष्णा था) और मैं श्रीकृष्णके नामसे जगतमें प्रकट हूं. इसलिये जब २ द्रौपदीके शरीरमें मेरी मायाका प्रवेश हो तब २ उसको तू अपनी स्त्री न मानकर, उसकी सेवा करना. परन्तु भीम ! ऐसा कुछ नित्य २ नहीं होता. यह तो मैंने अपनी मायाका प्राबल्य तुझे दिखलाया है. " इस भांति श्रीकृष्ण परमात्माने जब ढाढस बँधाया–शान्ति की, तब भीमसेनके मनकी सब शंका, भय तथा अभिमानका निवारण हुआ, और प्रेमपूर्वक श्रीकृष्णको वारंबार नमस्कार करके वह अपने घर गया. हे विशाल ! प्रभुकी माया ऐसी ही है.

३२–माया असंख्यरूपिणी है.

और भी इस मायाके अपार अगणितरूप हैं. महामाया, आदिशक्ति, आदिमाया, जगन्माता इत्यादि नाम उसके अनेक रूपोंका अनुसरण करके ही हैं. इनके सिवाय भी वह असंख्य रूपोंसे जगतमें स्थित है. जैसे मायापति (परमात्मा) रज, तम और सत्त्व, इन गुणोंको धारण करके ब्रह्मा, शिव और विष्णुरूपसे प्रकट हुए हैं वैसे ही मायाभी इन तीनों गुणोंवाली देवी रूपसे तीन स्वरूप धारण करके प्रगट हुई है. वह रजोगुणके प्रभावसे लक्ष्मी है. जहां लक्ष्मी होती है वहां प्रत्यक्ष रजोगुणका राज्य व्याप्त है, अर्थात् वहां सर्वत्र राजसी वैभव प्रसरित रहता है. तमोगुणसे महाकाली है.

* क्षर–सर्वभूत प्राणीमात्र. † अक्षर–ईश्वर.

कालिका देवी महातमोगुणवाली होनेसे उसने अनेक दुष्ट राक्षसोंका संहार किया है और मृत्युकी अधिष्ठाता देवी वही है अर्थात् तमोगुणद्वारा संस्कारका संहार करनेका गुण उसमें प्रत्यक्ष है. सत्वगुणसे सरस्वती है. सरस्वती अर्थात् वाणी अथवा विद्या. जो विद्याका आश्रय करते हैं वे मनुष्य अन्यान्य मनुष्योंसे बढकर-विशेषतर सत्त्वगुणी होते हैं. और विद्यासे ही सत्वगुणके समुद्ररूप परमात्माका ज्ञान होता है. * यह त्रिगुणा माया जो महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती रूपवाली है वह प्रत्येक स्वरूपके अंशरूपी और असंख्य रूपोंवाली है; उन २ स्वरूपोंका वर्णन, उन २ रूपोंकी उपासना करने विषयक खास २ ग्रंथोंमें भलीभांति किया-गया है. अब साधारण दृष्टिसे देखाजाय तो प्रकट होता है कि सरस्वती वाग्देवी एकही पुरुष वा मनुष्यमें अनेकरूपसे वास करती है, तो फिर अनेक पुरुषोंमें अनेकरूपसे हो इसमें क्या आश्चर्य है ? जैसे कि किसीको एकही गिरासे पूछा जाय कि "कहो भाई ! अच्छे तो हो ?" तब वह इसके उत्तरमें कहेगा "हां जी, आपकी कृपासे आनन्द है." दूसरेको वही प्रश्न पूछनेसे वह कहेगा कि-"क्यों, अच्छे नहीं तो क्या बीमार करनेका तेरा विचार है ?" इसप्रकार एकही वाणीके भिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं. जब कोई लड़की मिले और उसको पूछा जाय कि-"क्यों बेटी ! अथवा क्यों बहिन ! अच्छी तो है न ?" परन्तु यदि उसीके साथ विवाह होजाय तो उसको बेटी वा बहिन नहीं कह सकते, बल्कि उस समय भिन्नही वाणीका उपयोग करना होगा. विवाह समय इसी वाणीसे गीत गाये जाते हैं, और मरणसमय इसी वाणीसे 'अरे बाप रे ! अरी मां ! हे भाई!' इसप्रकार चिल्लाते हैं. एकही वाणीसे कहा जायगा कि यह संसार असार है, इसलिये परमात्माका सेवन करकेही जीवनको सफल करलेना चाहिये. दूसरी वाणी सुनी जायगी कि—'जो कुछ है सो यहीं है. परलोक कौन

* काशीनिवासी स्वामी श्रीकृष्णानन्द सरस्वती स्वर्गस्थ मनसुखरामजीके यहां उतरे थे उस समय स्वामीजीने कहा था कि—' विद्याका आश्रयी सत्त्वगुणी ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है. परा विद्या अर्थात् व्यवहारकुशल दुनियादारीमें चतुर मनुष्य विद्यासे भूषित हो तोभी सत्वगुणी भी होता है; रजोगुणीभी होता है, और तमोगुणी भी होता है. परन्तु केवल अपरा विद्यासे भूषितही सत्वगुणी होता है. विद्यासे भूषित जान पड़ते हुए अनेक मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी, मोहान्ध और मदान्ध देखेजाते हैं. "

देख आया है. बस, खाना पीना और मजा करना यही जीवनका सार्थक्य है.' इसप्रकार असंख्यरूपवाली सरस्वती है. ऐसेही महालक्ष्मी भी असंख्यरूपवाली है. विविध भांतिके शृंगार, द्रव्य, मौज, शौक, बाग, बगीचे, महल, झोपड़े, हाथी, घोड़े इत्यादिरूपसे वह जानीजाती है. अनेकरूपसे वह भोगी जाती है. सत्पुरुष इस महालक्ष्मीका सेवन परार्थमें और परमार्थमें करते हैं, असत् पुरुष विषयसेवन, मद्यपान, तथा द्यूतादिकमें खर्चते हैं; महाकाली भी अनेक प्रकारकी व्याधियां, दुःख, क्लेश, शस्त्रास्त्र, भय शोकादि वृत्तियां इत्यादिक देहको, मनको क्षीण करनेवाले पदार्थोंमें अनेकरूपसे व्याप्त हैं ऐसे मायाके अनेक रंगरूप हैं.

३४–सबभांति देव (परमेश्वर) एकही है.

यज्ञभू कहता है–हे विशाल! यहां मुझे यह शंका हुई कि, जब सर्वेश्वर (सबके ईश्वर–सबके नियन्ता श्रीकृष्णादि) और उनकी आज्ञावशवर्तिनी माया आदिशक्ति है, तथा उस महामायाके तंत्रमें यह सारा जगत् ग्रथित है, तब पुराणोंमें अर्थात् जिस २ देवताके विषयमें जो पुराण है उसमें उसी देवता (ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, शक्ति, सूर्य, गणपति, इत्यादिक) को सबसे बढ़कर बतलाया है और उससे परे—उसके सिवाय अन्य कोई है ही नहीं ऐसा कथन किया है. शिवपुराणमें शिवको सबसे श्रेष्ठ, अनादि, जगत्कर्ता कहा है; विष्णुपुराणमें विष्णुको, देवीपुराणमें देवीको, और गणेशपुराणमें गणपतिको सबसे श्रेष्ठ अनादि इत्यादि कहा है. यह क्या मिथ्या है ? वस्तुतः ऐसा नहीं है. पुराणकर्त्ताओंका कथन सत्यही है. कारण— 'एको देवः केवलो निर्गुणश्च' देव तो सदा सर्वदा सर्वत्र एकही है परन्तु केवल उपाधिभेदसे उसके जुदे २ रूप प्रतीत होते हैं. ईश्वर एकही है, ऐसा भली भांति जानकरभी पुराणकर्त्ता–शास्त्रकर्त्ताओंने जुदे २ देवताओंकी उपासना करनेका केवल इसीलिये कथन किया है कि जगत्में सब मनुष्य एक ही समान प्रकृतिवाले नहीं होते. मनुष्यमात्रकी रुचि भिन्न २ है. किसीको किसीपर और किसीको किसीपर रुचि होती है, इसकारण उपासना करनेवाले अपनी २ रुचिके अनुसार चाहे जिस देवताकी उपासना करें और पूर्ण भक्ति करके उसका साक्षात्कार प्राप्त करें तो फिर उसी देवताके

अनुग्रहसे, सर्वत्र देव (ईश्वर)एकही है, ऐसा स्पष्ट देखपडेगाः तब उपासक ज्ञानी होकर निर्गुण ब्रह्मको भजेगा.

३५ केवल मार्ग भिन्न २ हैं.

समस्त शास्त्रों, पुराणों और वेदोंका लक्ष्य तो एकही है. सबने जो २ कहा है सो सब केवल एक परमात्माकी प्राप्तिके लियेही कहा है; परन्तु उन्होंने भिन्न २ रुचिके मनुष्योंको अनुकूल होनेके लिये भिन्न २ मार्ग प्रदर्शित किये हैं. यथा—इस भारतखंडमें अवंतिका नगरी (उज्जैन) एक मोक्षपुरी है. उसकी यात्राके लिये सारे भारतवासी आर्यजन मात्र जाते हैं. परन्तु पश्चिम दिशासे वहां पहुँचनेवाले भिन्न २ मार्गसे आकर पश्चिम द्वारसे नगरमें पैठेंगे; पूर्वसे आनेवाले लोग पूर्वदिशाके द्वारसे भीतर पहुँचेंगे; ऐसेही उत्तरवाले उत्तरसे और दक्षिणवाले दक्षिणसे. उसी प्रकार दशोंदिशाओं और विदिशाओंसे आनेवाले यात्री पृथक् मार्गसे ही आवेंगे. उन सबके लिये अवंतिका जानेका एकही मार्ग नहीं है और ऐसा हो भी नहीं सकता. क्योंकि पूर्वदिशाके रहनेवाले पश्चिम दिशा होकर क्यों जावें? यदि ऐसा करें तो उनको चौगुना मार्ग चलकर व्यर्थ कष्ट उठाना पड़े, यही लाभ हो वा और कुछ? इसीलिये जिसकी जिधर रुचि हो और जो सुगम दिखाई दे उसी मार्गसे ईश्वरप्राप्तिके लिये मनुष्य प्राणीको यत्न करना चाहिये. परन्तु 'यह अच्छा कि वह अच्छा, यह सच्चा कि वह सच्चा,' ऐसी शंका करनेवाला मनुष्य सदा वृथा गोते खाया करता है.

३६-देव (परमेश्वर) एकही है.

ब्रह्म अद्वैत है, एक है और वह अखंड सर्वत्र परिपूर्ण है. अनादिसे भी वह ऐसाही है. अर्थात् निरन्तर है, और निश्चय है. उससे ही पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ, वायुसे तेज (अग्नि, सूर्य आदिकमें जो है वह) उत्पन्न हुआ, और तेजसे जल तथा जलसे पृथ्वी हुई. इस पृथ्वीसे औषधि उत्पन्न होती हैं, उसीमें अन्न पकता है, अन्नसे वीर्य उत्पन्न होता है, और उससे पुरुष (सृष्टि) उत्पन्न होता है. इस प्रकार सारा जगत् परंपरासे उत्पन्न हुआ है और फिर कल्पकी समाप्तिके समय ब्रह्ममेंही लयभी होजाता है. जिस भांति पृथ्वीपर उत्पन्न हुई सृष्टिमात्र कालसे (मरकर, जलकर, दबकर, टूटकर, घिसकर मिट्टी होजाती है)

पृथ्वीमें पृथ्वी; जलमें जल, तेजमें तेज, वायुमें वायु, और आकाशमें आकाश; इस रीतिसे पांचों तत्त्व पीछे परमात्मामें ही लीन होजाते हैं. ऐसेही परमाणुसे लेकर ईश्वर पर्यन्त सारा जगत् ब्रह्मसे ही प्रकट होता है और ब्रह्ममें ही समाजाता है. इसपरसे यही निश्चय किया कि (सृष्टिकी आदिमें, अन्तमें तथा मध्यमें निरन्तर) अखंड ब्रह्मही व्याप्त है और वह देवतामें देवता, पशुमें पशु, जड़में जड़, और चैतन्यमें चैतन्यरूपसे व्यापक होरहा है. वह एक है, अद्वैत है, और परम है. उससे परे कुछभी नहीं है.

३७—मथन.

जब परमात्मा एक, अद्वैत, और सर्वस्वरूप है तब वह दिखाई क्यों नहीं देता ? इसके उत्तरमें जानना चाहिये कि काष्ठमें अग्नि सर्वत्र व्याप्त होरहा है, तबभी वह दिखाई क्यों नहीं देता ? परन्तु जब दो काष्ठ परस्पर खूब रगड़ खाते हैं तब तुरन्त उनमेंसे अग्नि प्रकटता है. ऐसेही दूधमें सर्वथा घी समाया हुआ है, परन्तु वह ऊपरसे नहीं दिखाई देता. किन्तु उसको जमाकर भली भांति मथन करने (बिलोने) से घृत उत्पन्न होता है. ऐसेही परमात्मा सर्वत्र व्यापक अदृश्य है. वह गुरु, सत्संग, सच्छास्त्र, सद्ज्ञान, भक्ति और विचार इत्यादि द्वारा मथन करनेसे दर्शन देता है, और जब आत्मस्वरूपका ज्ञान होता है, तब सर्वत्र ब्रह्मही ब्रह्म दिखाई देता है.

३८—जड और चैतन्य.

जब परमात्मा काष्ठमें अग्नि इस न्यायके अनुसार व्यापक है तब तो काष्ठमेंसे अग्निके निकल जानेपर वह अग्निरहित होजायगा तब जड़ और चैतन्यके रूपसे आत्मा द्वैत कहा जासकेगा ऐसी शंका होना स्वाभाविक है, किन्तु ऐसा नहीं है. अग्निके प्रकट होनेपर काष्ठ रहही नहीं सकता. क्योंकि प्रकट हुआ अग्नि उसको तत्काल जलाकर भस्म कर देता है. दूधमेंसे घी होगया तब दूध कहां रहा ! इसी भांति जगत्में जो कुछभी दृश्यादृश्य * वस्तु है वह सब जड़ है; और उस जड़का अस्तित्व, चैतन्य अथवा परसत्य परमात्माके अधिष्ठानसे है. जो चैतन्य न हो तो जड़का अस्तित्व ही नहीं होगा. चैतन्यके आधारसेही जड़ पदार्थ भी भासते हैं.

इसभांति चैतन्यमेंसे जड़ प्रकट हुआ है और चैतन्यमें ही वह पीछा लय होजाता है. अतएव चैतन्य और जड़में द्वैतपन* नहीं. देह जड़ है, वह आत्मरूप चैतन्यसे प्रकाशमान रहता है, परन्तु उसमेंसे जब चैतन्य-रूप आत्मा बाहर निकल जाय, तब कदापि वैसा नहीं रह सकता; अर्थात् चाहे जिस रीतिसे हो, परन्तु वह लय होही जायगा और अन्तमें चैत-न्यमेंही आ मिलेगा.

३९– सगुण निर्गुण.

तब तो यह चैतन्य केवल निर्गुण और निराकार होना चाहिये; क्योंकि निर्गुण बिना सर्वत्र व्यापक इत्यादि विशेषण संभव नहीं होसकते, और उस निर्गुणको अनेक शास्त्र सगुणरूपसे वर्णन करते हैं सो कैसे ? प्रथम तो मेरे गुरुदेवनेही मुझको परमात्मा मुरलीधरके सगुण स्वरूपकी उपासना करनेका उपदेश किया था और उस समय उन्होंने यह भी कहा था कि परमात्मा जगद्रूप होनेसे सगुण है और परब्रह्मरूपसे निर्गुण है. † उस परब्रह्मका स्थान किसी और जगह नहीं है, अर्थात् वह इस जगत्से व्यतिरिक्त नहीं है, परन्तु उसीमें तत्त्वरूपसे रहता है; और जब जगत्का लय होता है तब जो कुछ शेष रहता है वही परब्रह्म है. एक घरमें, कुलमें, ग्राममें, प्रान्तमें तथा देशमें जैसे उनका पालक वा मुखिया (राजा आदि) होता है, वैसेही परब्रह्म भी स्वयं ही जगद्रूप होकर उसका पालक और नियन्ता (नियमसे चलानेवाला, आज्ञामें रखनेवाला) रूपसे सारे जगत्से सर्वोत्कृष्ट ऐसा एक अपना नित्यमुक्त + स्वरूप निर्माण करता है. यह परमात्मा सगुणरूप है. अतएव सगुण–निर्गुण–रूपमें भेद मानना, यह केवल वितंडामात्र है. हा, यह बात सही है कि, सगुण उपासना, निर्गुणकी अपेक्षा सरल और प्रथमसेही आनन्ददायक है, और अन्ततक उस उपासनामें मग्न होनेसे जैसे भ्रमरीके गुंजारसे कीट किसी दिन भ्रमरीरूप होजाता है

* जुदापन. † रज, तम और सत्त्वादि गुणोंकरके रहित जो स्वरूप सो निर्गुण, और उन गुणोंका जिसमें सम्भव है वह सगुण स्वरूप. जब गुणोंसे रहित होता है तब उसका शरीर, रूप, आकारादि कुछ नहीं होता; और गुणोंसे सहित होता है तब दिव्यादि शरीर, प्रकृति आदि सब कुछ है. + निरन्तर मुक्त जन, जिसको संसार जगत् आदिका कभी कोई बन्धन नहीं, जिसको जन्म–मरणादि दुःख–शोकादि कुछभी नहीं, किन्तु जो केवल परमानन्द स्वरूप है.

वैसे ही, सगुण ब्रह्मकी उपासनासे निर्गुण परब्रह्मको पूर्णतया पाता है, तथा परब्रह्ममें ही जीव एकतार होजाता है, वह और सबको भूलजाता है; और वही रूप होजाता है.

४०–अक्षर.

सगुण उपासना सरल और निर्गुण ब्रह्मके ज्ञानमें कारण–सहायभूत इसीके लिये है कि जैसे अक्षर (क, ख, ग, इत्यादि अथवा शब्द कि जो इन अक्षरोंद्वारा समझमें आसकते हैं) केवल निर्गुण निराकार है और ये अक्षर 'क' अथवा 'ख' मुखसे बोले जाते हैं, परन्तु उनका स्वरूप कैसा है सो बतानेमें कोईभी समर्थ नहीं, अर्थात् वे अरूपी हैं, परन्तु व्यवहारमें उन अक्षरोंको पहँचाननेके लिये कोईएक आकार (स्वरूप) निर्माण करना पड़ता है; जो ऐसा हो वही 'क' कहा जाता. अब ऐसा जाननेसे ज्ञानी तथा अज्ञानी, वृद्ध और बालक सबकोही, यद्यपि वह निराकार है सो भी सरलतासे संपूर्ण ज्ञान साकारपनेसे होता है. इसी भांति सगुण ब्रह्मकी उपासना करनेसे परमात्माके निर्गुण स्वरूपका ज्ञानभी सहजमें होता है. अक्षर भी ब्रह्मही है, और वह 'अक्षर ब्रह्म' इस नामसे शास्त्रोंमें प्रतिपादित किया गया है. इसपरसे वह परब्रह्म कोई और तथा अक्षर ब्रह्म कोई भिन्न है ऐसा नहीं समझलेना. अक्षर अर्थात् जिसका नाश न हो वह, अर्थात् अविनाशी और जो अविनाशी है वही ब्रह्म है. दूसरी रीतिसे, जिसके द्वारा प्राणीजन कहसकते हैं, समझासकते हैं, तथा प्रमाणित कर सकते हैं ऐसा जो शब्द है उसका जिसके द्वारा ज्ञान होता है ऐसा जो है सोही अक्षरब्रह्म. शब्दज्ञान देनेवाला अक्षरब्रह्म किसप्रकारसे? यहां दृष्टान्त है. जैसे किसी जगह अपने किसी मित्रके घर कोई बड़ा उत्सव–विवाह समारंभ होनेवाला है, इससे किसी मनुष्यको उस मित्रके यहांसे एक निमन्त्रणपत्रिका आई कि–"स्वस्ति श्री–इत्यादि. हमारे यहां हमारे पुत्र चिरंजीव कृष्णजीवनका विवाह माघ सुदि ५ को नियत हुआ है, इस अवसरपर हमारे सर्व सगे सम्बन्धी देशान्तरसे आनेवाले हैं, सो आपभी कृपापूर्वक अवश्य पधारकर मंडपकी शोभा बढ़ावेंगे, ऐसी आशा है." अब यदि इस निमन्त्रणपत्रीको वह ऊपरसे नीचेतक वारंवार पढ़ाकरे तोभी उसमें उसको मंडपसमारंभ, सगे सम्बन्धी आदि किसीकाभी दर्शन नहीं होगा; परन्तु उन अक्षरोंको बांचनेसे, जहांसे वह पत्रिका आई थी

वहां उसने लक्षणा की कि "अमुक जगह यह सब कार्य होनेवाला है, इस-लिये मुझकोभी वहां जाना चाहिये. नहीं जानेसे उसको बुरा लगेगा." तिसपीछे वहां जानेसेही सब विषय प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं. उसी भांति अक्षरब्रह्मके ज्ञानमें शब्द प्रमाणरूप है. अक्षरोंसे शब्दोंका और शब्दोंसे अक्षर-ब्रह्मका, ऐसा उत्तरोत्तर ज्ञान होता है.

४१--प्रतिमापूजन.

जिसरीतिसे अक्षरब्रह्मका स्वरूप कल्पित अक्षरोंपरसे समझाजाता है, उसी भांति भगवान्‌के स्वरूपका भी, प्रतिमापरसे ज्ञान होता है. अक्षरका तो असलमें कोई स्वरूपही नहीं, परन्तु परमात्मा तो सारे जगत्‌में अधि-ष्ठाता होकर अपना नित्यमुक्त और सर्वसेव्यरूप धारण कररहा है. उस स्वरूपका शास्त्रोंमें वर्णन कियागया है. उस स्वरूपको प्राप्त होनेके लिये प्रतिमाकी कल्पना करके उसका पूजन करे तो परमात्मा उस पूजनको अंगीकार करता है. भगवान्‌की प्रतिमाको लक्ष्य करके नित्य २ ध्यान करतेसमय जब मन-चित्तवृत्ति भगवान्‌के स्वरूपविषे दृढ़ होजाय, उसकी दृष्टिमें अन्य कुछभी नहीं दिखाई दे, तब प्रतिमाकी कोई आवश्यकता नहीं रहती. मनोनाश होकर, सर्व इन्द्रियां भगवद्रूप होजानेके पीछे, उस चित्तवृत्तिका भी शनैः २ नाश करके, ध्यानात्मा पुरुष केवल परमात्मामयही होजाता है. इसलिये प्रतिमा भगवान्‌के सत्य स्वरूपका ज्ञान संपादन कर-नेके लिये प्रथम साधन है. चंचल चित्तवृत्तिकी दृष्टि स्थिरही नहीं रहती. प्रतिमापूजन यह भगवत्प्राप्तिका प्रथम पाद है. इस पाद (सोपान) से उत्तरोत्तर विशेष २ सहज २ उन्नत स्थानमें जानेको सशक्त हो सकता है. प्रथमाभ्यासीको विना प्रतिमाके परमात्माके निराकार स्वरूपका एकदम ज्ञान नहीं होसकता. निराकार ज्ञान संपादन करनेके लिये यह एक महान् सोपान है.

४२ द्वैत. *

परमात्माको भिन्न मानना और उससे अपनेको जुदा मानकर उसकी सेवा करना इत्यादि परम द्वैतभाव (जगत् और ईश्वरमें जुदापन) कहा

* द्वि-इत द्वैत (अर्थात् दो और इत अर्थात् ज्ञान.); दो प्रकारका जो ज्ञान है सो द्वैत ज्ञान. वह दोप्रकारका ज्ञान कौनसा कि जो कार्य-कारण रूपसे, नामरूपसे और जीव-

जावेगा, ऐसी शंका कितनेही लोगोंको होगी, परन्तु ऐसी शंका नहीं करना चाहिये. वास्तविक रीतिसे तो हमारे कियेसे द्वैत हो नहीं सकता. परमात्मा जो एक स्वयंप्रकाश, सच्चिदानन्दरूप है वह तो एकही है, परन्तु द्वैत विना आनन्द नहीं आता. इसकारण क्रीड़ा करनेके हेतुसे, उसने स्वयं ही अपनेमेंसे माया प्रकट की, तब विना पूछे द्वैत होगया. पीछे उस मायाने सारा जगत् उत्पन्न किया, परन्तु इस द्वैतको ऐसा नहीं मानलेना कि, जगत् कोई दूसरा ही पदार्थ है और परमात्मा भी उससे भिन्न पदार्थ है. पिता और पुत्र दोनों देखनेमें तो भिन्न २ हैं ही, परन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेसे, पुत्र पिताका अंश (उसके वीर्यसे उत्पन्न हुआ इसकारणसे) ही है इसलिये वे दोनों एकही हुए. स्थूल दृष्टिसे परमात्मा और जगत् दोनों जुदे २ (द्वैत) दिखाई देते हैं, परन्तु वस्तुतः जगत् परमात्मासेही हुआ है इसकारण उससे भिन्न नहीं. परन्तु ऐसा सूक्ष्म विचार हरकिसीका नहीं होता. जगत्की दृष्टि तो स्थूल है, इससे वह एकाएक सूक्ष्म नहीं हो सकती. इसलिये पहले द्वैतभावसे उपासना करते २ जब अत्यन्त प्रेममयी भक्ति होजाती है तब उस प्रेमी जीवका परमात्माके साथ अपने आप अद्वैत भाव होजाता है.

४३ द्वैतवाद.

परन्तु ऐसी स्थूलदृष्टिसे दिखाई पड़ता हुआ जो द्वैत है उसको द्वैताद्वैतही ठहराये रखनेका कोई प्रयत्न करे तो वह मिथ्या कहा जायगा. और ऐसा समझनेवाला कदापि सत्य तत्त्व परमात्माकी प्राप्तिका लाभ नहीं प्राप्त कर सकेगा. इस बातके मिथ्या ममत्वसे मानभंग हो यह दूसरी बात है. इसपर मुझे एक दृष्टान्त याद आया—

किसी समय काशीपुरीमें एक विद्वान् शास्त्री आया. पहले अनेक

—ईश्वरके भेदसे समझाजाता है. द्वैतवादी, ईश्वर और जीवका आश्रय आश्रयीभाव, सेव्य सेवकभाव मानते हैं, परन्तु जन्य-जनकभाव और तादात्म्यभाव नहीं मानते हैं. मोक्षदशामें भी जीव ईश्वराकार नहीं होता, बल्कि स्वरूपमेंही बना रहता है ऐसा कहते और मानते हैं. जैसे सायंकालमें भिन्न २ प्रदेशोंसे चारा पानी लेकर पक्षियोंके झुंड किसी विशाल वृक्षपर बसेरा लेते हैं और शांतिमें रहते हैं, वैसे ही संसारके बन्धनसे मुक्त हुए जीव कल्पवृक्षसमान श्रीभगवान्‌के परब्रह्मस्वरूपमें पक्षियोंके समान निवास करते हैं.

बड़े स्थलोंमें अनेक बड़ी २ सभाएं करके उनमें शास्त्रानुसार शास्त्रार्थ करके अपना द्वैतवाद सिद्ध करदिया था; और बहुतसे विद्वानोंको अपने द्वैत-वादमें सम्मत करके उनसे विजयपत्र प्राप्त करलिये थे. काशीमें भी वह इसी निश्चयसे आया था. उस समय वहां अद्वैतानन्द सरस्वती नामके एक महाज्ञानी और बड़े ब्रह्मनिष्ठ स्वामी निवास करते थे. नगरके बड़े २ प्रसिद्ध विद्वान् भी उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे सेवा किया करते थे. वह विद्वान्भी स्वामीजीके पास गया. उसने उनको कहा— "महाराज ! मैं द्वैतप्रतिपादक हूं और मैंने यह वाद सिद्ध किया है, अतः इस विषयमें मेरे साथ वाद करके या तो आप अपना अद्वैत सिद्ध करदें या मेरे द्वैतमत सिद्धान्तके लिये मुझको अपनी सही (हस्ताक्षर) का विजयपत्र लिख देवें." उसके ऐसे वचन सुनकरके स्वामीजीने जानलिया कि यह कोई विद्याका बोझा उठानेवाला वेदिया ढोर (पशु) है और केवल मिथ्या ममत्वसे देशदेशान्तरोंमें भटकता फिरता है; परन्तु होगा. अपना क्या जाता है ? ऐसा सोचकर स्वामीजीने शास्त्रार्थ करनेको कह-कर सभा इकट्ठी करना ठहराया, और उससे पहले उन्होंने एक लकड़-हारे तथा एक नापित (नाई) को समझा दिया कि, अमुक २ समयमें यहां सभा होनेवाली है, तब तुम दोनों एकेक करके सभामें मेरे पास आना और मैं पूछूं, उसका उत्तर देना. नियमित दिनमें सभा हुई—अनेक बड़े २ प्रतिष्ठित विद्वान् एकत्रित हुए, उन सबके समक्ष उस द्वैतवादीका स्वामी-जीके साथ शास्त्रार्थ होनेलगा. पंडितने पहलेही पहल यह कहा कि– "अद्वैतमसिद्धम्"–अद्वैत है यह कहनाही मिथ्या है. "सर्वशास्त्रेष्वपि द्वैतं प्रतिपादितं सर्वसंमतं च"–सर्वशास्त्रोंमें सर्व संमतसे द्वैतही प्रतिपा-दन किया हुआ है; इसप्रकार उसने अपने द्वैतवादके समर्थनमें अनेक प्रमाण दिये और उसकी वक्तृता चलही रही थी. स्वामीजी कुछभी उत्तर न देते चुपचाप बैठे २ सुने जारहे थे. पंडितजीका थोड़ा व्याख्यान होचुका तब पूर्वसंकेतानुसार वह लकड़हारा अपने शिरपर लकड़ेका बोझा लादेहुए सभामें आया. तुरन्त स्वामीने उसे सबके समक्ष पूछा कि–"क्यों भाई कठिहारे ! तू तो बड़ा परमेश्वर जान पड़ता है, क्योंकि सारी सभा तेरी ओर देखरही है !" ये शब्द सुनतेही वह चौंककर कहने लगा–"नहीं महा-राज ! मैं क्यों परमेश्वर ? परमेश्वर तो बड़ा अन्नदाता है. वह बड़ा देव

तो कहीं बैठा होगा !" सारी सभा उसकी अस्पष्ट गँवारी बोलीको सुनकर हँसने लगी. स्वामीने फिर उसको कहा—" वाह रे ! धन्य धन्य है तुझे ! तू तो विना पढ़े ही विना श्रमके ही यह बात जानता है कि परमेश्वर तुझसे जुदा और कोई है तब ऐसे द्वैतको समझनेके लिये हमको अनेक वर्षोंतक कठिन परिश्रम किसलिये करना चाहिये ? " फिर उस लकड़हारेने स्वामीजीकी इच्छानुसार काठ बेचकर अपना पैसा लिया और एकतरफ जाबैठा. उस पंडितने इस बातका कुछ मर्म नहीं समझा इसलिये वह तो धाराप्रवाहसे अपनी वक्तृता देताही रहा. इस बीचमें वह नाईभी आपहुँचा. उसेभी स्वामीजीने सभामें बुलाकर वैसाही कहा—" आ भाई ! आ, तू तो हमारा परमेश्वर है. " तब वह नाई बोला—" अरे रे महाराज ! आपने यह क्या कहा ? परमेश्वर कहां और मैं कहां ? वह मेरा पिता प्रभु और मैं तो उसका दास होनेके भी योग्य नहीं. " इसको एक तरफ बिठलाकर स्वामीजीने चारोंओर दृष्टि करके मानों सबके प्रति कह रहे हों ऐसे भावसे कहा—" अहो पंडितो ! प्रथम तो द्वैतवाद सिद्ध करनेके मानके लिये विजयपत्र सुवर्णपत्रपर लिखवाकर इस नापित और लकड़िहारेको देना उचित दिखाई देता है. तिसपीछे यदि योग्य समझाजाय तो इन पंडितजीकोभी एक देना चाहिये. ये तो पचीस तीस वर्षोंतक बहुतसा शास्त्राभ्यास और उसके मननमें बड़ा कठिन श्रम करके आज द्वैत सिद्ध करनेयोग्य हुए हैं; परन्तु इस लकड़िहारने और नाईने तो विना पढ़े और विना श्रम कियेही हमारे सबके सामने द्वैत सिद्ध करदिया कि जीव और ईश्वर दोनों जुदे ही हैं. अब मैं पंडितजीको विनयपूर्वक कहता हूं कि जब ऐसी अज्ञानावस्थामेंभी द्वैत जाना जा सकता है, तब उसको जाननेके लिये, आपको इतने वर्षोंतक शास्त्राध्ययनमें परिश्रम करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं थी. द्वैतको तो लकड़िहार और नाई लोगभी जानते हैं, उसमें विद्वान् अथवा विद्वत्ताकी कुछ आवश्यकता नहीं है. परन्तु अद्वैतको जानना महाकष्टकारक और परिपक्व ज्ञानका परिणाम है. ऊहापोहमें विचक्षण, बुद्धिमान्, विद्वान् और मुक्तके लक्षणवाला पुरुषही अद्वैत ज्ञानका अधिकारी है; तथा जो विवेकी, वैराग्यवान, शमदमादिषट्संपत्तिसे संपन्न और मोक्षकी इच्छावाला होता है वही अद्वैतको जान सकता है. परन्तु द्वैतको तो ऐसे क्षुद्र प्राणी

भी जानते हैं. विशेष क्या कहाजाय ?" यह भाषण सुनकर तो उन पंडितजीकी बुद्धि ठिकाने आगई. तुरन्त अपने मनहीमन समझकर लज्जित होकर उस दिनकी वक्तृता तो अपने आपही समाप्त कर दी और दूसरे दिन विना विजयपत्र लियेही चुपचाप वहांसे चलदिया.

तात्पर्य यह कि मनकी स्थूलता (अज्ञानता) दूर करनेके लिये विद्याभ्यास है, जिससे मन पूर्णतया विचार और तुलना करनेवाला बनता है; और तब उसके द्वारा द्वैत जाननेकी स्थूलमति हटकर–दूर होकर परमात्मा परिपूर्ण एकही है, ऐसा निश्चय होजाता है.

४४–अद्वैत.

तब सद्विद्याके लाभसे मनकी स्थूलबुद्धि मिटजाकर सर्वत्र परमात्मा एकरूप भासता है सो क्यों कर ? क्योंकि जब मुझमें भी वही चैतन्यस्वरूप है, और इन्द्र, चन्द्र, अग्नि, कीट, पतंग, कौड़े, गरुड़ आदिक सबमेंभी वही आत्मा है, तब मुझको चींटीके मनकी तथा इन्द्रके सुखकी खबर क्यों नहीं पड़ती ? गुरुजीने मुझको इस विषयमें सुवर्णका दृष्टांत कह सुनाया था. सुवर्ण एकही पदार्थ है, परन्तु उसकी रचना–घड़ाई भिन्न २ है. मेरे कानके कुण्डलका और हाथकी मुद्रिकाका सुवर्ण एकही है; परन्तु जो सुवर्ण कुंडलमें है, वही सुवर्ण मुद्रिकामें नहीं है, अथवा जो सुवर्ण दाहिने कानके कुंडलमें है वही बांये कानके कुंडलमें नहीं है. मुझको यह सूर्यका प्रकाशभी इस दृष्टान्तमें सहायभूत होगया. क्योंकि सूर्य एकही प्रकाशवाला है, और उसका प्रकाश भी सर्वत्र एकही है. परन्तु बारीकीसे देखनेसे जो प्रकाश उस सामनेके आम्र वृक्षपर गिरता है, वहका वही प्रकाश उसके पासवाले कदंब वृक्षपर नहीं है. इसी भांति यह मेरा आत्मस्वरूप जो सर्वत्र रूपसेही परिपूर्ण है वह जिस रूपसे इस मेरे शरीररूपी व्यष्टि * स्थूल उपाधिको प्रकाशित करता है, वहका वही रूप इंद्रके शरीररूपी उपाधिको अथवा इन्द्ररूपी उपाधिको प्रकाशित नहीं करता. तब भला मैं इन्द्रके सुखकी अथवा चींटीके मनकी बातको

* न्यायदर्शन, वैशेषिकदर्शन, सांख्यदर्शन, योगदर्शन और मीमांसादर्शन, इन पांच दर्शनोंमें द्वैत सिद्ध किया गया है; और उत्तरमीमांसा—वेदान्तदर्शनमें अद्वैत सिद्ध करनेमें आया है. केवल मध्वाचार्यजीवाले वेदांतदर्शनमें भी, द्वैतसिद्धांत स्वीकार किया करते हैं.

कैसे जान सकता हूं ? अतएव उपाधिभेदके कारणसेही भिन्नता दिखाई देती है. नहीं तो आत्मा तो केवल अद्वैतही है.* और द्वैत अविद्याका कार्य है. विद्याका कार्य तो अद्वैत ही है. अद्वैतके ज्ञानके पश्चात् सत्व तो यही रहता है.–जिसके आनन्दलेशसे विश्व आनन्दमय है, जिसके सत्त्वाभासमें सर्वका भास है, जिसके आलोचन पीछे दूसरा सब नीच है, वही नित्य परब्रह्म मैं हूं. यह सर्व ब्रह्मही है. द्वैत कुछभी नहीं है, और जो दिखाई देता है वह अविद्याप्रेरित रोगमात्र है.

४९–ब्रह्मवेत्ता.

द्वैतके इस समाधानपरसे मुझे ऐसा भान होने लगा कि, तब ऐसे अद्वैतको जाननेवाले पुरुष कैसे होंगे ? मेरे गुरुजीका वचन मुझे याद आया कि ऐसे पुरुषोंको फिर ऐसे वा वैसे कोईभी उपमा नहीं दी जासकती. क्योंकि 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यका उपदेश होनेसे 'त्वम्' पदके लक्ष्यार्थको 'तत्' पदमें और 'तत्' पदके लक्ष्यार्थको शान्तात्मामें लय † करनेसे आत्माकी 'साक्षी' 'आत्मा' वा 'ब्रह्म' इत्यादि कोईभी संज्ञा नहीं रहती. इस भांति वृत्तिको ब्रह्माकार करके–शान्तात्मामें स्थित करके–रहनेवाले पुरुषको ब्रह्मवेत्ता (ब्रह्मके जाननेवाला) भी नहीं कहा जासकता; क्योंकि ब्रह्मवेत्ताका अर्थ तो ब्रह्मको जाननेवाला अर्थात् स्वयमेव ब्रह्म नहीं ऐसा होता है; और वह पुरुष तो ब्रह्मरूप ही होगया, इस कारण उसको ब्रह्मैव (ब्रह्मही) कहना चाहिये. जहांतक अविद्या (अज्ञान) होता है वहांतक जीवरूपसे रहता है, और जब अज्ञान नष्ट होकर ज्ञान होता है तब ब्रह्मवेत्ता–ब्रह्माकार वृत्तिवाला होता है; किन्तु वह जो शान्तात्मामें स्थिति

---

* यह अद्वैत शांकरमतानुकूल है. † गुरुने 'तत्त्वमसि' (वह तू है) उपदेश दिया. यहां 'त्वम्' पदका लक्ष्यार्थ जो अपनापन है उसको 'तत्' पदमें अर्थात् वह मेरा मूलस्वरूप परमात्मा है, उसमें लय कर, अर्थात् मैं वह नहीं परन्तु वह मैं हूं—परमात्मा हूं ऐसा जानना; परन्तु पीछे जब वह और मैं ऐसा मानना बिलकुल मिटगया तब सर्व सर्वत्र केवल शांतस्वरूप आत्मा ही है; यही समझना. जब ऐसी स्थिति होगई तब उसको आत्मा (परमात्माका अंश) भी नहीं कहा जासकता; तथा देहमें रहकर साक्षीरूपसे उसके कर्तृत्व भोक्तृत्वका देखनेवालाभी उसको नहीं कह सकते; और न उसको ब्रह्म संज्ञा दी जासकती है, क्योंकि वह तो अनिर्वचनीय सत्व परब्रह्म होचुका है, अर्थात् उसको कोई संज्ञा [नाम—विशेषण] वाचक होही नहीं सकती.

करनेवाला अद्वैत है सो तो अज्ञान तथा ज्ञान इन दोनोंसे रहित होकर ब्रह्माकार वृत्तिको छोड़कर स्वयंप्रकाश रूपसे रहता है.

४६–स्वयंप्रकाश.

जब परब्रह्म अपने आप स्वयंप्रकाश है, और उसीकी सत्तासे यह सर्व जगत् प्रकाशमान है, तब यह किस भांति प्रकाशता है ? इसका समाधान यों है:–प्रथम स्थूल दृष्टिसे देखनेसे प्रश्न होगा कि समस्त जगत्को कौन प्रकाशित करता है ? सूर्य; और जब सूर्य नहीं, तब चन्द्र; और जब चन्द्रभी न हो तब अग्नि प्रकाशित करता है. और अग्निभी न हो तब ? तब वाणी जगत्को प्रकाश देती है. जैसे जब अंधेरेमें किसीने पुकारा कि " कौन है ? " तब कहा जाता है कि " दाहिने हाथकी तरफ चले आओ, हम हैं. " इसप्रकारकी ध्वनिरूप वाणीके प्रकाशसे स्थलको जानकर, सुननेवाला उसीके आधारसे चला जाता है. इसप्रकार जब सूर्य, अग्नि आदि कोई भी न हों तब वाणी प्रकाश देती है; किन्तु वह वाणी स्वतः प्रकाशित नहीं है, ब्रह्मसे प्रकाश पाती है; क्योंकि शब्द (ध्वनि) हुआ यह अक्षर ब्रह्मसे प्रमाणित होता है. अब इसकी प्रतीतिके लिये विचार करो कि ब्रह्म (आत्मा) सदा सर्वदा देहकी सब अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदिक) में प्रकाशित ही है. यथा मुझको अमुक स्वप्न हुआ था, अथवा मैं सुखसे सोया था, तो उस स्वप्न सुषुप्ति आदिका अनुभव करनेवाला आत्मा तो निरन्तर प्रकाश करही रहा है. नहीं तो सुषुप्ति जैसी गाढ़ निद्रामें होनेसे देहको वा इन्द्रियोंको कुछ भान नहीं रहता, उस समय ' मैं सुखसे सोया था ' ऐसा किस भांति कहा जा सके ? इसलिये इन सर्व अवस्थाओंका साक्षी आत्मा निरन्तर स्वयंप्रकाश है, और वही सबमें स्वसत्तासे प्रकाशित है.

४७–आत्मा आनन्दरूप है.

आत्मा स्वयंप्रकाश है, और जाग्रदादि अवस्था देहकी होती है, आत्माको नहीं; तब आत्माका स्वरूप कैसा होगा ? मुझको गुरुजीने कहा है, कि, आत्मा केवल आनंदरूप है; देहकी किसी अवस्थाके साथ उसका सम्बन्ध नहीं, वह तो केवल साक्षी हैं. इससे यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि सुख, दुःख, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक इत्यादि धर्म भी मनके तथा देहके हैं,

न कि आत्माके. जो ये आत्माके धर्म हों तो सुषुप्तिमें* जब उन सबका लय होजाता है, और उस समय देहको कुछभी भान नहीं रहता, उससमय भी आत्मा तो अकेला, असंग, स्वयंज्योति स्वरूपसे जाग्रत् रहता है. अब यह आत्मा आनन्दरूपी क्यों कर? तब जानना चाहिये, कि, किसी प्राणीका देह चाहे जैसा भी दुःखी हो तो भी यदि उसको यह कहा जाय कि "भाई! तू बड़ा दुःखी है, सो हम तुझे मार डालें या तू अपने आपही मरजाय तो तेरा दुःख दूर होजाय." तो यह बात उसको कभी अच्छी नहीं लगेगी; और दुःखी होनेपर भी जीना ही चाहेगा. क्योंकि आत्मा स्वयं सदा परमानन्दका स्थान है, सुख दुःखसे रहित है, और उस आत्माके कारणसेही उसके पीछे (साथ) लगे हुए स्त्री पुत्र, घरबार इत्यादि तथा इंद्रियादिकके उत्तम भोगविलास प्रिय लगते हैं; परन्तु उसके अभावमें किसी वस्तुपर प्रीति अथवा भाव नहीं होता. सर्ववस्तुपर प्रीति होनेका कारण आत्मा है; क्योंकि वह परमानन्द है.

४८–बोध.

इस विचार परसे मुझको निश्चय हुआ कि आत्मा निरन्तर जैसेका तैसा–सदा एकरस–आनन्दरूप है; और इसका अनुभव भी सब प्राणी करते हैं. परन्तु उनके अन्तरमें इस बातका बोध नहीं होता, इसीसे वे आत्मानन्दके सम्बन्धमें कुछ नहीं जान सकते. प्रत्येक मनुष्यको बोध होना चाहिये. स्त्रीमें स्त्रीत्व परिपूर्ण है, और उमरभी सोलह वर्षकी हो चुकी है, परन्तु जबतक उसकी माता वा अन्य सखीद्वारा, उसने पुरुषके सहवासकी बात कभी देखी सुनी नहीं इससे उसको कुछ भान नहीं, जो कि उसे वारंवार कामकाजमें पुरुषोंका प्रसंग भी पड़ता है; परन्तु जब कभी वह स्त्री इस सहवाससुखकी बात सुनपाती है तब तत्काल उसके मनमें उस बातकी बड़ी प्रबल इच्छा उत्पन्न होजाती है; फिर वह अनुभवसे वह आनन्द कैसा है सो जानलेती है. इसी प्रकार मनुष्यको बोधके बिना, आत्मज्ञान सम्बन्धमें बोध हुए बिना, खबर नहीं पड़ती और वह उस आनन्दको नहीं भोगता. यहां एक दृष्टान्त है—

एक राजा और उसका विदूषक (मसखरा) दोनों साथ २ कहीं जारहे थे. एक मैदान आया उसे देखकर विदूषकने कहा–" अहो राजन्!

---

*गाढ निद्रामें.

यह मैदान बड़ा विस्तृत है." यह सुनकर राजाने कहा "अरे! मैदान क्या? मैदान किसे कहते हैं?" मस्खरेने विचार किया कि 'राजाको अभी प्रत्यक्ष मैदान बतानेसे भी नहीं समझा, इसलिये कुछ युक्ति करनी चाहिये.' ऐसा सोचकर वह बोला—"इसका उत्तर मैं पीछे दूंगा; पर इसके लिये तो एक वर्षकी अवधि और बहुतसी जमीन तथा बहुत द्रव्य होना चाहिये." राजाने जो २ वह मांगे सो सब देना स्वीकार किया, और मैदान क्या होता है सो जाननेकी उत्कट उत्कंठा दिखलाई. तदनन्तर उस विदूषकने बहुतसी जमीन खुदाकर उसमें पास २ अनेक वृक्ष लगवाये, और नानाप्रकारके कुंज बनवाये. जब उस बगीचेके पेड़ लगभग मनुष्यके बराबर ऊंचे बढ़े तब ऐसी घटा छागई कि उसके भीतर किसी तरफसे जराभी पवन आवे ऐसा नहीं रहा. उस राजाको तो रातदिन यही लगन लगरही थी कि मस्खरा कब मैदान बतावे. इससे वह नित्यप्रति उसको पूछा करता. जब बगीचा खूब प्रफुल्लित होकर सघन घन होगया तब गर्मीके दिन थे, धूप बड़ी तेज थी, पवन बहुत मंद था और मध्याह्नका समय था. ऐसे समयमें वह विदूषक राजाको उस बागमें लेगया. राजाने कहा—"अरे भाई! मैदान बतला. उसे देखे बिना मुझको कल नहीं पड़ती." मस्खरेने राजाको उस बगीचेमें इधर उधर सब जगह घुमाया, परन्तु धूप बड़ी कड़ी थी और कहींसेभी पवन नहीं आता था इससे राजा बड़ा व्याकुल हुआ और फिर कहा कि—"अरे! मैदान बतला दे, नहीं तो मेरा जी निकल जायगा." उस मस्खरेने पहलेही संकेत करके बगीचेके हरेक वृक्षके पास कुल्हाड़ेके साथ एक २ आदमी खड़ा कर रक्खा था, और सबको समझा रक्खा था. इससे राजाको ऐसा आतुर देखकर उसने उन मनुष्योंको इशारा करदिया. फिर क्या था; तत्क्षण, देखते २ ही सब वृक्ष कटकर पृथ्वीपर गिरपड़े और जो बगीचा था उसका मैदान बनगया! उसीक्षण मस्खरेने राजाको कहा— "देखो महाराज! यह मैदान!" चारों ओरसे ठंढा पवन आनेलगा और राजा शान्त हुआ. पीछे राजाने कहा—"अरे! ऐसा मैदान तो मैंने पहलेभी देखा था." तब विदूषकने उत्तर दिया—"महाराज! मैदान तो आप प्रतिदिन देखा करते थे, परन्तु उसका आपको बोध नहीं था कि इसीको मैदान कहते हैं. परन्तु अब बोध होजानेसे आप भली भांति

जानगये," अतः हे विशाल ! प्रत्येक वस्तुको हम प्रतिदिन देखते हैं, अनुभव करते हैं, परन्तु बोध हुए पश्चात् ही उसको यथार्थरूपसे जानते हैं. वैसेही आत्मबोधके सम्बन्धमें भी समझना.

४९ छूटाहुआ छुडाता है.

मैं जानगया कि बोध विना मनुष्यको आत्मज्ञान नहीं होता. परन्तु वह बोध परिपूर्ण ज्ञाता द्वारा हो तबही कामका है, नहीं तो उससे कुछ फल नहीं होगा.

एक श्रीमंत साहूकारके यहां एक पौराणिक नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा किया करता था. कथा करते २ उसको कई वर्ष वीतगये. श्रीमद्भागवतके सर्व इतिहास तथा कथा उपाख्यान वारंवार सुननेमें आनेसे सेठको मुखाग्र (कंठस्थ) होगये थे. वह सेठ नित्यके अनुसार एकदिन कथा सुनरहा था. उस समय श्रीमद्भागवतके कथाके माहात्म्यमें ऐसा प्रसंग आया कि-" जो कोई एकवार भी श्रीमद्भागवतका श्रवण करले तो उसका अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और उसके सब संकल्प विकल्प शान्त होकर वह स्वयं शान्तिको प्राप्त होता है !" यह वाक्य सुनतेही वह साहूकार बोल उठा-" महाराज ! जब माहात्म्यमें ऐसा कथन किया है तब मैंने तो आपसे अनेकवार श्रीमद्भागवत संपूर्ण श्रवण किया है, तथापि मुझको शांति क्यों नहीं होती ? हे देव ! यह वाक्य अतिशयोक्ति तो नहीं है ?" इसके उत्तरमें पौराणिकने कहा-" सेठजी ! साक्षात् ईश्वरावतार महामुनि श्रीवेदव्यासजीके वचन त्रिकालमें भी ठगनेवाले, असत्य, अथवा अतिशयोक्तिवाले नहीं होसकते. इन वचनोंके सिद्ध न होनेमें तो हमारेमें ही-श्रोता वा वक्तामेंही कुछ दोष होना चाहिये." सेठने फिर पूछा-" महाराज ! यह दोष किसमें होगा ?" इसपरस पौराणिकने विचार किया कि 'अब क्या करन चाहिये ? मुझको तो दोनों ओरसे बड़े धर्मसंकटने आ घेरा ! जो श्रोताम अर्थात् कथाश्रवण करनेवाले सेठमें दोष बतलाता हूँ तो मनोभंग होकर, मुझसे कथा सुननेमें शरमावेगा, तो मेरी जीविका चली जायगी; और जो मुझमें अर्थात् वक्तामें दोष है ऐसा कहूं तो यह मुझसे कथा न सुनकर और किसी पौराणिकको ढूंढेगा, तब भी मेरी जीविका जायगी.' ऐसे संकल्पविकल्पसे उसने सेठको कहा-"महाशय ! अभी तो आप श्रवण कीजिये. आपकी शंकाका समाधान और किसी प्रसंगपर किया जावेगा."

ब्राह्मणको तो अब उस सेठके समाधानकीही चिन्ता लगगई; वह यही सोचने लगा, कि, दुबारा मुझको पूछेगा तब मैं क्या उत्तर दूंगा? इस विचारसे वह प्रतिदिन उदास रहने लगा और आजीविका चलीजाने–नष्ट होनेके भयसे शरीर भी कृश होगया. इसबीचमें एक दिन एक महात्मा उसके यहां पधारे. उनकी सेवा पूजा करके हाथ जोड़कर, शोकाकुल होकर वह पौराणिक उनके सन्मुख बैठा. महात्माने उसका आश्वासन करते हुए दुःखका कारण पूछा तब उस ब्राह्मणने अपना सब वृत्तांत स्पष्ट २ कहा. स्वामीने कहा–"तू कुछ चिंता मत कर. मैं इसका निर्णय कर दूंगा. तू उस सेठको जाकर कह कि मेरे घर कोई साधु पुरुष आये हैं, उन्होंने आपकी शंकाका समाधान करनेके लिये आपको बुलाया है. तुरन्त वह ब्राह्मण सेठके यहां गया और पूर्वोक्त वचन कहकर अपने यहां यजमानको बुलालाया. फिर वहांसे स्वामीजी, सेठ तथा पौराणिकजी ये तीनोंही उस सेठके एक बगीचेमें गये. इस बगीचेमें सुन्दर कोठी–विलासभवन बना हुआ था, उसके एक स्तम्भसे स्वामीने प्रथम उस ब्राह्मणको बांध दिया, और उसके बराबर सामनेके स्तम्भसे उस सेठको बांधदिया! अनन्तर उन दोनोंके सन्मुख खड़े होकर महात्माने पहले पौराणिकसे कहा–"ब्रह्मदेव! जाकर अपने यजमानको छोड़ दो." ब्राह्मणने कहा–"महाराज! मैं आपही बँधा हुआ हूं, तब सेठको कैसे छुड़ा सकता हूं?" पीछे स्वामीने सेठसे कहा–"सेठजी! अपने पौराणिकको छोड़दो!" सेठने उत्तर दिया–"महाराज! जैसा वह है वैसा मैं हूं. जो मैं खुला होता तो उसको छुड़ा सकता." तत्काल महात्माने दोनोंको छोड़दिया. तब सेठने पूछा–"महाराज! मुझे आप उत्तर कब देवेंगे?" महात्माने कहा–"अहो! तू अभीतक नहीं समझा. क्या तेरा उत्तर देना अबतक बाकी है? तूने अपने आपही अपनी शंकाका समाधान कर लिया तोभी तुझको समझ नहीं आई? जो स्वयं बँधा हुआ है वह दूसरे बँधे हुएको कैसे छुड़ा सकता है? जो स्वयं वक्ताही बँधा हुआ अर्थात् विषयासक्तिमें मग्न हो और वह विषयासक्त प्राणीको बोध करे तो उससे क्या लाभ? परन्तु जो उपदेश करनेवाला स्वयं शुद्ध अन्तःकरणवाला रागद्वेष–रहित अर्थात् मुक्त हो और वह दूसरे बद्ध * पुरुषको उपदेश करे तो वह (बद्ध पुरुष) मुक्त होसके. यह तुझको उपदेश देनेवाला बँधा हुआ है और

* विषयसे बँधा हुआ.

तू भी बँधा हुआ है, तब कौन किसको छुड़ासके ? तुझको निश्चय समझना चाहिये कि छूटा हुआ छुड़ासकता है, बँधाहुआ नहीं छुड़ासकता."

५०—सन्तपुरुष.

बोधके विना मनुष्य ज्ञानी नहीं होसकता, और वह बोध सन्त पुरुषसे ही मिल सकता है. सन्त ऐसे होते हैं कि बोध तो क्या परन्तु उनके समागममात्रसेही मनुष्य पाप तथा दैन्यसे मुक्त हो जाता है. इसपर कहा है.—

" गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च हरेत्साधुसमागमः ॥ १ ॥ "

भावार्थ—गंगामें स्नान करनेसे पापका नाश होता है, चंद्रमा तापको हरण करता है, और दीनता (दरिद्रादि) को कल्पवृक्ष दूर करता है; परन्तु साधु पुरुषका समागम तो एकही साथ इन तीनों (पाप, ताप, और दीनता) का नाश करता है. सो कैसे ? तो सुन. सन्तजन अनीतिमार्गमें जाते हुए प्राणीको रोककर, उसमें दुःख तथा क्लेश हैं ऐसा समझाते हैं, इसकारण जीव पाप करनेसे बचता है; भीतरके कामक्रोधादि षड्रिपुओंको मारने-दमन करनेका उपदेश देकर शान्ति देते हैं इससे प्राणीके संसारके ताप मिटजाते हैं. रहे दुःख सुख लाभ हानि आदि सो प्रारब्धयोगसे अपने आपही होते रहते हैं, उनमें अपना कुछ वश नहीं, तब फिर दीनता किस लिये रखना कि—"मुझको अमुक दुःख है, अथवा मेरे पास अमुक वस्तु नहीं.' एक परमात्माही कर्त्ता हर्त्ता है, उसको मैंने नहीं जाना, इसीसे दुःख होता है और प्रारब्ध तो आगेका आगे ही है. और भी—

" यद्भावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किन्न पीयते ॥ १ ॥"

"जो होनेवाला है वह अन्यथा-मिथ्या नहीं होगा और जो नहीं होनेवाला वह कदापि नहीं होगा. इसलिये ऐसी (क्या होगा इस विषयकी) चिन्तारूपी विषको हरनेवाला जो शान्तिरूप औषध है उसको क्यों नहीं पीता ?" इत्यादि उपदेश होनेसे विचारनेसे, महात्मा सन्त पुरुष प्राणीको दीनतासे मुक्त करते हैं. सन्त पुरुष ऐसे उदार होते हैं.

५१—सन्तसंगति.

ऐसे सन्त पुरुषोंकी संगतिसे पुरुष सहजहीमें, अत्यन्त अलभ्य आत्मसुखका अनुभव करता है. सो सब संतसंगतिका ही प्रभाव है, यथा—

"असज्जनः सज्जनसंगयोगात् करोति दुःसाध्यमपीह साध्यम्।
पुष्पाश्रयाच्छंभुजटाधिरूढा पिपीलिका चुम्वति चन्द्रविम्बम्॥"

"असज्जन (असाधु) पुरुषभी सज्जन (साधु) पुरुषकी संगतिसे दुःसाध्य* वस्तुको भी साध्य कर सकता है (प्राप्त कर सकता है.) जैसे किसी चींटीने चन्द्रमाके पास जानेका प्रयत्न किया, यह असाध्य था तो भी उसने (धतूरेके) पुष्पका आश्रय लिया और उसके साथ (किसीने शिव-जीको पुष्प चढ़ाया इसके साथ २) वह शंकरजीकी जटापर चढ़गई और शंकरके ललाटमें धारण कियेहुए चन्द्रमाके विम्बका स्पर्श करके उसने अपनी मनःकामना पूरी की." इसी भांति जब इस पुष्परूपी सज्जनके समागमसे चींटीरूप असज्जनभी शिवजटारूपी अक्षय-पदारूढ होकर सद्गतिको प्राप्त हुआ, तब फिर मनुष्य जैसा प्राणी क्यों कर नहीं पासके? परन्तु इस-परसे यह नहीं समझ बैठना कि एकाधवार ऐसी सन्तसंगति होगई तो वस हुई. यह तो नित्य कर्तव्य है. इसपर एक दृष्टान्त है:—

५२-सन्तसमागम नित्य कर्त्तव्य है.

किसी महात्मा ज्ञानी पुरुषने श्रोताओंके मन जांचनेके लिये कथा श्रवण कराते समय श्रोताओंसे प्रश्न किया:-"तुम लोग प्रतिदिन अपने घरका कामकाज छोड़कर चार २ घड़ी मेरे पास आकर बैठे रहते हो, इससे तुमको क्या लाभ है?" महात्माका ऐसा उलटा प्रश्न सुन करके समस्त श्रोता जनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और सब यकटक देखतेही रहगये. उनमेंसे एक अनुभवी श्रोताने प्रतिप्रश्न किया कि "गुरुदेव! आपने यह क्या कहा? आपके दर्शनका लाभ भी हमको मिलना दुर्लभ है, तो फिर संसाररूप रोगका नाश करनेवाले औषधरूप आपके वचनामृतके कर्णगोचर होने जैसे हम पामरोंके भाग्य कहां? आपके प्रतिदिनके समागमसे हमको बहुतसा लाभ हुआ है. हमारा तथा संसारका सांप नकुल (नेवले) के समान सम्बन्ध है. नकुल और सर्पका स्वाभाविक वैर होता है इससे सर्पको देखते ही नकुल अपने विलमेंसे निकलकर उससे लड़ने लगता है. लड़ते २ सर्प नेवलेको ऐसे जोर २ से, विषभरे दंश करता है कि उसके सारे अंग प्रत्यंगमें विष फैल जाता है. परन्तु जब वह नेवला अशक्त होजाता है तब तुरन्त सर्पके

* न मिल सके ऐसी.

सामनेसे सटककर अपने बिल (अपनी मांद) में घुस जाता है और कोई ऐसी विषहारक बूटी (वनस्पति) सूंघ आता है कि उसका सारा विष तथा श्रम बिलकुल दूर होजाता है; और वह फिर सर्पके साथ लड़ने लगताहै. फिर जब सर्पका जहर चढ़जाता है तब वही बूटी फिर सूंघ आता है. फिर लड़ता है और फिर बूटी सूंघकर जहर उतार देता है, और जैसा था वैसाही होशियार बनकर फिर लढ़ने लगता है. इसीभांति लड़ते २ सर्पके सारे अंगको जखम करके अन्तमें मारडालता है और शत्रुरहित होकर सुखसे रहता है. तैसेही इस संसाररूपी सर्पके साथ हमे लड़ना है. सारा दिन लड़नेसे (कामकाज व्यवहारादि करके) जब उसका विष तथा श्रम हमको व्याप्त होजाता है तब नकुलके समान हम आप सद्गुरुके वचनरूप जड़ी बूटीको सूंघकर ज्ञान श्रवण करते हैं अर्थात् जैसे थे वैसे होकर फिर संसारसर्पके साथ युद्ध करने लगते हैं. ऐसे लड़ते २ जब यह संसारसर्प मर-जायगा तब हम निर्भय होकर आत्मसुखको भोगेंगे. इसीलिये हे स्वामिन्! आपके वचनामृतका हमको नित्य पान करते रहना चाहिये."

९३-संसारसागरमें शरीरनौका.

गुरुजीके (महात्मा सन्तजन आदिके भी) और वेदशास्त्रादिके वचन संसाररोगकी औषधीरूप अथवा सचमुच पारसमणिरूप हैं, ऐसा जो मुझको निश्चय होगया था, उसको इस दृष्टान्तने औरभी विशेष दृढ़ करा दिया. समुद्रमें कई जगह लोहचुंबकके पहाड़ होते हैं, इससे यदि लोहके कीलोंवाला जहाज उनके पास होकर निकले तो उस चुंबकके आकर्षणसे खींचकर उस पहाड़से जा टकरावे और टूटफूटकर नष्ट होजाय; परन्तु ऐसा होनेसे पहलेही यदि नौकापति अपने जहाजको पारसमणिका स्पर्श करादे (जहां २ लोहा हो वहां २ पारसमणि छुआ दे) तो उसमेंका लोहा अपना मूलस्वरूप छोड़कर (आकृति बदले विना ही) सुवर्णरूप होजाता है; तब फिर वैसे लोहचुंबकके आकर्षणका उसको बिलकुल भय नहीं रहता और वह नौका सुखसे परले पार जा सकती है. तैसेही इस संसारसमुद्रमें विषयवासनारूप लोहके कीलोंसे जड़ा हुआ (सूक्ष्म अथवा लिंग) शरीररूप जहाज, पांचों विषय विषयजन्यपदार्थों-गानश्रवण, स्त्रीसेवन, उपवनादिका निरीक्षण, मिष्टान्नभोजन, पुष्प अत्तर इत्यादिकी

सुगंध आदि २ रूप लोहचुंबक पाषाणके आकर्षणसे उसकी ओर खींच जाता है, और उसके साथ (विषयरूप पाषाणके साथ) टकराकर (आसक्तिसे) नाशको प्राप्त होता है अर्थात् जन्ममरणके चक्रमें पड़जाता है; परन्तु जो सद्गुरु, वेद-शास्त्र, इत्यादिद्वारा प्राप्त हुए महाज्ञानरूप पारसमणिका उस शरीररूप जहाजको अर्थात् इन्द्रियोंके अधिष्टाता मनसहित बुद्धिको स्पर्श होजाय और यथार्थ ज्ञान होजाय कि—"मैं ब्रह्म हूं, असंग हूं, शुद्ध हूं, ये विषय मेरे नहीं हैं," ऐसा जानकर अनुभव करता है तो उस नौकामेंके वासनारूप कीले कि, जो दुष्टवासनाकी आसक्तिके कारणसे लोहाजैसे नीच पदको प्राप्त होचुके हैं वे दिव्य सुवर्णरूप होजानेसे अर्थात् वैराग्यके कारण आसक्तिरूप मलसे रहित होकर श्रेष्ठ ज्ञानके द्वारा, उत्तम रूप प्राप्त होनेसे, उसपर उन विषयोंरूपी पाषाणका जोर नहीं चलसकता; कारण, यह कि पुरुष उनको मिथ्या जानकर, उनसे वितृष्ण होजाता है; इससे निर्विघ्न संसारसागरको तैर कर परले पार पहुँचकर परम पदको पाता है.

५४—वैराग्य.

विषय चाहे जैसे बलवान् हैं, तो भी मनुष्यको उनसे वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो फिर उनका कुछ जोर नहीं चलता, ऐसा ऊपरके दृष्टान्तमें कहा गया है; परन्तु अब वैराग्य कैसे उपजे इसका वर्णन करता हूं. इस जगत्की वस्तुएं अर्थात् जिनपर अत्यन्त आसक्ति होती है वे विषय व्यर्थ हैं. अनित्य हैं, और परिणाममें दुःखदायक हैं; परन्तु जब इनका सत्य स्वरूप समझाजाता है, सच्चा ज्ञान होजाता है तब इनपरसे प्रीति उठजाती है और वैराग्य उपजता है; परन्तु कृत्रिम वैराग्य किसी कामका नहीं. वैराग्यके संबंधमें मुझे एक बात याद आई थीः—

किसी एक बड़े धनाढ्य सेठके पुत्रने किसी दूसरे गामके वैसेही धनाढ्यकी पुत्रीके साथ विवाह किया था. दैवेच्छासे विवाह होनेके पीछे कुछ कालमें उसके माता पिता, सर्व समृद्धि उसको सौंपकर देवलोकको प्राप्त हुए. समय आनेपर उसने अपनी स्त्रीको अपने घर बुलवाया और संसारकी रीतिके अनुसार रातको वे सोनेको गये. रंगमहलमें काचकी हांडी, तख्तों; पुष्पोंकी चद्दर धूप, चंदनादिक सुगंधी पदार्थों तथा छप्परपलंग इत्यादिसे बड़ी शोभा होरही है; दंपती पलंगपर सोये हुए हैं, ऐसे समयमें उस वणिक्पुत्रकी

दृष्टि सामनेकी दीवारपर गई. वहां एक सुन्दर सुवर्ण–जटित बड़ा आईना (दर्पण) टँगा हुआ था. उसके दोनों ओरकी वगलकी पट्टियोंपर उसके माता पिता दोनोंके मुखचित्र किसी होशियार कारीगरने बनाये थे. उन चित्रोंको देखतेही उसकी आंखोंसे आंसू बहने लगे और थोड़ी देरतक वह निःशब्द पड़ारहा. यह घटना देखकर वह नववधू जो सुशील तथा कुलीन थी, सो कहने लगी–" हे प्राणनाथ ! आज तो अपने आनन्दका प्रथम दिन है, फिर आप इस अवसरपर उल्लसित होनेके बदले यह क्या करते हैं ?" साहूकारके पुत्रने कहा–" प्यारी ! कुछ नहीं, योंही मेरी आंखोंमें आंसू आगये. " ऐसा कहकर सच्ची बातको छुपाने लगा. स्त्री चतुर थी. उसने सोचा कि ऐसे आनन्दके समयमें विना कारण आंसू आना संभव नहीं. इससे बड़े आग्रहके साथ उसने कहा–" हे नाथ ! आप दुःखी तो मैं भी दुःखी, इसकारण आप अपने दुखको मनही मनमें न दबाइये. जो बात हो सो खोलकर कहिये. " स्त्रीका विशेष आग्रह देखकर उसने कहा–" प्रिये ! आज तू और मैं जो यह सब शोभा देख रहे हैं, उसको पहले मेरे माता पिता भोगते थे. देख, मेरे पूज्य माता पिता ये बैठे हैं. इनको देखकर मुझे विचार आया कि अपनेसे बढ़कर आनन्द उनको होता होगा; परन्तु आज उनमेंसे कोई जीवित नहीं है, आगे पीछे दोनों ही परलोकवासी होगये और यह सब ज्योंका त्यों यहीं पड़ा रहगया. इसीभांति हम दोनोंभी निश्चयपूर्वक चलेजायँगे, इनमेंसे कुछभी अपने साथ नहीं आयेगा. तब इस सारे वैभवसे अपनेको कौनसा लाभ ? जगत् रंग सुगंधका चटका है, चार दिनकी हरी सूखी छाया है, यह सब शोभा मिथ्या है. अपने ये सुकुमार सुन्दर शरीर, यह सब शोभा और आनन्द भोगविलासभी अन्तमें मिथ्या ही हैं, तब इनसे प्रीति क्यों रखना ? यह शरीर और जगतके पदार्थमात्र क्षणभंगुर हैं. इनमें मोह करके जीव वृथा आयुष्य पूरी करता है. यह उसकी मूर्खता है. " ये वचन सुनकर वह स्त्री जो चतुर और ज्ञात्री थी सो इसका मर्म समझ गई; और उसकी भी उसके पतिकीसी ही दशा होगई. ऐसे वैराग्यही वैराग्यमें सारी रात बीत गई और यह सद्विचार उनके हृदयमेंसे नहीं हटजानेके कारण दो तीन दिन ऐसेके ऐसेही बीतगये, और दोनों जने जगद्व्यवहारसे दूर रहे. पीछे दोनोंका चित्त एकाग्र होनेसे, उन्होंने सद्गुरुका समागम करके ज्ञान संपादन किया और अन्तमें

मोक्ष पा गये. इसलिये इसी भांति दृढतर वैराग्य होना चाहिये; और तबही संसार जीता जाता है.

समझ जानेपर अचानक वैराग्य होतेही अज्ञानरूपी नशा उतरजाता है. हम जैसे हैं वैसे ही (मूल स्वरूपसेही) हैं; परन्तु अज्ञानरूप नशेके कारणसे संसार—जगत्को सत्य मानकर भुलावेमें पड़गये हैं. यह अज्ञानरूप नशा बड़ा विलक्षण है. एक मनुष्य नशा करके गंगाके उसपार जानेलगा. परले पार जानेवाले और २ मनुष्योंके साथ वहभी नावमें बैठा, और नाव चलने लगी. दोनों ओर जलही जल देखकर उसका नशा बढ़ने लगा. उसने नावमें बैठे ही बैठे विचार किया कि—'कदाचित् मुझको अधिक नशा चढ़ जानेसे मेरा बदला होजाय अर्थात् मैं कहीं बदल जाऊं तो ?' इसलिये उसने अपने पांवमें डोरा बांध कर निशानी कर ली. ज्यों २ नाव आगे गई त्यों २ उसको नशेने बड़ा जोर दिया, जिससे वह बेहोश होकर नावमें ही गिरपड़ा. खेवइयोंने जब जाना कि इसने नशा खाया है और इसको कुछ सुधि नहीं है तब उसकी मसखरी करनेका विचार किया. जब नाव किनारे पहुँचनेको आई तब एक चालाक केवटने चुपचाप उसके पांवका डोरा खोल लिया. जब सब मनुष्य किनारेपर नीचे उतर गये, तब केवटने उसको दो चार बार पुकार कर नीचे उतर जानेको कहा. नशेबाजने नशेकी धुनमेंही थोड़ा ऊपर देखा, पीछे केवटका पांव देखा. अपने पांवका डोरा (धागा) उस केवटके पांवमें देखकर वह आधे २ शब्द बोलने लगा—"अअरे भाभाई ! मैं मैं तो उतर गगया हूं !" केवटने कहा—'साला वेसुध होकर नावमें पड़ा है और कहता है कि मैं तो उतरगया, यह क्या ?' उसने कहा—"वह जिसके पांवमें डोरा बँधा है सो मैं हूं, क्योंकि मेरा बदला न होजाय इस खयालसे मैंने अपने पांवमें डोरा बांध लिया था. सो मैं तो उतरगया हूं, तू अधिक खटपट मत कर !". यह सुनकर सब लोग हँसपड़े. दूसरे उतारुओंको लेकर पीछा दूसरे किनारे जानेकी उतावल थी इसलिये केवटने उसको उतर जानेके लिये बहुतेरा कहा सुना, परंतु वह तो उठाही नहीं. तब केवटने क्रोधमें आकर उसके गालपर एक तमाचा मारा कि तत्काल उसका मगज ठिकाने आगया; नशा उतरगया और वह झटपट किनारेपर उतरपड़ा !

इसीप्रकार हम अज्ञानरूप नशेसे भ्रमित होकर मिथ्या वस्तुपर आसक्ति रखतेहुए नशेमें चूर होरहे हैं, इससे आत्माके सत्यस्वरूपको भूलगये हैं; और इसीसे वेद, शास्त्र तथा गुरु आदिक नाविकोंके सत्य वचनको भी ध्यानमें नहीं लेते; परन्तु जैसे उस केवटके तमाचेसे उस नशेबाजकी बुद्धि ठिकाने आई तैसेही संसारमें मनुष्यको जब ऐसा एकाध ज्ञानरूप कोड़ा लगजाता है, तब ही उसकी बुद्धि ठिकाने आकर अज्ञानका नशा उतर जाता है और तब वह वैराग्यसे वर्त्तता है.

५६–वैराग्य कोडा–विद्वान् चोर.

ऐसा कोड़ा तो एक राजाको लगा था. यह बात मुझे पीछेसे याद आई. पूर्वकालमें बहुत विस्तीर्ण पृथ्वीका पति एक राजा था. वह सब बातोंसे परम सुखी था. धन, धान्य, पुत्र पौत्रादिक संतति, राज्य, सैन्य, कुटुंब, मित्र तथा ऐसी सब और २ वस्तुएँ उसको सुलभतया प्राप्त थीं. किसी बातका दुःख नहीं था. एक दिन वह रातको अपने रंगमहलमें सो रहा था. उस समय उसको विचार उत्पन्न हुआ कि 'अहो मुझसा सुखी कौन होगा? मुझको इस समय सर्व पदार्थ प्राप्त और अनुकूल हैं, दुःखका लेश भी नहीं है, अतः मुझे धन्य है.' ऐसे विचारतरंगमें वह अपने सुखोंका वर्णन करनेवाला एक श्लोक महलकी भीत (दीवार) पर लिखने लगा—

"चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः सद्बान्धवाः प्रणयनम्रगिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः................................"

अर्थ—"मनोहर तरुण स्त्रियां हैं, अनुकूल मित्र हैं, श्रेष्ठ बांधव भी हैं, आज्ञाधीन और नम्र वाणी बोलनेवाले भृत्यवर्ग (नौकर चाकर) हैं, हाथी गर्जना कर रहे हैं, और घोड़े कूद रहे हैं." ऐसे तीन चरण तो उसने तत्काल भीतपर लिख दिये; परन्तु चौथा चरण कैसे पूरा करना चाहिये इसका विचार करने लगा. उस समय रात बहुत होगई थी इससे राजाको निद्रा सताने लगी, तब बाकीका श्लोक दूसरे दिन पूरा करनेके विचारसे उस श्लोकको अधूराही छोड़कर राजा सोगया. इसबीचमें वहां एक नया चमत्कार हुआ.

उसी नगरके एक ब्राह्मणपुत्रको चोरी करनेकी आदत पड़गई थी. उसका पिता बड़ा विद्वान् होनेसे उसने अपने पुत्रको चोरी करनेसे रोकनेके लिये, कर्मविपाक तथा धर्मशास्त्रादि ग्रन्थ भलीभांति पढ़ादिये थे. और

अमुक वस्तुकी चोरी करनेसे अमुक पाप लगता है, अमुक पदार्थ चुरानेवाले को यमराज अमुक दंड देता है, इत्यादि विषय चोर—पुत्रके अन्तःकरणमें खूब ठसा दिये. केवल इसीलिये कि ऐसा जाननेपर भयभीत होकर वह (पुत्र) चोरी करना छोड़देगा. पुत्रभी पढ़ गुणकर अपने पिताके समानही विद्वान् होगया था, परन्तु उसकी चोरी करनेकी कुटेव पड़ी हुई नहीं छूटती थी. उसी रात्रिमें वह ब्राह्मणपुत्र चोरी करनेको निकला. फिरते २ वह विद्वान् चोर, मौका पाकर राजाके महलमें चोरी करनेको घुस गया. महलमें इधर उधर फिरकर उसने देखा भाला, परन्तु क्या चुराना चाहिये सो उसके ध्यानमें नहीं आया. राजाके महलमें कोई वस्तु निकम्मी–निरर्थक नहीं थी, परन्तु सुवर्ण चुरानेमें अमुक दोष है, जवाहिरात लेनेमें अमुक दोष है, चांदी चुरानेके विषयमें धर्मशास्त्रमें अमुक दोष लिखा है, इसी विचारही विचारमें वह कोई वस्तु नहीं चुरा सका. फिर वह चुरा लेनेयोग्य निर्दोष वस्तुको ढूंढता २ राजाके पलंगके पास गया. राजा तो गाढ़ निद्रावशीभूत था. उसने चारों ओर देखा तो दीवारपर लिखा हुआ वह अधूरा श्लोक उसको दिखाई दिया. तब उस विद्वान् चोरने विचार किया कि "चलो इसकी पूर्त्ति तो कर दें." इससे उसने तीन चरणोंके नीचे चौथा चरण लिखदिया—

"सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति ॥ १ ॥."

"दोनों आंखें मुँद जानेपर इनमेंसे कुछभी तेरा नहीं." तदनन्तर जिस वस्तुके चुरानेमें कुछभी दोष नहीं लगे ऐसे चनेके छिलके लेकर वह वहांसे बाहर निकल गया.

प्रातःकाल उठतेही राजाने भीतपर देखा तो श्लोकको पूरा हुआ देखा. सो भी अन्तका चरण हृदयभेदन करनेवाला देखा. उसका मन अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ. उसने समझ लिया कि "सचमुच! जब मेरा अन्तकाल आवेगा तब इनमेंसे कोई वस्तु मेरे साथ नहीं आयेगी. तब मुझको इनके लिये मिथ्या मोह क्यों करना चाहिये? किन्तु मुझको इस मोहनिद्रामेंसे यह श्लोक पूरा करके जगादेनेवाला अवश्य कोई विद्वान्–महाविद्वान् होना चाहिये! वह कौन होगा?" उसको देखनेकी उत्कण्ठासे राजाने नगरमें डौंड़ी पिटवाकर श्लोक लिखनेवाले उस द्विजपुत्रको बुलाकर बड़ा शिरोपाव और पुरस्कार (इनाम) दिया और संसारसे वैराग्य उत्पन्न होजानेके

कारण, तत्त्वोपदेश लेकर उसी क्षणसे राजाने जीवन्मुक्त होकर अपना शेष आयुष्य व्यतीत किया.

इसप्रकार अकस्मात् कोड़ा लगनेसे भी मनुष्यको वैराग्य उत्पन्न होजाता है. मेरे गुरुजीने मुझको सारासार विचारके कर्त्तव्यके संबंधमें महाराजा जनकका दृष्टांत दिया था; उसमें कहे अनुसार, राजा जनकको भी अपने स्वप्नपरसेही अकस्मात् वैराग्य उत्पन्न होगया था.

५७–अधिकार.

तदनन्तर मुझको विचार आया कि क्या यह भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, आत्मरसायन* जानना, शोधना, पान करना, इत्यादि सब जीवोंके लिये एकहीसे होंगे और क्या सब प्राणी उनका एकसा आदर मान करते होंगे? नहीं २, ऐसा कैसे होसकता है? जैसी प्रकृति होती है वैसी ही बात सुहाती है. पापी मनुष्यको इनमेंसे कोईभी बात अच्छी नहीं लगती. यदि इनके भोक्ता अधिकारीके सिवाय कदाचित् और किसीको जबर्दस्ती इनका उपदेश दिया जावे तो उसका परिणाम बुरा होता है. इस अधिकारके विषयमेंही गुरुजीने मुझको उस पाखण्डी कालिकापुत्रको महात्माके कियेहुए उपदेशकी कथा कही थी. फिर मुझे याद आया कि ऐसेही पूर्वकालमें एक ब्रह्मर्षि इंद्रको ब्रह्मविद्या सिखाने लगे, जिससे इंद्रको वैराग्य उत्पन्न होनेलगा. इंद्रने सोचा कि 'यह तो घरबार जानेकी बात है!' तब वह क्रोध करके ऋषिको कहने लगा–"खबरदार! आज पीछे अगर तुमने कभी किसीको ब्रह्मविद्या सिखानेका नामभी लिया तो तुम्हारा मस्तक छेदन कर दिया जायगा. हम तो अपनी शक्तिभर सृष्टिको बढ़ानेका प्रयत्न करें और तुम उन सबको वैरागी बनाडालो तो कैसा बने? यह हमको नहीं चाहिये, तथा और किसीकोभी मत सिखाना." ऋषिने कहा–"बहुत अच्छा हुआ. खटपट करनी मिटी. तूने मुझको परमसुखी बना दिया. अब आज पीछे मैं किसीकोभी ब्रह्मविद्याका अथवा ब्रह्मप्राप्तिका उपदेश नहीं दूंगा." अतएव अधिकारीके सिवाय दूसरे किसीको यह विद्या देना वा उसके आगे इसकी चर्चा करना वृथाहै.

५८–अनुभव.

और भी, इस आत्मविद्याके संबंधमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादिकी बातें मात्र

* जरा (बुढ़ापा) और व्याधि (रोग) का नाश करनेवाला औषध.

सुन लेनेसे उनका अनुभव हुए विना, वे (वातें) किसी कामकी नहीं; परन्तु मैं किस परसे अनुभव करूं ? स्वमतिसे किया हुआ अनुभव क्या मुझको यथार्थ ज्ञान करावेगा ? नहीं २, जगत्में सबकी प्रकृति एकसी नहीं है, वरन् भिन्न २ है, और अनुभवभी जुदा २ होता है. मुझको पांवोंसे चलने और हाथसे जीमनेका अनुभव अवश्य है; परन्तु मैं उससे पंखद्वारा आकाशमें उड़ने और चोंचसे खाने इत्यादि पक्षीकी गतिका अनुभव नहीं करसकता. मुझको इस बातका अनुभव है कि जो मैं पानीमें गोता मारकर एक मुहूर्त्तसे अधिक रहूं तो निःसंदेह मेरे प्राण निकल जायँ; किन्तु मछलीको तो इसका बहुत वड़ा अनुभव है. वह कई दिनोंतक पानीके भीतरकी भीतरही रहसकती है. इसीभांति स्वात्मानुभव सार्वजनिक नहीं होसकता. किन्तु ब्रह्मविद्या तो सार्वजनिक है. उसके लिये गुरु, शास्त्र और वेद इन तीनोंका अनुभव करके यथार्थ ज्ञान संपादन करना आवश्यक है. अकेले शास्त्रों वा विद्वानोंके वचनपरभी प्रतीति करना ठीक नहीं; क्योंकि उनमें भी भिन्नाभिन्न अनुभव हैं. सन्मार्गदर्शक सत्त्वगुणी आचार्य, गुरु, उपदेशक, ब्राह्मण इत्यादिको पूछोगे तो यही कहेंगे कि–' स्त्रीको पतिव्रता रहना, स्वामी (पति) को ईश्वर मानकर उसकी सेवा करना और पुरुषको एकपत्नीव्रत रहना, परस्त्रीको मातासमान जानना, इत्यादि. ' परन्तु राजस तामसके दासोंको पूछाजाय तो वे इसके विरुद्ध कहेंगे; जिसको जैसा दिखाई देगा वह वैसाही कहेगा. मांसभक्षणकी कोई ' ना ' कहेगा तो उसका उपयोग करनेवाले 'हां' कहेंगे. ऐसेही शास्त्रोंमेंभी भिन्न २ ऋषियोंके भिन्न २ मत भरे हुए हैं. जिसको जैसा अच्छा लगा वह वैसाही लिखगया है. इनमेंसे किसका अनुभव सत्य समझना और किसका असत्य समझना यह बड़े विचारकी वात है; इसलिये जिज्ञासुको प्रथम सद्गुरु, पीछे वेद शास्त्र, और अन्तमें उनके उपदेशानुसार उसको स्वात्मानुभव हो सो अनुभव सत्य समझना चाहिये और उसीसे सत्यमार्ग–ब्रह्मविद्याका मार्ग सूझ पड़ता है.

५९–निश्चय.

मनुष्यको अनुभव हुए पीछे भी प्रायः श्रद्धापूर्वक एक निश्चय–दृढ़ता होना यह बड़ी आवश्यक बात है. कईवार ऐसा जाननेमें आया है कि असार संसारमें साररूप तत्त्वमय कुछ नहीं, और यें सब दृश्य पदार्थ उपाधिरूप ह और उनके मोहसे हम वारंवार संसारसागरमें गिरते हैं, गोते खाते हैं

और दुःख पाते हैं और कभी २ परब्रह्मको जाननेका निश्चय करते हैं; तिसपरभी फिर भुलावा खाकर चौराशीके चक्रमें पडते हैं. ऐसा ज्ञान होता है, तथापि उसमेंसे निकलनेको अशक्त रहनेमेंही आनन्द मानते हैं. अनुभव कहता है कि, संसार असार है, परन्तु मनुष्यका मन संकल्पविकल्प-वाला होनेसे घड़ी घड़ी रहँटमालाकी नाईं फँसजाता है. उसमेंसे क्योंकर निकलना इसके लिये मुझे एक यही सरल मार्ग दिखाई दिया कि श्रद्धापूर्वक एकही दृढ़ निश्चय करना और प्रभुप्रेममें अचल रहना. जीव असन्तोषी और चंचल है, किन्तु परमात्मा सन्तोषी और अचल है. जीवको परमात्माके प्रेममें मस्त रहकर दुःख सुख आवे तोभी परमात्मस्वरूपके अनुसन्धानमें दृढ़ताही रखनी चाहिये. जगत् मिथ्या है, उसमें क्षण २ में सुख दुःख आते रहते हैं और जाते हैं इससे अधीर होनेका कारण मिलता है. परन्तु जो जीव वैराग्यमें दृढ़ होता है उसको कोई उपाधि दुःखदायी नहीं होती. उसको दुःख हो वा सुख हो दोनों एकहीसे हैं; पुत्र जन्मे अथवा मरजाय उससे हर्षभी नहीं और शोकभी नहीं. इस मनने ही जगतको सचा मान रक्खा है, पुत्रको मननेही मेरा करके मान लिया है, वही मन निश्चय रखकर हरिको सर्व कल्याणके गुरु मान ले और उसीमें अचल होजाय तो फिर सत्यपरकी आसक्ति कदापि नहीं हटसकेगी. गुरुजीने कहा था कि मन ही सबसे बलवान् है, वह चाहे जैसे दृढ निश्चयको डगमगा देता है. यह जीव ऐसा मानता है कि "मैं हूं" इसीसे जो जन 'मैं' मेंही लिप्त रहेगा वह निःशंक जन्म–मरण करता ही रहेगा. परन्तु 'मैं' (देह) को नाशवंत मानकर आत्माकोही सत्य मान ले और मैं तो केवल सर्वप्रकाशक, सर्वसाक्षीभूत आत्मा हूं, असंग हूं, परमात्माका अंश हूं, किंतु देह नहीं हूं ऐसा मान ले तो वह दुःखी नहीं होगा तथा अपने निश्चयसे विचलित न होगा तो एकही जन्ममें तिरजायगा. देहाभिमानी जनही सदा दुःखी होते हैं, उन्हींको जन्म मरणका भय है, देहाभिमानसे रहित हैं वेही मुक्त हैं. उनको दुःख सुख नहीं व्यापता. हे विशाल! प्राणीको हरिनामका दृढ निश्चय होना चाहिये. जिसको परमात्माका दृढ़ निश्चय है, वही सन्तोषी है, और सुखी है; वही जगत्में रहता हुआभी मुक्त है और वही परमपद पाता है. इस समय मुझे एक व्यावहारिक दृष्टांतका स्मरण हो आया. यह एक निश्चयमें बड़ा पुष्ट प्रमाण है. कोई एक विद्वान्

ब्राह्मण परमात्माके सत्यस्वरूपका ज्ञान होनेसे कुछभी व्यापार किये विना संसारमें विचरता था. वह कभी भिक्षार्थ नगरमें नहीं जाता, और जो विना मागे अकस्मात् मिलजाता उसीमें सन्तुष्ट रहकर काल व्यतीत करता था. उसको ऐसा दृढ़ निश्चय था कि, वह जब चाहेगा तब अष्ट महासिद्धि और नव निधि देगा. उसके ऐसे दृढ निश्चयके कारण उसकी स्त्री सदा उसको ताने मारा करती. स्त्री उन्नत विचारसे वहिर्मुख थी इससे नित्यप्रति उसके नामको रोती पीटती रहती. वह कहती "हाय दैव! मुझ गरीबनी गायको इस मुएके पल्ले बांधकर मेरे मावापने मुझको नरकके दुःखमें डाल दिया. जो पेट भरनेका पराक्रम नहीं था तो विवाह क्यों किया था? विधवा स्त्रीकी भांति घरहीमें क्यों बैठारहा है? हाथोंमें चूड़ियां क्यों नहीं पहनलेता?" ऐसे नित्य ताने दिया करे और झगड़ा किया करे; परन्तु ब्राह्मणको तो परमात्मापर दृढ़ विश्वास था. स्त्रीके वचनोंपर वह कुछभी ध्यान नहीं देता था. वह तो ईश्वरपरही दृढ निश्चय रखकर बैठ रहता था. कभी कोई सत्संगी पुरुष अन्नादि डालजावे, परन्तु जब वह चुकजावे तब फिर वही कलह होनेलगे. एक दिन ऐसा हुआ कि, वह ब्राह्मण नदीके किनारे दीर्घशंका निवृत्त करने (दिशा मैदान) गया था. नदीके तटके खंद-कमें उसे एक घड़ा दिखाई दिया. उसमें बहुमूल्य रत्न, हीरे, मोती भरे थे. एक विश्वंभरपरही भरोसा रखनेवाले उस ब्राह्मणने सोचा कि, इस द्रव्यका कोई स्वामी नहीं है, जो मैं इसे लेलूं तो कुछ हरकत नहीं. परन्तु मेरा तो यही निश्चय है कि 'घर बैठे जो मिलजाय उससेही अपना निर्वाह करना' तब यह संपत्ति मेरे किस कामकी? ऐसा सोच विचार कर वह अपने घर चला आया. अब ऐसा हुआ कि, उसी रातको उसके घरमें चोर आये. तब उस एकनिष्ठ ब्राह्मणने अपनी स्त्रीसे कहा—"ये बिचारे चोर हमारे घरमेंसे क्या लेजायँगे? परन्तु ये लोग यदि नदीके किनारे अमुक जगह जावें तो वहां एक घड़ेमें बहुमूल्य रत्न भरे हुए धरे हैं सो इनको मिलजायँ और इनका दरिद्र दूर होजाय." वे चोर ब्राह्मणकी बातचीत सुनकर वहीं नदीतीरपर गये और वह घड़ा देखा; परन्तु चोरोंके दैवयोगसे उसमें बिच्छू सांप आदि विषैले जंतु दिखाई पड़े. यह देखकर चोरोंको बड़ा क्रोध आया और सबने मिलकर विचार किया कि 'साले ब्राह्मणने हमें दगा दिया है तो चलो उसीकी खोड़ तोड़ें.' ऐसे बड़बड़ाकर वह घड़ा

लेकर पीछे उसी ब्राह्मणके घरपर आये और छपरेमेंसे उस घड़ेको उसके घरमें उंडेल दिया—औंधा करदिया; परन्तु तमाशा यह हुआ कि उस घड़ेमेंसे सांप बिच्छू गिरनेके बदले खनखन झनझन करते हुए हीरे मोती आदि गिरनेका शब्द सुनाई दिया. ब्राह्मण चौंक उठा, परन्तु उसने उस द्रव्यको छुआ नहीं. लक्ष्मीकी दासीने लक्ष्मीका पाहुनचार किया—सबको उठाकर संदूकमें धरा और वह एक परमात्मापरही दृढ निश्चय रखनेवाला ब्राह्मण तो निरन्तर भगवद्भजनमेंही लगा रहा.

इस भांति जिसका परमात्माके ऊपर दृढ विश्वास होता है वह दुःखी नहीं होता, परन्तु जो श्रद्धारहित हैं, विश्वासशून्य हैं वे व्यर्थ हाथ पांव पीटते और दाने वीनते फिरते हैं, और वावले कुत्तेके समान इधर उधर दौड़ते फिरते हैं. वे श्रीहरिका बाना—वेष ग्रहण करते हैं, परन्तु श्रीहरिपर क्षणभर भी श्रद्धा नहीं रखते और संसारमें भटकते हैं, दौड़ धूप करते हैं; परन्तु जब उनको कुछ लाभ नहीं होता तब निराश होकर श्रीहरिसे विमुख होकर बैठते हैं. एक दृढ निश्चयसे और सत्य पुरुषार्थ द्वाराही सब कुछ मिलता है, परन्तु पुरुषार्थ कैसा करना ?

६०—पुरुषार्थ.

इस विषयमें मुझे बड़ा विचार हुआ. इस जगत्में अनेक विषयम देवदेवताओंकी उपासना करके उपाधिसे मुक्त होनेको वृथा झपटते हैं, देवसेवा करके उनके पूजनादिकसे अपनेको कृतकृत्य मानकर उसीको पुरुषार्थ समझते हैं; परन्तु यह पुरुषार्थ सत्य नहीं. सत्य पुरुषार्थ तो यही है कि, परब्रह्मको जानना और वही सत्य पुरुषार्थ परम प्रेमके पादारविन्दमें तल्लीन होनेसे प्राप्त होता है. देवदेवियोंकी सेवा करना और उसीमें कृतकार्य मानना तो मानों एक उपाधि और बढ़ा लेना है. इसको सत्य पुरुषार्थ समझनेसे मनुष्य परमपदके द्वारप्रति जाता हुआ पीछा गिरपड़ता है. तब उसको पानेकी बात कहां रही ? बहुतसे लोग पुरुषार्थकी बात करते हैं सही, परंतु पुरुषार्थ कर नहीं सकते. जैसे कोई कहता है कि, रसोई करें तो अच्छा खानेको मिले, परन्तु जब चूल्हा जलाकर भोजन बनावे तब तो उसको अच्छा भोजन मिले. अमृतके कुंडके आसपास घूमा करे वा अमृतको देखा करे तो ऐसा करनेसे अमर नहीं होगा; परन्तु जब अमृत पान करेगा तबही अमर होगा. जैसे कोई कहे कि, मुझको अमुक सेठसे

मिलना है, परन्तु उसके बदले यदि और कोई मिलजाय तो उससे उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं होसकता; किन्तु जब वह स्वयं जाकर उसको मिले—ढूंढे तबही उसका कार्य सिद्ध हो. तैसेही स्वयमेव गुरुकी सेवा करके, सच्छास्त्र सुने, उनका मनन करे, इंद्रियोंका निग्रह करे, और अन्तमें स्वात्मानुभवसे सिद्ध होकर परब्रह्मको जाननेका यथार्थ प्रयत्न करे, तबही उसका कार्य सिद्ध हो. दूसरेकी बातोंसे अथवा दूसरेके कहने सुननेसे यह जीव परब्रह्मके अंशकोभी नहीं जान सकता. जो जीव पुरुषार्थ नहीं करता और दैवके भरोसे बैठा रहता है, उसका कोईभी काम सिद्ध नहीं होता. वह स्वात्मद्रोही होकर अपना जीवन व्यर्थ नष्ट करता है.

हे विशाल ! मुझको विचार आया कि, पुरुषार्थ न करनेवाला मनुष्य मायामें लिप्त होकर संसाररूपी पिंजरेमें बंद (कैद)पड़े हुए बाघके समान है. जैसे वह चाहे जितना इधर उधर डोल फिरकर उसमेंसे निकलनेको वृथा तड़पता है, संसाररूपी पिंजरेमेंसे बाहर निकलनेका द्वार अथवा उसकी कुंजी हाथ लगे विना वह छूट नहीं सकता. कोई बाघ था. उस बाघमें बारहसौ घोडोंका बल था. वह एक लोहेके पिंजरेमें पड़ा था. वह निकल नहीं सकता था. जो वह छूट जाय तो स्वतंत्र होकर यथेच्छ विचरण करे; परन्तु अपना छुटकारा कैसे करना सो उस बाघको विदित नहीं था इससे वह कैदमें पड़ा दुःख पारहा था. वह बाघ पिंजरेमेंसे निकलनेके लिये दौड़ता है, घूरता (ताकता) है, गर्जना करता है, पिंजरेके सीगजों (सळियों) को चबाता है; परन्तु उससे क्या हो सकता है ? जो फाटककी कल है उसको तोड़ सके तो तत्काल उसका छुटकारा होजाय. इस जीवकी भी यही दशा है. जीवको शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध रूपी सीगजोंवाले पिंजरेमें बंद कर दिया है और उस पिंजरेके ऊपर नीचे 'मैं' और 'मेरा' ये दो तख्ते लगादिये गये हैं. ऐसे पिंजरेमें घिरा हुआ जीव पुरुषार्थके विना और उस कल (कुंजी) को जाने विना बंधनसे छूट नहीं सकता. यदि बंधनमेंसे मुक्त होनेके लिये वह सत्य पुरुषार्थ करे, सद्गुरुको मिले और वह उसको कुंजी बतावे तो श्रीहरिको यथार्थ जाने पहचाने; और तबही उसका छूटनेका प्रयत्न फलीभूत होवे.

६१-हरिरससागरमें गोता लगाना.

...इस संसारमें नित्य आवर्जन विसर्जन होते हुए, सहजमें उपजते और सहज नष्ट होते हुए सुखदुःखरूपी बुलबुलेको, मनुष्य सत्य जानकर उसीमें मग्न होजाता है, यह अविद्याका प्रभाव है. संसारके सुख समुद्रके बुलबुलेकी नांई हैं, जो क्षणभर पहले थे, परन्तु क्षणभर पीछे नहीं रहते. अविद्यासे घिरे हुए जीवको बुलबुला, लहर आदि जो कुछ दिखाई देते हैं, वे सब नाशवन्त हैं. इसलिये वे असत् हैं और उनमें जो मायाकी भरती-ओट होजाती है वह जैसे असत् हैं तैसेही इस संसारमें दिखाई देती हुई सर्व मायिक वस्तुएंभी असत्य हैं, ऐसा जानने-समझनेमें आवे तो दुर्घट पिंजरेमेंसे यह जीव-वाघ छूट सकता है. अखंड एक ब्रह्मस्वरूप महासागर है, उसमें अनेक ब्रह्मांडरूप तरंगें-लहरें उठती और लय होती जाती हैं और यह देह बुलबुले जैसा है, वह कितनेक वर्षों पहले नहीं था, और कई वर्षों पीछे रहेगाभी नहीं; केवल मध्यकालमें वह दिखाई देता है, परन्तु उसको नष्ट होजाते कुछ देर नहीं लगती. इसकारण इसका मोह न करके सत्य, अनन्त, अखंड, सच्चिदानन्द, परमात्मस्वरूप समुद्रमें गोता लगाना, यही सर्वोत्तम पुरुषार्थ है. जैसे समुद्रमें गोता लगानेसे सर्वत्र जलही दिखाई देता है तैसेही हरिरस-सागरमें डुबकी लगानेसे परब्रह्मके तानमें सदा काल एकतार होजानेसे सर्व ब्रह्ममय ही भासता है; अर्थात् जब परमात्माके निजस्वरूपमेंही मनुष्यकी लय लगजाती है, तब उसके समक्ष न तो संसार है, न विश्व है, न अनन्त कोटि ब्रह्मांड हैं ! किन्तु जब यह जीवात्मा, सच्चिदानन्दरूप समुद्रमे डुबकी लगावेगा-गोता मारेगा तब सच्चिदानन्द स्वरूपमें एकतार होगा और तभी उसका चौराशीका चक्कर भी मिटेगा ! इसके लिये जीवको बहिर्मुखवृत्तिका त्याग करके उसको अन्तर्मुख करनेका यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये. इन्द्रियोंकी स्वाभाविक वृत्ति है कि, बाह्य पदार्थोंको देखना, बाह्य शब्दोंको सुनना इत्यादि इसको बहिर्मुखवृत्ति कहते हैं. इस वृत्तिको पीछी घुमाकर अन्तर्मुख करना अर्थात् अन्तरमें जो परमात्मा है उसको देखना, उसको सुनना, और उसीमें गोता लगाना इससे संसारके क्षणभंगुर तरंगोंका उसे दर्शन नहीं होगा, बल्कि निरन्तर परब्रह्मका सत्त्वरूप दृष्टिगोचर होगा.

हे विशाल ! इस भांति एक पर एक ऐसे अनेक विचार आते २ मुझको उस वृक्षके नीचे बैठेही बैठे सांझ होने आई. उस समय मैंने अस्ताचल-पर विराजमान सविता नारायणके दर्शन करके विश्वंभरकी लीला देखकर उस देवको मैंने प्रणाम किया. तिसपीछे सायंसन्ध्यादि कर्म करनेकी वेला हुई जानकर मैं वहांसे उठनेका विचार कर रहा था इतनेमें वही पहला विमान फिर मेरे दृष्टिगोचर हुआ. इस समय वह बिलकुल मेरे समीप होकर जाने लगा, इससे मैं उसे देखनेको उठ खड़ा हुआ. तत्काल उसमें बैठी हुई एक दिव्य सुन्दरी मेरी ओर सैन (इशारा) करके अपनी सखियोंको मुझे दिखाती हुई गीर्वाणभाषामें कहने लगी-" अरी सखियो ! देखो २, यह उस सतीका भर्त्ता है, जो इस वृक्षके तले खड़ा है, सोही है. अब थोड़े ही दिनोंमें इनका वियोग मिटजायगा. " यह सुनकर विमानकी सब अप्सराओंने बड़े हर्षपूर्वक मुझे देखा. तदनन्तर नानाप्रकारके दिव्य सुमनोंकी वृष्टि कर परमा-त्माका जय २ कार करते क्षणभरमें वह विमान अदृश्य होगया. मुझको बड़ा विस्मय हुआ, परन्तु फिर मने समझ लिया कि मेरी प्रियतमाने जो मुझको कहा था कि, कभी २ देवांगना मेरे समागमके लिये आती हैं तदनुसार ये वहीं जाकर आई होंगी, और इसीसे उन्होंने मुझको पहचाना भी. ऐसे मनही मन कहता हुआ मैं उस रम्य पर्वतशिखरपरसे नीचे उतरने लगा. हे विशाल ! उस समय गुरुजीके प्रतापसे मेरी पत्नी सम्बन्धी कामना किंचिन्मात्र भी गहरी नहीं उतरने पाई. तदनन्तर श्रीहरिनामका स्मरण करते २ सरोवरपर जाकर मैंने नित्यकर्म किया. तिसपीछे अपने स्थानं कल्पतरुके नीचे जाकर परम स्वस्थ चित्तसे बैठगया. इसभांति मेरा छठा दिन वहां निर्गत हुआ.

सप्तम बिन्दु.

फलसिद्धि.

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥
स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम्।
दैवेन नीयते देहो यथाकालोपभुक्तिषु ॥
धन्योऽहं धन्योऽहं कर्त्तव्यं मे न विद्यते किंचित्।
धन्योऽहं धन्योऽहं प्राप्तव्यं सर्वमद्य सम्पन्नम् ॥
अहो पुण्यमहो पुण्यं फलितं फलितं दृढम्।
अस्य पुण्यस्य सम्पत्तेरहो वयमहो वयम् ॥

अर्थ— दैववशात् जो लाभ हो उससे सन्तुष्ट रहकर, द्वंद्वातीत, मत्सररहित, सिद्धि और असिद्धिमें जिसको समान भाव है ऐसा जीव कर्म करता हुआ भी बँधाता नहीं; जैसे नदीजलका वेग काष्ठ (लकड़ी) को ऊपर नीचे करता रहता है, तैसेही दैव यथाकाल देहके योग्य उपभोगोंको भुगताता है. मेरा (जीवका) किंचिन्मात्रभी कर्त्तव्य नहीं रहा, इसीसे मैं धन्य हूँ, मैं धन्य हूँ. और आज प्राप्त होने योग्य सर्व पाचुका हूँ, इससे मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं. अहो ! मेरा पुण्य सर्वोत्कृष्ट है, इस पुण्यको भी वाह वाह है कि, जो पूर्णतया फलित हुआ. ऐसें पुण्यकी सम्पत्तिके कारणसे हम स्वयम् अहो धन्य हैं कि हम सर्वोत्तम भावको प्राप्त हुए.

प्रधान विशालको यज्ञभू कहता है आज सातवां दिन था, और यही अन्तिम दिन था. उन महात्मा महापुरुष योगिराजके दर्शनसे जिस महाप्रतापी ज्ञानका मैं आज भोक्ता हुआ हूं और असार संसार जिससे एकसा-समानरूपसे भासमान होता है, उस ज्ञानके दाता अपने गुरुजीके दर्शनकी बड़ी अभिलाषासे मैं अरुणोदय होनेसे पहले उठा. मंदमंद पवनकी ठंढी लहरोंसे इस आलस्यपूर्ण शरीरको चैतन्य आया. चारों ओर

सुगंध फैलाता हुआ, अंगको शीतल करता हुआ, रात्रिकी निद्राका नाश करता हुआ, सुखद पवन धीरे २ बह रहा था. इस गर्वपूरित समीरके बहनेसे मुदितमन हुआ यह जीवात्मा उस सरोवरपर गया. अहा हा ! वह मानस सरोवर सत्पुरुषके सुहृदयके समान स्वच्छ दिखाई पड़ता था; धर्माचारवालोंकी धर्मक्रियाके समान निर्मल था, सत्पुरुषके सत्य चिन्तनके समान पवित्र था, और परमपुरुषके समान (अ) पारदर्शक था; और जो परम ज्ञान सदा स्थिर है उसके समान उसका जल स्थिर होरहा था. नवमुकुलित पद्मोंमेंसे पराग चारों ओर फैलगया था. मैं अति प्रसन्न होकर प्रेमसहित उस सरोवरमें उतरा और स्नान किया; तदनन्तर सन्ध्या करके मैं उत्साहयुक्त हृदयसे गुरुजीके आश्रमकी ओर चला.

वे महात्मा योगीश्वर, पूर्वके वटवृक्षके नीचे ध्यान धरकर षड्रिपुओंका पराभव करके एकाग्र चित्तसे निरे निर्मल नेत्र मूंदे बैठे हुए थे. मैंने जातेही प्रणाम किया और वे ध्यानस्थ हैं ऐसा देखकर समीपही आसनपर बैठगया. उस समय मेरे मनमें संकल्प विकल्प होनेलगे कि सत्संग किया, आत्माको जाना, संसारभ्रमणमें जो विडम्बना है उसका अनुभव तो नित्य ही करता हूं, इस व्यवहारकार्यमें कैसे वर्त्तना, और ज्ञानानन्द क्या सो भी जानलिया, सब सत्य क्या और नित्य क्या ? ये सब तो मायाकी उपाधियां हैं. इनसे मनकी कुछ शान्ति हो और सुखानन्दमें निमग्न रहें ऐसा थोड़ाही प्रत्यक्ष होता है. ज्ञान बड़ा उत्तम है तथापि उससे जैसा चाहिये वैसा आनन्द न हो तो क्या उपाय करना चाहिये, यह सबसे विशेष आवश्यक है. ज्ञान ही तरणतारण है, वह ज्ञान कैसा होगा ? इस विषयको आज गुरुजीसे स्पष्ट समझूं तो ठीक सर्व कार्यकी फलसिद्धि मुझे जाननी चाहिये. ऐसे नाना प्रकारके विचार मनमें उठते थे और मैं पूछना चाहता था, इतनेमें गुरुजी समाधिमेंसे मुक्त हुए और उन्होंने प्रेमपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखा.

मैंने वारंवार प्रणाम किया. उन्होंने लंबे हाथ करके आशीर्वाद दिया. क्षणभर ठहरकर योगीश्वर बोले–' हे जीवन्मुक्त ! कल तेरा समय बड़े आनन्दमें व्यतीत हुआ है. उसमें कुछ भी संदेह जैसा नहीं रहा. एक जगदीश्वर परमात्माका सदा सर्वदा चिन्तन करना, वेदोक्त कर्मोंका अनुसरण करना, और सदाचारका पालन करना यह आर्य और मुमुक्षुका

नित्य कर्त्तव्य है; और परमात्माकी शुद्ध मूर्तिको ज्ञानद्वारा जान लेना और उसीमें तल्लीन होजाना यह मुक्तजनोंके लिये सिद्धसाधन है. महात्मा वसिष्ठजीने रामजीको उपदेश देते समय कहा था कि ज्ञानानुभवका कारण शिष्यकी प्रज्ञा है, और कुछ नहीं. इससे मनुष्यको इस प्रतिबिम्बरूप व्याप्त मायामेंसे मुक्त होनेका प्रयत्न निरन्तर करनाही उचित है, और महापुण्यरूप धनके बदलेमें, जो यह कायारूपी नाव, संसाररूपी दुःख-सागरको तैरजानेके लिये लाई गई है–मिली है, वह टूटफूट न जाय उसके पहले २, परले पार उतर जाना चाहिये. इस कार्यके लिये, जो २ ज्ञान गुरुमुखसे प्राप्त हुआ हो उसका सदा सर्वदा मनन करना, यही मोक्षका सर्वोत्तम साधन है. तेरे मनमें जो २ विचार कल स्फुरित हुए हैं उनसे तेरा परमात्मस्वरूपका ज्ञान सुदृढ़ हुआ है. तुझे जो कर्त्तव्य करना है और तू जो फलसिद्धिकी इच्छा रखता है सो अब तेरे लिये कुछ बाकी नहीं रहगई. परमात्मामें प्रेमपूर्वक एक चित्तवृत्ति रखना, यही अमृत-स्वरूप है; इसीका पान करनेसे हरकोई अमृत समानही होजाता है. चित्तवृत्तिका परमात्मामें ऐक्य होजानेपर वह और किसीकी इच्छा नहीं करता और न किसीका शोक करता है, न किसीसे प्रेम करता है, न किसीमें उत्साह करता है, उसको जान लेनेके अनन्तर वह जीव एका-कार–आत्माकार होजाता है और देहाकारका लय होजाता है. परमा-त्मामें जो प्रेम करना सो किसी कामनासे नहीं करना; केवल उसके चर-णोंमें अहर्निश चित्त लगा रहनेके लिये ही करना. दूसरे किसीका सेवन करनेमें–इस जगत्‌के सर्व पदार्थोंका सेवन करनेमें जो प्रयोजन होता है उससे सहस्रगुणा विशेष प्रयोजन परमात्माके सेवन करनेमें है; परमा-त्माका सेवन करना यही सर्वोत्तम फलसिद्धि है. इस विषयमें जगत्प्रसिद्ध राजगुरु विष्णुस्वामीकी कथा सुनः—

राजगुरु विष्णुस्वामीकी कथा–प्रयोजन क्या ?

परमप्रतापी महात्मा राजगुरु विष्णुस्वामी, दक्षिणदेशस्थ द्रविड़देशमें, नारायणभट्ट नामक सर्वगुणालंकृत एक द्विजके यहां जन्मे थे. बालपनसेही इस बालकका चित्त परमात्मामें लीन था. वह उसीका स्वरूप जहां तहां देखा करता था. एक समय उसके पिता वस्त्रालंकारोंसे सजकर राजसभामें सिधारते थे उस समय विष्णुने अपने पितासे पूछा–" पिताजी ! आप कहां

जाते हो ?" उसके पिताने कहा—"पुत्र ! राजसभामें, राजाजीके पास." विष्णुने पुनः प्रश्न किया—"राजाके पास जानेका क्या प्रयोजन ?" पिताने कहा—"राजाको प्रसन्न करनेके लिये. वह प्रसन्न हो तो अच्छा तुष्टिदान दे." इसीप्रकार और किसी समय राजाकी सवारी किसी ग्रामान्तरको जाती थी, तब फिर विष्णुने वही प्रश्न किया. उसके उत्तरमें पिताने कहा—"वह राजा इस राज्यका स्वामी है; वह बड़ा है इसीसे उसको प्रसन्न करनेके लिये." फिर एक बार सारा राजमण्डल उस समयके चक्रवर्ती राजासे मिलनेको जानेके लिये तैयार हुआ, तबभी विष्णुने वही प्रश्न किया. उसके प्रति-उत्तरमें उसके पिताने कहा—"वह सर्वोपरि राजा है, जो वह प्रसन्न हो तो बहुत अधिक लाभ हो. वह सब राजाओंको ग्राम ग्रास तथा वतन वजीफा देनेमें कुल मुख्तार है." यह सुनकर विष्णुने पूछा:—"पिताजी ! उससेभी बड़ा कोई है ?" उसके पिताने कहा—"उससे बड़ा तो स्वर्गका राजा इन्द्र है." विष्णुने पूछाः—"उसको माननेसे क्या प्रयोजन ?" उसके पिताने कहा—"वह हमको स्वर्गलोकमें लेजावे और नानाप्रकारके सुख ऐश्वर्य देवे." विष्णुने कहा—"उससे बड़ा कोई है ?" उसके पिताने कहा—"उससे बड़ा ब्रह्मा है, वह शिवजीका सेवक है और शिवजीसे बड़े विष्णु हैं." अन्तमें विष्णुने पूछा—"विष्णुसे बड़ा कौन है ?" तब उसके पिताने कहा—"उससे बड़ा सर्वव्यापी परमात्मा है." फिर विष्णुने पूछा—"उसका कोई स्वामी है ?" उसके पिताने कहा—"नहीं, उससे बड़ा कोई नहीं, वह अजन्मा नित्य और सनातन है; वह अनेक सूर्योंसे भी अधिकतर तेजस्वी है; सौंदर्यमें सर्वोपरि है; माधुर्यमें मनोहारी है; लीलामें अलौकिक है; कान्तिमें कोटिचन्द्रसे भी बढ़कर है; पराक्रममें अद्वितीय है; सर्वकर्त्ता, सर्वभर्त्ता, सर्वहर्त्ता, और सबका सर्वस्व वही है. उसके स्थानमें अनेक कुञ्ज लताएं हैं; उसका मंदिर विश्वव्यापी है; उसके दास दासी असंख्य हैं; वह जगत्की श्री, सुख, सम्पत्तिका स्वामी है; उसकी आज्ञामें सब हैं; वह किसीकी आज्ञामें नहीं. सर्वप्रकारके आनन्दका, सुखका, वैभवका, शान्तिका उसके राज्यमें निवास है; उसका मंदिर मणिमय महायोगशिखास्तम्भका है. वह अति अनुपम है. वहां वेद-वेदान्त सर्वशास्त्रमय सच्चिदानन्दघन परमात्मा परम परमानन्दस्वरूप, अनेक कोटि, नित्यसिद्धि, साधनसिद्ध भक्तोंसहित योगपीठपर एकाग्रचित्तसे

ध्यानावस्थित रहता है. वह अक्षरातीत है, नित्यानन्द है, परमानन्द है, सर्वका ज्ञाता, सर्वका दाता और सर्वका नियन्ता है. वह परसे पर–परात्पर है, उससे परे कोईभी नहीं."

पिताका ऐसा संभाषण सुनकर विष्णुने पिताको प्रेमपुरस्सर प्रणाम करके कहा–"हे पिताजी ! ऐसे सच्चिदानन्दघनको छोड़कर इस जगत्के अज्ञ-जीवों और उनके सेवकोंके सेवन करनेमें क्या प्रयोजन ? मैं तो अब और किसीका सेवन न करके केवल उसीका सेवन करूंगा और उसीका सेवक होकर रहूंगा. जिससे परे कोई नहीं, जो क्षरसे भी पर अक्षरमें रहता है, जिसको जाने पीछे कुछ जानना बाकी नहीं रहता, जिसको देखनेपर और कुछ देखना शेप नहीं रहता, और जिसके सेवनसेही सर्व सिद्धियां मिलती हैं, तो हे पिताजी ! मुझको अब दूसरे किसीकी सेवा करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं– वह तो निरर्थक पीड़ा ही है."

इतना कहकर विष्णुने संन्यास लेलिया–त्रिदंडी संन्यासी होगया. तिसपीछे वह नित्य नियन्ता साक्षात् परमात्माका सेवन करने लगा. उसके मनमें परमात्माकी ही दृढ़ आस्था थी. वह उसके सिवाय और किसीका मनमें संकल्पमात्रभी नहीं करता था. उसने एकवार परमात्माको भोग धरकर कहा–"जिसका कोई स्वामी न हो, और जो किसीका सेवक न हो; वही मेरे इस भोगको आरोगे, जिससे परे और कोई न हो, वही इस भोगको भलेही ग्रहण करे." पहले तो उसकी दृढ़ता देखनेके लिये परमात्माने उस भोगको ग्रहण नहीं किया; परन्तु जब सात दिनतक वह दृढ़ निश्चयवाला और संकल्प विकल्पसे बिलकुलरहित ज्ञात हुआ तब परमात्माने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसको उपदेश दिया. तिसपीछे वही परमात्मा नित्य उसका भोग आरोगता था.

हे विदेह ! इस कथाका रहस्य ऐसा है कि परमात्माके सिवाय अन्यके सेवन वा ध्यानसे कुछ प्रयोजन नहीं. परमात्मा तो कल्पवृक्षके समान है. जो परम विशुद्धसे उसका सेवन करे तो सहजमें उसका साक्षात्कार होता है, जिससे सर्वकार्य सिद्ध होते हैं, और जिसका कोई स्वामीही नहीं ऐसे परमात्मामें एक दृढ़ चित्तवृत्ति स्थित रखकर इस संसारमें रहनेपरभी मनुष्य सायुज्य मुक्तिको पा जाता है ऐसी वृत्ति यही मुख्य कृतकृत्यता है.

संसार-व्यवहारमें रहे हुए सर्व मुमुक्षु जनोंको परब्रह्म-ज्ञानके लिये पूरी २ चेतना रखनी चाहिये. यह चेतना कैसी है इस विषयमें एक पुरातन कथा सुनः—

प्रभुभजनमें-चेतना.

एक समय कौरव और पांडव गुरु द्रोणाचार्यके पास युद्धविद्या सीखते थे. युद्धविद्या सीखनेवालोंमें अर्जुन सबसे आगे रहा करता—उसको अग्रगण्य रहता देखकर उसपर तथा उसके भ्राता पांडवोंपर, कौरवोंके मनमें ईर्षाका बीज बोया गया था. उसी समय कर्णभी अपने पालक पिता अधिरथकी इच्छासे वहां (हास्तिनापुर) धनुर्विद्या सीखनेके लिये आया. इस कर्णने पाठशालामें आकर अपने चातुर्यसे किसी २ बातमें तो अर्जुनको भी मातकर दिया अर्थात् बहुतसी विद्याओंमें वह उससेभी आगे बढ़ चला. दुर्योधनादिकको यह बहुत अच्छा लगा. उन्होंने तुरन्त कर्णके साथ मित्रता करली और उसके साथ मिलकर अर्जुनसे विशेष द्वेष करने लगे. दुर्योधन अपने मनमें ऐसा समझता था कि 'कर्ण जैसे वीरपुरुषको जो हम अभीसे सन्तुष्ट रक्खेंगे और मित्र बनाये रहेंगे तो और आगे यह बड़ा काम देगा.' ऐसे अभिप्रायसे जब कर्णको कहीं जाना आना हो तब वे अपना रथ, सारथी देते और अनेक भांतिसे उसको अपेक्षित वस्तुओं तथा खानपानादिकसे प्रतिदिन सन्तुष्ट और प्रसन्न रखने लगे.

कर्ण सदा अपनी सीखी हुई विद्याको सरल करने और उसका भलीभांति अभ्यास करनेके लिये रथमें बैठकर अकेला वनमें जाया करता था. उस समय वह एक सारथीके सिवाय और किसीको अपने साथ नहीं लेजाता. कारण यह कि, बहुत मनुष्य साथमें हों तो अभ्यास करनेमें चित्तकी एकाग्रता न रहे. इसीप्रकार वह एकदिन रथमें बैठकर वनमें गया और खुले मैदानकी ओर रथ हांकनेकी सारथीको आज्ञा की. पाठशालाके विद्यार्थियों (राजपुत्रों) के साथ उस दिनकी चढ़ाचढ़ीसे वह कुछ चिढ़ा हुआ होनेसे तथा निशाना मारनेपर उसका मन बहुत उत्तेजित होनेसे वनमें आतेही उसने सारथीको रथ छोड़नेकी आज्ञा दी और बालू (रेत) में तीन बड़े बरुक (सरपत) खड़े कर उनपर अपने पासका एक स्वयं फिरनेवाला सुन्दर पक्षीके आकारका खिलौना जमाया. वह पक्षी अपनी चोंचमें

तीन फूलवाली झाड़की टहनी लेकर निरन्तर चक्राकार घूमने लगा. कर्णके मनमें यह समाया था कि एकही वारमें फिरतेहुए पक्षीके मुंहमेंकी डालीके छोरपरके तीन फूलोंमेंसे बीचवाले फूलको अपने बाणकी चोटसे उड़ा दूं-तोड़ दूं; परन्तु ऐसा करनेमें आसपासके फूलोंको किंवा उस डालीके एकाध पत्तेको अथवा उस पक्षीको, अपने बाणसे तनिक भी हरकत नहीं पहुँचनी चाहिये. कर्ण निशानको जमाकर हाथमें धनुष्य बाण लेकर उस फूलको तोड़नेके लिये तयार हुआ. उस समय उसकी दृष्टि उस निशानेपर थी, और मार्गकी ओर पीठ करके उस निशानेको एक लक्ष्य करता २ पीछे हटता चला आरहा था. इसप्रकार उलटे पांव चलते २ वह लगभग सौ एक कदम दूर पीछा हट गया तबभी उसका धारा हुआ (अनुमान किया हुआ) अन्तर पूरा नहीं होनेसे वह अपनी उसी धुनमें पीछेही हटता चला जाता था; सारथी निशानके निकट खड़ा २ उस खिलौनेके घूमने फिरनेकी खूबी देखरहा था. उसकी दृष्टि यकायक कर्णकी तरफ गई. ज्योंही कर्ण अन्तिम पांव उठानेकी तयारीमें था कि तत्क्षण उस सारथीने यकायक चोंककर अपने पासकी चाबुक (रथके घोडोंके हांकनेकी लकड़ी) से उस फिरतेहुए खूबीदार निशानको तोड़कर भूमिमें गिरा दिया और स्वयं भागकर रथकी ओटमें जा बैठा.

कर्णकी दृष्टि तो उस निशानपरही थी, इससे सारथीने यकायक निशान गिरादिया, यह देखकर जो पांव उठानेवाला था सो निराश होकर वह पांव पीछे न रखते उसने आगे रक्खा और वहांसे क्रोधपूर्वक दौड़ता हुआ सारथीके पास आया; और सारथीको धनुष्यका गोदा देकर लात मारना चाहता था कि, तत्क्षण उसने हाथ जोड़कर दंडवत् नमस्कार किया और चरणोंमें गिरकर कहने लगाः'-मेरा अपराध क्षमा कीजिये !' ऐसी दीनवाणीसे कहकर रोने लगगया. यह देखकर कर्णको दया आगई और वह कुछ शान्त हुआ. महात्माजनका क्रोध बहुत देरतक नहीं रहता. पीछे कर्णने उसका हाथ पकड़कर उठाया और पूछा-“ अरे ! तूने यह क्या किया ? मेरा ऐसा अच्छा निशाना और इतनी देरतक किया हुआ श्रम सबको मिट्टीमें मिला दिया ? ” यह सुनकर सारथीने कहा-“ महाराज ! मैंने जो कुछ किया वह और किसी कारणसे नहीं. किन्तु केवल आपके हितके लिये ही किया है. यह निशाना आपके शरीरसे बढ़कर विशेष

मूल्यवान् नहीं था." यह सुनकर कर्ण बड़े अचंभेमें पड़ा, और उसका कारण पूछने लगा; तब सारथीने कहा–" महाराज! आप जहांसे अभी दौड़कर आये हो वहीं पीछे उन्ही कदमोंसे जाइये और अन्तका पांव जहां गिरे वहां देखिये कि क्या है?" तत्क्षण कर्ण और सारथी दोनों साथ २ वहां गये और अन्तके पांव रखनेकी जगह देखते हैं तो वहां झाड फूस छाया हुआ जंगली कुआ था कि जिसकी गहराईका कुछ ठिकाना न था, और जंगलमें होनेसे उसमेंके हवा पानी ऐसे जहरीले होगये थे कि उसमें गिरनेवालेके अधबीचमें ही प्राण छूट जायँ. यह देखकर कर्ण बड़ा चकित हुआ; और अपने सारथीकी चालाकी तथा सावधानी देखकर सन्तुष्ट होकर कहने लगा–" शावाश सूत! तुझे धन्य है. शाबाश तेरे कृत्यको! आज तूने मुझको कालके गालमेंसे बचाया है, तेरी इस सावधानीके लिये मैं तुझको दुर्योधनकी राजसभामें बड़ा अधिकार दिलाऊंगा; क्योंकि अब तू केवल सूत (सारथी) का ही काम करनेके योग्य नहीं, किन्तु बड़े पदके योग्य (पात्र) है." ऐसा कहकर दोनों रथके पास आये और घोड़े जुतवाकर रथमें बैठकर हर्षित होतेहुए हास्तिनापुरकी ओर चले.

कर्ण बड़ा बुद्धिमान् था, इसीलिये समझगया कि इसने मेरी प्राणरक्षा की है; परन्तु कोई दूसरा बेसमझ होता तो उस समय यही प्रश्न करता कि ऐसाही था तो तुझे मेरा निशाना न बिगाड़ते हुए मुझको लौटआनेको कहना था. परन्तु जो सारथी ऐसा करने जाता तोभी अनिष्ट ही होता, क्योंकि यदि वह ऐसा कहकर पुकारता कि 'पीछे कुआ है, उसमें गिर-जाओगे, इससे पीछे लौट आओ.' तो कर्ण यकायक आश्चर्यसे चौंककर घबराहटमें पीछे फिरकर देखने लगता तो कुँएमें गिरपड़ता जिससे उसकी प्राणहानि होती. निशाना गिरादिया यह भी आश्चर्यकी बात थी, तथापि उसके देखते २ ऐसा हुआ क्योंकि उसकी दृष्टि उसीपर थी, इसकारण वह विना किसी कठिनाईके पीछा हटनेसे रुक कर आगेको ही दौड़ा. अकस्मात्से मनुष्य बहुत घबराजाता है; और घबराहट उसको देहके जोखममें डालदेती है. तदनुसार यदि कर्णको " वहां कुआ है " ऐसा कहा जाता तो वह पीछे फिरकर देखने लगता और कुआ देखकर ही चक्कर खाकर उसमें गिरपड़ता, अतएव उस सारथीकी चेतनाको धन्य है.

मुमुक्षुजन इसी दृष्टान्तको दूसरी ओर घटा सकते हैं. यहां कर्णको ब्रह्मविद्याका अभ्यासी पुरुष जानो और निशानेको ब्रह्म मानो. मुमुक्षुको संसारमें रहते हुए भी एक लक्ष्य रखकर चलना चाहिये. ऐसे वर्त्तनेसे, शुद्ध मुमुक्षुजनको किसी रीतिसे भी इस संसारकी माया मोहित नहीं करसकती. संसारमें यह चेतना रखना कि प्रभुको भजतेहुए कदाचित् संसाररूपी नरकवासनारूप कुएमें गिरपड़े, अतएव उससे बचानेके लिये गुरुरूपी सारथी मुख्य है. हे जीवन्मुक्त ! मैं तुझको विशेष क्या कहूं ? परन्तु इतना तो तुझे अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि संसारमें रहता हुआ कोईभी जीवन्मुक्त प्राणी जो परमात्मामें एकलक्ष्य हो रहता है तो उसको किसीका आवरण नहीं होनेपाता. मनुष्यजन्ममें मुख्य श्रेष्ठ साधन यही है कि रहँटकी घटमालामेंसे मुक्त होना. चाहे जो कार्य करो परन्तु सर्वोत्तम, परमश्रेष्ठ कार्यकी सिद्धि, जिस साधनसे नारद भगवान्को हुई थी, वही है. उस कथाको तू एकाग्र चित्तसे श्रवण कर, यही इस जन्मका मुख्य फल—सार्थक्य है.

परम साधन.

भगवान्के परमभक्त नारदजी दासीपुत्र थे. जन्मतेही उनके हृदयमें परमात्माकी लगन लगी हुई थी. इस सृष्टिमें चार सिद्धज्ञानी गिनेजाते हैं; नारद, वामदेव, प्रल्हाद और शुक. इन चारों ज्ञानियोंको माताके उद-रमेंसेही, परमपुरुषका साक्षात्कार और परमतत्त्वका ज्ञान था. नारदजी भी वैसे ही थे. उनकी माताने उनको बाल्यावस्थामेंही परमात्मा—सम्बन्धी ज्ञानोपदेश दिया था, वे हरि गुरु, सन्तकी सदा सेवा किया करते थे. जब बड़े हुए तब परमात्माकी उपासना करनेके लिये वे एक घने अरण्यमें चले गये और एक आम्रवृक्षके नीचे आश्रम स्थापित करके वहां रहकर प्रभुका सेवन करनेके लिये उग्र तप करना आरम्भ किया. तप करते २ अनेक वर्ष बीत गये तोभी उनके मनमें यही उत्कट इच्छा थी कि श्रेष्ठ साधन कौनसा है सो जानना. उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हुई. वनमें पक्षी और जानवरोंकी बड़ी पीडा होनेपरभी वे अचल मनसे तपका आचरण करते रहते थे. उनके तपोबलके प्रभावसे इन्द्रके मनमें यह भय पैठ गया कि वे मेरा इन्द्रासन लेना चाहते होंगे, इससे उसने तपका भंग करनेके लिये अनेक अप्सराओंको भेजा. परन्तु दृढ़तर ध्यानी नारदजी तनिकभी

चलायमान नहीं हुए. जब सारी अप्सराएँ निराश होकर लौटगईं और इन्द्रको वृत्तान्त निवेदन किया, तब इन्द्र चिन्तातुर मनसे ब्रह्माके पास गया, और उसने उनसे प्रार्थना की–" हे देव ! जो नारदजीका तप भंग नहीं होगा तो निश्चयकरके मुझको मेरे पदसे च्युत–भ्रष्ट होना पड़ेगा, और वे न जाने देवलोकको कैसे पीडित करेंगे ?" इस वचनसे भयाकुल हुए ब्रह्मा नारदजीके समीप आये और बोले–"पुत्र! जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग." तब नारदमुनि बोलेः–" मुझको किसी बातकी तृष्णा नहीं, परन्तु, यह कहिये कि, परम साधन क्या है ? इस भययुक्त संसारमेंसे मुक्त होनेका और नित्य–सत्य परम पदार्थको पानेका साधन क्या ? " ब्रह्माको उस साधनकी खबर न होनेसे उन्होंने अनेक प्रकारकी बातें कहीं, परन्तु उनसे उनके मनका सन्तोष नहीं हुआ; इससे नारदमुनिने फिर तपश्चर्या आरंभ की.

फिर हजारों लाखों वर्ष बीत गये. देवलोकमें खलबली मचगई. इन्द्रासन डोलने लगा, ब्रह्मलोक थरथराने लगा, पृथ्वी कांपने लगी, सातों पाताल खलबला उठे; तब शिवजी प्रचण्ड भैरवनाथका रूप धारण करके नारदजीको उनके तपसे विचलित करनेके लिये आये. शंकर भगवान् महाभयंकर रूपसे कोप करके, अपने विकरालरूपसे उनको ग्रस लेने–खाजानेके लिये तयार हुए; परन्तु जिनको श्रीहरिका पूर्ण विश्वास था वे नारदमुनि किंचिन्मात्रभी चलायमान नहीं हुए, न क्षोभको प्राप्त हुए. भैरवनाथ उनके ऐसे उग्र और दृढ़ स्वात्मबलको देखकर प्रसन्न होकर बोले कि–" यथेच्छ वर मांग." तब नारदजीने कहा–"मुझको इस लोकके किसी पदार्थसे प्रीति नहीं. मुझको ये समग्र वस्तुएं असार दिखाई देरही हैं. केवल परमात्मामें एकचित्त रहे वही वस्तु मिले तो मैं अपने आपको कृतकृत्य समझूं. ऐसी कोई वस्तु हो तो इस जीवको दो. कहो, परम साधन क्या है ?" यह देने और कहनेमें तो शिवजीभी असमर्थ हुए और तत्काल वहांसे अन्तर्धान होगये.

नारदजीका उग्र तप चलताही रहा. उनके तपके प्रबल प्रभावसे प्रसन्न होकर साक्षात् ब्रह्मस्वरूप परमात्मा प्रगट हुए और नारदजीके शिरपर हाथ रखकर उनको जागृत किया. नारदमुनिने परमात्माके दिव्यस्वरूपसे मोहित होकर उनके चरणारविन्दका चुंबन किया और कहा–" हे प्रभु !

जिससे मुझको माया आवरण न कर सके, और आपके चरणोंमें मेरी पूर्ण प्रेममय श्रद्धा निरन्तर दृढ़ बनी रहे ऐसा जो उपाय हो सो कहिये. अर्थात् परम साधन क्या है सो कहिये ? " परमात्माने कहा–" हे नारद ! जो तेरी इच्छा है सो बड़ी उत्तम है, इससे मैं तुझे कहता हूं कि पूर्णप्रेमसे मेरी भक्ति करना, अहर्निशि मेरी ओर चित्तवृत्तिको लगाये रखना, मुझेही मनमें धारण करना, मेरा ही ध्यान करना, यही उत्तम साधन है. तूने जो उग्र तपश्चर्या की है वह ऐसी है कि, उसके समान दूसरी नहीं. असार वस्तुको तूने त्याग दिया है. और केवल मैं जो जगदीश्वर परमात्मा पूर्ण ब्रह्म हूं उसकोही तूने चाहा है. और मैं कहता हूं कि, तेरे इस उत्तम भक्तिभावसे तेरे हृदयमेंसे मेरा स्मरण दर्शन त्रिकालमेंभी चलायमान नहीं होगा. मैं जो पर-ब्रह्म उसकी प्रेमलक्षणा भक्तिका सत्यस्वरूप तुझको मेरे पूर्णभक्त शिवजी दिखलावेंगे और तुझको मेरे प्रतापसे त्रिकालज्ञान होगा. हे प्रेमी ! माया ममता तुझको कदापि विचलित नहीं करसकेगी. नित्य, मुक्त, अजन्मा स्वरूपका तुझे जो यह साक्षात्कार हुआ है सो तेरी दृष्टिमें, मनमें, श्रवणमें और संकटमें सदाकाल प्रदीप्त रहेगा. यही परम सिद्ध साधन है. " ऐसा कहकर ज्योंही परमात्मा नारदजीके घटमें वास करने जाते थे कि तत्काल यह आकाशवाणी हुई:—

वसन्ततिलका वृत्तम्.

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ।
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ॥
अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम् ।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम् ॥

जो हरिका आराधन किया हो तो फिर तपसे क्या काम है ? जो हरिका आराधन किया ही न हो तो पीछे तपका क्या काम है ? यदि अन्तरमें और बाहरमें हरिही है तो फिर तपमें क्या विशेषता है ? और यदि अन्तरमें तथा बाहरमें कहीं हरि नहीं है तो फिर तपसे क्या होनेवाला है ? " हे नारद ! तेरे हृदयमें सचराचर प्रभुने निवास किया है, तूने मनका अवरोध करके बाह्येन्द्रिय और अन्तरिन्द्रियके विषयोंको सब भांतिसे सर्वथा त्याग दिया है; तेरा आत्मा परमात्माके साथ संमिलित होगया है, इसलिये अब तुझे तप करनेका कुछभी प्रयोजन नहीं रहा. परमात्मा परके

पूर्ण प्रेमभावसे तू निष्काम रहेगा. तेरा योग तीव्र है. तूने आत्मा परमात्माका ऐक्य किया है. तेरा अन्तःकरण. संकल्प-विकल्पसे रहित होगया है, इससे कोईभी पदार्थ तुझे आवरण वा विक्षेप नहीं कर सकेगा. स्मरण रखना कि, परमात्मामें जिसकी लौ लग जाती है उसको फिर किसी श्रेष्ठ साधनकी आवश्यकता रहतीही नहीं. ”

तत्क्षण आकाशवाणी बंद हुई; और नारदजी वीणा बजाते हुए सर्वत्र हरिनामकी ध्वनि करते हुए, शिवजी जो सर्व विद्याओंके ईश सर्व भूतोंके ईश्वर और सचराचरके गुरु हैं, उनके पास गये. प्रेमपुरःसर प्रणाम करके विनती की, कि, मुझे परमात्माके स्वरूपका उपदेश कीजिये. प्रथम तो शिवजीने अस्वीकार किया, परन्तु त्रिपुरासुरके युद्धमें, उन संहारक प्रभुने त्रिपुरासुरका नाश किया, तब नारदजीने अनेक प्रकारसे शिवजीकी स्तुति की. उससे प्रसन्न होकर, शिवजीने परमात्माके सत्य स्वरूपका उपदेश देते हुए कहा—“इस जगत्में समस्त पदार्थ असत्य—नाशवान् हैं. केवल एक परमात्मा मात्र सत्य है. जो तीनों कालोंमें रहता है उसे सत्य कहते हैं. परमात्मा तीनों कालमें विद्यमान रहनेसे सत्य है और उसके अस्तित्वसे ही अन्यान्य नाशवान् पदार्थोंका अस्तित्व देखनेमें आता है. वह सर्वव्यापक परमात्मा, मायोपाधिसे जगद्रूप हुआ है. उनका एक निष्ठासे स्मरण मनन करना, सर्व वासनाओंसे रहित होना, और नेत्रोंको पीछे लौट कर, हृदयाकाशमें स्थित आत्मस्वरूप कि जिसमें उन्हींका स्वरूप विराजमान है, उसको यथार्थ जानना, यही सर्वोत्तम मोक्षका साधन है.” इतना उपदेश देकर शिवजी अन्तर्धान होगये.

इसभांति विदेही नारदने परमात्माको अपने अंतर बाहर सर्वत्र स्थान दिया. प्रेमसे निरन्तर परमात्माको धारण करना यही परम साधन है, यही श्रेष्ठ धर्म है, यही उग्रतप है, यही मुमुक्षु प्राणीका कर्त्तव्य है और यही मुक्त करनेवाला है. सात दिनमें जो तूने परमात्माका ज्ञान प्राप्त किया है उससे मैं जानता हूं कि, तू सर्वदर्शी होजायगा, और तेरे संकल्प विकल्प सब नष्ट होजावेंगे, तेरी बाह्य चित्तवृत्तिको संसार आवृत नहीं करसकेगा.

यज्ञभूका उत्तरवृत्तान्त.

इतना कहकर साक्षात् परमात्माका अंशावतार महात्मा योगेश्वर महाप्रभुने

विश्राम लिया; और अपनी जटामेंसे एक अमृतफल निकालकर मुझें दिया. हे विशाल ! उस फलको, मैंने प्रेमपूर्वक प्रणाम करके हाथमें लिया. तब उन महात्माने मुझको अत्यन्त प्रेमसे विदा होनेकी आज्ञा दी, और मैं प्रफुल्ल हृदयसे आनन्दरसमें मग्न होता हुआ वहांसे विदा होकर अपने नित्यके कल्पवृक्षके नीचे आकर बैठा. हे विशाल ! वहां बैठकर मैंने चारों ओर दृष्टि फेंकी तो अहा ! दशों दिशाओंमें मुझको आनन्दही आनन्द दिखाई देने लगा. मन्द २ पवनकी लहरोंसहित निर्मल गगनमंडल, दिवसके समान उज्ज्वलतासे प्रकाशमान जानपड़ता था; अमर, किन्नर, विद्याधर और गन्धर्व मुझपर कुसुमवृष्टि करनेलगे, तथा कल्याण २ का आशीर्वाद देतेहुए ज्ञात हुए. परम पवित्र गंगा यमुना कलकल शब्द करती वहती हुई देखनेमें आई, सत्पुरुषकी उज्ज्वल कीर्तिके समान और सर्व अचलों (पर्वतों) के चक्रवर्ती जैसा, यशस्वी हिमालय मुझको अपनी शिखापर विठाकर मानों गगनमंडलमें समारहा हो ऐसा भान होने लगा; यत्र तत्र विहार करती हुई सुरांगनाएं मेरे मस्तकपर आकर वेणु वीणा आदिके नादसे हृदयको आह्लादित करने लगीं, विद्याधरियां परमात्मामें तल्लीन करनेवाले और अंगमें रोमांच करतेहुए मधुर राग श्रवण कराने लगीं. उस समय मेरे तनमें, मनमें, हृदयमें और आत्मामें सर्वत्र, एक मात्र परब्रह्मके नित्य लीलामय स्वरूपकाही ध्यान लगारहा था. संध्या हुई–मानों वैतालिकने आकर कहा हो कि 'हे विदेह ! अब शान्त हो और मायिक विचारोंको त्याग;' कि तत्काल चक्रवाकने चकवीका त्याग किया. मेरे मनमें अनेकानेक विचार आये कि यह महापुरुष योगेश्वर कि जिन्होंने निःस्वार्थ–विना किसी अपने लाभके मुझको इतना सद्बोध दिया सो न जानें कौन होंगे ? तब मुझको मेरा अन्तरात्माही ऐसा कहता हुआ जानपड़ा कि यही साक्षात् कैवल्यमूर्ति है, और मेरे पूर्वजन्मके किसी पुण्यप्रभावसे उन्होंने यह अमूल्य वोध दिया है. महात्मा पुरुष जनकल्याण करनेमें प्रतिफल–वदलेकी अपेक्षा नहीं रखते. उनके बोधके प्रतापसे मैं आशा, तृष्णा, मोह, ममता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इन्होंसे रहित होकर, परमात्माका पूर्ण प्रेमी भक्त वनकर, आनन्दकी लहरोंमें मग्न होने लगा; और हे विशाल ! मैं यह नहीं कह सकता कि, उनमें मैं कहांतक मग्न होता रहा. अभीतकभी मग्न होरहा हूं. जैसा आनन्द मुझे कल्पवृक्षके नीचे हुआ था वैसाही आनन्द अद्यपर्यन्त

मुझको होता जाता है, और तू निश्चय समझ कि, यही आनन्द इस मायिक देहके गिरजानेतक ज्योंका त्यों बना रहेगा.

पीछे मैंने अपना नित्य कर्म-सायंसन्ध्या कर ली. सारे दिनका भूखा और थका हुआ था, इससे महात्मा योगीश्वरके दिये हुए प्रसादीभूत फलको अब मैंने प्राशन किया, तब मैं क्या देखता हूं कि मुझको सब प्रकारका ज्ञान होगया. मेरे सन्मुख तीनों कालकी लीला नृत्य करती हुई दिखाई पड़ी. मेरे हृदयमें इस उपाधिवाले सांसारिक जंजालके लिये यत्किंचित् भी भाव नहीं था, परन्तु मानों परमगुरु मेरे हृदयमें प्रेरणा करने लगे कि 'बचा! संसारकी कसोटीपर चढ़े बिना पूरी २ परीक्षा नहीं होती. सो, हे विदेह! निर्भय होकर संसारमें रह. जो भावीका निर्माण किया हुआ है उसे भोग. स्वपत्नीसहित सद्धर्मसे रहकर प्रजापालन करता हुआ क्षात्र-धर्मका अनुसरण कर. स्वधर्मका त्यागही अधोगतिका कारण है. संचित भोग और क्रियमाणमें सचेत रह.' ऐसाही हुआ. क्योंकि ज्ञान होनेसे पूर्व जिनका फल होना आरंभ होचुका हो वे कर्म अपना फल दिये विना-भुगताये सिवाय नष्ट नहीं होते. किसी पुरुषने गौको बाघ समझकर बाण छोड़ा और छोड़ देनेपर जाना कि 'अरे रे! यह तो गाय है;' तथापि बाण पीछा नहीं मुड़ता-लौटता, वरन् वह अपना काम करता ही है. इसी-प्रकार ज्ञानियोंकाभी प्रारब्ध बलवत्तर होता है. उस प्रारब्धका क्षय भोग-नेसेही होता है. ब्रह्मरूपकी एकता होनेके पहले, फल देनेमें तत्पर हुए प्रारब्धोंको भोग लेनेसे ही सिद्धि सफल है; ब्रह्मस्वरूपकी एकता होजानेपर न तो संचित है, न क्रियमाण है और न प्रारब्धः, कुछभी नहीं रहता. कारण यह कि, स्वरूपानुसंधानमय आत्मा निर्गुण ब्रह्मरूप है. वह चिद्रूप, सद्रूप, आनन्दरूप, नित्य, क्रियारहित, ब्रह्मरूप है. वह विषयरहित, आश्चर्यरहित, निरंजन, ब्रह्मरूप है; और महात्मा उस तत्त्वको जानकरके उसके उत्तम परिणाममें आत्माका परमात्माके संग योग करके परम सुखको प्राप्त होगये हैं. इसलिये हे विशाल! तू भी इस परमतत्त्वरूप और आन-न्दघन आत्माका स्वरूप विचार करके-जानकरके, अपने मनसे कल्पित इस जगत्के असत्यसे सँभालकर, मोहको त्यागकर, मुक्त, कृतार्थ और प्रबुद्ध हो.

उस आश्रममें मेरे मनमें स्फुरित हुए ऐसे बोधवचनोंकी प्रेरणासे तथा उत्तेजित वाक्योंसे ललकारा गया होऊं "इसभांति अथाह संसारको तैर

जानेको, उसमेंके मगरमच्छ, भ्रमर–चक्र, और बड़ी २ लहरोंमेंसे पार उतर जानेको तयार-होऊं." ऐसी मेरी चित्तवृत्ति होगई; प्रतिभा पलटगई; मुझको गुरुप्रसादीके प्रतापसे–प्रभावसे उसी क्षणसे सर्व पूर्ण ज्ञान होगया, कि, जो अभीतक गुरुप्रतापसे जैसेका तैसा प्रदीप्त है; और जिस परमात्माका मेरे हृदयमें, चित्तमें, मनमें, अन्तरमें, आत्मामें, निरन्तरका निवास है उसका प्रभाव निस्तेज नहीं होसकेगा.

ईश्वरी लीला अगाध है. यद्यपि मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त होचुका था तो भी तत्काल मेरे संबंधमें क्या होनेवाला था वह, उन योगीश्वरके प्रतापसे, मेरी दृष्टिके बाहर–अदृश्य था. तिसपीछे आनन्दसागरमें तैरता हुआ यह देह, उस कल्पवृक्षके नीचे गाढ़ निद्रामें लीन होगया, और आश्चर्यके साथ दूसरे दिन मेरा यही देह इस नगरके पश्चिमद्वारके नदीतटपर स्थित मंदिरके चौकमें पड़ा हुआ दिखाई दिया. मुझे यही निश्चय हुआ कि, सात दिनमें जितना मेरे ज्ञानने योग्य था सो संपूर्ण मुझे सिखाकर, इस व्यवहारकार्यमें प्रवृत्त होनेके लिये मुझको पीछा यहीं ला छोड़ा है. दैवेच्छाके आधीन कौन नहीं होता ?

मेरे हृदयमें परमात्माके निरन्तरके निवासके कारणसे पूर्णानन्द था. इष्टकी प्राप्तिका विचार ही नहीं था. वैभवयुक्त राज्यसंपत्ति मिले, वा अरण्यके पलाश (पत्ते) मिलें; किसीकी कुछ इच्छा ही नहीं थी, 'यह देह गिरे' वा रहे इसका संकल्पही न था; इससे इस मायामय जगत्के जंजालका दर्शन होनेसे पूर्वसदृश ही वैराग्य मुझे बनारहा. मेरे पिताका राज्य, इस देहके शत्रुने छीनलिया था, परन्तु दैवकी ऐसी इच्छा नहीं थी, कि, मुझे उसका संहार करके राज्य संपादन करना पड़े. उसकी इच्छा कुछ औरही थी. जिस मंदिरमें मैं पड़ा हुआ था, उसीमें कितनेही दिनतक रहा. एक समय वह शत्रुराजा वहां आया और मुझमें कुछ विचित्रभाव देखकर मेरे चरणोंमें गिरपड़ा, और कहने लगा–"बलिभक्षकुमार! मैं तेरी शरण हूं, मेरा अपराध क्षमा कर; और अपना राज्य फिर ग्रहण कर." क्षत्रियबुद्धिके वश होकर मैंने उसको कहा–" युद्ध कर. " तब उस शत्रु–राजाने कहा–" जिसके प्रतापके सन्मुख नारायणका सुदर्शन और नरका गांडीव भी नमन करता है, उसके साथ यह अल्प प्राणी कैसे युद्ध करे ?" ऐसा कहकर दंड-

वत् नमस्कार करता हुआ और गद्गद वाणीसे प्रार्थना करता हुआ वह भूमि-पर गिरगया. मैंने दया दर्शाकर उसको उठाया और उसके मनकी शान्ति करके, मैंनें उस राजाकी इच्छानुसार अपने नगरमें प्रवेश किया और प्रजावृन्दके आशीर्वादसहित मैं सिंहासनारूढ हुआ. तदनन्तर मैं देह रहनेपर भी विदेह होकर परमात्माकी योजना की हुई और सौंपी हुई इस प्रजाका, उसकेही प्रभावसे पालन करके, जनकके समान, उसका दास बनकर राज्य करने लगा. उस दिनसे उसी परमात्माके दर्शनमें निमग्न रहकर संसारमें विचरता हूं. मैं नेत्र होते हुए भी अंधा हूं, कान होनेपरभी बहरा हूं, वाणी है तब भी गूंगा हूं, इन सर्व दृश्य पदार्थोंमें मेरा जो कुछभी है सो सब परमात्मासम्बन्धी है; मैं जो कुछ देखता हूं, सो परमात्माका नित्य शुद्ध स्वरूप देखता हूं, जो कुछ सुनता हूं सो उसीका गान सुनता हूं, जो कुछ बोलता हूं सो उसीके गुणगान हैं. 'दासोऽहम्' होनेपरभी मैं 'सोऽहम्' ही हूं. रागसे भी नहीं, अनुरागसे भी नहीं. जो है सो है. जहांतक दैवेच्छा है तहांतक यह इसके भोग भोगे, परन्तु मेरा उससे कुछ संबंध नहीं. गुरु–आज्ञाके अनुसार इस स्त्रीके साथ विवाह किया है, सो केवल व्यवहारके लिये ही, किंतु मुझे उससे कुछ भी लेना देना नहीं है.

हे विशाल! उसी योगीश्वर महात्माके प्रतापपुंजसे मेरे पुत्रका भावी मैंने जैसे जान लिया था वैसाही हुआ. मुझे इसका कुछभी हर्ष वा शोक नहीं. वह मेरा था भी नहीं और न वह मेरा होगा. उसमें मेरा चित्त हो तभी उसकी माया मुझे पीडित करे, परन्तु मेरा चित्त निवृत्तिपरायण होकर उसी सत्यस्वरूप, विश्वेश्वर, परमोद्धारक, जगद्गुरु, धर्मात्मा, अखिल विश्वके स्वामी परमात्मामें लवलीन हो रहा है; उसीमें ही प्रेमभक्तिसे लगा हुआ है, उसीमें ही एकतार होगया है, मुझको उसीकी माया–मोह है और एक मात्र वही मुझे पीड़ती खटकती है और उस पीड़ामेंही मेरा नित्यका आनन्द समाया हुआ है. उसीमें अपनेको कृतकृत्य मानता हूं. आनन्दी परमात्मा परब्रह्मस्वरूपकी पीड़ा (लगन) का जो आनन्द है, उसको कोई विरलेही जन भोगते हैं.

इस प्रकार यज्ञभूने प्रधान विशालको अपनी कथा कह सुनाई. तिस पीछे मुमुक्षु प्रधान उसके चरणोंमें गिरा और कहने लगा–" हे महाराज!

आपके प्रतापसे आज मैं कृतकृत्य हुआ हूं, और आप जिन योगीश्वरके चरणोंका सेवन कर आये हैं, उनकी वाणीसे जब मेरी माया छूटगई; तब आपकी यह विदेही दशा होजाय इसमें आश्चर्यही क्या ?" तदनन्तर राजा प्रधान दोनों विदेह, दैवाधीन इस लोकमें रहकर, सर्वत्र परमात्माका ही दर्शन करते २ सद्धर्मसे प्रजापालन करते हुए संसारमें विचरते रहे और प्रारब्धभोग समाप्त होजानेपर परमात्माके निजरूपको पाकर दोनोंहीने अक्षरधाममें निवास किया.

इति श्रीनंदनंदनपादारविन्दमिलिन्देन देशाईकुलोत्पन्नेन सूर्यरामसुतेन इच्छारामेण विरचिते चन्द्रकांते "तत्वज्ञानपूर्वकसंसार-निरासंसाधनं नाम द्वितीयः प्रवाहः।